वृत्तिप्रभाकर।

साधुश्रीनिश्चलदासजीप्रणीत।

जिसमें

अनेकानेक उदाहरणोंद्वारा वृत्तियोंकरिकै वेदान्त-
शास्त्रका सिद्धांत प्रतिपादनकिया है।

जिसको

मुमुक्षुजनोंके लाभार्थ

खेमराज श्रीकृष्णदासने

मुम्बई,

स्वकीय "श्रीवेंकटेश्वर" छापाखानामें

छापकर प्रसिद्धकिया।

शके १८१८. संवत् १९५३.

प्रस्तावना।

दोहा-तावत गर्जत शास्त्र सब, जंबुक इव वनमाहिं।
महाशक्ति वेदान्त हरि, यावत नादत नाहिं॥

जब तक पुरुषको ब्रह्मात्माका अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तबतक पुरुषका जन्म मरण संसारसे निवृत्त नहीं होता वह अपरोक्ष ज्ञानभी मुमुक्षुजनको वेदान्तशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासनसे होवे है, इसवास्ते पुरुषको साधन चतुष्टय संपन्न होकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण अवश्य करना चाहिये. वेदान्तशास्त्रके संस्कृतमें अनेक ग्रन्थहैं, जैसे शारीरक भाष्य, उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य इत्यादि, परंतु वे संस्कृतमें हैं, व्याकरण न्यायशास्त्रादिकोंके अध्ययन बिना वे समझमें नहीं आते। जिन मुमुक्षुओंका संस्कृतमें प्रवेश नहीं उनके वास्ते साधु निश्चलदासजीने उन वेदान्तके संस्कृत ग्रन्थोंके अनुसार दो ग्रन्थ बनायेहैं एक "विचारसागर" दूसरा यह "वृत्तिप्रभाकर" है विचारसागर बहुत सरलहै मंदबुद्धिवाले मुमुक्षुभी उसको पठन करसक्तेहैं और उन मंदबुद्धिवालोंके लियेही बनायाहै इसवास्ते उसमें प्रत्यक्षादि प्रमाण और अख्याति आदि विषय बहुत संक्षेपसे निरूपण कियेहैं, इसवास्ते उनमें मुमुक्षुजनोंके कई संदेह रहजातेहैं, परंतु इस "वृत्तिप्रभाकर" ग्रन्थमें साधु निश्चलदासजीने उन प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा अख्याति आदि पदार्थोंको विस्तारसे निरूपण कियाहै, इसवास्ते बड़े बड़े संदेहोंको दूर करनेवाला यह ग्रन्थहै और यही ग्रन्थ ब्रह्मज्ञानद्वारा असारसंसारसे मुक्त करनेहाराहै। इसको प्रथम नारायणजी त्रीकमजीने शिला अक्षरोंमें छपवाया था इसलिये उसके अक्षर सुंदर न हुए और पाठकों को पढ़ने पढ़ानेमें भी सुलभ न हुआ, अतएव हमने श्रीयुत पं० देवचरण अवस्थीजी से भलीभांति शुद्ध कराकर प्रकाशित कियाहै आशाहै कि मुमुक्षुजन इसे सादर ग्रहण करेंगे॥

कवित्त-वृत्तिप्रभाकर ग्रंथरच्योहै ललितपंथ, अतिशय कोविद स्वामि निश्चल अनूपही। अष्टहैं प्रकाश भ्रम तमको करतनाश, आवरि सुभावहोत आनन्द स्वरूपही॥ सूरदास तुलसीदास केशवदास आदिभले, छंदनके रचबेमें भये कविभूपही। याहिके समान भाषा ग्रंथनमें अर्थ नाहिं, जासुके मननकरे मिटै भवकूपही॥ १॥ प्रत्यक्ष अनुमान पुनशब्दोपमानमान, अरथापत्ति अनुपलब्धि प्रमानहीं। प्रथम औ दूजे तीजे चतुर्थ पंचछठे, क्रमहूते इनहूंकूं मनमाहिं आनहीं॥ सप्तमप्रकाशहूमें वृत्तिको स्वरूप भन्यो, अष्टम प्रकाशमाहिं फलवृत्ति गानहीं। बुद्धजनद्वारे याको करत विचार जोई, बुद्धिहूकी मंदता करैगो सबहानहीं॥ २॥

आपका कृपाभिलाषी-खेमराजश्रीकृष्णदास-"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना-मुंबई.

श्रीः ।

अथ वृत्तिप्रभाकरस्थविषयानुक्रमणिका ।

वृत्तिभेद अनिर्वचनीयख्याति मंडनान्यथाख्याति खंडन तथा स्वतः प्रमात्वनिरूपणनामक सप्तम प्रकाश ७ ॥

इति वृत्तिप्रभाकरग्रंथस्थ विषयानुक्रमणिका संपूर्णा।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ
वृत्तिप्रभाकरप्रारम्भः ।

दोहा ॥

अस्ति भाति प्रिय सिंधुमें, नाम रूप जंजाल ॥
लखितिहि आत्मस्वरूप निज, ह्वै तत्काल निहाल ॥ १ ॥

वृत्तिके सामान्य लक्षण और भेद ॥ १ ॥

अहं ब्रह्मास्मि या वृत्तिसे कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति होवैहे, । यह वेदांतका सिद्धांतहै । तहां यह जिज्ञासा होवैहे वृत्ति किसको कहैंहैं औ वृत्तिका कारण कौनहै और वृत्तिका प्रयोजन कौनहै, याते वृत्तिप्रभाकर नाम ग्रंथ लिखैंहै । अंतःकरणका और अज्ञानका जो परिणाम सो वृत्ति कहियेहैं ॥ यद्यपि क्रोधसुखादिकभी अंतःकरणके परिणामहै ॥ और आकाशादिक अज्ञानके परिणाम है तिनको वृत्ति नहीं कहैंहै । तथापि विषयका प्रकाशक जो अंतःकरणका और अज्ञानका परिणाम सो वृत्ति कहियेहैं । क्रोध सुखादिरूप जो अंतःकरणके परिणाम तिनतै किसी पदार्थका प्रकाश होवै नहीं तैसैही आकाशादिकाभी नहीं प्रकाश होवै ॥ यातै वृत्ति नहीं किंतु ज्ञानरूप परिणामतै प्रकाश होवैहै ताहीको वृत्ति कहैंहैं । यद्यपि सुख, दुःख, काम, तृप्ति, क्रोध, क्षमा, धृति अधृति लज्जा और भयादिक जितने अंतःकरणके परिणाम हैं तिन सर्वको अनेकस्थानोंमें वृत्तिशब्दसे व्यवहार लिखाहै । तथापि तत्त्वानुसंधान अद्वैतकौस्तुभादिक ग्रंथनमें प्रकाशक परिणामही वृत्ति कहाहैं । यातै माया और अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणामही वृत्ति शब्दका अद्वैतमतमें पारिभाषिक अर्थहै । सो वृत्तिज्ञान दो प्रकारका है एक प्रमारूप और दूसरा अप्रमारूपहै ।

प्रमाणजन्य ज्ञानको प्रमा कहैहैं तासे भिन्नको अप्रमा कहैहैं ॥ प्रमाज्ञान यथार्थही होवैहै ॥ औ अप्रमा ज्ञान दो प्रकारकाहै ॥ एक यथार्थहै ॥ और दूसरा भ्रमहै ॥ दोषजन्यको भ्रम कहेहै ॥ और दोषजन्य नहोवै किंतु इंद्रिय अनुमानादि प्रमाणतैं अथवा और किसी कारणते होवै सो यथार्थ कहियेहै ॥ जैसे शुक्तिमें रजतका ज्ञानसादृश्य दोषजन्यहै यातैं भ्रमहैं । मिश्रीमें कटुताका ज्ञान पित्तदोषजन्यहै ॥ चंद्रमें लघुताका ज्ञान और अनेक वृक्षोंमें एकताका ज्ञान दूरतारूप दोषजन्यहै याते भ्रम है । औ विचारसागरमें दोषको अध्यासकी हेतुता षंडन करीहै ॥ ताका यह अभिप्रायहै ॥ प्रमाता प्रमाण प्रमेयके तीनि दोष अध्यासके हेतु नहीं कोई दोष होवै तो अध्यास होवैहै ॥ औ सर्व दोषके अभावतै जो अध्यास कहाहै सो प्रौढिवादसै कहाहै । जहां और कोई दोष न होवै तो अविद्याही दोषहै याते दोषजन्यको भ्रम कहैहैं ॥

और स्मृति ज्ञान सुख दुःखका प्रत्यक्ष ज्ञान ईश्वरवृत्ति ज्ञान दोषजन्य नहीं याते भ्रम नहीं और प्रमाणजन्य नहीं याते प्रमा नहीं किंतु भ्रम प्रमासे विलक्षणहै परंतु यथार्थहै काहेतें जा ज्ञानके विषयका संसारदशामें बाध न होवै सो यथार्थ कहियेहै ॥

स्मृतिज्ञानका हेतु संस्कारद्वारा पूर्व अनुभवहै ॥ जहां यथार्थ अनुभवसे स्मृति होवै तहां स्मृति यथार्थ ॥ औ भ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं स्मृति होवे सो अयथार्थहै ॥

धर्मादिक निमित्तसे अनुकूल प्रतिकूल पदार्थके संबंध होनेतैं अंतःकरणके सत्वगुणका औ रजोगुणका परिणामरूप सुख दुःख होवैहैं ॥ जो सुख दुःखका निमित्तहै ॥ ताही निमित्तसे सुख दुःखको विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै ॥ ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुखदुःखको प्रकाशैहै ॥ सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति प्रमाणजन्य नहीं ॥ याते प्रमा नहीं ॥

और ईश्वरका ज्ञान इच्छाप्रयत्न न्यायमतमें तो नित्यहै परंतु श्रु-

तिमें ईश्वरके ज्ञानादिकनकी उत्पत्ति कहीहै ॥ याते नित्य नहीं किंतु प्राणियोंके कर्मनके अनुसार सृष्टिके आदिकालमें सर्व पदार्थको विषय करनेवाला ईश्वरका ज्ञान उपजैहै ॥ सो ज्ञान भूत भविष्यत् वर्तमान सकल पदार्थनके सामान्य विशेष भावको विषय करैहै ॥ और प्रलयपर्यंत स्थायीहै ॥ याते एक औ नित्य कहैहैं ॥ तैसे इच्छा औ प्रयत्नभी उत्पत्तिवालेहैं औ स्थायीहैं ॥ याते प्रलयपर्यंत एक एक व्यक्तिहैं॥ याके विषय ऐसी शंका करैहैं ॥ ईश्वरकी इच्छा प्रलयपर्यंत स्थायी होवै तौ वर्षा आतप शीत ईश्वरकी इच्छातैं होवैहैं ॥ याते प्रलयपर्यंत वर्षा तथा आतप वा शीत हुआ चाहिये सो शंका बनै नहीं ॥ काहेतै ॥ ईश्वरकी इच्छा व्यक्ति नाना होवैं औ नित्यहोवै तब यह दोष होवै सो ईश्वरकी प्रलयपर्यंत स्थायी इच्छाव्यक्ति नाना नहीं किंतु एकहै ता एक इच्छातैं सारे पदार्थ जिस रीतिसे विषय करैहैं उस रीतिसे होवैहैं ॥ इतने काल वर्षा होवै इतने काल शीत होवै इतने काल आतप होवै इस रीतिसे ईश्वरकी इच्छा पदार्थनकूं विषय करैहै ॥ यातैं सारे पदार्थ किसी कालमें होवैहै ॥ प्रलयपर्यंत स्थायी इच्छा एकहै ॥ या पक्षमें दोष नहीं ॥ श्रुतिमैं ज्ञान इच्छाकृतिकी उत्पति कहीहै ॥ यातैं ज्ञानादिक उत्पतिवालेहैं ॥ औ आकाशकी नांई महाप्रलयपर्यंत स्थायीहैं औ ईश्वरकै ज्ञानकै प्रपंच स्थितिकालमें अनंतवार उत्पत्ति नाश मानै ताको यह पूछैं हैं ईश्वरमैं कोई एक ज्ञानव्यक्ति प्रपंचकी स्थितिकालमैं सदा बनी रहैहै ॥ अथवा प्रपंच होतै किसी कालमैं ज्ञानहीन ईश्वर रहैहै ॥ जो ऐसे कहै ज्ञानहीन ईश्वर किसी कालमें रहैहै ॥ तौ उस कालमें ईश्वर अज्ञ होवैगा ॥ और जो ऐसे कहै कोई ज्ञानव्यक्ति ईश्वरमैं सदा रहैहै ॥ तौ अनंत ज्ञानकी अनंत उत्पत्ति अनंत नाश माननै निष्फल है ॥ एकही ज्ञान सृष्टिके आदिकालमें उत्पन्न हुआ महाप्रलयपर्यंत स्थायीहै ॥ सो ईश्वरके ज्ञान इच्छाकृति विसंवादी नहीं किंतु संवादीहै

निष्फलप्रवृत्तिके जनक ज्ञानादिक विसंवादि कहियेहैं ॥ तासैं भिन्न संवादी कहियेहैं ॥ जीवके ज्ञान इच्छाकृति संवादि औ विसंवादि भेदसे दो प्रकारकेहैं ॥ ईश्वरके ज्ञान इच्छाकृति निष्फल प्रवृत्तिके जनक नहीं ॥ यातैं विसंवादी नहीं किंतु संवादीहै । विसंवादी ज्ञानको भ्रम कहेहैं ॥ संवादीको यथार्थ कहेहैं ॥ प्रमाणजन्य यथार्थ ज्ञानको प्रमा कहैहैं ॥ जैसे जीवका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूपहै ॥ तैसेही ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूपहै ॥ जीवनके अदृष्टजन्यहै प्रमाणजन्य नहीं ॥ यातैं प्रमा नहीं दोषजन्य नहीं ॥ औ निष्फलप्रवृत्तिका जनक नहीं ॥ यातैं भ्रमभी नहीं ॥ किंतु यथार्थ हैं ॥ प्रमाणजन्य ज्ञानके प्रमा कहैहैं ॥

प्रमाणके भेदका कथन ॥ २ ॥

प्रमाणके षट् भेदहैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ शब्द ३ उपमान ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ ॥ प्रत्यक्षप्रमाका जो करण सो प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहैं ॥ अनुमितिप्रमाके करणको अनुमानप्रमाण कहैहैं ॥ शाब्दी प्रमाके करणको शब्दप्रमाण कहैहैं ॥ उपमितिप्रमाके करणको उपमानप्रमाण कहैहैं ॥ अर्थापत्ति प्रमाके करणको अर्थापत्तिप्रमाण कहैहैं ॥ अभावप्रमाके करणको अनुपलब्धिप्रमाण कहेहैं ॥ प्रत्यक्ष औ अर्थापत्तिप्रमाणके औ प्रमाके एकही नामहै । भट्टके मतमें षट् प्रमाण मानेहैं॥ औ वेदांतग्रंथनमैंभी षट्प्रमाणही लिखेहैं । यद्यपि सूत्रकार भाष्यकारने प्रमाणसंख्या नहीं लिखी तथापि सिद्धांतका अविरोधी जो भट्टका मतहै ताको अद्वैतवादमें मानेहैं ॥ यातैं वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें षट् प्रमाणही लिखेहैं ॥

करणका लक्षण ॥ ३ ॥

औ न्याय शास्त्रमैं चारि प्रमाण मानेहैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिको नहीं मानेहैं । तहां यह न्यायशास्त्रका मतहै ॥ जो प्रमाका करण होवै सो प्रमाण कहियेहै । प्रत्यक्ष प्रमाके करण नेत्रादिक इंद्रियहैं ॥ यातैं नेत्रादिक

इंद्रियनको प्रत्यक्षप्रमाण कहेहैं । व्यापारवाला जो असाधारण कारण होवै सो करण कहियेहैं । ईश्वर औ ताके ज्ञान इच्छाकृति दिशा काल अदृष्ट प्रागभाव प्रतिबंधका भाव ये नव साधारण कारणहै ॥ इनसै भिन्न जो कारण सो असाधारण कारण कहियेहैं ॥ असाधारण कारणभी दो प्रकारका होवैहै ॥ एकतो व्यापारवाला होवैहै दूसरा व्यापाररहित होवैहै ॥ कारणतैं उपजिके कार्यको उपजावैं सो व्यापार कहियेहैं॥ जैसे कपाल घटका कारण है औ कपालदोंका संयोगभी घटकाकारणहैं ॥ तहां कपालकी कारणतामें संयोग व्यापारहै ॥ काहेते कपालसंयोग कपालतैं उपजैहै औ कपालके कार्य घटको उपजावैहै ॥ यातैं संयोगरूप व्यापारवाला कारण कपालहै ॥ औ जो कार्यको किसी द्वारा उपजावै नहीं किंतु आपही उपजावै सो व्यापारहीन कारण कहियेहैं। ईश्वर आदि जो नव साधारण कारण तिनसैं भिन्न व्यापारवाला कारण करण कहियेहैं ऐसा कपालहै ॥ यातैं घटका कपाल करण कहियेहै ॥ औ कपालका संयोग असाधारण तो है व्यापारवाला नहीं ॥ यातैं करण नहीं कहियेहै ॥ केवल घटका कारणही कहियेहैं ॥

प्रत्यक्षप्रमाणके भेदका कथन ॥ ४ ॥

तैसे प्रत्यक्षप्रमाके नेत्रादिक इंद्रिय करणहै ॥ काहेतैं नेत्रादिक इंद्रियनका अपने अपने विषयते संबंध नहीं होवै तौ प्रत्यक्ष प्रमा होवैनहीं इंद्रिय विषयका संबंध होवै तब होवैहै ॥ यातैं इंद्रिय विषयका संबंध इंद्रियते उपजिकै प्रत्यक्षप्रमाको उपजावैहै ॥ सो व्यापारहै । संबंधरूप व्यापारवाले प्रत्यक्षप्रमाके असाधारण कारण इंद्रियहै यातैं इंद्रियनको प्रत्यक्षप्रमाण कहेहैं ॥ इंद्रियजन्य यथार्थ ज्ञानको न्यायमतमें प्रत्यक्षप्रमा कहेहैं ॥ प्रत्यक्षप्रमाके करण इंद्रिय षट् हैं यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं ॥ श्रोत्र १ त्वक् २ नेत्र ३ रसन ४ घ्राण ५ मन ६ ये षट् इंद्रियहैं ॥ श्रोत्रजन्य यथार्थ ज्ञान श्रौत्रप्रमा

कहियेहै ॥ १ ॥ त्वक्इंद्रियजन्य यथार्थज्ञान त्वाचप्रमा कहियेहैं ॥ २॥ नेत्रइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान चाक्षुषप्रमा कहियेहै ॥ ३ ॥ रसनइंद्रिय-जन्य यथार्थज्ञान रासनप्रमा कहियेहैं ॥ ४ ॥ घ्राणइंद्रियजन्य यथार्थ ज्ञान घ्राणजप्रमा कहियेहैं ॥ ५ ॥ मनइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान मानस-प्रमा कहियेहैं ॥ ६ ॥ न्यायमतमें शुक्तिरजतादिक भ्रमभी इंद्रियज-न्यहै ॥ परंतु केवल इंद्रियजन्य नहीं; किंतु दोषसहित इंद्रियजन्यहै। विसंवादीहै यथार्थ नहीं यातै शुक्तिमें रजतका ज्ञान चाक्षुष ज्ञान तो है; चाक्षुषप्रमा नहीं ॥ ऐसेही अन्य इंद्रियतेंभी जो भ्रम होवै सो प्रमा नहीं॥

प्रत्यक्षप्रमाके श्रोत्रजप्रमाका निरूपण ॥ ९ ॥

श्रोत्रइंद्रियतै शब्दका ज्ञान होवैहै ॥ और शब्दमें जो शब्दत्व जाति ताका भी ज्ञान होवैहै ॥ तैसे शब्दत्वके व्यापकत्वादिकनका औ तारत्वादिकनका ज्ञान होवैहै ॥ तैसे शब्दाभाव औ शब्दमें तारत्वादिकनके अभावका ज्ञान होवैहै ॥ जाका श्रोत्रइंद्रियसे ज्ञान होवै ताविषयसे श्रोत्रइंद्रियका संबंध कहा चाहिये ॥ यातै संबंध कहियेहैं ॥ न्यायमतमें चार इंद्रिय तो वायु अग्नि जल पृथिवीतैं क्रमसे उपजैहैं ॥ औ श्रोत्र मन नित्यहैं ॥ कर्णगोलकमें स्थित आकाश-को श्रोत्र कहैहैं ॥ जैसे वायु आदिकनते त्वक् आदिक इंद्रिय उपजैहैं; तैसे आकाशतैं श्रोत्र उपजैहै । यह नैयायिक नहीं मानैहैं ॥ किंतु कर्णमें जो आकाश ताहीको श्रोत्र कहैहैं ॥ औ गुणका गुणीसे समवायसंबंध कहैहैं ॥ शब्द आकाशका गुणहै ॥ यातै आकाशरूप श्रोत्रसे शब्दका समवायसंबंधहै ॥ यद्यपि भेरीआदिक देशमें जो आकाश तामें शब्द उपजैहै औ कर्णउपहित आकाशको श्रोत्र कहैहैं ॥ यातै भेरीआदिक उपहित आकाशमें शब्दका संबंधहै; कर्णउपहित आकाशमें नहीं ॥ तथापि भेरी दंडके संयोगतैं भेरीउपहित आकाशमें शब्द उपजैहै ॥ ताका कर्णउपहित आकाशतैं संबंध नहीं ॥ यातैं प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥

परंतु ता शब्दसे और शब्द दश दिशा उपहित आकाशमें उपजैहै तिनतैं और उपजैंहैं ॥ कर्णउपहित आकाशमैं जो शब्द उपजैहै ॥ ताका प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै औरका नहीं॥ शब्दकी प्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ श्रोत्रइंद्रिय करणहै ॥ औ त्वाचआदिक प्रत्यक्षज्ञानमें तो सारे विषयनका इंद्रियनसे संबंधही व्यापारहै औ श्रोत्रप्रमामें विषयसे इंद्रियका व्यापारसंबंध बनै नहीं ॥ काहेतैं और स्थानोंमें विषयनका इंद्रियनतैं संयोग संबंधहै ॥ औ शब्दका श्रोत्रसे समवायसंबंध है॥ न्यायमतमें संयोग जन्य है समवाय नित्यहै ॥ त्वक्आदिक इंद्रियनका घटादिकनतैं संयोग संबंध त्वक्आदिक इंद्रियनतैं उपजैहै ॥ औ प्रमाको उपजावैहै ॥ यातैं व्यापारहै तैसे शब्दका श्रोत्रसे समवायसंबंध श्रोत्रजन्य नहीं ॥ यातैं व्यापार बनै नहीं ॥ किंतु श्रोत्रमनका संयोग व्यापारहै। संयोग दोके आश्रित होवैहै ॥ जिनके आश्रित संयोग होवैहै सो दोनों संयोगके उपादान कारण होवैहैं ॥ श्रोत्रमनके संयोगके उपादान कारण श्रोत्र मन दोनोंहैं॥ यातैं श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रजन्यहै; औ श्रोत्रजन्य ज्ञानका जनकहै ॥ यातैं व्यापारहै ॥

याके विषे ऐसी शंका होवैहै ॥ श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रजन्य तो है ॥ परंतु श्रोत्रजन्यप्रमाका जनक किस रीतिसेहै ॥

ताका यह समाधानहैः— आत्ममनका संयोग तो सर्वज्ञानका साधारण कारणहै ॥ यातें ज्ञानकी सामान्य सामग्री आत्ममनका संयोगहै ॥ औ प्रत्यक्षआदिक ज्ञानकी विशेष सामग्री इंद्रियादिकहैं ॥ यातैं श्रोत्रजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानके पूर्वभी आत्ममनका संयोग होवैहै तैसे मनका औ श्रोत्रका संयोग होवैहै ॥ मनका औ श्रोत्रका संयोग हुयेविना श्रोत्रजन्य ज्ञान होवै नहीं काहेतैं अनेक इंद्रियनका अपने अपने विषयनतें एक कालमें संबंध हुये भी एककालमें तिन सर्व विषयनके इंद्रियनतें ज्ञान होते नहीं ॥ ताके विषे यह हेतुहै ॥ मनके संयोगवाले इंद्रियका विषयतैं संबंध

होवै तब ज्ञान होवैहै ॥ मनसे असंयुक्त इंद्रियका अपने विषयके साथ संबंध हुयेभी ज्ञान होवै नहीं ॥ न्यायमतमें परम अणु मन है ॥ यातें एक कालमें अनेक इंद्रियनतें मनका संयोग संभवै नहीं ॥ इस हेतुतैं अनेक विषयनका अनेक इंद्रियनतैं एक कालमें ज्ञान होवै नहीं ॥ जो ज्ञानका हेतु इंद्रियमनका संयोग नहीं होवै तौ एककालमें अनेक इंद्रियनका विषयनतें संबंध हुये एककालमें अनेक ज्ञान हुये चाहिये ॥ इस रीतिसे चक्षुरादि इंद्रियनका मनसे संयोग चाक्षुषादि ज्ञानका असाधारण कारणहै ॥ त्वाचज्ञानमें त्वक्मनका संयोग कारण है ॥ औ रासनज्ञानमें रसनामनका संयोग कारणहै तैसे चाक्षुष ज्ञानमें नेत्रमनका संयोग कारणहै ॥ औ घ्राणजज्ञानविषै घ्राणमनका संयोग कारणहै श्रोत्रज ज्ञानमें श्रोत्रमनका संयोग कारणहै ॥ इस रीतिसे श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रसे उपजिकै श्रोत्रज ज्ञानका जनकहै ॥ यातैं व्यापार है ॥ आत्ममनका संयोग सर्वज्ञानमें हेतुहै ॥ यातैं पहले आत्ममनका संयोग होवै तिसते अनंतर जो इंद्रियजन्य ज्ञान उपजैगा ता इंद्रियसे आत्मसंयुक्त मनका संयोग होवैहै ॥ फेरि मनसंयुक्त इंद्रियका विषयते संबंध होवै तब बाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै ॥ इंद्रिय विषयके संबंध बिना बाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं ॥

विषयका इंद्रियसे संबंध अनेक प्रकारकाहै॥ जहां शब्दका श्रोत्रसे प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तहां केवल शब्दही श्रोत्रजन्य ज्ञानका विषय नहींहै ॥ किंतु शब्दके धर्म शब्दत्वादिकभी ता ज्ञानके विषयहैं ॥ शब्दका तो श्रोत्रसैं समवायसंबंध है॥ औ शब्दके धर्म जो शब्दत्वादिक तिनसैं श्रोत्रका समवेत समवाय संबंध है ॥ काहेतैं गुणगुणीकी नाईं जातिका अपने आश्रयमें समवाय संबंध होवैहै ॥ यातैं शब्दत्व जातिका शब्दमें समवाय संबंधहै ॥ समवाय संबंधसे जो रहै ताको समवेत कहैहैं ॥ श्रोत्रमें समवाय संबंधसे रहै जो शब्द सो श्रोत्रसमवेतहै ॥ ता श्रोत्रसमवेत शब्दमें शब्दत्वका समवाय

होनेतै श्रोत्रका शब्दत्वसे समवेत समवाय संबंध है॥ तैसे श्रोत्रमें शब्दकी प्रतीति नहीं होवै तब शब्दाभावका प्रत्यक्ष होवैहै॥ तहां शब्दाभावका श्रोत्रसे विशेषणता संबंध है॥ जिस अधिकरणमें पदार्थका अभाव होवै तिस अधिकरणमें पदार्थके अभावका विशेषणता संबंध कहियेहै॥ जैसे वायुमें रूप नहींहै॥ याते वायुमें रूपाभावका विशेषणता संबंधहै॥ जहां पृथीवीमें घट नहींहै तहां पृथिवीमें घटाभावका विशेषणता संबंध है॥ इस रीतिसे शब्दशून्य श्रोत्रमें शब्दाभावका विशेषणता संबंध है॥ याते श्रोत्रसे शब्दाभावका विशेषणता संबंध शब्दाभावके प्रत्यक्ष ज्ञानका हेतुहै जैसे श्रोत्रसे ककारादिक शब्दका प्रत्यक्ष होवैहै॥ तहां समवायसंबंधहै तैसे ककारादिकनमें कत्वादिक जो जाति तिनका समवेतसमवाय संबंधसे प्रत्यक्ष होवैहै॥ औ श्रोत्रमें शब्दाभावका विशेषणतासंबंधसे प्रत्यक्ष होवैहै॥ तैसे श्रोत्रसमवेत ककारमें खत्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै॥ तहां श्रोत्रका खत्वाभावसे समवेत विशेषणता संबंध है॥ काहेतें श्रोत्रमें समवेत कहिये समवाय संबंधसे रहै॥ जो ककारतामें खत्वाभावका विशेषणता संबंधहै। इसते आदि लेके अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रसे अनेक संबंधहैं॥ परंतु विशेषणतापना सर्व अभावनके संबंधनमेंहै। यातें अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रका एकही विशेषणता संबंधहै॥ इस रीतिसे श्रोत्रजन्य प्रमाके हेतु तीन संबंधहैं॥ शब्दके ज्ञानका हेतु समवायसंबंध है॥ औ शब्दके धर्म शब्दत्वकत्वादिकनके ज्ञानका हेतु समवेत समवाय संबंध है औ अभावके श्रोत्रजन्य ज्ञानविषै विशेषणतासंबंध है॥ सो विशेषणता नानाप्रकारकी है॥ शब्दाभावके प्रत्यक्षमें शुद्ध विशेषणता संबंधहै॥ ककारविषै खत्वाभावके प्रत्यक्षमें समवेत विशेषणता है॥ विशेषणता संबंधके अनंत भेदहैं तौभी विशेषणतापना सारैंहै यातै विशेषणता एकहीं कहियेहै॥ शब्दके दो भेद हैं॥ एक तो भेरी आदिक देशमें ध्वनिरूप शब्द होवैहै॥ औ दूसरा कंठादिक देशमें वायुके संयोगते वर्णरूप शब्द

होवैहै ॥ श्रोत्रइंद्रियते दोनों प्रकारके शब्दका प्रत्यक्ष होवैहै । औ वर्णरूप शब्दमें जो कत्वादिक जातिहैं तिन्हका जैसे समवेत समवाय संबंधसे प्रत्यक्ष होवैहै। तैसे ध्वनिरूप शब्दमें जो तारत्वमंदत्वादिक धर्महैं ॥ तिन्हकाभी श्रोत्रसे प्रत्यक्ष होवैहै । परंतु कत्वादिक तो वर्णनके धर्म जातिरूप हैं ॥ याते कत्वादिकनका ककारादि रूपशब्दसे समवाय संबंधहै ॥ औ ध्वनि शब्दके तारत्वादिक धर्म जातिरूप नहीं न्यायमतमें उपाधिरूप हैं ॥ याते तारत्वादिकनका ध्वनिरूप शब्दमें समवाय संबंध नहीं स्वरूपसंबंध है ॥ काहेतें न्यायमतमैं जातिरूपधर्मका गुणका क्रियाका अपनैं आश्रयमैं समवायसंबंध कहैहैं ॥ जातिगुणक्रियासै भिन्न धर्मकूं उपाधि कहैहैं उपाधिका औ अभावका जो अपनैं आश्रयतैं संबंध ताकूं स्वरूपसंबंध कहैहैं ॥ स्वरूपकूंही विशेषणता कहैहैं ॥ यातैं जातिसैं भिन्न जो तारत्वादिक धर्म तिन्हका ध्वनिरूप शब्दसैं स्वरूपसंबंधहै ॥ ताहीकूं विशेषणता कहैहैं ॥ यातैं श्रोत्रमैं समवेत जो ध्वनि तामैं तारत्व मंदत्वका विशेषणता संबंध होनेतैं श्रोत्रका औ तारत्व मंदत्वका श्रोत्रसमवेतविशेषणता संबंध है इस रीतिसैं श्रोत्रइंद्रिय श्रोत्रप्रत्यक्षप्रमाका करणहै ॥ श्रोत्रमनका संयोग व्यापारहै शब्दादिकनका प्रत्यक्षप्रमारूप ज्ञान फलहै ॥

प्रत्यक्षप्रमाके भेद त्वाचप्रमाका निरूपण ॥ ६ ॥

त्वक् इंद्रियतैं स्पर्शका ज्ञान होवैहैं तथा स्पर्शके आश्रयका ज्ञान होवैहै ॥ औ स्पर्शके आश्रित जो स्पर्शत्व जाति ताका औ स्पर्शाभावका बी त्वक् इंद्रियतै प्रत्यक्ष होवैहै ॥ काहेतैं जा इंद्रियते जिस पदार्थका ज्ञान होवै ता पदार्थके अभावका औ ता पदार्थकी जातिका तिस इंद्रियतैं ज्ञान होवैहै ॥ पृथिवी जल तेज इन तीन द्रव्यनका त्वक्इंद्रियतैं प्रत्यक्षज्ञान होवैहै ॥ वायुका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं ॥ काहेतैं ॥ प्रत्यक्ष योग्यरूप औ प्रत्यक्षयोग्यस्पर्श जा द्रव्यमैं दोनूं होवैं ता द्रव्यका त्वाचप्र-

त्यक्ष होवैहै ॥ वायुमैं स्पर्श तो है रूप नहीं ॥ यातैं वायुका त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ वायुके स्पर्शका त्वक् इंद्रियतैं प्रत्यक्ष होवैहै ॥ स्पर्शके प्रत्यक्षतैं वायुका अनुमितिज्ञान होवैहै ॥

मीमांसाके मतमैं वायुका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ ताका यह अभिप्रायहै ॥ प्रत्यक्षयोग्य स्पर्श जा द्रव्यमैं होवै ता द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है ॥ त्वक् इंद्रियजन्य द्रव्यके प्रत्यक्षमैं रूपकी अपेक्षा नहीं केवल स्पर्शकी अपेक्षा है ॥ जैसै द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं उद्भूतरूपकी अपेक्षा है स्पर्शकी नहीं ॥ काहेतैं ॥ जो द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षमैं उद्भूतस्पर्शकी अपेक्षा होवै तो दीपकी तथा चंद्रकी प्रभामें उद्भूत स्पर्शहै नहीं ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होवैगा॥ और होवैहै ॥ और अणुकमैं स्पर्श तो है उद्भूतस्पर्श नहींहै ॥ यातैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं केवल चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं केवल उद्भूतरूपवाले द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसे केवल उद्भूतस्पर्शवाले द्रव्यका त्वाच प्रत्यक्ष होवैहै॥ वायुमैं रूपतो नहींहै उद्भूतस्पर्शहै॥ यातैं चाक्षुषप्रत्यक्ष तो वायुका नहीं होवैहै ॥ त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ और सर्व लोकनकूं ऐसा अनुभव होवैहै ॥ वायुका मेरेकूं त्वचासैं प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं वायुकाबी त्वक्इंद्रियतैं प्रत्यक्षहोवै है ॥ यह मीमांसाका मतहै ॥

परंतु ॥ न्यायसिद्धांतमैं वायुप्रत्यक्ष नहीं ॥ पृथिवी जल तेजमेंभी जहां उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्शहैं ताका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ औरका नहीं प्रत्यक्ष योग्य जो रूप औ स्पर्श सो उद्भूत कहियेहै ॥ जैसे घ्राण रसन नेत्रमैं रूप औ स्पर्श दोनूंहैं ॥ परंतु उद्भूत नहीं॥ यातैं पृथिवी जल तेजरूपबी तिन इंद्रियनका त्वाचप्रत्यक्ष औ चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ औ झरोखेमैं जो परमसूक्ष्म रज प्रतीति होवै सो अणुकरूप पृथिवीहै तामैं उद्भूतरूपहै ॥ यातैं अणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष तो होवैहै ॥ उद्भूत स्पर्शके अभावतैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ अणुकमैं स्पर्शबी है । परंतु सो स्पर्श उद्भूत नहीं ॥ वायुमैं उद्भूतस्पर्श तो है रूप नहीं ॥ यातैं

वायुका त्वाचप्रत्यक्ष तथा चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ यातें यह सिद्ध हुवा द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं उद्भूतरूप हेतुहै ॥ औ द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षमैं उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्श दोनूं हेतुहैं ॥ जा द्रव्यमैं उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्श होवैं ताकाही त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जा द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवै ता द्रव्यकी प्रत्यक्षयोग्य जातिका बी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जैसे घटका त्वाचप्रत्यक्ष होवै तहां घटमैं प्रत्यक्षयोग्य जाति घटत्वहै ताकाबी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसे द्रव्यमैं जो स्पर्श संख्या परिमाण संयोग विभागादिक योग्यगुण तिन्हका औ स्पर्शादिकनमैं स्पर्शत्वादिक जाति तिनकाबी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै॥औ कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शका अभावहै शीतल जलमैं उष्णस्पर्शका अभावहै ताकाबी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै तहां घट आदिक द्रव्यतैं इंद्रियका संयोग संबंधहै॥ क्रियाजन्य संयोग होवैहै॥ औ दो द्रव्यका संयोग होवैहै ॥ त्वक्इंद्रिय वायुके परमाणुजन्यहै ॥ यातैं वायुरूप द्रव्यहै घटबी पृथिवीरूप द्रव्यहै ॥ कहूं तो त्वक् इंद्रियका गोलक जो शरीर ताकी क्रियातैं त्वक् घटका संयोग होवैहै ॥ औ कहूं घटकी क्रियातैं त्वक्घटका संयोग होवैहै ॥ कहूं दोनूंमें क्रियातैं संयोग होवैहै ॥ नेत्रमैं तो गोलकनैं छोडिकै केवल इंद्रियमैं क्रिया होवैहै ॥ औ त्वक्इंद्रियमैं गोलकनैं छोडिकै स्वतंत्रमैं क्रिया कदेबी होवै नहीं ॥ यातैं त्वक्इंद्रियका गोलक जो शरीर ताकी क्रियातै वा घटादिक विषयकी क्रियातैं वा दोनूंकी क्रियातैं त्वक्का घटादिक द्रव्यतैं संयोग होवै तब त्वाचज्ञान होवैहै ॥ तहां त्वाचप्रत्यक्ष प्रमा फलहै ॥ त्वक्इंद्रिय करणहै त्वक्इंद्रियका घटसैं संयोग व्यापारहै ॥ काहेतैं त्वक् औ घटके संयोगके उपादानकारण घट त्वक् दोनूंहैं ॥ यातैं त्वक् इंद्रियजन्य वह संयोगहै ॥ औ त्वक्इंद्रियका कार्य जो त्वाच प्रमा ताका जनकहै इस कारणतैं त्वक्का घटसैं संयोग व्यापारहै ॥ जहां त्वक्सैं घटकी घटत्व जातिका औ स्पर्शादिक गुणनका त्वाचप्रत्यक्ष होवै तहां त्वक्इंद्रिय करणहै औ

प्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ औ संयुक्त समवायसंबंध व्यापारहै ॥ काहेतैं त्वक्-इंद्रियतैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो घट तामैं घटत्व जातिका औ स्पर्शादिक गुणनका समवायहै ॥ तैसे घटादिकनके स्पर्शादिक गुणनमैं जो स्पर्शत्वादिक जाति तिनकी त्वाच प्रत्यक्ष प्रमा होवै तहां त्वक्इंद्रिय करणहै स्पर्शत्वादिकनकी प्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ संयुक्त समवेत समवाय संबंधहै सो व्यापारहै ॥ काहेतैं ॥ त्वक्इंद्रियतैं संयुक्त जो घट तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधतैं रहनैंवाले स्पर्शादिक तिनमैं स्पर्शादिकजातिका समवायहै ॥ संयुक्तसवाय औ संयुक्तसमवेतसमवाय इन दोनूं संबंधमैं समवाय भाग तो यद्यपि नित्यहै इंद्रियजन्य नहीं ॥ तथापि संयोगवालेकूं संयुक्तकहेहैं ॥ सो संयोगजन्यहै ॥ यातैं त्वक् इंद्रियका संयोग त्वक्जन्य होनैंतैं त्वक्संयुक्त समवाय औ त्वक्संयुक्त समवेतसमवाय त्वक्इंद्रियजन्यहै ॥ औ त्वक् इंद्रियजन्य जो त्वाचप्रमा ताके जनकहै ॥ यातैं व्यापारहैं ॥ जहां पुष्पादिक कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शके अभावका औ शीतल जलमैं उष्णस्पर्शके अभावका त्वाच प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां त्वक् इंद्रिय करणहै ॥ अभावकी त्वाचप्रमा फलहै औ इंद्रियसैं अभावका त्वक्संयुक्त विशेषणतासंबंधहै सो व्यापारहै ॥ काहेतैं ॥ त्वक्इंद्रियका घटादिक द्रव्यतैं संयोगहै यातें त्वक्संयुक्त कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ तैसै त्वक्संयुक्त शीतल जलमैं उष्णस्पर्शाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ जहां घटस्पर्शमैं रूपत्वके अभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवै ॥ तहां त्वक्संयुक्त घटमैं समवेत जो स्पर्श ताकै विषै रूपत्वाभावका विशेषणतासंबंध होनैंतैं त्वक्संयुक्त समवेत विशेषणता संबंधहै ॥ इस रीतिसैं ॥ त्वाचप्रत्यक्षमैं च्यारि संबंधहेतुहैं ॥ त्वक्संयोग १ ॥ त्वक्संयुक्तसमवाय २ ॥ त्वक्संयुक्तसमवेतसमवाय ३ ॥ त्वक्संबंधविशेषणता ४ ॥ त्वक्से संबंधवालेकूं त्वक्संबंध कहेहैं ॥

जहां कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शाभावहै ॥ तहां त्वक्के संयोग संबंधवाला कोमल द्रव्यहै ॥ ता त्वक्संबंधकोमलद्रव्यमैं कठिन स्पर्शाभावका विशेषणतासंबंध स्पष्टहीहै ॥ जहां स्पर्शमैं रूपत्वाभावका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां त्वक्का स्पर्शतैं संयुक्तसमवायसंबंधहै ॥ त्वक्सैं संयुक्तसमवाय संबंधवाला होनैतैं त्वक्संबंध स्पर्शहै तामैं रूपत्वाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ इस रीतिसे त्वाच प्रमाके हेतु संयोगादिक च्यारि संबंधहै ॥

तैसे चाक्षुषप्रमाके हेतुबी नेत्रसंयोग १ ॥ नेत्रसंयुक्तसमवाय २ ॥ नेत्रसंयुक्तसमवेत समवाय ३ ॥ नेत्रसंबंधविशेषणता ४ ॥ ये चारिसंबंधहै ॥ सोई व्यापार है जहां नेत्रसैं घटादिक द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्षहोवै ॥ तहां नेत्रकी क्रियासैं द्रव्यके साथ संयोगसंबंधहै सो संयोग नेत्रजन्य है औ नेत्रजन्य जो चाक्षुष प्रमा ताका जनक है ॥ यातै व्यापारहै ॥ जहां नेत्रसैं द्रव्यकी घटत्वादिक जातिका औ रूपसंख्यादिक गुणनका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां नेत्रसंयुक्त द्रव्यमैं घटत्वादिक जातिका औ रूपादिक गुणनका समवाय संबंधहै ॥ यातैं द्रव्यकी जाति औ गुणनके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं नेत्रसंयुक्त समवायसंबंध है ॥ जहां गुणमैं रहनेवाली जातिका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां रूपत्वादिक जातिसैं नेत्रका संयुक्तसमवेतसमवाय संबंधहै ॥ काहेतैं नेत्रसैं संयुक्त घटादिकनमैं समवेत जो रूपादिक तिनमें रूपत्वादिकनका समवायहै॥ यद्यपि नेत्रसैं संयोग सकल द्रव्यनका संभवैहै ॥ तथापि उद्भूतरूपवाले द्रव्यतैं नेत्रका संयोग चाक्षुषप्रत्यक्षका हेतुहै ॥ औ द्रव्यसैं नेत्रका संयोग चाक्षुष प्रत्यक्षका हेतु नहीं ॥ पृथिवी जल तेज ये तीनि द्रव्य रूपवालेहैं और नहीं ॥ यातै पृथिवीजलतेजकाही चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ इनमैं भी ॥ जहां उद्भूतरूप होवै ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जामैं अनुद्भूतरूप होवै ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ जैसे घ्राण रसन नेत्र ये तीनूं इंद्रिय

क्रमते पृथिवी जल तेजरूपहै॥औ तीनूमैं रूपहै ॥ परंतु इनका रूप अनुद्भूतहै उद्भूत नहीं ॥ यातैं इनका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैं नहीं ॥ यातैं यह सिद्ध हुवा॥ उद्भूतरूपवाले पृथिवी जल तेजही चाक्षुषप्रत्यक्षके विषयहैं॥ तिनमैं कोई गुण चाक्षुषप्रत्यक्ष योग्यहै ॥ कोई चाक्षुषप्रत्यक्ष योग्य नहीं ॥ जैसे पृथिवीमैं रूप १ ॥ रस २ ॥ गंध ३ ॥ स्पर्श ४ ॥ संख्या ५ ॥ परिमाण ६ ॥ पृथक्त्व ७ ॥ संयोग ८ ॥ विभाग ९ ॥ परत्व १० ॥ अपरत्व ११ ॥ गुरुत्व १२ ॥ द्र-क्त्व १३ ॥ संस्कार १४ ॥ ये चतुर्दश गुणहैं ॥ इनमैं गंधकूं छोडिकै स्नेहकूं मिलावे तो चतुर्दश जलके हैं ॥ इनमें रसगंधगुरुत्व स्नेहकूं छोडिकै एकादश तेजकेहैं ॥ इनमैं रूप संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व द्रवत्व इतने गुण चाक्षुषप्रत्यक्ष योग्यहैं॥और नहीं ॥ याते नेत्रसंयुक्त समवायरूप संबंध तो सर्वगुणोंतै है ॥ नेत्रके योग्य सारे नहीं जितने नेत्रकै योग्यहैं ॥ उतने गुणनकाही नेत्रसंयुक्त समवाय संबंधसैं प्रत्यक्ष होवैहै ॥ स्पर्शमैं त्वक् इंद्रियकी योग्यताहै नेत्र-की नहीं ॥ रूपमैं नेत्रकी योग्यताहै त्वक्की योग्यता नहीं ॥ संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व द्रवत्वमैं त्वक् औ नेत्र दोनूंकी योग्यताहै यातैं त्वक्संयुक्तसमवाय औ नेत्रसंयुक्तसमवाय दोनूं संबंध संख्यादिकनके त्वाचप्रत्यक्ष औ चाक्षुषप्रत्यक्षके हेतुहैं ॥ रसमें केव-ल रसनकी योग्यताहै ॥ अन्य इंद्रियकी नहीं गंधमैं घ्राणकी योग्यताहै ॥ अन्यकी नहीं ॥ जिस इंद्रियकी योग्यता जिसगुणमैं है तिस इंद्रियतैं ता गुणका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ अन्यके साथि इंद्रियके संबंध हुयेबी प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ तैसे घटादिकनमैं जो रूपादिक चाक्षुषज्ञानके विषयहैं ॥ तिनकी रूपत्वादिक जातिका नेत्रसंयुक्तसमवेतसमवायतैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहैं ॥ और जो रसादिक चाक्षुषज्ञानके विषय नहीं तिनमैं रसत्वादिक जातिसैं नेत्रका संयुक्तसमवेतसमवाय संबंधहै तो बी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैं

नहीं ।। यातैं यह सिद्ध हुवा उद्भूतरूपवाले द्रव्यका नेत्रकै संयोगतैं चाक्षुषज्ञान होवैहै ।। उद्भूतरूपवाले द्रव्यकी नेत्रयोग्य जातिका औ नेत्रयोग्य गुणका संयुक्तसमवायसंबंधतैं चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै ।। तैसे नेत्रयोग्य गुणकी रूपत्वादिक जातिका नेत्रसंयुक्त समवेतसमवाय संबंधतैं चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै तैसे अभावका नेत्रसंबंधसे चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ।। जहां भूतलमैं घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्षहोवै ॥ तहां भूतलमैं नेत्रका संयोगसंबंधहै ॥ यातै नेत्रसंबंध भूतलमैं घटाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ तैसे नील घटमैं पीतरूपकै अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै ॥ तहां नेत्रसैं संयोग होनेतै नेत्रसंबंध नीलघटमैं पीतरूपाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ तैसे घटकै नीलरूपमैं पीतत्व जातिके अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां नेत्रसैं संयुक्तसमवायसंबंधवाला नीलरूपहै ॥ यातैं नेत्रसंबंध जो नीलरूप तामैं पीतत्वाभावका विशेषणता संबंध होनेतैं नेत्रसंबद्ध विशेषणतासंबंध है ॥ इस रीतिसे ॥ नेत्रसंयोग १ ॥ औ नेत्रसंयुक्तसमवाय ॥ २ ॥ तथा नेत्रसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ ॥ तैसे नेत्रसंबद्धविशेषणता ४ ॥ ये चारीसंबंध चाक्षुषप्रमाके हेतुहै ॥ सो तो व्यापारहै ॥ औ नेत्र करणहै चाक्षुषप्रमा फलहै ॥ जैसे त्वक् औ नेत्रसे द्रव्यका प्रत्यक्ष होवैहै ॥

प्रत्यक्षप्रमाके भेद रासनप्रमाका निरूपण ॥ ८ ॥

तैसे रसनइंद्रियसैं द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ किंतु रसका औ रसत्व मधुरत्वादिक रसकी जातिका तथा रसाभावका मधुरादिक रसमैं अम्लत्वादिक जातिके अभावका रासन प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं रासन प्रत्यक्षके हेतु रसनइंद्रियतै विषयनके तीनि संबंध है ॥ रसनसंयुक्तसमवाय १ ॥ रसनसंयुक्तसमवेतसमवाय २ ॥ रसनसंबंधविशेषणता ॥ ३ ॥ जहां फलके मधुर रसका रसन इंद्रियतैं रासन प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां फल औ रसनका संयोगसंबंधहै ॥ यातैं रसनसंयुक्त फलहै तामैं रसगुणका समवाय होनेतैं रसकै रासनप्रत्यक्षमैं संयुक्तसमवायसंबंधहै सो व्यापारहै ॥ काहेतैं ॥ संयुक्तसमवायसंबंधमैं जो समवाय अंशहै सो तो

नित्यहै रसनजन्य नहीं ॥ परंतु संयोगअंश रसनजन्यहै ॥ औ रसनइंद्रियजन्य जो रसका रासन साक्षात्कार ताका जनक है यातैं व्यापारहै ॥ तिस व्यापारवाला रासनप्रत्यक्षका असाधारण कारण रसनइंद्रियहै ॥ यातैं करण होनेतैं प्रमाणहै ॥ औ रासनप्रमा फलहै ॥ तैसैं रसमैं रसत्व जातिका औ मधुरत्व अम्लत्व लवणत्व कटुत्व कषायत्व तिक्तत्व रूप षट् धर्मनका रसनइंद्रियतै रासन साक्षात्कार होवैहै ॥ तहां रसनसैं फलादिक द्रव्यका संयोगहै ॥ ता द्रव्यमैं रस समवेत होवैहै ॥ यातैं रसनसंयुक्त जो द्रव्य तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधसैं रहनैंवाला रस है तामैं रसत्वका औ रसत्वके व्याप्य जो मधुरत्वादिक तिनका समवाय होनेतैं रसनसंयुक्त समवेतसमवाय संबंधहै ॥ तैसै फलकै मधुररसमैं अम्लत्वाभावका रासन प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां रसनइंद्रियका अम्लत्वाभावसैं स्वसंबद्ध विशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं संयुक्तसमवायसंबंधसैं रासनसंबद्ध मधुर रसहै तामैं अम्लत्वाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ यातैं रसनइंद्रियका अम्लत्वाभावसैं संयुक्तसमवेतविशेषणता संबंधहै रसनाइंद्रियजन्य रासनप्रत्यक्षके हेतु तीनि संबंध हैं ॥

प्रत्यक्षप्रमाके भेद घ्राणजप्रमाका निरूपण ॥ ९ ॥

तैसैं घ्राणजप्रत्यक्ष प्रमा होवै ॥ तहांबी घ्राणके विषयनतैं तीनि संबंध हेतुहैं ॥ घ्राणसंयुक्त समवाय १ ॥ घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवाय २ ॥ घ्राणसंबद्धविशेषणता ३ ॥ घ्राणइंद्रियतैं द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ किंतु गंधगुणका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जो द्रव्यका प्रत्यक्ष होता तो घ्राणका संयोग संबंध प्रत्यक्षमैं कारण होता द्रव्यका प्रत्यक्ष घ्राणसैं होवै नहीं ॥ यातैं घ्राणसंयोग प्रत्यक्षका हेतु नहीं ॥ औ गंधका घ्राणसैं साक्षात्संबंधहै नहीं ॥ किंतु पुष्पादिकनमैं गंधका समवाय संबंधहै ॥ औ घ्राणके साथि पुष्पादिकनका संयोगसंबंधहै ॥ यातैं घ्राणसंयुक्त समवाय संबंधतैं गंधका घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ अन्य गुणका घ्राणतैं प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ परंतु गंधमैं जो गंधत्व जाति ताका औ गंधत्वके व्याप्य

जो सुगंधत्वदुर्गंधत्व तिनकाबी घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसैं गंधाभावका बी घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ काहेतैं ॥ जा इंद्रियतैं जिस पदार्थका ज्ञान होवै ताकी जातिका औ ताके अभावकाबी तिस इंद्रियतैं ज्ञान होवैहै॥ जहां गंधत्वका औ सुगंधत्व दुर्गंधत्वका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां घ्राणसंयुक्त-समवेतसमवायसंबंध घ्राणज प्रत्यक्षका हेतुहै ॥ काहेतैं घ्राणसंयुक्त जो पुष्पादिक तिनमैं समवेत गंधहै ॥ तामैं समवाय गंधत्वादिकनका है ॥ तैसैं पुष्पके सुगंधमैं दुर्गंधत्वकै अभावका घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां घ्राणका दुर्गंधत्वाभावसैं स्वसंबद्ध विशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं ॥ संयुक्त समवायसंबंधसैं घ्राणसंबद्ध जो सुगंध तामैं दुर्गंधत्वाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ जहां पुष्पादिक दूरी होवैं औ गंधका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां यद्यपि ॥ पुष्पमैं क्रिया दीखै नहीं ॥ यातैं पुष्पादिकनका घ्राणतैं संयोगकै अभावतैं घ्राणसंयुक्त समवायसंबंध संभवै नहीं ॥ तथापि ॥ गंध तो गुणहै ॥ यातैं केवल गंधमैं क्रिया होवै नहीं ॥ किंतु गंधके आश्रय जो पुष्पादिकनके सूक्ष्म अवयव तिनमैं क्रिया होयकै घ्राणतैं संयोग होवैहै ॥ यातैं घ्राणसंयुक्त जो पुष्पादिकनके अवयव तिनमैं गंधका समवाय होनेतैं ॥ घ्राणसंयुक्त समवाय संबंधही गंधकै घ्राणजप्रत्यक्षका हेतुहै ॥ इस रीतिसै घ्राणजप्रत्यक्षके हेतु तीनि संबंधहैं ॥ सो व्यापारहैं ॥ घ्राणइंद्रिय कारण है घ्राणजप्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ इस रीतिसै श्रोत्रादिक पंचइंद्रियनतैं बाह्य पदार्थनका ज्ञान होवैहै ॥

मानसप्रत्यक्षप्रमाका निरूपण ॥ १० ॥

आत्मा औ आत्माके सुखादिक धर्म औ आत्मत्व जाति तथा सुखत्वादिक जाति इनका प्रत्यक्ष श्रोत्रादिकनतैं होवै नहीं॥ किंतु आत्मादिक जो आंतरपदार्थ तिनकै प्रत्यक्षका हेतु मनइंद्रिय है ॥ आत्मा औ ताके सुखादिकधर्मनतैं भिन्नकूं बाह्य कहैहैं ॥ आत्मा औ ताके धर्मनकूं आंतर कहैहैं ॥ जैसे बाह्य प्रत्यक्षप्रमाके करण श्रोत्रादिक इंद्रियहैं ॥ तैसैं आंतर जो आत्मादिक तिनकी प्रत्यक्षप्रमाका करण मनहै ॥ यातैं मनबी

प्रत्यक्षप्रमाणहै औ इंद्रियहै ॥ मनमैं क्रिया होयकै आत्मासैं संयोग होवै तब आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां आत्माका मानसप्रत्यक्षरूप फल तो प्रमाहै औ आत्ममनका संयोग व्यापारहै ॥ काहेतैं आत्ममनका संयोग मनजन्य है औ मनजन्य जो आत्माकी प्रत्यक्षप्रमा ताका जनक है यातैं व्यापारहै ॥ तिस संयोगरूप व्यापारवाला आत्माकी प्रत्यक्षप्रमाका असाधारण कारण मनहै ॥ सो प्रमाणहै ॥ ज्ञान इच्छा प्रयत्न सुख दुःख द्वेष ये आत्माके गुण हैं ॥ तिनके साक्षात्कारका हेतुबी मन प्रमाणहै ॥ तहां मनके साथि ज्ञानादिकनका साक्षात्संबंध तो हैनहीं ॥ किंतु परंपरा संबंधहै ॥ अपनै संबंधीका संबंध परंपरासंबंध कहियेहै ॥ ज्ञानादिकनका आत्मामैं समवाय संबंधहै यातैं ज्ञानादिकनका संबंधी आत्माहै तासैं मनका संयोग होनेतैं परंपरासंबंध मनसै ज्ञानादिकनका है ॥ सो ज्ञानादिकनका मनतैं स्वसमवायी संयोगसंबंध है ॥ स्व कहिये ज्ञानादिक तिनका समवायी कहिये समवायवाला जो आत्मा ताका मनसैं संयोगहै तैसै मनका ज्ञानादिकनतैंबी परंपरा संबंधहै ॥ सो मनःसंयुक्त समवायहै ॥ मनसैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं ज्ञानादिकनका समवाय संबंधहै तैसै ज्ञानत्व इच्छात्व प्रलयत्व सुखत्व दुःखत्व द्वेषत्वका मनसैं प्रत्यक्ष होवै है॥ तहां मनसैं ज्ञानत्वादिकनका स्वाश्रयसमवायीसंयोगसंबंध है स्व कहिये ज्ञानत्वादिक तिनके आश्रय जो ज्ञानादिक तिनका समवायी आत्मा ताका मनसैं संयोगहै ॥ तैसैं मनका ज्ञानत्वादिकनतैं मनःसंयुक्त समवेत समवाय संबंध है ॥ काहेतैं मनःसंयुक्त आत्मामें समवेत जो ज्ञानादिक तिनमैं ज्ञानत्वादिकनका समवाय संबंधहै ॥ तैसैं आत्मामैं सुखाभाव औ दुःखाभावका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां मनःसंबद्धविशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं मनसैं संबद्ध कहिये संयोग संबंधवाला जो आत्मा तामैं सुखाभाव औ दुःखाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ औ सुखमैं दुःखत्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां मनःसं-

युक्त समवाय संबंधसै मनःसंबद्ध कहिये संबंधवाला जो सुख तामैं दुःखत्वाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं मनसैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं सुखादिक गुणनका समवाय संबंधहै ॥ औ अभावका विशेषणता संबंधही होवैहै ॥ इस रीतिसै अभावके मानस प्रत्यक्षका हेतु मनःसंबद्ध विशेषणतासंबंध एकहीहै ॥ जहां आत्मामैं सुखाभावादिकनका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां संयोगसंबंधसै मनःसंबद्ध जो आत्मा तामैं सुखाभावादिकनका विशेषणता संबंधहै औ सुखादिकनमैं दुःखत्वाभावादिकनका प्रत्यक्ष होवै ॥तहां संयुक्त समवायसंबंधसैं मनःसंबद्ध कहिये मनके संबंधवाले सुखादिकहैं ॥ कहूं साक्षात्संबंधसैं मनःसंबद्धमैं कहूं परंपरासंबद्धसै मनःसंबंधमैं अभावका विशेषणता संबंधहै इस रीतिसैं मानसप्रत्यक्षके हेतु च्यारि संबंधहै ॥ मनःसंयोगः १ ॥ मनःसंयुक्तसमवाय २ ॥ मनःसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ ॥ मनःसंबद्धविशेषणता ४ ॥ मानसप्रत्यक्षके हेतु च्यारूं संबंधरूप व्यापारहैं ॥ संबंधरूप व्यापारवाला असाधारण कारण मन करण है ॥ यातैं प्रमाणहै ॥ आत्मसुखादिकनका मानस साक्षात्काररूप प्रमा फलहै ॥ जैसैं आत्मगुण सुखादिकनके प्रत्यक्षका हेतु संयुक्तसमवायसंबंधहै ॥ तैसे धर्म अधर्म संस्कारादिकबी आत्माके गुणहैं ॥ यातैं तिन्हतैं मनका संयुक्तसमवायसंबंध तो है ॥ परंतु धर्मादिक गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं ॥ यातैं धर्मादिकनका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ प्रत्यक्ष योग्यता जामैं नहीं ताका प्रत्यक्ष होवे नहीं ॥ औ जहां आश्रयका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जैसै दो अंगुली संयोगके आश्रयहैं ॥ अंगुली दोका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै तब संयोगका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ औ अंगुलीका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै तब अंगुलीके संयोगका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसै आत्ममनके संयोगतै आत्मका मानस प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां संयोगका आश्रय आत्माहै ॥ यातैं संयोगकाबी मानसप्रत्यक्ष हुवा चाहिये ॥

तथापि संयोगके आश्रय दो होवैहैं ॥ जहां दोनुवोंका प्रत्यक्ष होवै तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जहां एकका प्रत्यक्ष होवै एकका नहीं होवै॥ तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ जैसे दो घटका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं तिन्हके संयोगकाबी प्रत्यक्ष होवैहैं ॥ औ घटकी क्रियातैं घट आकाशका संयोग होवैहै ॥ तहां संयोगके आश्रय घट औ आकाशहैं तिनमें घट तो प्रत्यक्षहै ॥ औ आकाश प्रत्यक्ष नहीं ॥ यातैं तिनका संयोगबी प्रत्यक्ष नहीं ॥ इस रीतिसैं आत्ममनके संयोगके आश्रय आत्मा औ मनहैं तिनमैं आत्माका तो मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ मनका नहीं होवैहै ॥ यातैं आत्ममनकै संयोगका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ आत्माका औ ज्ञान सुखादिकनका मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां ज्ञानसुखादिकनकूं छोडिकै केवल आत्माका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ औ आत्माकूं छोडिकै केवल ज्ञान सुखादिकनका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ किंतु ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःख द्वेष इन गुणोंमैं किसी एक गुणका औ आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ मैं जानूहूं इच्छावालाहूं प्रयत्नवालाहूं सुखीहूं दुःखीहूं द्वेषवालाहूं ॥ इस रीतिसैं किसी गुणकूं विषय करता हुआ आत्माका मानसप्रत्यक्षहोवैहै॥इस रीतिसैं इंद्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमाके हेतु इंद्रियके संबंधहै सो व्यापारहैं ॥ इंद्रिय प्रत्यक्षप्रमाणहैं ॥ इंद्रियजन्य साक्षात्कार प्रत्यक्षप्रमा फल है ॥ यह न्यायशास्त्रका सिद्धांतहै ॥

प्रत्यक्षप्रमाके करणका विचार ॥ ११ ॥

औ गौरीकांत भट्टाचार्यनैं यह लिखाहै ॥ प्रत्यक्षप्रमाका इंद्रिय करण नहीं ॥ किंतु जो इंद्रियके संबंध व्यापार कहेहैं ॥ सो करणहैं औ इंद्रिय कारणहैं करण नहीं ॥ ताका यह अभिप्रायहै॥व्यापारवाला कारण करण नहीं कहियेहैं ॥ किंतु जाके हुयेतैं कार्यमैं विलंब न होवै ॥ किंतु अव्यवहित उत्तरक्षणमैं कार्य होवै ॥ ऐसा कारण करण कहियेहै ॥ इंद्रियका संबंध हुयेतैं प्रत्यक्षप्रमारूप कार्यमैं विलंब नहीं होवैहै ॥ किंतु

इंद्रियसंबंधतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं प्रत्यक्षप्रमारूप कार्य अवश्य होवैहै ॥ यातैं इंद्रियका संबंधही करण होनेतैं प्रत्यक्ष प्रमाणहै ॥ इंद्रिय नहीं इस मतमैं घटका करण कपाल नहीं ॥ किंतु कपालका संयोग करणहै ॥ औ कपाल कारणतो घटका है करण नहीं ॥ तैसै पटके करण तंतु नहीं ॥ किंतु तंतुसंयोग है पटके कारण तो तंतु हैं करण नहीं ॥ इस रीतिसैं प्रथमपक्षमैं जो व्यापाररूप कारण मानेहैं सो इस पक्षमैं करणहैं ॥ और जो करण मानेहैं सो केवल कारणहै ॥

ज्ञानके आश्रयका कथन ॥ १२ ॥

प्रत्यक्ष ज्ञानका आश्रय आत्माहै सो कर्त्ताहै ॥ ताहीकूं प्रमाता औ ज्ञाता कहैहैं ॥ प्रमाज्ञानका कर्त्ता प्रमाता कहियेहैं ॥ ज्ञानका कर्त्ता ज्ञाता कहियेहैं सो ज्ञानभ्रम होवै अथवा प्रमा होवै न्यायसिद्धांतमैं जैसै प्रमाज्ञान इंद्रियजन्यहैं तैसै भ्रमज्ञानबी इंद्रियजन्यहै ॥ परंतु भ्रमज्ञानका कारण जो इंद्रिय सो भ्रमज्ञानका कारण तो कहियेहै प्रमाण नहीं कहियेहै ॥ काहेतैं प्रमाका असाधारणकारण प्रमाण कहिये हैं ॥

भ्रमज्ञानका विचार ॥ १३–१७ ॥

न्यायमतके अनुसारभ्रमकी रीति ॥ १३ ॥

जहां भ्रम होवै तहां न्यायमतमैं यह रीतिहै ॥ दोष सहित नेत्रका संयोग रज्जुसैं जब होवै तब रज्जुत्वधर्मसैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध तौ है ॥ परंतु दोषकै बलतैं रज्जुत्व भासै नहीं ॥ किंतु रज्जुमैं सर्पत्व भासैहै ॥ यद्यपि सर्पत्वसैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध नहींहै ॥ तथापि इंद्रियके संबंध विनाही दोषबलतैं सर्पत्वका संबंध रज्जुमैं नेत्रसैं प्रतीत होवैहै ॥ परंतु जाकूं दंडत्वकी स्मृति पूर्व होवै ताकूं रज्जुमैं दंडत्व भासैहै ॥ जाकूं सर्पत्वकी पूर्व स्मृति होवै ताकूं रज्जुमैं सर्पत्व भासैहै ॥

वस्तुके ज्ञानमैं विशेषणके ज्ञानकूं हेतुता ॥ १४ ॥

जहां दोषरहित इंद्रियतैं यथार्थज्ञान होवै ॥ तहांबी विशेषणका ज्ञान

हेतुहै ॥ यातैं रज्जुज्ञानतैं पूर्व रज्जुत्वका ज्ञान होवैहै ॥ काहेतैं श्वेतउष्णीष श्वेतकंचुकवान् यष्टिधर ब्राह्मणसैं नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां कदाचित् मनुष्यहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् कंचुकवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् श्वेतकंचुकवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञानहोवैहै ॥ कदाचित् उष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् श्वेतउष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् श्वेतउष्णीषवाला श्वेतकंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ तहां नेत्रसंयोग तो सारे ज्ञानोंका साधारण कारणहै ॥ ज्ञानोंकी विलक्षणतामैं यह हेतुहै ॥ जहां मनुष्यत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां मनुष्यहै ॥ ऐसा चाक्षुष ज्ञान होवैहै॥ जहां ब्राह्मणत्वका ज्ञान औ नेत्रसंयोग होवै तहां ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां यष्टि औ ब्राह्मणत्वका ज्ञान औ नेत्रसंयोग होवै ॥ तहां यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुष ज्ञान होवैहै ॥ जहां कंचुक औ ब्राह्मणत्वरूप दो विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां कंचुकवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां श्वेतताविशिष्ट कंचुकरूप औ ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै॥ तहां श्वेतकंचुकवाला ब्राह्मणहै॥ ऐसा चाक्षुषज्ञानहोवै॥ जहां उष्णीष औ ब्राह्मणत्वरूप दो विशेषणका ज्ञान होवै ॥ तहांउष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां श्वेतताविशिष्ट उष्णीषरूप विशेषणका औ ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवैहै ॥ तहां श्वेतउष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां उष्णीषकंचुक यष्टि ब्राह्मणत्व इन च्यारिविशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुष ज्ञान होवैहै ॥ जहां श्वेतताविशिष्ट उष्णीषविशेषणका औ श्वेतता

विशिष्ट कंचुकविशेषणका तैसे यष्टि औ ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां श्वेतउष्णीष श्वेतकंचुक यष्टिधर ब्राह्मण है ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ इसरीतिसै जिस विशेषणका पूर्वज्ञान होवै तिस विशेषणविशिष्टका इंद्रियतैं ज्ञान होवैहै ॥ तहां इंद्रियका संबंध तो सारै तुल्यहै विशिष्टप्रत्यक्षकी विलक्षणताका हेतु विलक्षण विशेषण ज्ञानहै ॥ जो विलक्षण विशेषण ज्ञानकूं कारण नहीं मानैं तौ नेत्र-संयोगतैं ब्राह्मणके सारे ज्ञान तुल्य हुये चाहिये ॥ जहां घटसैं नेत्रका तथा त्वक्का संयोग होवै ॥ तहां कदाचित् घट है ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै ॥ कदाचित् पृथिवी है ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै॥ कदाचित् घट पृथिवी है ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै॥ जहां घटत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ इंद्रियका संयोग होवै ॥ तहां घटहै ॥ ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जहां पृथिवीत्वरूपविशेषणका ज्ञान औ इंद्रियका घटसैं संयोग होवै तहां पृथिवी है ॥ ऐसा प्रत्यक्ष होवै है ॥ जहां घटत्व पृथिवीत्व इन दोनूं विशेषणका ज्ञान औ इंद्रियका संयोग होवै ॥ तहां घट पृथिवीहै ॥ ऐसा प्रत्यक्ष होवै है ॥ इसरीतिसैं घटसैं इंद्रियका संयोगरूप कारण एक है॥ औ विषय घटबी एकहै ॥ औ घटत्व पृथिवीत्वजाति घटमैं सदा रहैहै ॥ तौबी कदाचित् घटत्व सहित घटमात्रकूं ज्ञानविषय करैहै॥ द्रव्यत्व पृथिवीत्वादिक जाति औ रूपादिक गुणकूं घटहै॥ यह ज्ञान विषय करैं नहीं ॥ कदाचित् पृथिवी है ॥ ऐसा घटका ज्ञान घटमैं घटत्वकूंबी विषयकरै नहीं ॥ किंतु पृथिवीत्व औ घट तथा पृथिवीत्वके संबंधकूं विषयकरैहै ॥ कदाचित् पृथिवीत्व घटत्व जाति औ तिनका घटमैं संबंध तथा घट इनकूं विषय करैहै ॥ इस रीतिसैं ज्ञानका भेद सामग्रीभेद विना संभवै नहीं ॥ तहां विशेषण ज्ञानरूप सामग्रीका भेदही ज्ञानकी विलक्षणताका हेतुहै ॥ जहां घटहै ऐसा ज्ञान होवै ॥ तहां घट औ घटत्व औ घटमैं घटत्वका समवाय संबंध भासैहै ॥ जहां पृथिवी है ॥ ऐसा घटका ज्ञान होवै ॥ तहां घट औ पृथिवीत्व औ घटमैं पृथिवीत्वका समवाय संबंध भासैहै ॥

विशेषण औ विशेष्यका स्वरूप ॥ १८ ॥

तहां घटत्व पृथिवीत्व विशेषण है ॥ औ घट विशेष्य है ॥ काहेतैं संबंधका प्रतियोगी विशेषण कहियेहैं ॥ संबंधका अनुयोग विशेष्य कहिये है ॥ जाका संबंध होवै सो संबंधका प्रतियोगी ॥ औ जामैं संबंध होवै सो अनुयोगी कहियेहै ॥ घटत्वका पृथिवीत्वका समवायसंबंध घटमैं भासैहै ॥ यातैं घटत्व पृथिवीत्व समवायसंबंधके प्रतियोगी होनेतैं विशेषण है संबंधका अनुयोगी घटहै ॥ यातैं विशेष्य है जहां दंडी पुरुषहै ॥ ऐसा ज्ञान होवै ॥ तहां दंडत्वविशिष्ट दंडसंयोगसंबंधतैं पुरुषत्वविशिष्ट पुरुषमैं भासैहै ॥ ताकाही काष्ठवाला मनुष्यहै ॥ ऐसा ज्ञान होवै ॥ तहां काष्ठत्वविशिष्ट दंड मनुष्यत्व विशिष्ट पुरुषमैं संयोगसंबंधतैं भासैहै ॥ प्रथम ज्ञानमैं दंडत्वविशिष्ट दंडसंयोगका प्रतियोगी होनेतैं विशेषणहै ॥ पुरुषत्वविशिष्ट पुरुषसंयोगका अनुयोगी होनेतैं विशेष्यहै ॥ द्वितीय ज्ञानमैं काष्ठत्वविशिष्ट दंड प्रतियोगीहै ॥ मनुष्यत्वविशिष्ट पुरुष अनुयोगीहै ॥ दोनों ज्ञानूंमैं यद्यपि दंड विशेषणहै ॥ पुरुष विशेष्यहै ॥ तथापि प्रथम ज्ञानमैं तो दंडविषै दंडत्व भासैहै ॥ काष्ठत्व भासै नहीं ॥ पुरुषमैं पुरुषत्व भासै है ॥ मनुष्यत्व भासै नहीं ॥ तैसैं द्वितीय ज्ञानमैं दंडविषै काष्ठत्व भासैहै ॥ दंडत्व भासै नहीं ॥ औ पुरुषमैं मनुष्यत्व भासैहै ॥ पुरुषत्व भासै नहीं ॥ दंडत्व औ काष्ठत्व दंडके विशेषणहैं ॥ काहेतैं दंडत्वादिकनका दंडमैं जो संबंध ताके प्रतियोगी दंडत्वादिक हैं ॥ औ दंडत्वादिकनका दंडमैं संबंध है ॥ यातैं संबंधका अनुयोगी होनेतैं दंड विशेष्यहै ॥ इस रीतिसैं दंडत्वका दंड विशेष्यहै ॥ औ पुरुषका दंड विशेषणहै ॥ काहेतैं दंडका पुरुषमैं जो संयोगसंबंध ताका प्रतियोगी दंडहै ॥ यातैं पुरुषका विशेषणहै ता संयोगका पुरुष अनुयोगीहै ॥ यातैं विशेष्यहै ॥ जैसे पुरुषका दंड विशेषणहै ॥ तैसैं पुरुषत्व मनुष्यत्वबी पुरुषके विशेषणहैं ॥ काहेतैं जैसैं दंडका पुरुषमैं संयोगसंबंध भासैहै ॥ तैसैं पुरुषत्वादिक जातिका समवायसंबंध भासैहै ॥

ता संबंधके पुरुषत्वादिक प्रतियोगी होनेतैं विशेषणहै ॥ औ अनुयोगी होनेतैं पुरुष विशेष्यहै ॥ परंतु इतना भेदहै ॥ पुरुषके धर्म जो पुरुषत्व मनुष्यत्वादिक वै तो केवल पुरुषव्यक्तिके विशेषणहैं ॥ औ पुरुषत्वादिक धर्मविशिष्ट पुरुषव्यक्तिमैं दंडादिक विशेषणहैं ॥ दंडादिकबी दंडत्वादिक धर्मनके विशेष्यहै ॥ औ पुरुषत्वादिकनके विशेषणहैं ॥ परंतु दंडत्वादिक विशेषणके संबंधकूं धारिकै पुरुषादिक विशेष्यके संबंधि उत्तरकालमैं दंडादिक होवैहैं ॥ इस रीतिसैं केवल व्यक्तिमैं पुरुषत्व मनुष्यत्व विशेषणहैं ॥ औ पुरुषत्व वा मनुष्यत्वविशिष्ट पुरुषव्यक्तिमैं दंडत्व वा काष्ठत्व विशिष्ट दंड विशेषणहै औ केवल दंडव्यक्तिमैं दंडत्व वा काष्ठत्व विशेषणहै ॥

इस रीतिसैं ॥ ज्ञानके विषयताका विचार करैं तौ बहुत सूक्ष्महै ॥ चक्रवर्त्तिगदाधरभट्टाचार्यनैं संगतिग्रंथमैं लिखाहै ॥ औ जयरामपंचाननभट्टाचार्यनैं तथा रघुनाथभट्टाचार्यनैं विषयताविचारग्रंथ कियेहैं तिन्हमैं लिखाहै॥ सूक्ष्मपदार्थ संस्कृतवाणी विना लिखेजावै नहीं औ दुर्बोधहैं ॥ यातैं अतिस्थूल रीतिमात्र जनाई है ॥

विशेषण औ विशेष्यके ज्ञानके भेदपूर्वक न्यायमतके भ्रमज्ञानकी समाप्ति ॥ १६ ॥

इस रीतिसैं ॥ विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषण ज्ञानहै ॥ सो विशेषणका ज्ञान कहूं स्मृतिरूपहै ॥ कहूं निर्विकल्पहै ॥ कहूं विशिष्टज्ञानही विशेषण विशेष्यसैं पहली विशेषणमात्रसैं इंद्रियका संबंध होवै तहां विशेषणमात्रसैं इंद्रियसंबंध जन्यहै ॥ सोबी विशिष्टप्रत्यक्षहीहै जहां पुरुषतैं विना केवल दंडसैं इंद्रियका संबंध होवै उत्तर क्षणमैं पुरुषतै संबंध होवै तहां दंडरूप विशेषणका ज्ञान विशेषणमात्रकै संबंधसैं उपजैहै ॥ तासैं उत्तरक्षणमैं " दंडीपुरुषहै "यह विशिष्टका ज्ञान उपजैहै घटहै यह प्रथम जो विशिष्टज्ञान तासैं पूर्व घटत्वरूप विशेषणका इंद्रियसंबंधतैं निर्विकल्पज्ञान होवैहै उत्तरक्षणमें "घटहै" यह घटत्व विशिष्ट घटज्ञान होवैहै जा इंद्रियसंबं-

धर्तैं घटत्वका निर्विकल्पक ज्ञान होवै ता इंद्रियसंबंधतैंही घटत्वविशिष्ट घटका सविकल्पकज्ञान होवैहै ॥ घटत्वके निर्विकल्पक ज्ञानमैं इंद्रिय करणहै इंद्रियका संयुक्त समवायसंबद्ध व्यापारहै औ घटत्वविशिष्ट घटके सविकल्पकज्ञानमैं इंद्रियका संयुक्तसमवायसंबंध करणहै निर्विकल्पक ज्ञान व्यापारहै इसरीतिसैं किसी आधुनिक नैयायिकनैं निर्विकल्पक ज्ञान औ सविकल्पक ज्ञानमैं करणका भेद कहाहै ॥

सो संप्रदायसैं विरुद्धहै काहेतैं व्यापारवाला असाधारण कारण करण कहियेहै ॥ या मतमैं प्रत्यक्षज्ञानका करण होनेतैं इंद्रियकूंही प्रत्यक्ष प्रमाण कहैहैं ॥ औ आधुनिक रीतिसैं सविकल्पक ज्ञानका करण होनेतैं इंद्रियके संबंधकूबी प्रमाण कह्या चाहिये औ संप्रदायवाले संबंधकूं प्रमाण कहैं नहीं ॥ यातैं दोनूं प्रत्यक्षज्ञानके इंद्रियही करणहैं यातैं प्रत्यक्ष प्रमाणहैं परंतु निर्विकल्पक ज्ञानमैं इंद्रियका संबंधमात्र व्यापारहै औ सविकल्पक ज्ञानमैं इंद्रियका संबंध औ निर्विकल्पक ज्ञान दो व्यापारहैं ॥ औ दोनूं प्रकारके प्रत्यक्षज्ञानके करण होनेतैं इंद्रिय प्रत्यक्षप्रमाणहैं धर्म धर्मीके संबंधकूं विषय करनैवाला ज्ञान सविकल्पकज्ञान कहियेहै घटहै या ज्ञानतैं घटमैं घटत्वका समवाय भासैहै यातैं सविकल्पक ज्ञानके धर्म धर्मी समवाय तीनूं विषयहैं यातैं घटहै यह विशिष्टज्ञान संबंधकूं विषय करनैतैं सविकल्पक कहियेहै तासैं भिन्नज्ञान कूं निर्विकल्पक ज्ञान कहे हैं सविकल्पक निर्विकल्पक ज्ञानके लक्षण विस्तारसे शितिकंठी मैं लिखेहैं अर्थ सूक्ष्महै यातैं विस्तारलिख्या नहीं इस रीतिसैं प्रथम विशिष्ट ज्ञानका जनक विशेषण ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञानहै औ एकवेरी घटहै ऐसा विशिष्टज्ञान होयकै फेरि घटका विशिष्टज्ञान होवै तहां घटसैं इंद्रियका संबंध होतैंही पूर्वअनुभव करे घटत्वकी स्मृति होवैहै तिसतैं उत्तर क्षणमैं घटहै यह विशिष्टज्ञान होवैहै इस रीतिसैं द्वितीयादिक विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषणज्ञान स्मृतिरूपहै जहां दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं अ-

थवा शुक्तिसैं संबंध होवै तहां दोषके बलतैं सर्पत्वकी औ रजतत्वकी स्मृति होवैहै रज्जुत्व औ शुक्तित्वकी नहीं विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषणज्ञान जा धर्मकूं विषय करै सोई धर्म विशिष्टज्ञानसैं विषयमैं भासैहै सर्पत्व औ रजतत्वका स्मृतिज्ञान रज्जुत्व औ शुक्तित्वकूं विषय करै नहीं किंतु सर्पत्व औ रजतत्वकूं विषय करैहै यातैं सर्पहै या रज्जुके विशिष्टज्ञानसैं रज्जुमैं सर्पत्व भासैहै औ रजतहै या शुक्तिके विशिष्ट ज्ञानतैं शुक्तिमैं रजतत्व भासैहै सर्पहै या विशिष्टभ्रममैं विशेष्य रज्जुहै सर्पत्व विशेषण है काहेतैं सर्पत्वका समवायसंबंध रज्जुमैं भासैहै ता समवायका सर्पत्व प्रतियोगीहै औ रज्जु अनुयोगीहै तैसैं रूपा है या भ्रमसैं शुक्तिमैं रजतत्वका समवाय भासैहै ता समवायका प्रतियोगी रजतत्वहै यातैं विशेषणहै औ शुक्ति अनुयोगीहै यातैं विशेष्यहै इस रीतिसैं सारे भ्रमज्ञानोंसैं विशेषणके अभाववालेमैं विशेषण भासैहै ॥ यातैं न्यायमतमैं विशेषणके अभाववालेमैं विशेषण प्रतीति भ्रम कहियेहै ताहींकूं अयथार्थ ज्ञान कहैहैं अन्यथाख्यांति कहैहैं ॥ भ्रमज्ञानमैं सूक्ष्मविचार अन्यथा ख्यातिवादनामग्रंथमैं चक्रवर्तिगदाधरभट्टाचार्यने लिख्याहै सो दुर्बोधहै यातैं लिख्यानहीं इसरीतिसैं न्यायमतमैं सर्पादि भ्रमके विषय रज्जु आदिक हैं सर्पादिक नहीं औ प्रत्यक्षरूप भ्रमज्ञानबी इंद्रियजन्यहै ॥

वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार इन्द्रिय अजन्य भ्रमज्ञानकी रीति ॥ १७॥

औ वेदांतसिद्धांतमैं सर्पभ्रमका विषय रज्जु नहीं किंतु अनिर्वचनीय सर्प है औ भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं और न्यायमतमैं सारे ज्ञानोंका आश्रय आत्माहै वेदांतमतमैं ज्ञानका उपादानकारण अंतःकरणहै यातैं अंतःकरण आश्रयहै जो न्यायमतमैं सुखादिक आत्माके गुण कहैहैं सो सारे अंतःकरणके परिणाम हैं यातैं अंतःकरणके धर्महैं आत्माके नहीं परंतु भ्रमज्ञान अंतःकरणका परिणाम नहीं किंतु अविद्याका परिणाम है यह विचारसागरमैं लिख्याहै यातैं इहां लिखनेका उपयोग नहीं ॥

भ्रमज्ञानका संक्षेपतैं यह प्रकार हैः— सर्प संस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध होवै तब रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासै नहीं औ रज्जुमैं जो मुंजरूप अवयवहैं सो भासै नहीं किंतु रज्जुमैं सामान्यधर्म इदंता भासैहै तैसे शक्तिमैं शुक्तित्व औ नीलपृष्ठता त्रिकोणता भासैं नहीं किंतु सामान्यधर्म इदंता भासैहै ॥ यातैं नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होयकै इदमाकार परिणामकूं प्राप्त होवैहै ता इदमाकारवृत्तिउपहित चेतनानिष्ठ अविद्याके सर्पाकार औ ज्ञानाकार दो परिणाम होवैहैं तैसैं दंडसंस्कारसहित पुरुषकै दोषसहित नेत्रका रज्जुके संबंधसैं जहां वृत्ति होवै तहां दंड औ ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम होवैहै मालासंस्कार सहित पुरुषकै सदोष नेत्रका रज्जुसे संबंध होयकै जाके इदमाकारवृत्ति होवै ताकी वृत्तिउपहित चेतनमैं स्थित अविद्याका माला औ ताका ज्ञान परिणाम होवैहैं जहां एक रज्जुसे तीनि पुरुषनके सदोष नेत्रनका संबंध होयकै सर्पदंडमाला एक एकका तिन्हकूं भ्रम होवै तहां जाकी वृत्तिउपहितमैं जो विषय उपजाहै सो ताहीकूं प्रतीत होवैहै अन्यकूं नहीं इस रीतिसैं भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं किंतु अविद्याकी वृत्तिरूपहै परंतु जा वृत्तिउपहित चेतनमैं स्थित अविद्याका परिणाम भ्रमहै सो इदमाकारवृत्ति नेत्रसैं रज्जु आदिक विषयकै संबंधतैं होवैहै यातैं भ्रमज्ञानमैं इंद्रियजन्यता प्रतीति होवैहै अनिर्वचनीय ख्यातिका निरूपण और अन्यथा ख्याति आदिकनका खंडन गौडब्रह्मानंदकृत ख्यातिविचारमैं लिखाहै सो अतिकठिनहै यातै लिखा नहीं इस रीतिसैं वेदांतसिद्धांतमैं भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं ॥

न्याय औ वेदांतकी अन्य विलक्षणता ॥ १८ ॥

औ वेदांतसिद्धांतमैं अभावका ज्ञानबी इंद्रियजन्य नहीं किंतु अनुपलब्धि नाम पृथक् प्रमाणतैं अभावका ज्ञान होवैहै यातैं अभावके प्रत्यक्षका हेतु विशेषणता संबंधका अंगीकार निष्फलहै औ जातिव्यक्तिका समवायसंबंध नहीं किंतु तादात्म्यसंबंध है तैसैं गुण-

गुणीका क्रियाक्रियावानका कार्य उपादान कारणकाबी तादात्म्यसंबंध है यातैं समवायके स्थानमैं तादात्म्य कहैहैं औ जैसैं त्वक्आदिक इंद्रिय भूतजन्य हैं तैसैं श्रोत्र इंद्रियबी आकाशजन्यहै आकाशरूप नहीं औ मीमांसाके मतमैं तो शब्द द्रव्यहै वेदांतमतमैं गुणहै परंतु न्यायमतमैं तो शब्द आकाशकाही गुणहै वेदांतमतमैं विद्यारण्यस्वामीनैं पांचभूतनका गुण कहाहै और वेदांतमतमैं वाचस्पतिमिश्रनैं तो मन इंद्रियमाना है और ग्रंथकारोंनैं मन इंद्रिय नहीं मानाहै जिनके मतमैं मन इंद्रिय नहीं तिनके मतमैं सुख दुःखका ज्ञान प्रमाणजन्य नहीं यातैं प्रमा नहीं सुखदुःखसाक्षीभास्यहै औ वाचस्पतिकें मतमैं सुखादिकनका ज्ञान मनरूप किंतु प्रमाणजन्यहै यातैं प्रमाहै औ ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान तो दोनूं मतमैं प्रमाहै वाचस्पतिके मतमैं मनरूप प्रमाणजन्यहै औरनके मतमैं शब्दरूप प्रमाणजन्यहै ॥

वाचस्पतिके मनका (मनकी इंद्रियताकी) सारग्राही दृष्टिसे अंगीकार ॥ १९ ॥

जिनके मतमैं मनइंद्रिय नहीं तिनके मतमैं इंद्रियजन्यता प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण नहीं किंतु विषयचेतनकावृत्ति चेतनसैं अभेदही प्रत्यक्षज्ञानका लक्षणहै जैसैं वृत्तिचेतनका विषयचेतनका अभेद होवैहै तैसै विचारसागरमें स्पष्टहै वाचस्पतिका मतबी समीचीन नहींहै काहेतैं वाचस्पतिके मतमैं ये दोष कहैहैं एकतो मनका असाधारण विषय नहीं है यातै मन इंद्रिय नहीं ॥ औ गीतावचनका विरोधहै गीताके तीसरे अध्यायके बियालीसमैं श्लोकमैं इंद्रियनतैं मन परहै यह कहाहै जो मनबी इंद्रिय होवै तौ इंद्रियनतैं मन परहै यह कहना संभवै नहीं औ मानस ज्ञानका विषय ब्रह्म नहींहै यह श्रुतिस्मृतिमैं लिखाहै वाचस्पतिनैं मनकूं इंद्रियता मानिकै ब्रह्मसाक्षात्कारबी मनरूप इंद्रियजन्यहै यातैं मानसहै यह कहाहै सो विरुद्धहै औ अंतःकरणकी अवस्थाकूं मन कहैहै सो अंतःकरण प्रत्यक्षज्ञानका आश्रय होनेतैं कर्त्ताहै जो कर्त्ता होवै सो करण होवै नहीं यातैं मन इंद्रिय नहीं ये दोष

मनके इंद्रियपनेमैं कहेहै सो विचारिके देखैं तो दोष नहीं काहेतैं मनका असाधारण विषय सुख दुःख इच्छादिक हैं औ अंतःकरणविशिष्ट जीव हैं औ गीतामैं इंद्रियनतैं पर मनहै यह कहाहै तहां इंद्रियशब्दसैं बाह्य इंद्रियनका ग्रहणहै यातैं बाह्य इंद्रियनतैं मनइंद्रिय पर हैं यह गीतावचनका अर्थहै विरोध नहीं ॥

औ मानसज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है या कहनेका यह अभिप्रायहै कि शमदमादि संस्काररहित विक्षिप्तमनसैं उपजे ज्ञानका विषय ब्रह्म नहींहैं औ मानसज्ञानकी फलव्याप्यता ब्रह्मविषै नहींहै वृत्तिमैं चिदाभास फल कहियेहैं ताका विषय ब्रह्म नहींहै घटादिक अनात्म पदार्थनकूं वृत्तिप्राप्ति होवै तहां वृत्ति औ चिदाभास दोनूंके व्याप्य कहिये विषयपदार्थ होवैहैं औ ब्रह्माकार वृत्तिमैं जो चिदाभास ताका व्याप्य कहिये विषय ब्रह्म नहीं है वृत्तिमात्रका विषय ब्रह्महैं यह विचारसागरके चतुर्थ तरंगमैं स्पष्टहैं. जैसैं मनकी विषयता ब्रह्मविषैं निषेध करीहै तैसैं शब्दकी विषयताभी निषेध करीहै 'यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह' यह निषेधवचन है तहां शब्दजन्य ज्ञानका विषय ब्रह्म नहींहैं ऐसा अर्थ अंगीकार होवै तौ महावाक्यभी शब्दरूपही हैं तिनतैं उपजे ज्ञानकाभी विषय ब्रह्म नहीं होवैगा यातैं सिद्धांतकाही भंग होवैगा यातैं निषेधवचनका यह अर्थहैः— शब्दकी शक्तिवृत्तिजन्यज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं किंतु शब्दकी लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानका विषय ब्रह्महैं तैसैं लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानमैंभी चिदाभासरूप फलका विषय ब्रह्म नहींहैं किंतु आवरणभंगरूप वृत्तिमात्रकी विषयता ब्रह्म विषयहैं जैसैं शब्दजन्य ज्ञानकी विषयताका सर्वथा निषेध नहीं तैसैं मानसज्ञानकी विषयताकाभी सर्वथा निषेध नहीं किंतु संस्काररहित मनकी ब्रह्मज्ञानमैं हेतुता नहीं औ मानसज्ञानमैं जो चिदाभास अंशहै ताकी विषयता नहीं और जो ऐसे कहैं ब्रह्मज्ञानमैं मनकूं करणता हैं तो दो प्रमाणजन्य ब्रह्मज्ञान कहना होवैगा काहेतैं महावाक्यनमैं ब्रह्मज्ञानकी करणता तो भाष्यकारादिकननैं सर्वत्र प्रतिपादन करीहै ताका तो निषेध बनैं नहीं मनकूंभी करण-

ता कहैं तौ प्रमाका करण प्रमाण कहियेहैं यातैं ब्रह्मप्रमाके शब्द औ मन दो प्रमाण सिद्ध होवैंगे सो दृष्टविरुद्धहै काहेतैं चाक्षुषआदिक प्रमाके नेत्रादिक एकही एक प्रमाण हैं किसी प्रमाके हेतु दो प्रमाण देखे सुने नहीं नैय्यायिकभी चाक्षुषादिक प्रमामैं मनकूं सहकारिता मानैहैं प्रमाणता नेत्रादिकनकूंही मानै हैं मनकूं नहीं सुखादिकनके ज्ञानमैं केवल मनकूं प्रमाणता मानैहैं अन्यकूं नहीं यातैं एक प्रमाकी दोकूं प्रमाणता कहना दृष्टविरुद्धहै जहां एक पदार्थमैं दो इंद्रियकी योग्यता होवै जैसैं घटमैं नेत्रत्वक्की योग्यताहै तहांभी दो प्रमाणतैं एक प्रमाहोवै नहीं किंतु नेत्रप्रमाणतैं घटकी चाक्षुषप्रमा होवैहै। त्वक्प्रमाणतैं त्वाचप्रमा होवैहैं दो प्रमाणतैं एक प्रमाकी उत्पत्ति दृष्ट नहीं सो शंका बनै नहीं। काहेतैं प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष होवै तहां पूर्व अनुभव औ इंद्रिय दो प्रमाणतैं एक प्रमा होवैहै यातैं दृष्टविरुद्ध नहीं जहां प्रत्यभिज्ञा होवै तहां पूर्व अनुभव संस्कारद्वारा हेतुहै औ संयोगादिक संबंधद्वारा इंद्रिय हेतु है यातैं संस्काररूप व्यापारवाला कारण पूर्व अनुभवहै औ संबन्धरूप व्यापार वाला कारण इंद्रियहै यातैं प्रमाके करण होनैतैं दोनूं प्रमाणहैं ॥

तैसैं ब्रह्मसाक्षात्काररूप प्रमाके शब्द औ मन दो प्रमाणहै या कहनेमैं दृष्टविरोध नहीं उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मनरूप इंद्रियजन्यता मानें प्रत्यक्षता निर्विवादसैं सिद्ध होवैहै ब्रह्मज्ञानकूं केवल शब्दजन्यता मानैं तो विवादसैं प्रत्यक्षता सिद्ध करियेहैं दशमदृष्टांतविषैभी इंद्रियजन्यता औ शब्दजन्यताका विवाद है इंद्रियजन्य ज्ञानकूं प्रत्यक्षतामैं विवाद नहीं औ जो ऐसैं कहैं प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षमैं पूर्व अनुभवजन्य संस्कार सहकारी है केवल इंद्रिय प्रमाणहै ताका यह समाधानहै ब्रह्मसाक्षात्काररूप प्रमामैंभी शब्द सहकारी है केवल मन प्रमाणहै औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं जो इंद्रिय जन्य ज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमैं दोष कहेहै तिन्हके सम्यक् समाधान न्यायकौस्तुभआदि ग्रंथनमैं लिखेहैं जाकूं जिज्ञासा होवै सो तिनमैं देखि लेवैं औ जो मनकूं इंद्रियतामैं दोष कहा ज्ञानका आश्रय होनेतैं अंतः–

करण कर्ताहै यातैं ज्ञानका करण बनैं नहीं यह दोषभी नहीं काहेतैं धर्मि अंतःकरण तो ज्ञानका आश्रय होनेंतैं कर्त्ताहै औ अंतःकरणका परिणामरूप मन ज्ञानका करणहै इस रीतिसैं मनभी प्रमाज्ञानका करणहै यातैं प्रमाणहै ॥

न्याय औ वेदान्तका प्रत्यक्षविचारमैं भेद ॥ २० ॥

जहां इंद्रियतैं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै तहां तो न्याय औ वेदांतमतमैं विलक्षणता नहीं किंतु द्रव्यका इंद्रियतैं संयोगही संबंधहै औ इंद्रियतैं द्रव्यकी जातिका अथवा गुणका प्रत्यक्ष होवै तहां न्यायमतमैं तो संयुक्तसमवायसंबन्ध है औ वेदांतमतमैं संयुक्ततादात्म्यसंबंध है काहेतैं न्यायमतमैं जिनका समवाय संबंधहै वेदांतमतमैं तिनका तादात्म्य संबंधहै औ गुणकी जातिके प्रत्यक्षमैं न्यायरीतिसैं संयुक्तसमवेतसमवायसंबंधहै औ वेदांतमतमैं संयुक्ततादात्म्यसंबंधहै याहीकूं संयुक्ताभिन्नतादात्म्य कहैहैं इंद्रियतैं संयुक्त जो घटादिक तिन्हमैं तादात्म्यवत् कहिये तादात्म्य संबंधवाले रूपादिकहैं तिन्हमैं तादात्म्यसंबंध रूपत्वादिकजातिका है जैसैं घटादिकनमैं रूपादिक तादात्म्यवत्‌हैं तैसैं घटादिकनसैं अभिन्नभी कहियेहैं अभिन्नकाही तादात्म्यसंबंध होवैहै जहां श्रोत्रसैं शब्दका साक्षात्कार होवै तहां न्यायमतमैं तो समवायसंबंधहै औ वेदांतमतमैं श्रोत्रइंद्रिय आकाशका कार्यहै यातैं जैसे चक्षुरादिकनमैं क्रिया होवैहै तैसैं श्रोत्रमैं क्रिया होयके शब्दवाले द्रव्यसैं श्रोत्रका संयोग होवैहै ता श्रोत्रसंयुक्त द्रव्यमैं शब्दका तादात्म्यसंबंधहै काहेतैं वेदांतमतमैं पंचभूतनका गुणशब्द होनेंतैं भेर्यादिकनमैंभी शब्दहै यातैं श्रोत्रके संयुक्त तादात्म्यसंबंधसैं शब्दका प्रत्यक्ष होवैहै औ शब्दत्वका प्रत्यक्ष होवै तहां श्रोत्रका संयुक्ततादात्म्यवत् तादात्म्यसंबंधहै वेदांतमतमैं जैसै शब्दत्व जातिहैं तैसैं तारत्व मंदत्वभी जातिहीहैं न्यायमतकी न्यायी जातिसैं भिन्न उपाधि नहीं यातैं शब्दत्व जातिका जो श्रोत्रसैं संबंध सोई संबंध तारत्व मंदत्वका है विशेषणता संबंध नहीं औ अभावका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाणतै होवैहै किसी

इंद्रियतैं अभावका ज्ञान होवै नहीं यातै अभावका इंद्रियतैं संबंध अपेक्षित नहीं यह न्यायमत औ वेदांतमतका प्रत्यक्ष विचारमैं भेद है ॥

प्रत्यक्षप्रमाका उपसंहार ॥ २१ ॥

इस रीतिसैं प्रत्यक्ष प्रमाके षट्‌भेदहैं ताके करण षट्‌हैं यातैं नेत्रादिक षट्‌इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण कहियेहै न्यायमतमैं औ वाचस्पतिमतमैं छठा प्रत्यक्षप्रमाण मनहै।पंचपादिकाके कर्त्ता पद्मपादाचार्यके मतके अनुसारी मनकूं प्रमाण नहीं मानैहैं सुखदुःख तो साक्षिभास्यहै यातैं सुखदुःखका ज्ञान प्रमा नहीं औ विशिष्टजीवमें अंतःकरण भाग साक्षी भास्यहै चेतनभाग स्वयंप्रकाश है यातैं जीवका ज्ञानबी मानस नहीं ब्रह्मविद्यारूप अपरोक्ष ज्ञान यद्यपि प्रमारूपहै तथापि ताका करण शब्दहै यातैं मन प्रमाण नहीं परंतु पंचपादिका अनुसारी जो सिद्धांतहै तहांभी प्रत्यक्षप्रमाके षट्‌भेदहैं शब्दजन्य ब्रह्मकी प्रत्यक्ष प्रमा छभी है औ अभावका ज्ञान यद्यपि अनुपलब्धि प्रमाणजन्य है तथापि प्रत्यक्षहै यह वार्ता अनुपलब्धि प्रमाणके निरूपणमैं कहैंगे यातैं प्रत्यक्षप्रमाके सप्तभेद संभवैहैं तथापि इस ग्रंथकी रीतिसैं अभावज्ञानमैं प्रत्यक्षता नहींहै यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट्‌भेदहैं सप्त नहीं यह संक्षेपतैं प्रत्यक्षप्रमाण कहा ॥ १ ॥ इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचितेवृत्तिप्रभाकरेप्रत्यक्षनिरूपणं नामप्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

अथ अनुमानप्रमाणनिरूपणनामद्वितीयप्रकाशप्रारंभः ॥

अनुमितिकी सामग्रीका लक्षण औ स्वरूप ॥ १ ॥

अनुमितिप्रमाका जो करण होवै सो अनुमानप्रमाण कहियेहै लिंगज्ञानजन्य जो ज्ञान सो अनुमिति कहियेहै जैसैं पर्वतमैं धूमका प्रत्यक्ष ज्ञानहोयकै वह्निका ज्ञान होवैहै तहां धूमका प्रत्यक्ष ज्ञान लिंगज्ञान कहियेहै तासैं वह्निका ज्ञान उपजैहै यातैं पर्वतमैं वह्निका ज्ञान अनुमिति है जाके ज्ञानसैं साध्यका ज्ञान होवै सो लिंग कहियेहै अनुमितिज्ञानका विषय साध्य कहियेहै अनुमितिका विषय वह्निहै यातैं वह्नि साध्यहै धूमज्ञानतैं वह्निरूप साध्यका ज्ञान होवैहै यातैं धूम लिंग है व्याप्यके ज्ञानतैं व्यापकका ज्ञान होवैहै

यातैं व्याप्यकूं लिंग कहैहैं व्यापककूं साध्य कहैहैं व्याप्तिवालेकूं व्याप्य कहैहै व्याप्तिनिरूपककूं व्यापक कहैहैं अविनाभावरूप संबंधकूं व्याप्ति कहैहैं जैसै धूमविषै वह्निका अविनाभावरूप संबंधहै सोई धूम विषै वह्निकी व्याप्तिहै यातैं धूम वह्निका व्याप्यहै ता व्याप्तिरूप-संबंधका निरूपक वह्निहै यातैं धूमका व्यापक वह्निहै जाविना जो होवै नहीं ताका अविनाभावरूप संबंध तामैं कहियेहै वह्नि विना धूम होवै नहीं यातैं वह्निका अविनाभावरूप संबंध धूममैंहै वन्हिमैं धूमका अवि-नाभाव नहीं काहेतैं तप्तलोहपिंडमैं धूम विना वह्निहै यातैं धूमका व्याप्य वन्हि नहीं वन्हिका व्याप्य धूमहै तैसै रूपका व्याप्य रसहै पृथिवी जल तेजमैं रूप रहैहै पृथिवीजलमैं रस रहैहै यातैं रूपका अविनाभावरूपसंबंध रसमैं होनेतैं रूपका व्याप्य रसहै औ रूपमैं रसका विनाभावहै तेजमैं रस विनाभाव कहिये सत्तारूपकी है यातैं रसका व्याप्यरूप नहीं जो जासैं व्यभिचारी होवै सो ताका व्याप्य होवै नहीं अधिक देशमैं जो रहै सो व्यभिचारी कहियेहै धूमसैं अधिक देशमैं रहै जो वन्हि सो धूमका व्यभिचारीहै रसतैं अधिक देशमैं रूप रहैहै यातैं रसका व्यभिचारी रूपहै जो न्यून देशमैं रहै ताकै विषै अविनाभाव संबंधहै सोई व्याप्यहै वन्हितैं न्यून देशमैं धूमहै यातैं वन्हिकी धूमविषै अविनाभावरूप व्याप्ति है सो धूम व्याप्यहै रूपतैं न्यून देशमैं रसहै यातैं रसमैं रूपकी व्याप्तिहै तिसवाला रस व्याप्यहै जैसै न्यून देशमैं रहनैंवालेमैं अधिक देशवालेकी व्याप्तिहै तैसै दोय पदार्थ समान देशमैं रहनैंवाले होवैं तिनकीभी परस्पर व्याप्ति होवैहै जैसैं गंधगुण औ पृथिवीत्वजाति केवल पृथिवीमैं रहनैंवाले हैं तहां गंधकी व्याप्ति पृथिवीत्वमैं है औ पृथिवीत्वकी व्याप्ति गंधमैंहैं तैसैं स्नेहगुण औ जलत्वजाति जलमैंहैं जल विना स्नेह औ जलत्व रहैं नहीं यातैं समदेशवृत्ति होनेतैं दोनूं परस्पर व्याप्तिवाले होनेतैं व्याप्यहै काहेतैं जैसैं न्यूनदेश वृत्तिमैं अविनाभावरूप संबंधहै तैसैं समान देश वृत्ति

पदार्थनकाभी परस्पर अविनाभावहै यद्यपि पृथिवीत्वसैं न्यून देशवृत्ति गंधहै औ जलत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति स्नेहहै। काहेतैं प्रथम क्षणमैं निर्गुण द्रव्य उपजैहै। द्वितीय क्षणमैं गुण उपजैहै । औ जाति प्रथम क्षणमैंभी द्रव्यविषै रहैहै। यातैं घटके प्रथम क्षणमैं गंधका व्यभिचारी पृथिवीत्व होनेतैं ताकै विषै गंधका अविनाभाव संबंधरूप व्याप्तिका अभावहै। औ उत्पत्तिक्षणवर्तिजलमैं स्नेहका व्यभिचारी जलत्व होनेतैं ताकै विषै स्नेहका अविनाभावरूपसंबंध नहीं।यातैं स्नेहकी व्याप्तिका जलत्वमैं अभाव होनेतैं स्नेहका व्याप्य जलत्व नहीं॥ इस रीतिसैं पृथिवीत्वका व्याप्य गंधहै। गंधका व्याप्य पृथिवीत्व नहीं।तैसैं जलत्वका व्याप्य स्नेहहै।स्नेहका व्याप्य जलत्व नहीं । तथापि गंधवत्त्व औ पृथिवीत्व परस्पर व्याप्तिवालेहैं । यातैं दोनूं परस्पर व्याप्यहैं । तैसैं स्नेहवत्त्व औ जलत्व दोनूं परस्पर व्याप्यहैं । काहेतैं गंधकी अधिकरणताकूं गंधत्व कहैहैं । औ स्नेहकी अधिकरणताकूं स्नेहवत्त्व कहैहै । जिसमैं जो पदार्थ कदाचित् होवैं तिसमैं ता पदार्थकी अधिकरणता सदा रहैहै। यह व्याप्तिनिरूपणमैं जगदीशभट्टाचार्य आदिकोंनैं लिखाहै ॥ तहां यह प्रसंगहैः—अव्याप्यवृत्ति पदार्थकी अधिकरणता व्याप्यवृत्ति होवैहै । अधिकरणता अव्याप्यवृत्ति नहीं होवैहै।अव्याप्यवृत्ति दो प्रकारकी होवैहै। देशकृत अव्याप्यवृत्ति होवैहै।औ कालकृत अव्याप्यवृत्ति होवैहै।जो पदार्थके एक देशमें होवै औ एक देशमें न होवै सो देशकृतअव्याप्यवृत्ति कहियेहै जैसैं पदार्थके एक देशमैं संयोग होवैहै सो देशकृतअव्याप्यवृत्तिहै परंतु संयोगकी अधिकरणता सारे पदार्थमैं होवैहै एक देशमैं नहीं यातैं अव्याप्यवृत्ति संयोगकी अधिकरणता व्याप्यवृत्तिहै अव्याप्य वृत्ति नहीं यह सिद्धांतहै ॥ औ किसी कालमैं होवै किसी कालमैं नहीं होवै सो कालिक अव्याप्य वृत्ति कहियेहै । पूर्व कही रीतिसैं गंधादिक गुण कालिकव्याप्यवृत्तिहैं। तिन्हकी अधिकरणता द्रव्यकी उत्पत्तिक्षणमैंभी रहैहै। यातैं गंधवत्त्व रस-

वत्त्व पृथिवीत्व जलत्वके समदेश समकालवृत्तिहै ॥ यह न्यायरीतिसै समाधानहै औ वेदांतमतमैं तो निर्गुणद्रव्य उपजै नहीं प्रथमही सगुण होवैहै। यातैं गंधरसकेभी पृथिवीत्व जलत्व व्याप्यहै ॥

अनुमितिज्ञानमैं व्याप्तिके ज्ञानकी अपेक्षाप्रकार ॥ २ ॥

इस रीतिसै अविनाभावरूपसंबंध व्याप्तिहै तिसवाला वाप्य है व्याप्य जो धूम ताका पर्वतादिकनमैं जाकूं प्रत्यक्षज्ञान होवै अथवा शाब्दज्ञान होवै ताकूं पर्वतादिकनमैं अग्निका अनुमितिज्ञान होवैहै। तैसैं रसके ज्ञानसैं रूपका ज्ञान होवैहै। परंतु जा पुरुषकूं धूम वन्हिका व्याप्यहै ऐसा ज्ञान पूर्व हुआहोवै ताकूं धूमज्ञानतैं व्याप्यत्वका स्मरण होयकै वन्हिकी अनुमिति होवैहै। व्याप्तिकूं व्याप्यत्व कहैहैं। तैसैं रूपका व्याप्य रसहै। ऐसा जाकूं ज्ञान हुआ होवै ताकूं रसकै ज्ञानतैं रूपकी रसमैं व्याप्तिका स्मरण होयकै रूपकी अनुमिति होवैहै। जाकूं व्याप्यत्वका ज्ञान पूर्व हुआ नहीं। ताकूं धूमादिकनके ज्ञानतैं वन्हिआदिकनकी अनुमिति होवै नहीं । यातैं व्याप्तिका ज्ञान अनुमितिका करणहै। व्याप्तिवालेकूं व्याप्य कहैहैं। औ व्याप्तिकूं व्याप्यता कहैहैं। सो व्याप्तिका ज्ञानभी संदेहरूप कारण नहीं। काहेतैं "धूम वन्हिकी व्याप्तिवालाहै वा नहीं" ऐसा जाकूं पूर्वज्ञान हुवाहै ताकूं पूर्वज्ञान धूमज्ञानतैं वन्हिका ज्ञान होवै नहीं। किंतु "धूम वन्हिकी व्याप्तिवालाहै" ऐसा जाकूं निश्चयरूप ज्ञान हुवाहै ताकूं धूमज्ञानतैं वन्हिका अनुमितिरूप ज्ञान होवैहै यातैं व्याप्तिका निश्चय अनुमितिका हेतुहै सो व्याप्तिका निश्चय सहचार ज्ञानसैं होवैहै ॥ महानसादिकनमैं वारंवार धूम वन्हिका सहचार देखिकै "वन्हिका व्याप्य धूमहै" ऐसा ज्ञान होवैहै। औ "धूमका व्याप्यहै वन्हि ऐसा ज्ञान होवै नहीं" काहेतैं महानसादिकनमैं जैसा वन्हिका सहचार धूममैं देखियेहै तैसा धूमका सहचार यद्यपि वन्हिमैं देखियेहै तथापि धूमका व्यभिचारभी वन्हिमैं देखियेहै ॥ यातैं यह सिद्ध हुवा जा पदार्थका जामैं व्यभिचार नहीं प्रतीत होवै। और सहचार

प्रतीत होवै ता पदार्थकी व्याप्तिका तामैं निश्चय होवैहै । वन्हिका धूममैं व्यभिचार नहीं प्रतीत होवैहै औ सहचार प्रतीत होवैहै । यातैं वन्हिकी व्याप्तिका धूममैं निश्चय होवैहै वन्हिमैं धूमका सहचारप्रतीत होवैहै औ व्यभिचारभी प्रतीत होवैहै यातैं "धूमका व्याप्य वन्हिहै" यह निश्चय होवै नहीं सहचार नाम साथ रहनेका है व्यभिचार नाम जुदा रहनेकाहै । यद्यपि जलके धूममैं वन्हि का व्यभिचारहै । औ अग्नि शांत हुये जो महानसमैं धूम रहे ताके विषे वन्हिका व्यभिचारहै ।तथापि जाके मूलका उच्छेद नहीं हुवा ऐसी ऊंची धूमरेखामैं वन्हिका व्यभिचार नहीं । यातैं विलक्षण धूमरेखामैं वन्हिकी व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप निश्चय होवैहै । तैसी विलक्षण धूमरेखा पर्वतादिकनमैं प्रत्यक्ष होयकै "धूम वन्हिका व्याप्यहै" इस अनुभवके संस्कारका उद्भव होवैहै । तिसतैं अनंतर "वन्हिमान् पर्वतहै" ऐसी अनुमिति होवैहै ॥

सकलनैय्यायिकमतमैं अनुमितिका क्रम ॥ ३ ॥

यद्यपि न्यायमतमैं अनुमान प्रसंगमैं अनेक पक्षहैं। सो तिनके ग्रंथनमैं स्पष्टहैं परंतु सकल नैय्यायिक मतमैं अनुमितिका यह क्रमहैः—प्रथम तो महानसादिकनमैं हेतुसाध्यका सहचार दर्शन होवैहै। तिसतैं हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका निश्चय होवैहै । तिसतैं अनंतर पर्वतादिकनमैं हेतुका प्रत्यक्ष होवैहै । तिसतैं अनंतर संस्कारका उद्भव होयकै व्याप्तिकी स्मृति होवैहै । तिसतैं अनंतर साध्यकी व्याप्ति विशिष्टहेतुका पक्षमैं प्रत्यक्ष होवैहै ताकूं परामर्श कहैहैं। "वन्हिव्याप्यधूमवान् पर्वतः" यह प्रसिद्धानुमानमैं परामर्शका आकार है । साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः । यह परामर्शका सामान्यरूपहै तिसतैं अनंतर वन्हिमान् पर्वतः । ऐसा अनुमितिज्ञान होवैहै या क्रमतैं अनुमिति होवैहै परंतु प्राचीनमतमैं अनुमितिका करण परामर्शहै । और सकल ज्ञान अन्यथासिद्धहै ताके मतमैं परामर्शही अनुमानहै यद्यपि परामर्शका व्यापार मिलै नहीं

तथापि तिसके मतमैं व्यापारहीन कारणकूं करण कहैहैं। यातैं परामर्श ही अनुमितिका करण होनेतैं अनुमानहै। और कोई नैय्यायिक ज्ञानहेतुकूं अनुमान कहैहैं। और कोई पक्षमैं हेतुकै ज्ञानकूं अनुमान कहैहैं। व्याप्तिकी स्मृति औ परामर्शकूं व्यापार कहैहैं ॥ और कोई व्याप्तिके स्मृतिज्ञानकूं अनुमान कहैहैं। परामर्शकूं व्यापार कहैहैं ॥ ऐसैं नैय्यायिकनके अनेक मतहैं। परंतु सर्वकै मतमैं परामर्शका अंगीकारहै कोई परामर्शकूं करण कहैहैं। कोई व्यापार कहैहैं। परामर्श विना अनुमिति होवै नहीं। यह सकल नैय्यायिकनका मतहै ॥

अनुमितिविषै मीमांसाका मत ॥ ४ ॥

औ मीमांसाका यह मतहैः—जहां पर्वतमैं धूमकै प्रत्यक्षतैं व्याप्तिकी स्मृति होयकै वन्हिकी अनुमिति होय जावै तहां परामर्शतैं विनाभी अनुमिति अनुभवसिद्धहै। यातैं जहां परामर्श होयकै अनुमिति होवै तहांभी परामर्श अनुमितिका कारण नहीं। किंतु परामर्श अन्यथासिद्ध कहियेहै। जैसैं दैवतैं आया रासभ वा कुलालपत्नी घटमैं अन्यथा सिद्ध हैं। कारणसामग्रीतैं बाह्य होवै सो अन्यथासिद्ध कहियेहै। इस रीतिसै मीमांसाकै मतमैं परामर्श कारण नहीं। ताके अनुसारीभी एक परामर्शकूं छोडिकै नैयायिकनकी नांई अनेक पदार्थकूं अनुमान कहैहैं। कोई व्याप्तिकी स्मृतिकूं कोई महानसादिकनमैं व्याप्तिके अनुभवकूं कोई पक्षमैं हेतुके ज्ञानकूं अनुमान कहैहैं ॥

अद्वैतमतानुसार अनुमितिकी रीति ॥ ५ ॥

औ अद्वैत ग्रंथभी जहां विरोध न होवै तहां मीमांसाकी प्रक्रियाकै अनुसारहैं। यातैं अद्वैतमतमैं भी परामर्श कारण नहीं। किंतु महानसादिकनमैं जो व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप अनुभव होवैहै सो अनुमितिका कारण है। सो व्याप्तिके अनुभवके उद्बुद्ध संस्कार व्यापारहैं औ पर्वतमैं जो धूमका प्रत्यक्ष सो संस्कारका उद्बोधकहै। औ जहां व्याप्तिकी स्मृति होयजावै तहांभी स्मृतिकी उत्पत्तिसै संस्कारनका नाश तो होवै नहीं। यातैं

स्मृतिसंस्कार दोनूंहैं । तहांभी अनुमितिके व्यापाररूप कारण संस्कार है। व्याप्तिकी स्मृति कारण नहीं । काहेतैं अनुमितिमैं व्याप्ति स्मृतिकूं व्यापाररूप कारण मानैं तौभी स्मृतिके कारण संस्कार मानने औ स्मृतिमैं अनुमितिकी कारणता माननी यातैं दोनूंमैं कारणताकल्पना गौरव होवैगा। औ स्मृतिके कारण मानें जो संस्कार तिनकूं अनुमितिकी कारणता मानैं तौ स्मृतिकी कारणताका त्याग लाघवहै । इस रीतिसैं व्याप्तिका अनुभव करणहै । औ संस्कार व्यापारहै । अनुमिति फलहै । यह वेदांतपरिभाषादिक अद्वैतग्रंथनकी रीति है । नैय्यायिकनकी नांई परामर्श अनुमितिका कारण नहीं ॥

व्याप्तिकी स्मृतिकी व्यापारता औ संस्कारकी अव्यापारता ॥ ६ ॥

और जो संस्कारकूं अनुमिति व्यापार नहीं मानैं । स्मृतिकूं व्यापार मानैं । तौभी सिद्धांतकी हानि नहीं । यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनसैं विरोधहै तथापि युक्तिसैं अर्थनिर्णय करतैं आधुनिक ग्रंथके विरोधसैं हानि नहीं । किंतु श्रुतिस्मृतिके विरोधसैं अथवा सिद्धांतविरोधसैं हानि होवैहै । अनुमितिका व्यापाररूप कारण स्मृतिहै । अथवा संस्कारहैं। इस अर्थमैं श्रुतिस्मृति उदासीनहैं और सिद्धांतभी उदासीनहै । यातैं व्याप्ति स्मृतिकूं व्यापारता कहनैंमैं विरोध नहीं । उलटी साधकयुक्तिहै । काहेतैं व्याप्तिसंस्कारकूं अनुमितिका कारण कहैं तो अनुद्बुद्ध संस्कारसैं अनुमिति होवै तौ पर्वतमैं धूमके प्रत्यक्ष विनाभी सदाही अनुमिति हुयी चाहिये । यातै उद्बुद्ध संस्कार अनुमितिके हेतु माननैं होवैंगे । और उद्बुद्ध संस्कारनतैंही स्मृति होवैहै । यातैं जहां अनुमितिकी सामग्रीहै । तहां नियमतैं स्मृतिकी सामग्रीहै । दोनूंकी सामग्री होनेतैं कौनसा ज्ञान होवै । यह धर्मराजकूं पूछा चाहिये । परस्पर प्रातिबध्यता और प्रतिबंधकता मानैं तौ गौरवदोष होवैगा । और विनिगमनाविरह होवैगा । अनुभवविरोध होवैगा । काहेतैं पर्वतमैं धूमदर्शनतैं धूममैं वन्हिकी व्याप्तिका स्मरणतैं उत्तर

कालमैं अनुमिति होवैहै यह बुद्धिमानूंके अनुभवसिद्धहैं॥ अनुमितिसै व्याप्ति-स्मृतिका प्रतिबंध अनुभवविरुद्धहै ॥ औ जहां दो ज्ञानोंकी सामग्री दो होवै तहां एक सामग्री प्रतिबंधक होवैहै। इहां अनुमितिकी सामग्री औ स्मृति-की सामग्री एकसंस्कारहै ताका प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव बनै नहीं । औ अनुमितिसैं स्मृतिका प्रतिबंधकहै।तौ अनुमिति भविष्यत्है।सो उपजी नहीं ताकूं प्रतिबंधकता संभवै नहीं औ वेदांतपरिभाषामैं तथा तिसकी टी-कामैं अनुमितिसैं स्मृतिका प्रतिबंध लिखा नहीं काहेतैं टीकासहित वेदांत-परिभाषामैं यह लिखाहैः—धूमदर्शनतैं संस्कार उद्बुद्ध होवैहै तिनतैं कहूं स्मृति होवैहै कहूं नहीं होवैहै।जहां स्मृति होवैहै तहां भी संस्कारनका नाश-तो होवै नहीं। संस्कार स्मृति दोनूंहै परंतु स्मृतिशून्य स्थलमैं जैसैं संस्का-र व्यापारहै तैसैं स्मृतिसद्भावस्थलमैं भी संस्कारही व्यापारहै स्मृति नहीं यह धर्मराजका ग्रंथहै तामैं बुद्धिमानूंकूं यह आश्चर्य होवैहै। उद्बुद्ध संस्कार होतें स्मृतिशून्यस्थल कैसैं होवैहै औ स्मृतिकी उत्पत्तिसैं सं-स्कारका नाश होवैहै स्मृतिसैं अन्य संस्कार होवैहै यह सयुक्तिक पक्षहै ताका उपपादन ग्रंथांतरमैं प्रसिद्धहै या पक्षमैं स्मृति संस्कार दोनूंकी उक्ति सर्वथा विरुद्धहै ॥

स्वार्थ अनुमिति औ अनुमानका स्वरूप ॥ ७ ॥

यातैं व्याप्तिका अनुभव करणहै व्याप्तिकी स्मृति व्यापारहै यह पक्ष निर्दोषहै ॥ इस रीतिसै जहां अनुमिति होवै सो स्वार्थानुमिति कहियेहै परंतु न्यायमतमैं धूमका प्रत्यक्ष औ व्याप्तिका स्मरण हुयेभी वह्निकी अ-नुमिति होवै नहीं। दोनूं ज्ञानूंसैं अनंतर परामर्श नाम तीसरा ज्ञान होवैहै तासैं अनुमिति होवैहै "वह्निव्याप्य जो धूम तिसवाला पर्वतहै" ऐसैं ज्ञानकूं परा-मर्श कहैहैं ताकूं वेदांतमैं अनुमितिका कारण नहीं मानैहै इस रीतिसैं वा-क्यप्रयोगविना व्याप्तिज्ञानादिकनतैं जो अनुमिति होवै॥ सो स्वार्थानुमिति कहियेहै। ताके करणव्याप्ति ज्ञानादिक स्वार्थानुमान कहियेहै ॥

परार्थ अनुमान अनुमिति औ तर्कका स्वरूप ॥ ८ ॥

जहां दोका विवाद होवे एक पुरुष कहै "पर्वतमैं वह्नि अनुमानप्रमाणसैं निर्णीतहै एक कहै नहींहै" तहां वन्हिनिश्चयवाला पुरुष अपनैं प्रतिवादीकी निवृत्ति वासतै वाक्यप्रयोग करैहै ताकूं परार्थानुमान कहैहै। सो वाक्य वेदांतमतमैं तीनि अवयवका होवैहैं प्रतिज्ञा १ ॥ हेतुं २ ॥ उदाहरण ३ ॥ ये वाक्यके अवयवनके नामहैं। पर्वतो वह्निमान् १ धूमात् २ यो यो धूमवान् सोऽग्निमान् यथा महानसः ३ ॥ इतना महावाक्यहैं ॥ तामैं तीनि अवांतर वाक्यहै ॥ तिन्हके प्रतिज्ञादिक क्रमतैं नामहैं साध्यविशिष्ट पक्षका बोधक वाक्य प्रतिज्ञावाक्य कहियेहै; ऐसा "पर्वतो वह्निमान्" यह वाक्यहै "वह्निविशिष्टपर्वतहै" ऐसा बोध या वाक्यतैं होवैहैं ॥ तहां वन्हि साध्यहै पर्वतपक्षहै काहेतैं अनुमितिका जो विषय सो साध्य कहियेहै अनुमितिका विषय वन्हिहै। यातैं साध्य है। यद्यपि "पर्वतो वह्निमान्" ऐसी अनुमिति होवैहै ताका विषय पर्वतभीहै सोभी साध्य कह्या चाहिये। तथापि वेदांतमतमैं "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान तो एकहीहै परंतु पर्वतअंशमैं इंद्रियजन्यहै औ वन्हि अंशमैं धूमज्ञानरूप अनुमान जन्यहै। यातैं एक ज्ञानमैं चाक्षुषता औ अनुमितिता दो धर्महैं। चाक्षुषता अंशकी विषयता पर्वतमैंहै औ अनुमितिता अंशकी विषयता वन्हिमैंहै यातैं अनुमितिका विषय पर्वत नहीं केवल वन्हिहै; जिस अधिकरणमैं साध्यकी जिज्ञासा होयकै साध्यका अनुमितिरूप निश्चय होवै सो पक्ष कहियेहै। ऐसा पर्वतहै। प्रतिज्ञावाक्यतैं उत्तर जो लिंगका बोधक वचन सो हेतुवाक्य कहियेहै ऐसा वाक्य "धूमात्"यहहै. यद्यपि "धूमात्, धूमेन" इन दोनूंका एकही अर्थहै तथापि "धूमेन" ऐसा वाक्य संप्रदायसिद्ध नहीं यह अवयवग्रंथमैं भट्टाचार्यनैं लिखाहै यातैं "धूमात्" इस रीतिका वाक्यही हेतुवाक्य कहियेहै। हेतु साध्यका सहचार बोधक जो दृष्टांत प्रतिपादक वचन सो उदाहरणवाक्य कहियेहै। वादी प्रतिवादीका जहां विवाद न होवै किंतु दोनूंका निर्णीत अर्थ जहां होवै सो दृष्टांत कहिये

है ऐसा महानसहै इस रीतिसैं प्रतिज्ञादिक तीनका समुदायरूप महावाक्यतैं विवादकी निवृत्ति होवैहै। जो महावाक्य सुनिकैभी आग्रह करै महानसादिकनविषै तो वन्हिका सहचारी धूमहै। औ पर्वतमैं वन्हिका व्यभिचारी धूमहै। यातैं पर्वतमैं धूमहै।वन्हि नहींहै॥ऐसा प्रतिवादी आग्रह करै अथवा व्यभिचारकी शंका होवै तौ तर्कसैं आग्रह औ शंकाकी निवृत्ति होवैहै। अनिष्ट आपादनकूं तर्क कहैहै। पर्वतविषै वन्हि विना धूम होवै तो वन्हिका धूमकार्य नहीं होवैगा। यह तर्कहै। यातैं धूमविषै वन्हिका व्यभिचारसंदेह निवृत्त होवैहै। वन्हि धूमका कारणकार्यभाव इष्टहै। ताका अभाव अनिष्टहै। यातैं कारणकार्यभावका भंग आपादन करियेहै। सो कारणकार्यभावका भंग अनिष्टहै। यातैं अनिष्टका आपादनरूप तर्कहै। या तर्कतैं प्रतिवादीकी औ शंकाकी निवृत्ति होवैहै। काहेतैं। वन्हिधूमका कारणकार्यभाव दोनूंकूं इष्टहै। ताका भंग दोनूंकूं अनिष्टहै। वन्हिका व्यभिचार धूममैं कहै तौ अनिष्टकी सिद्धि होवैगी। ताके भयतैं वन्हिका व्यभिचारी धूमहै यह वार्त्ता प्रतिवादी कहै नहीं। इसरीतिसैं तीनि अवयवका समुदायरूप जो महावाक्य ताकूं परार्थानुमान कहै है। तिस तैं उत्तर जो अनुमिति होवै सो परार्थानुमिति कहियेहै। अनुमानप्रमाणसैं निर्णय करते व्यभिचारशंका होवै तौ तर्कसैं निवृत्ति होवैहै। यातैं प्रमाणका सहकारी तर्कहै॥

वेदांतमतमैं तर्कसहित परार्थानुमानका स्वरूप ॥ ९ ॥

वेदांतवाक्यनसैं जीवमैं ब्रह्मका अभेद निर्णीतहै। सो अनुमानतैंभी इस रीतिसै सिद्धहोवैहैः—जीवो ब्रह्माभिन्नः। चेतनत्वात्। यत्रयत्र चेतनत्वं तत्र ब्रह्माभेदः। यथा ब्रह्मणि। यह तीनि अवयवका समुदायरूप महावाक्यहै। यातैं परार्थानुमान कहियेहै। इहां जीव पक्षहै ब्रह्माभेद साध्यहै चेतनत्व हेतुहै। ब्रह्म दृष्टांतहै। इहां प्रतिवादी जो ऐसै कहैः—जीवमें चेतनत्व हेतु तो है औ ब्रह्माभेदरूप साध्य नहींहै इसरीतिसैं पक्षमैं

चेतनत्व हेतुका ब्रह्माभेदरूप साध्यसैं व्यभिचारशंका करै तो तर्कसैं शंकाकी निवृत्ति करै इहां तर्कका यह स्वरूपहै:--जीवमैं चेतनत्व हेतु मानिकै ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानैं तौ चेतनकूं अद्वितीयताप्रतिपादक श्रुतिका विरोध होवैगा । अनिष्टका आपादन तर्क कहिये श्रुतिका विरोध सर्व आस्तिकनकूं अनिष्टहै । व्यावहारिकप्रपंचो मिथ्याज्ञाननिवर्त्यत्वात् । यत्रयत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र मिथ्यात्वम् । यथा शुक्तिरजतादौ । इहां व्यावहारिक प्रपंच पक्षहै । मिथ्यात्व साध्यहै । ज्ञाननिवर्त्यता हेतुहै । शुक्तिरजतादिक दृष्टांत है । व्यावहारिक प्रपंचो मिथ्या यह प्रतिज्ञावाक्यहै । ज्ञाननिवर्त्यत्वात् । यह हेतुवाक्यहै । यत्रयत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र मिथ्यात्वं यथा शुक्तिरजतादौ यह उदाहरणवाक्यहै । इहांभी प्रपंचकूं ज्ञाननिवर्त्यता मानिकै मिथ्यात्व नहीं मानैं तौ सत्की ज्ञानतैं निवृत्ति बनै नहीं । यातैं ज्ञानसैं सकल प्रपंचकी निवृत्तिप्रतिपादक श्रुतिस्मृतिका विरोध होवैगा । या तर्कतैं व्यभिचारशंकाकी निवृत्ति होवैहै ॥

वेदांतमैं अनुमानका प्रयोजन ॥ १० ॥

इसरीतिसैं वेदांतअर्थके अनुसारी अनेक अनुमानहैं । परंतु वेदांतवाक्यनतैं अद्वितीय ब्रह्मका जो निश्चय सिद्ध हुवाहै तिसकी संभावनामात्रका हेतु अनुमानप्रमाणहै । स्वतंत्र अनुमान ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं काहेतैं वेदांतवाक्य विना अन्य प्रमाणकी ब्रह्मविषै प्रवृत्ति नहीं।यह सिद्धांतहै ! यह संक्षेपतैं अनुमानप्रमाण कह्या ॥ ॥ इतिश्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरेऽनुमाननिरूपणं नाम द्वितीयप्रकाशः समाप्तः॥ २ ॥

॥ अथ शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयःप्रकाशः ॥ ३ ॥

शाब्दीप्रमाका भेद ॥ ११ ॥

शाब्दीप्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहेहैं । शाब्दीप्रमा दोप्रकारकी है एक व्यावहारिकहै दूसरी पारमार्थिक है । व्यावहारिक शाब्दीप्रमा भी दोप्रकारकी है।एक लौकिकवाक्यजन्यहै दूसरी वैदिकवाक्यजन्यहै।

" नीलो घटः " इत्यादिक लौकिकवाक्यहैं । "वज्रहस्तः पुरंदरः " इत्यादिक वैदिकवाक्यहैं । पदनके समुदायकूं वाक्य कहैहैं । अर्थवाला जो वर्ण अथवा वर्णका समुदाय सो पद कहिये है । अकारादिक वर्णभी विष्णुआदिक अर्थवालेहैं । नारायणआदिक पदनमैं वर्णका समुदाय अर्थवालाहै । व्याकरणकी रीतिसैं " नीलो घटः " इस वाक्यमैं दो पदहैं । औ न्यायकी रीतिसै च्यारि पदहैं । औ व्याकरणके मतमैंभी अर्थबोधकता च्यारि समुदायनमैंहै । पद च्यारि नहीं ॥

शाब्दीप्रमाका प्रकार ॥ १२ ॥

तहां शाब्दीप्रमाका यह प्रकारहैः— " नीलो घटः " या वाक्यकूं सुनै तब श्रोताकूं सकल पदनका श्रावणसाक्षात्कार होवैहै । पदनके साक्षात्कारसैं पदार्थनकी स्मृति होवैहै । शंकाः— पदनका अनुभव पदनकी स्मृतिका हेतुहै औ पदार्थका अनुभव पदार्थकी स्मृतिका हेतु है । पदनका साक्षात्कार पदार्थनकी स्मृतिका हेतुबनै नहीं । काहेतैं । जा वस्तुका पूर्वअनुभव होवै ताकी स्मृति होवैहै । अन्यकै अनुभवसै अन्यकी स्मृति होवै नहीं । यातैं पदकै ज्ञानतैं पदार्थकी स्मृति बनै नहीं । समाधानः— यद्यपि संस्कारद्वारा पदार्थनका अनुभवही पदार्थनकी स्मृतिका हेतुहै । तथापि उद्भूतसंस्कारनसैं स्मृति होवैहै । अनुद्भूतसंस्कारनसैं स्मृति होवै नहीं । जो अनुद्भूतसंस्कारनसैंभी स्मृति होवै तौ अनुभूतपदार्थकी सदा स्मृति हुई चाहिये । तहां पदार्थनके संस्कारनकै उद्भवका हेतु पदज्ञानहै । काहेतैं । संबंधीके ज्ञानतैं तथा सदृशपदार्थनकै ज्ञानतैं अथवा चिंतनतैं संस्कार उद्भूत होवैहैं । तिनतैं स्मृति होवैहै । जैसैं पुत्रकूं देखिकै पिताकी औ पिताकूं देखिकै पुत्रकी स्मृति होवैहै । तहां संबंधीका ज्ञान संस्कारनकै उद्भवका हेतुहै । तैसैं एक तपस्वीकूं देखिकै पूर्व देखे अन्य तपस्वीकी स्मृति होवैहै । तहां संस्कारका उद्बोधक सदृशदर्शनहै । जहां एकांतमैं बैठिकै अनुभूत पदार्थका चिंतन करै तासैं अनुभूत अर्थकी स्मृति होवैहै । तहां संस्कारका उद्बोदक चिंतनहै । इस

रीतिसैं संबंधी ज्ञानादिक संस्कारकै उद्बोधद्वारा स्मृतिके हेतुहै। औ संस्कारकी उत्पत्तिद्वारा समानविषयक पूर्व अनुभव स्मृतिका हेतुहैं। यातैं पदार्थनका पूर्व अनुभव तो पदार्थविषयक संस्कारकी उत्पत्तिद्वारा हेतुहै। औ पदार्थनके संबंधी पदहै। यातैं पदार्थनके संबंधी जो पद तिनका ज्ञान संस्कारकै उद्बोधद्वारा पदार्थकी स्मृतिका हेतुहै। यातैं पदनके ज्ञानतैं पदार्थनकी स्मृति संभवैहै। जहां एक संबंधीकै ज्ञानतैं अन्यसंबंधीकी स्मृति होवै तहां दोनूं पदार्थनकै संबंधका जाकूं ज्ञान होवै। ताकूं एककै ज्ञानसैं दूसरेकी स्मृति होवैहैं। जाकूं संबंधका ज्ञान होवै नहीं। ताकूं एककै ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै नहीं। जैसे पिता पुत्रका जन्यजनकभाव संबंधहै। जाकूं जन्यजनकभावसंबंधका ज्ञान होवै। ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवैहै। जाकूं जन्यजनकभावसंबंधका ज्ञान नहीं होवै। ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै नहीं। तैसैं पद अर्थका जो आपसमैं संबंध ताकूं वृत्ति कहैहै। वृत्तिरूप जो पदअर्थका संबंध ताका जाकूं ज्ञान होवै ताकूं पदकै ज्ञानसैं अर्थकी स्मृति होवैहै। पद औ अर्थका जो वृतिरूपसंबंध ताकै ज्ञानरहितकूं पदकै ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवै नहीं। यातैं वृत्तिसहित पदका ज्ञान पदार्थकी स्मृतिका हेतुहै॥

शब्दकी शक्तिवृत्तिका कथन॥ १३॥

सो वृत्ति दोप्रकारकी है:- एक शक्तिरूप वृत्तिहै औ लक्षणारूप वृत्तिहै। न्यायमतमैं ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति है। मीमांसाकै मतमैं शक्ति नाम कोइ भिन्न पदार्थहै। व्याकरणकै मतमैं औ पातंजलके मतमैं वाच्यवाचकभावका मूल जो पदअर्थका तादात्म्यसंबंध सोई शक्ति है। औ विचारसागरमैं योग्यतारूप शक्ति व्याकरणके मतसैं लिखीहै। सो भूषणकारका मतहै। व्याकरणकै मंजूषा ग्रंथमैं योगभाष्यकी रीतिसैं वाच्यवाचकभावका मूल तादात्म्यसंबंधही शक्ति कहीहै। औ अद्वैतसिद्धांतमैं सारे अपना कार्य करनैंकी सामर्थ्य-

ही शक्तिहै।जैसें तंतुमैं पट करणैंकी सामर्थ्यरूप शक्ति है । वह्निमैं दाहकरणैंकी जो सामर्थ्य सो शक्तिहै । तैसै पदनमैं अपनैं अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्यही शक्तिहै । परंतु इतना भेदहै वह्निआदिक पदार्थनमैं जो सामर्थ्यरूप शक्ति ताकै ज्ञानकी अपेक्षा नहीं । शक्ति ज्ञात होवै अथवा अज्ञात होवै दोनूं स्थानमैं वह्निआदिकनसैं दाहादिक कार्य होवैहै । औ पदकी शक्तिका ज्ञान होवै तब तो अर्थकी स्मृतिरूप कार्य होवैहै । शक्तिका ज्ञान होवै नहीं । तब अर्थकी स्मृतिरूप कार्य होवै नहीं । यातैं पदकी सामर्थ्यरूप शक्ति ज्ञात होवै तब पदार्थकी स्मृतिरूपकार्य होवैहै।शंकाः—जहां अतीतपदकी स्मृति होवै तहां पदकै स्मरणरूप ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवैहै । सो नहीं हुई चाहिये । काहेतैं सामर्थ्यरूप शक्तिवाले पदका ध्वंस होयगया यातैं अर्थकी स्मृतिका हेतु जो पद ताका अभावहै ? समाधानः—मीमांसाकै मतमैं सारे पद नित्यहैं । तिन्हकी उत्पत्ति नाश होवै नहीं । यातैं पदका ध्वंस बनैं नहीं । औ जो पदनकूं अनित्य मानैं तौ यह समाधानहैः—पदार्थस्मृतिकी सामर्थ्य पदमैं नहींहै । किंतु पदज्ञानमैं पदार्थकी स्मृतिकी शक्तिहै । जहां पदका ध्वंस हुयाहै । तहांभी पदका स्मरणरूप ज्ञानहै । जहां वर्त्तमान पदहै । तहां पदका श्रावणसाक्षात्कार ज्ञानहै । ता ज्ञानमैं पदार्थकी स्मृतिकी सामर्थ्यहै । सोई शक्ति है । या पक्षमैं शक्तिवाला पद नहीं । किंतु पदका ज्ञानहै । यह पक्ष गदाधरभट्टाचार्यनैं शक्तिवादग्रंथमैं ज्ञानशक्तिवाद करिकै लिखाहै । इसरीतिसैं पदकी सामर्थ्य वा पदकै ज्ञानकी सामर्थ्यशक्ति कहियेहै । दूसरे पक्षमैंभी पद शक्तिवालाहै । इस व्यवहारकी सिद्धिवास्तै पदका धर्म शक्तिअपेक्षित होवै तौ जिस पदका ज्ञान जिस अर्थकी स्मृतिमैं समर्थ होवै तिस पदकी तिस अर्थमैं शक्ति कहियेहै॥

शाब्दीप्रमाकी रीतिपूर्वक शक्तिविषै विवाद ॥ १४ ॥

इस रीतिसैं शक्तिसहित पदज्ञानतैं पदार्थकी स्मृति होवैहै । जितनैं पदार्थनकी स्मृति होवै उतने पदार्थोंके संबंधका ज्ञान अथवा संबंधसहित सकल पदार्थनका ज्ञान वाक्यार्थज्ञान कहियेहैं । ताहीकूं शाब्दीप्रमा

कहैहै । जैसैं "नीलो घटः" यह वाक्यहै । तामैं चारि पदहै । नील पदहै १ ओकार पदहै २ घट पदहै ३ विसर्ग पदहै ४ नीलरूपविशिष्टमैं नीलपदकी शक्तिहै । ओकारपद निरर्थकहै यह वार्त्ता व्युत्पत्तिवादादिकग्रंथनमैं स्पष्टहै ॥ अथवा ओकारपदका अभेद अर्थहै । घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्तिहै । विसर्गकी एकत्वसंख्यामैं शक्तिहै । शक्तिका ज्ञान कोशव्याकरणादिकनतैं होवैहै । नीलपीतादिक पदनकी वर्णमैं औ वर्णवालेमैं शक्तिहै। यह कोशमैं लिखाहै । औ विसर्गकी एकत्व संख्यामैं शक्तिहै । यह व्याकरणतैं जानी जावैहै । घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्तिहै । यह व्याकरणग्रंथनमैं औ शक्तिवादादिक तर्कग्रंथनमैं लिखाहै । औ न्यायसूत्रमैं गौतमनैं यह कहाः—जाति आकृति व्यक्तिमैं । सकल पदनकी शक्तिहै । अवयवके संयोगकूं आकृति कहैहै । अनेक पदार्थनमैं रहै जो नित्य एक धर्म सो जाति कहियेहै । जैसैं अनेक घटनमैं नित्य औ एक घटत्वहै सो जातिहै । जातिके आश्रयकूं व्यक्ति कहैहै । या मतमैं घटपदकी शक्ति कपालसंयोगसहित घटत्वविशिष्ट घटमैंहै । औ दीधितिकारशिरोमणि भट्टाचार्यके मतमैं सकल पदनकी व्यक्तिमात्रमैं शक्तिहै । जाति औ आकृतिमैं नहीं । या मतमैं घटपदका वाच्य केवल व्यक्तिहै । घटत्व औ कपालसंयोग घटपदके वाच्य नहीं । काहेतैं जिस पदकी जिस अर्थमैं शक्ति होवै तिसपदका सो अर्थ वाच्य कहियेहै । औ शक्य कहियेहै । केवल व्यक्तिमैं शक्तिहै यातैं केवल व्यक्तिही वाच्यहै । **शंकाः**—घटपदके उच्चारणतैं घटत्वकी गोपदके उच्चारणतैं गोत्वकी ब्राह्मणपदके उच्चारणतैं ब्राह्मणत्वकी प्रतीति होवैहै । सो या मतमैं नहीं हुया चाहिये । काहेतैं अवाच्यअर्थकी लक्षणाविना पदसैं प्रतीति होवै नहीं । जो अवाच्य अर्थकी लक्षणा विना पदसैं प्रतीति मानैं तौ घटपदके अवाच्य घटत्वकी जैसैं घटपदसैं प्रतीति मानी । तैसैं घटपदके अवाच्य पटादिकनकी भी घटपदसैं प्रतीति हुई चाहिये ? **समाधानः**—वाच्यकी प्रतीति पदसैं होवैहै । और वाच्यवृत्ति जो जाति ताकी प्रतीति होवैहै । यातैं

यह नियमहैः—जातिभिन्न अवाच्यकी प्रतीति होवै नहीं । औ वाच्यवृत्ति जो जाति सो अवाच्यभी प्रतीत होवैहै । यातैं घटत्वादिक तो वाच्यभी अघटादिक पदनतैं प्रतीत होवैहैं । पदादिक अवाच्य प्रतीत होवैं नहीं । पुनः शंकाः—वाच्यवृत्ति अवाच्य जातिकी पदनसैं प्रतीत मानैं तौ घटपदसैं पृथिवीत्व जातिकी प्रतीति हुई चाहिये । काहेतैं । घटपदके वाच्यमैं जैसे घटत्वजाति रहैहै । तैसैं पृथिवीत्वभी रहैहै । यातैं दोनूं वाच्यवृत्तिहैं औ अवाच्यहैं घटत्वकी नांई पृथिवीत्वकीभी प्रतीति हुई चाहिये । गोपदका वाच्यजो गौ ताकै विषै गोत्वकी नांई पशुत्व रहैहै । औ दोनूं अवाच्यहैं । तैसैं ब्राह्मणपदसैं ब्राह्मणत्वकी नांई मनुष्यत्वकी प्रतीति हुई चाहिये । समाधानः—वाच्यतावच्छेदक जो अवाच्यताकी औ वाच्यकी पदसैं प्रतीति होवैहै । अन्यकी प्रतीति होवै नहीं । जैसै घटपदका वाच्य घटव्यक्तिकी औ वाच्यतावच्छेदक घटत्वकी प्रतीति घटपदसैं होवैहै । पृथिवीत्व वाच्य नहीं । औ वाच्यतावच्छेदक नहीं । यातैं घटपदसैं पृथिवीत्वकी प्रतीति होवै नहीं । वाच्यतासैं न्यूनवृत्ति औ अधिकवृत्ति न होवै । किंतु जितनैं देशमैं वाच्यता होवै उतनैं देशमैं रहै सो वाच्यतावच्छेदक होवैहै। घटपदकी वाच्यता सकलघटव्यक्तिमैंहै । औ घटत्वभी सकलघटव्यक्तिमैं रहैहै । यातैं घटकी वाच्यतासैं न्यूनवृत्ति औ अधिकवृत्ति घटत्व नहीं । किंतु समानदेशवृत्ति होनेतैं घटपदका वाच्यतावच्छेदक घटत्वहै । घटपदकी वाच्यता पटमैं नहीं । औ पृथिवीत्व पटमैं है । यातैं अधिकवृत्ति होनेतैं घटपदका वाच्यतावच्छेदक पृथिवीत्व नहीं । गोपदकी वाच्यता सकल गोव्यक्तिमैंहै । औ गोत्वभी सकल गोव्यक्तिमैंहै । यातैं गोपदका वाच्यतावच्छेदक गोत्वहै । औ अश्वमैं गोपदकी वाच्यता नहीं । तामैं पशुत्व रहैहै । यातैं गोपदकी वाच्यतासैं अधिकवृत्ति होनेतैं गोपदका वाच्यतावच्छेदकपशुत्व नहीं । तैसैं ब्राह्मणपदकी वाच्यता सकलब्राह्मणव्यक्तिमैं है । औ ब्राह्मणत्वभी सकल ब्राह्मणव्यक्तिमैं है यातैं ब्राह्मणपदका वाच्य-

तावच्छेदक ब्राह्मणत्वहै।औ क्षत्रियादिकनमैं ब्राह्मणपदकी वाच्यता नहीं । तहां मनुष्यत्व रहैहै । यातैं अधिकवृत्ति होनेतैं ब्राह्मणपदका वाच्यतावच्छेदक मनुष्यत्व नहीं।इसरीतिसैं घटादिकपदनतैं घटत्वादिकनकी प्रतीति होवैहै । औ शक्ति नहीं होनेतैं घटादिपदनके वाच्य नहीं । किंतु वाच्यतावच्छेदकहैं। यह शिरोमणि भट्टाचार्यका मतहै । औ घटादिपदनकी जातिमात्रमैं शक्तिहै । व्यक्तिमैं नहीं यह मीमांसाका मतहै ॥ शंका:--जिस अर्थमैं जिस पदकी शक्तिका ज्ञान होवै तिस अर्थकी तिस पदसैं स्मृति होयके शाब्दीप्रमा होवैहै ।पदकी शक्ति विना व्यक्तिकी पदसैं स्मृति औ शाब्दीप्रमा नहीं हुई चाहिये ? समाधान:—शब्दप्रमाणसैं तो जातिकाही ज्ञान होवैहै । तथापि अर्थापत्तिप्रमाणतैं व्यक्तिका ज्ञान होवैहै । जैसैं दिनमैं अभोजी पुरुषकूं रात्रिभोजनविना स्थूलता संभवै नहीं । तैसैं व्यक्तिविना केवल जातिमैं कोई क्रिया संभवै नहीं । यातैं अर्थापत्तिप्रमाणतैं व्यक्तिका बोध होवैहै । "गामानय" इस वाक्यतैं गोत्वके आनयनका बोध होवैहै सो गोव्यक्तिके आनयन विना बनै नहीं । गोव्यक्तिका आनयन संपादक है । गोत्वका आनयन संपाद्य है । संपादकज्ञानका हेतु संपाद्यज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण कहियेहैं । संपादकज्ञान प्रमाहै । या स्थानमैं जातिका ज्ञान प्रमाणहै । औ व्यक्तिका ज्ञान प्रमाहै । यह भट्टमीमांसकका मतहै । और कोई जातिशक्तिवादी अनुमानतैं व्यक्तिका बोध मानैहै । सो ग्रंथातरमैं स्पष्टहै । कठिन प्रसंग लिखा नहीं । केवल जातिमैं शक्ति मानै ताके मतमैं व्यक्तिका बोध शब्दप्रमाणतैं होवै नहीं । किंतु अर्थापत्ति वा अनुमानसैं व्यक्तिका बोध होवैहै । परंतु कोई ग्रंथकार जातिमैं कुब्जशक्ति मानैहैं । ताके मतमैं व्यक्तिका ज्ञानभी शब्दप्रमाणतैंही होवैहै । ताका यह अभिप्रायहै:—सकल पदनकी शक्ति तो जातिविशिष्ट व्यक्तिमैं है । परंतु शक्तिका ज्ञान जाकूं होवै ताकूं पदसैं अर्थकी स्मृति औ शाब्दबोध होवैहै । अन्यकूं नहीं । तहां घटपदकी घटत्वमैं शक्तिहै । इस रीतिसैं जातिशक्तिका ज्ञान पदार्थकी स्मृ

तिका औ शाब्दबोधका हेतुहै । औ व्यक्तिमैं शक्तिके ज्ञानका उपयोग नहीं औ व्यक्ति अनंतहैं यातैं सकल व्यक्तिका ज्ञान संभवै नहीं । इस कारणतैं व्यक्तिकी शक्तिस्वरूपसैं पदार्थकी स्मृति औ शाब्दबोधका हेतु है । ताका ज्ञान हेतु नहीं । इसरीतिसैं घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्ति होनेतैं घटपदके वाच्य तो घटत्व औ घट दोनूंहैं । यातैं घटपदका वाच्य जो घटत्व औ घट तिनके शाब्दबोधका हेतु घटत्वमैं शक्तिका ज्ञानहै । या पक्षकूं कुब्जशक्तिवाद कहैहैं ॥ और प्रकारसैं कुब्जशक्तिवाद गदाधरभट्टाचार्यनैं शक्तिवादके अंतमैं लिखाहै सो कठिनहै । यातैं इहां लिखा नहीं । औ घटादिक पदनतैं जैसैं ज्ञातिविशिष्टव्यक्तिका बोध होवैहै । तैसैं जातिका व्यक्तिमैं जो समवायादिक संबंध ताकाभी बोध होवैहै । यातैं जाति व्यक्ति संबंध इन तीनूंमैं घटादि पदनकी शक्तिहै । यह गदाधरभट्टाचार्यका मतहै । सर्व मतनमैं जातिविशिष्टव्यक्तिमैं घटादिक पदनकी शक्तिहै । यह मत बहुत ग्रंथकारोंनैं लिखाहै । यातैं घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्ति कहीहै ॥

वाक्यका भेद ॥ १८ ॥

नीलके अभेदवाला एक घटहै। यह "नीलो घटः" इस वाक्यका अर्थ है । तैसैं "वज्रहस्तः पुरंदरः" यह वैदिकवाक्यहै । जैसैं "नीलो घटः" या वाक्यमैं विशेषण बोधक नीलपदहैं । औ घटपद विशेष्यबोधकहै । तैसैं वज्रहस्तपद विशेषणबोधकहै । औ पुरंदरपद विशेष्यबोधकहै । विशेषणपदके आगे विसर्ग निरर्थकहै । अथवा अभेदार्थकहै । विशेष्य बोधकपदके आगे विसर्गका एकत्व अर्थहै । "वज्रहस्तके अभेदवाला एक पुरंदरहै" यह वाक्यका अर्थहै । इसरीतिसैं लौकिक वैदिक वाक्यनकी समान रीतिहैं । परंतु वैदिकवाक्य दोप्रकारके हैंः—एक व्यावहारिक अर्थके बोधकहैं । दूसरे परमार्थतत्त्वके बोधकहैं । ब्रह्मसैं भिन्न सारा व्यावहारिक अर्थ कहियेहैं । परमार्थतत्त्व ब्रह्म कहियेहैं । ब्रह्मबोधक वाक्यभी दो प्रकारकेहैंः—तत्पदार्थ वा त्वंपदार्थके स्वरूपके बोधक अ-

वांतरवाक्यहैं। जैसें "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" यह वाक्य तत्पदार्थका बोधकहै। "य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" यह वाक्य त्वंपदार्थके स्वरूपका बोधकहै। तत्पदार्थ त्वंपदार्थके अभेदके बोधक "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्यहैं॥

शब्दकी शक्तिलक्षणावृत्तिका संक्षेपसे कथन॥ १६॥

जा अर्थमैं जा पदकी वृत्ति होवै ता अर्थकी ता पदसैं प्रतीति होवैहै। शक्ति औ लक्षणा भेदतैं सो वृत्ति दो प्रकारकी है। ईश्वरकी इच्छा अथवा वाच्यवाचकभावसंबंधमूल तादात्म्य। अथवा पदार्थबोधहेतु सामर्थ्यकूं शक्ति कहैहैं। जिस अर्थमैं पदकी शक्ति होवै सो अर्थ पदका शक्य कहियेहै। शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं। जैसें गंगापदकी शक्ति प्रवाहमैं है। यातैं गंगापदका शक्य प्रवाहहै। तासैं संयोगसंबंध तीरका है। इसरीतिसैं पदका जो अर्थसैं परंपरा संबंध सो लक्षणाहै। जैसें गंगापदका तीरसैं परंपरा संबंधहै। सोई तीरमैं गंगापदकी लक्षणा कहिये। काहेतैं साक्षात्संबंधवालेसैं जो संबंध सो परंपरासंबंध कहियेहैं। गंगापदका शक्तिरूपसंबंध प्रवाहतैं है। तासैं संयोग तीरकाहै। यातैं स्वशक्य संयोगरूप गंगापदका तीरसैं परंपरासंबंधहै। सोई लक्षणा कहिये है। यातैं यह सिद्ध हुवाः—जा अर्थसैं जिसपदका शक्तिरूप साक्षात्संबंध होवै। सो अर्थ तिस पदका शक्य कहियेहै। जा अर्थसैं जिस पदके शक्यका संबंध होवै सो अर्थ तिस पदका लक्ष्य कहियेहै। जैसें गंगापदका शक्य जो प्रवाह ताका तीररूप अर्थसैं संयोगसंबंधहै। यातैं गंगापदका शक्य प्रवाहहै। औ तीर लक्ष्यहै॥

इसरीतिसैं पदका साक्षात्संबंध औ परंपरासंबंधरूप शक्तिलक्षणा भेदतैं वृत्ति दो प्रकारकी हैं। जा पदकी वृत्ति जिस पुरुषकूं अज्ञात होवै तापदका तिस पुरुषकूं साक्षात्कार हुयेंभी पदार्थकी स्मृति औ शाब्दबोध होवै नहीं। यातैं शक्तिलक्षणारूप वृत्तिका ज्ञानपदार्थकी स्मृति औ शाब्दबोधका हेतुहै॥

वाक्यार्थज्ञानका क्रम ॥ १७ ॥

शाब्दबोधका यह क्रमहै:—जा पुरुषकूं पदकी वृत्ति ज्ञात होवै ता पुरुषकूं वाक्यके सकल पदनका साक्षात्कार होवै । जिस पदकी जिस अर्थमैं वृत्ति पूर्व जानी होवै तिस पदसैं तिस अर्थकी स्मृति होवैहै । तिसतैं अनंतर परस्परसंबंधवाले सकल पदार्थनका ज्ञान अथवा सकल पदार्थनका परस्परसंबंधज्ञान वाक्यार्थज्ञान होवैहै । जैसैं "गामानय त्वं" या वाक्यामैं "गो" आदिक पदहैं । तिनकी अपनैं अर्थमैं वृत्तिका प्रथम ऐसा ज्ञान पुरुषकूं चाहियेः—गोपदकी गोत्वविशिष्ट पशुविशेषमैं शक्तिहै । द्वितीया-विभक्तिकी कर्मतामैं शक्तिहै आनयनमैं आपूर्वनीपदकी शक्तिहै । यकारोत्तर अकारकी कृति औ प्रेरणामैं शक्तिहै ।संबोधनयोग्यचेतनमैं त्वंपदकी शक्ति है । इसरीतिसैं शक्तिज्ञानवालेकूं "गामानय त्वं" या वाक्यका श्रोत्रसैं संबंध होतेंही गो आदिक सकल पदनका साक्षात्कार होयकै तिन पदनकै शक्य अर्थकी स्मृति होवैहै । जैसैं हस्तिपालककै ज्ञानतैं ताकै संबंधी हस्तीकी स्मृति होवैहै । तैसैं पदनकै ज्ञानतैं तिनके संबंधी शक्य अर्थनकी स्मृति होवैहै । "यह हस्तिपालक है" ऐसा हस्ति और महावतकै संबंध-का जाकूं ज्ञान होवै नहीं । किंतु "मनुष्यहै" ऐसा ज्ञान होवै ताकूं हस्ति-पालक देखैभी हस्तीकी स्मृति होवै नहीं । तैसैं इस पदका यह शक्यहै । अथवा लक्ष्यहै ऐसा शक्ति वा लक्षणारूप संबंधका जाकूं पूर्वज्ञान होवै नहीं । किंतु अज्ञातार्थ पदका श्रावणसाक्षात्कार होवै । ताकूं पदनकै श्रवणतैंभी अर्थनकी स्मृति होवै नहीं । यातैं वृत्तिसहित पदका ज्ञान पदार्थस्मृतिका हेतुहै, केवल पदका ज्ञान हेतु नहीं । पदनकै ज्ञानतैं सकल पदार्थनकी स्मृति होयकै सकल पदार्थनकै परस्पर संबंधका ज्ञान होवैहै । अथवा पदनकै ज्ञानतैं परस्परसंबंधरहित जिन पदार्थनका स्मरण हुवाहै । परस्परसंबंधसहित तिन पदार्थनका ज्ञान होवैहै । सो पदार्थनकै संबंधका ज्ञान अथवा संबंधसहित पदार्थनका ज्ञान वाक्या-र्थज्ञान कहियेहै । औ शाब्दीप्रमा कहियेहै । "गामानय त्वं" या

वाक्यमैं गोपदार्थका द्वितीयार्थ कर्म तामैं आधेयता संबंधहै । आधेयताकूं वृत्तित्व कहैहैं । "आपूर्वनीके" अर्थ आनयनमैं कर्मताका निरूपकता संबंधहै । यकारोत्तर अकारके कृति औ प्रेरणा दो अर्थहैं। तहां कृतिमैं आनयनका अनुकूलता संबंधहै । कृतिका त्वंपदार्थमैं आश्रयता संबंधहै । प्रेरणाका त्वंपदार्थमैं विषयता संबंधहै । यातैं "गोवृत्तिकर्मतानिरूपक आनयनानुकूलकृत्याश्रयः प्रेरणाविषयः त्वंपदार्थः" यह ज्ञान वाक्य श्रोताकूं होवैहै । तहां वृत्तिविशिष्ट सकल पदनका ज्ञान शब्दप्रमाणहै । पदनकै ज्ञानतैं तिनकै अर्थकी स्मृति व्यापारहै । वाक्यार्थज्ञान फलहै । इसरीतिसैं लौकिक वैदिक वाक्यनतैं बहुत स्थानमैं पदार्थनकै संबंधका वा संबंधसहित पदार्थनका बोधही फल होवैहै । तथापि त्वंपदार्थका संबंधी तत्पदार्थकाभी तत्पदार्थकै संबंधी त्वंपदार्थका महावाक्यनतैं बोध मानै तो "असंगो ह्ययं पुरुषः" इत्यादिक श्रुतिवचनोंनैं वेदांतप्रतिपाद्य ब्रह्मकूं असंगता कहीहै । ताका बाध होवैगा । यातैं महावाक्यनका प्रतिपाद्य अखंड ब्रह्महै । वाक्यनकूं अखंड अर्थकी बोधकतामैं दृष्टांत संक्षेपशारीरकमैं स्पष्टहै । विस्तारभयतै लिखा नहीं ॥

लक्षणाकाप्रकार ॥ १८ ॥

महावाक्यनमैं लक्षणाका प्रकार विचारसागरमैं लिखाहै ॥ सो जानि लैना । पदकै शक्यसैं संबंधकूं लक्षणा कहैहैं । यातैं पदका परंपरासंबंधरूप लक्षणाहै । काहेतैं पदका साक्षात्संबंध शक्यतैं होवैहै । ता शक्यका संबंध लक्ष्यतैं होवैहै । यातैं शक्यद्वारा पदका संबंध होनेतैं परंपरा संबंधरूप लक्षणावृत्ति है । इसी कारणतैं ग्रंथकारोंनैं लक्षणावृत्ति जघन्य कही है । जहां पदका साक्षात्संबंधरूप शक्तिवृत्ति नहीं संभवै । तहां परंपरासंबंधरूप लक्षणावृत्तिका अंगीकारहै । इसी कारणतैं ग्रंथकारोंनैं लिखाहैः- जहां शक्य अर्थमैं वक्ताका तात्पर्य नहीं संभवै । तहां लक्षणावृत्ति मानिकै पदका लक्ष्यअर्थ मानना योग्यहै । जहां शक्यअर्थमैं वक्ताका तात्पर्य संभवै । तहां लक्ष्यअर्थ मानना योग्य नहीं । केवल लक्षणा और लक्षितलक्ष-

णाके भेदतैं सो लक्षणा दो प्रकारकी हैः—पदकै शक्यका साक्षात्संबंध होवै ताकूं केवल लक्षणा कहैहैं। जैसैं गंगापदकी तीरमैं लक्षणा होवैहै। तहां गंगापदका शक्य जो प्रवाह ताका तीरसैं साक्षात्संबंध संयोगहै। यातैं गंगापदकी तीरमैं केवल लक्षणाहै। लक्षितलक्षणाका उदाहरण यहहैः— " द्विरेफो रौति " या वाक्यका दोरेफ ध्वनि करैहैं ॥ यह अर्थ पदनकी शक्तिसैं प्रतीत होवैहै। सो वर्णरूप रेफमैं ध्वनि करना संभवै नहीं। यातैं शक्यअर्थमैं वक्ताका तात्पर्य नहीं। किंतु दो रेफवाला जो भ्रमरपद तिसकै शक्यमैं द्विरेफपदकी लक्षणाहै सो केवल लक्षणातो है नहीं। काहेतैं जा अर्थमैं पदकै शक्यका साक्षात्संबंध होवै तामैं केवल लक्षणा होवै है। द्विरेफपदका शक्य दो रेफहैं। तिनका अवयविता संबंध भ्रमरपदमैंहै। ता पदका शक्तिरूप संबंध अपनैं वाच्य मधुपमैंहै। यातैं शक्यसंबंधी जो भ्रमरपद ताका संबंध होनेतैं शक्यका परंपरासंबंधहै यातैं लक्षितलक्षणाहै। यद्यपि दो रेफनकूं द्विरेफ नहीं कहैहैं। किंतु दो रेफवालेकूं द्विरेफ कहैहैं। दोरेफवाला भ्रमरपदहै। यातैं द्विरेफपदका शक्य जो भ्रमरपद ताका मधुपसैं साक्षात्संबंध होनेतैं केवल लक्षणा संभवैहै। तथापि व्याकरणके मतमैं तो समासकी शक्तिहै। यातैं द्विरेफपदका शक्य दोरेफवाला भ्रमरपदहै। न्यायवैशेषिकादिकनकै मतमैं समाससमुदायकी शक्ति नहीं मानैहैं। किंतु समाससमुदायके जो अवयवहैं। तिनकी लक्षणावृत्तिसैं अधिक अर्थ समासमैं प्रतीत होवैहै। जैसैं " द्विरेफ " इतना समाससमुदायहै। ताकी किसी अर्थमैं शक्ति नहीं। तहां द्वित्वसंख्याविशिष्ट द्विपदका अर्थहै, रेफत्वजातिविशिष्ट अक्षर रेफपदका अर्थहै। द्विपदकै शक्यका औ रेफपदकै शक्यका अभेदसंबंध वाक्यार्थ होवै तौ द्वित्वसंख्यावाले रेफहैं यही अर्थ शक्यहै। औ दोरेफवाले पदकूं द्विरेफ कहैहैं सोलक्षणावृत्ति मानिकै कहैहैं। परंतु इतना भेदहैः—न्यायवैशेषिकमतमैं वाक्यकी लक्षणा नहीं मानैहैं। काहेतैं शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं, पदसमुदायरूप वाक्यकी किसी अर्थमैं शक्ति नहीं। यातैं वाक्यकै श-

क्यका अभाव होनेंतैं शक्यका संबंधरूपलक्षणावाक्यकी बनैं नहीं। किंतु पदकी लक्षणा होवैहै। या मतमैं रेफपदकी रेफवालेमैं लक्षणा औ मीमांसामतमैं तथा वेदांतमतमैं वाक्यकीभी लक्षणा मानैहैं। औ वाक्यकी लक्षणामैं जो दोष कहाहै। ताका यह समाधानहैः— पदसमुदायकूं वाक्य कहैहैं। सो समुदाय प्रत्येक पदसैं भिन्न नहीं। यातैं पदनका शक्यही वाक्यका शक्यहै। अथवा शक्यसंबंधरूप लक्षणा नहीं। किंतु बोध्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहै। जैसैं पदका शक्यशक्तिवृत्तिसैं बोध्यहै। तैसैं परस्परसंबंधसहित पदार्थरूप वा पदार्थनका संबंधरूप वाक्यार्थभी वाक्यबोध्यहै। यातैं पदबोध्यसंबंधरूप लक्षणा जैसैं पदकी होवैहै। तैसैं वाक्यबोध्यसंबंधरूपलक्षणा वाक्यकीभी होवैहै। या मतमैं द्विरेफसमुदायकी दोरेफवाले पदमैं लक्षणा। इसरीतिसैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपदकी मधुपमैं लक्षणा होनेंतैं लक्षितलक्षणा कहावै है। सोभी लक्षणाके अंतर्भूतही है। काहेतैं द्विरेफपदका शक्य जो दोरेफ ताका भ्रमरपदसैं साक्षात्संबंध है। औ भ्रमरतैं भ्रमरपदद्वारा परंपरासंबंधहै। यातैं शक्यसंबंधरूप लक्षणातैं लक्षितलक्षणा पृथक् नहीं। व्याकरणमत द्विरेफपदका शक्य दोरेफवाला भ्रमरपदहै ताका भ्रमरसैं साक्षात्संबंधहैं। यातैं यह उदाहरण लक्षितलक्षणाका नहीं केवल लक्षणाकाहै। ता मतमैं लक्षितलक्षणाके उदाहरण " सिंहो देवदत्तः " इत्यादिकहैं। या स्थानमैं " सिंहसैं अभिन्न देवदत्तहै " यह वाक्यका अर्थ पदनकी शक्तिवृत्तिसैं प्रतीत होवैहै सो संभवै नहीं। काहेतैं पशुत्वजाति औ मनुष्यत्वजाति परस्पर विरुद्धहैं। एकमैं संभवै नहीं। यातैं सिंहशब्दकी शूरताक्रूरताधर्मवाले पुरुषमैं लक्षणाहै। ता पुरुषतैं सिंहशक्यकी साक्षात्संबंध नहीं होनेतैं केवल लक्षणा तो है नहीं। किंतु शूरतादिकनतैं सिंहशब्दके शक्यका आधेयता संबंधहै। औ शक्यसंबंधी शूरतादिकनका पुरुषमैं आश्रयतासंबंधहै परंतु सिंहकी शूरता औ पुरुषकी शूरताका अभेद मानैं तब तो सिंहकी शूरताका देवदत्तमैं

अधिकरणतासंबंधहै । औ दोनूं शूरताका परस्पर भेद मानैं तौ सिंहकी शूरताका पुरुषमैं स्वसजातीयशूरताधिकरणता संबंधहै । सिंहकी शूरता स्वशब्दका अर्थहै । इसरीतिसैं शक्यका परंपरासंबंध होनेतैं सिंहशब्दकी शूरतादिगुणविशिष्टमैं लक्षितलक्षणाहै । शक्यके परंपरासंबंधकूंलक्षित-लक्षणा कहैहैं । यद्यपि लक्षितलक्षणाशब्दसैं उक्तअर्थकी सिद्धि क्लिष्टहै। काहेतैं । लक्षितलक्षणाशब्दकी रूढितो शक्यके परंपरासंबंधमैं कोशादि-कनमैं कहीं नहीं । औ योगवृत्तिसैं लक्षणाशब्दका उक्तअर्थ प्रतीत होवै नहीं । काहेतैं लक्षितस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा इसरीतिसैं षष्ठीसमास करैं तौ लक्षित कहिये लक्षणावृत्तिसैं जो प्रतीत हुआहै ताकी लक्षणा यह लक्षितलक्षणाशब्दका अर्थ सिद्ध होवैहै । द्विरेफो रौति । सिंहो देवदत्तः । इत्यादिक जो लक्षितलक्षणाके उदाहरण कहे तहां उक्तस्वरूपलक्षित-लक्षणा संभवै नहीं । काहेतैं " द्विरेफो रौति " या वाक्यमैं द्विरेफपदसैं भ्रमरपद लक्षित होवै । औ ताकी मधुपमैं लक्षणा होवै । तौ उक्त अर्थका संभव होवै । सो दोनूं वार्त्ता हैं नहीं । काहेतैं यद्यपि द्विरेफपदके शक्यका संबंध भ्रमरपदतैं है । तथापि द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपद नहीं । काहेतैं वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षित होवैहै । केवल शक्यसंबंधी लक्षित नहीं होवैहै । जो केवल शक्यसंबंधी लक्षित होवै तौ गंगापदके शक्यके संबंधी मीनादिक अनेकहैं; ते सारेही गंगापदसैं लक्षित हुये चाहियें । यातैं वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षित होवैहै । गंगा-पदशक्यसंबंधी तो अनेकहैं । तथापि " गंगायां ग्रामः " या वाक्यमैं श्रोताकूं गंगापदसैं तीरका बोध होवै । ऐसे तात्पर्यविषयशक्यसंबंधी केवल तीरहैं । यातैं गंगापदसैं तीरही लक्षितहै । मीनादिकभी शक्यसंबंधी तो हैं । उक्त तात्पर्यके विषय नहीं । यातैं गंगापदसैं लक्षित नहीं । इस रीतिसैं द्विरेफपदके शक्यका संबंधी तो भ्रमरपदहै । परंतु द्विरेफपदसैं भ्रम-रपदका बोध श्रोताकूं होवै । ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहीं । किंतु द्विरेफपद-सैं भ्रमरपदके शक्यमधुपका बोध श्रोताकूं होवै । ऐसा वक्ताका तात्पर्य

होवैहै । यातैं द्विरेफपदके शक्यका संबंधीभी भ्रमरपदहै । वक्ताके उक्त तात्पर्यका विषय नहीं होनैंतैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपद नहीं । और किसीरीतिसैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपदहै । इस वार्ताकूं मानिलेवै तौभी भ्रमरपदकी मधुपमैं शक्तिहै। यातैं ताकी लक्षणाकथन असंगतहै। इसरीतिसैं " लक्षितस्य भ्रमरपदस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा " इसरीतिसैं षष्ठीसमासका अर्थ उक्त उदाहरणमैं संभवै नहीं । तैसैं "सिंहो देवदत्तः" या उदाहरणमैंभी उक्त अर्थ संभवै नहीं । सिंहवृत्ति शूरतादिक सिंहशब्दके शक्यके संबंधी तो हैं । परंतु सिंहशब्दसैं शूरतादिकनका बोध श्रोताकूं होवै । ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहीं । किंतु सिंहशब्दसैं सिंहसदृशपुरुषका बोध श्रोताकूं होवै । ऐसा वक्ताका तात्पर्य होवैहै । यातैं शक्यसंबंधीभी शूरतादिक गुण उक्ततात्पर्यके विषय नहीं होनेतैं सिंहशब्दसैं लक्षित नहीं । और किसी रीतिसैं सिंहशब्दसैं लक्षित शूरतादिकहैं । याकूं मानिलेवै तौभी तिनकी लक्षणा कहना विरुद्धहै । काहेतैं । शक्ति औ लक्षणा वर्णात्मक शब्दकी होवैहै । शूरतादिक गुण शब्दरूप नहीं । यातैं तिनकी शक्ति वा लक्षणा संभवै नहीं । इसरीतिसैं " लक्षितस्य भ्रमरपदस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा " और " लक्षितस्य शूरतादिगुणसमुदायस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा " इस प्रकारका अर्थ षष्ठीसमास मानिकै होवैहै । या अर्थमैं शक्यकै परंपरासंबंधका लक्षितलक्षणाशब्दसैं बोध होवै नहीं । पूर्व उक्त दोनूं उदाहरणोंमैं शक्यका परंपरासंबंध तो मधुप औ पुरुषमैं है । औ पूर्वोक्त रीतिसैं लक्षितलक्षणाशब्दका योगअर्थ संभवै नहीं । तथापि या वक्ष्यमाण रीतिसैं लक्षितलक्षणाशब्दका योगअर्थ षष्ठीसमास मानिकै शक्यका परंपरासंबंधही संभवैहैः—यद्यपि वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षितशब्दका अर्थहै । तथापि भागत्यागलक्षणासैं वक्तृतात्पर्यविषय इतना भाग त्यागिकै इहां शक्यसंबंधी लक्षितशब्दका अर्थहै । तैसैं लक्षणाशब्दका अर्थभी शक्यसंबंधहै । तामैं शक्य भाग त्यागिकै भागत्यागलक्षणासैं संबंधमात्र लक्षणाशब्दका अर्थहै । यातैं

लक्षित कहिये शक्यसंबंधीकी लक्षणा कहिये संबंध लक्षितलक्षणाशब्दका अर्थ होवैहै। इसरीतिसैं शक्यसंबंधीका संबंध लक्षितलक्षणाशब्दसैं योगवृत्तिसैंही सिद्ध होवैहै। अथवा लक्षितशब्दकी तो शक्यसंबंधीमैं भागत्यागलक्षणा है; औ लक्षणाशब्दका शक्यसंबंधही अर्थहै। ताकी संबंधमात्रमैं लक्षणा नहीं। औ "लक्षितेन लक्षणा लक्षितलक्षणा" इसरीतिसैं तृतीयासमास माने इष्ट अर्थकी सिद्धि होवैहै। लक्षितेन कहिये शक्यसंबंधीद्वारा लक्षणा कहिये शक्यका संबंध यह लक्षितलक्षणाशब्दका अर्थहै। शक्यका संबंध कहूं साक्षात् होवैहै। कहूं शक्यसंबंधी द्वारा शक्यका संबंध होवैहै "द्विरेफो रौति" इत्यादि स्थानमैं द्विरेफपदका शक्य जो दोरेफ तिनका मधुपसैं साक्षात्संबंध नहीं। किंतु शक्यसंबंधी भ्रमरपदहै तिसका संबंधी मधुपहै। यातैं द्विरेफपदका शक्य जो दोरेफ तिनका भ्रमरपदद्वारा मधुपसैं संबंधहै। तैसैं सिंहशब्दके शक्यके संबंधी जे शूरतादिक गुण तिनों द्वारा सिंहशब्दके शक्यका संबंधि शूरतादिगुणविशिष्टमैं है। यातैं सिंहशब्दका लक्षित कहिये शक्यसंबंधी जे शूरतादि गुण तिनोंद्वारा लक्षणा कहिये सिंहशब्दके शक्यका संबंध पुरुषमैं है। षष्ठीसमास मानैं तौ लक्षितशब्द औ लक्षणाशब्दमैं भागत्यागलक्षणा माननी होवैहै। औ तृतीयासमास मानैं तौ लक्षणाशब्दका मुख्य अर्थ रहैहै। एकलक्षितशब्दमैं भागत्यागलक्षणा माननी होवैहै। औ लक्षितलक्षणाशब्दमैं कर्मधारयसमास माने तौ लक्षितशब्द औ लक्षणाशब्द इन दोनूंका मुख्य यौगिक अर्थ रहैहै। भागत्यागलक्षणा माननी होवै नहीं। अवयवकी शक्तिसैं जो शब्द अपनैं अर्थकूं जनावै ताकूं **यौगिक शब्द** कहैहैं। जैसैं "पाचक" शब्दहै तहां पाच् अवयवका पाक अर्थहै। "अक" अवयवका कर्त्ता अर्थहै। इसरीतिसैं अवयवशक्तिसैं पाककर्त्ता पाचकशब्दका अर्थ होनेतैं पाचकशब्द यौगिकहै। अवयवशक्तिकूं योग कहैहैं। शास्त्रका असाधारण संकेत **परिभाषा** कहियेहैं। परिभाषातैं अर्थका बोधक शब्द **पारिभाषिक शब्द** कहियेहैं। लक्षित-

शब्दके लक्ष् औ इत् दो अवयवहैं । तिनमैं लक्षशब्दका अर्थ लक्षणहै इतशब्दका अर्थ संबंधीहै । यातैं लक्षणासंबंधी अर्थका बोधक लक्षित शब्द यौगिकहै । यातैं लक्षणवाला लक्षितशब्दका अर्थहै । तैसैं शक्यसंबंधका नाम लक्षणाहै । यह शास्त्रका संकेतहै । यातैं लक्षणाशब्द परिभाषातैं शक्यसंबंधरूप अर्थबोधक होनैंतैं पारिभाषिकहै " लक्षिता चासौ लक्षणा लक्षितलक्षणा" यह कर्मधारयसमासहै । लक्षणवाली लक्षणा यह अर्थ कर्मधारयसमासतैं सिद्ध होवैहै । असाधारण धर्मकूं लक्षण कहैहैं । शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं । यातैं लक्षणाका असाधारण धर्म शक्यसंबंधत्वहै । सोई ताका लक्षणहै । यद्यपि शक्यका संबंध साक्षात् परंपराभेदतैं दो प्रकारकाहै । और बहुत स्थानमैं शक्यका साक्षात् संबंधरूप लक्षणाहै । " द्विरेफो रौति " " सिंहो देवदत्तः " इत्यादिकनमैं शक्यका साक्षात्संबंधहै नहीं । तथापि लक्षणाका असाधारण धर्म शक्यसंबंधत्व है । संबंधमैं साक्षात्पना लक्षणाके लक्षणमैं प्रविष्ट नहीं । जहां शक्यका परंपरासंबंधहै तहांभी शक्यसंबंधत्वरूप स्वलक्षणवाली लक्षणाहै । " गंगायां ग्रामः " इत्यादिक उदाहरणमैं यद्यपि शक्यका साक्षात्संबंधरूप लक्षणाहै तथापि संबंधका साक्षात्पना लक्षणाके लक्षणमैं प्रविष्ट नहीं । किंतु साक्षात्परंपरा साधारणसंबंधत्वरूपतैं लक्षणाके लक्षणमैं संबंधमात्र प्रविष्टहै । इसीवास्तै " शक्यसंबंधो लक्षणा" ऐसा कहैहैं । " शक्यसाक्षात्संबंधो लक्षणा " ऐसा नहीं कहैहैं । इसरीतिसैं लक्षिता कहिये शक्यसंबंधत्वरूपस्वलक्षणवाली लक्षणालक्षित लक्षणाशब्दका अर्थहै । सो परंपरासंबंधस्थलमैं संभवैहै । यद्यपि लक्षितलक्षणाशब्दका उक्त अर्थ साक्षात्संबंधस्थलमैंभी संभवैहै । तहांभी लक्षितलक्षणा कही चाहिये । तथापि "लक्षिता लक्षणा लक्षितलक्षणा" या कहनैंका यह अभिप्रायहैः—शक्यसाक्षात्त्वविशिष्टसंबंधत्वरहिता केवल शक्यसंबंधत्वरूप लक्षणवती लक्षणा लक्षितलक्षणा यातैं केवल लक्षणाका संग्रह होवै नहीं । इसरीतिसैं कर्मधारयसमासहै ॥

शब्दकी तृतीया गौणवृत्तिका कथन ॥ १९ ॥

और कितने ग्रंथनमैं यह लिखाहैः—"सिंहो देवदत्तः" इत्यादि वाक्यनमैं सिंहादिशब्द गौणीवृत्तिसैं पुरुषादिकनके बोधकहैं। जैसैं शक्ति औ लक्षणापदकी वृत्तिहै। तैसैं तीसरी गौणीवृत्तिहै। पदके शक्यअर्थमैं जो गुण होवै तिसवाले अशक्यअर्थमैं पदकी गौणी वृत्ति कहियेहै। जैसैं सिंहपदके शक्यमैं शूरतादिक गुणहैं। तिनवाला जो सिंहशब्दका अशक्य पुरुष तामैं सिंहशब्दकी गौणी वृत्तिहै। सो पूर्वप्रकारसैं लक्षणाके अंतर्भूतहै ॥

चतुर्थीव्यंजनावृत्तिका कथन ॥ २० ॥

औ चौथी व्यंजनावृत्ति अलंकारग्रंथनमैं लिखीहै। ताका यह उदाहरणहैः—शत्रुगृहमैं भोजननिमित्त प्रवृत्तपुरुषकूं दूसरा प्रियपुरुष कहै "विषं भुंक्ष्व" तहां "विषका भोजन कर" यह शक्तिवृत्तिसैं वाक्यका अर्थहै। औ भोजनके अभावमैं वक्ताका तात्पर्यहै। सो भोजनमैं शक्तिवाले पदकी अभावमैं संबंधके अभावतैं लक्षणाभी बनै नहीं। यातैं शत्रुगृहतैं भोजननिवृत्तिवाक्यका व्यंग्य अर्थहै। व्यंजनावृत्तिसैं जो अर्थ प्रतीत होवै सो व्यंग्य अर्थ कहियेहै। अन्य उदाहरणः—संध्याकालमैं अनेक पुरुषनकूं नानाकार्यमैं प्रवृत्तिनिमित्त किसीनैं "सूर्योऽस्तंगतः" यह वाक्य उच्चारण किया। ताकूं सुनिकै नानापुरुष तिसकालमैं अपनैं अपनैं कर्त्तव्यकूं जानिकै प्रवृत्त होवैहैं। तहां अनेक पुरुषनकूं नाना कर्त्तव्यका बोध व्यंजनावृत्तिसैं होवैहै ॥ इसरीतिसैं व्यंजनावृत्तिके अनेक उदाहरण काव्यप्रकाश काव्यप्रदीप आदिक ग्रंथनमैं मम्मटगोविंदभट्ट आदिकोंनैं लिखेहैं। सो बहुत उदाहरण शृंगाररसके हैं। यातैं नहीं लिखे। न्यायग्रंथनमैं व्यंजनावृत्तिकाभी लक्षणावृत्तिसैं अंतर्भाव कहाहै। और जो अलंकारिक कहैहैंः—शक्यसंबंधी अर्थका तो लक्षणावृत्तिसैं बोध संभवैहै। औ शक्यअर्थके असंबंधी अर्थमैं लक्षणा संभवै नहीं। ताकी शब्दसैं प्रतीतिके अर्थ व्यंजनावृत्ति मानी चाहिये? ताका यह समाधानहैः—सा-

क्षात् औ परंपरा भेदतैं संबंध दो प्रकारका होवैहै । तिनमैं साक्षात् संबंध तो परस्पर किनोंकाही होवैहै । सर्वका होवै नहीं । औ परंपरासंबंध तो सर्वपदार्थनका परस्पर संभवैहै । बहुत क्या कहैं:—गोत्व अश्वत्वकाभी परस्पर व्यधिकरणता संबंधहै । घटाभाव औ घट परस्पर विरोधी हैं । तोभी घटाभावका घटमैं प्रतियोगिता संबंधहै । औ घटका अपनैं अभावमैं स्ववृत्तिप्रतियोगितानिरूपकता संबंधहै । इसरीतिसैं सर्वपदार्थनका आपसमैं परंपरासंबंध संभवैहै । यातैं व्यंग्य अर्थ भी शक्यसंबंधी होनेंतैं लक्ष्यके अंतर्भूतहै । औ व्यंजनावृत्तिका प्रतिपादन काव्यप्रकाशमैं और ताकी टीकामैं जयरामभट्टाचार्यादिकोंनैं लिखाहै । तैसैं काव्यप्रदीपमैं औ ताकी टीका उद्योतनमैं नागोजीभट्टनैं लिखाहै । ताका खंडनभी न्यायग्रंथनमैं लिखाहै । औ व्याकरणग्रंथनमैं कहूं खंडन लिखाहै । कहूं प्रतिपादन लिखाहै । अद्वैतसिद्धांतमैं खंडनका वा प्रतिपादनका आग्रह नहीं । यातैं प्रतिपादनकी रीतिमात्र जनाईहै ॥

लक्षणाके भेदका कथन ॥ २१ ॥

शक्ति औ लक्षणा दो वृत्ति सर्वके मतमैंहैं । औ महावाक्यके अर्थनिरूपणमैंभी दोकाही उपयोगहै । तिनमैं शक्तिका निरूपण किया । औ शक्यके साक्षात्संबंध औ परंपरासंबंधके भेदतैं केवल लक्षणा औ लक्षितलक्षणारूप दो भेद लक्षणाके कहे जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा भागत्यागलक्षणा । इन भेदनतैं फेरि तिनी प्रकारकी लक्षणाहै ॥

जहां शक्यकी प्रतीति नहीं होवै केवल शक्यसंबंधीकी प्रतीति होवै तहां जहल्लक्षणा होवैहै । जैसैं “ विषं भुंक्ष्व ” या स्थानमैं शक्य जो विषभोजन ताकूं त्यागिकै शक्यसंबंधी भोजननिवृत्तिकी प्रतीति होनेंतैं जहल्लक्षणाहै ॥ यद्यपि जहां शक्यअर्थका संबंध नहीं संभवै तहां जहल्लक्षणाका अंगीकार होवैहै । जैसे “ गंगायां ग्रामः ” या स्थानमैं पदनके शक्य अर्थनका परस्परसंबंध संभवै नहीं । औ “ विषं भुंक्ष्व ” या स्थानमैं शक्यअर्थका अन्वय संभवैहै । मरणका हेतुभी विषहै तौभी

भोजनमैं विषका अन्वय संभवैहै । तथापि अन्वयानुपपत्तिलक्षणामैं बीज नहीं । किंतु तात्पर्यानुपपत्तिलक्षणामैं बीजहै । यह ग्रंथनमैं लिखा है । ताका यह भावहैः—अन्वय कहिये शक्यअर्थका संबंध ताकी अनुपपत्ति कहिये असंभव जहां होवै तहां लक्षणा होवैहै । यह नियम नहीं । जो यही नियम होवै तो "यष्टीः प्रवेशय" या वाक्यमैं यष्टिपदकी यष्टिधरमैं लक्षणा नहीं होवैगी । काहेतैं:—यष्टिपदकै शक्यका प्रवेशमैं अन्वय संभवैहै । यातैं तात्पर्यानुपपत्तिलक्षणामैं बीजहै । अन्वयानुपपत्तिमैं नहीं । तात्पर्य कहिये वाक्यकर्त्ताकी इच्छा ताकी अनुपपत्ति कहिये शक्यअर्थमैं असंभवलक्षणा माननैंका बीज कहिये हेतुहैं । "यष्टीः प्रवेशय" या वाक्यमैं तात्पर्यानुपपत्तिहै । काहेतैं यष्टिका प्रवेश जो शक्यअर्थ तामैं वक्ताका तात्पर्य भोजनकै संभवै नहीं । यातैं यष्टिपदकी यष्टिधर पुरुषनमैं लक्षणाहै । तैसैं मरणहेतु विषभोजनमैं पिताका तात्पर्य संभवै नहीं । यातैं भोजननिवृत्तिमैं जहल्लक्षणाहै । "गंगायां ग्रामः" या स्थानमैं तात्पर्यानुपपत्तिभी संभवैहै । यातै जहां तात्पर्यानुपपत्ति होवै तहां लक्षणा मानियेहै । यह नियमहै । "गंगायां ग्रामः" या स्थानमैंभी गंगापदका शक्य जो देवनदीका प्रवाह ताकूं त्यागिकै शक्यसंबंधी तीरकी प्रतीति होवैहै । यातैं जहल्लक्षणाहै ॥

जहां सामान्यतीरबोधमैं वक्ताका तात्पर्य नहींहै । किंतु गंगातीरकै बोधनमैं वक्ताका तात्पर्यहै तहां गंगापदकी गंगातीरमैं अजहल्लक्षणाहै । औ अजहल्लक्षणाके असाधारण उदाहरण तो "काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" इत्यादिकहै । सहितशक्यसंबंधीकी जहां प्रतीति होवै तहां अजहल्लक्षणा होवैहै । भोजन वास्तै दधिरक्षामैं वक्ताका तात्पर्यहै । सो बिडालादिकनसैं दधिरक्षणाविना संभवै नहीं । यातैं काकपदकी दधिउपघातकमैं अजहल्लक्षणाहै । इसरीतिसैं "छत्रिणो यांति" या स्थानमैं छत्रिपदकी छत्रिसंयुक्त एक सार्थमैं अजहल्लक्षणाहै । न्यायमतमैं नीलादिकपदनकी गुणमात्रमैं शक्तिहै । "नीलोघटः" इत्यादिक वाक्यनमैं नीलरूपवालेके बोधक

नीलादिकपद लक्षणातैं हैं । तहां शक्यसहितसंबंधीकी प्रतीति होवैहै । यातैं अजहल्लक्षणाहै । औ कोशकारके मतमैं नीलादिकपद लक्षणातैं हैं । तहां शक्यसहितसंबंधीकी प्रतीति होवैहै यातैं अजहल्लक्षणाहै । औ कोशकारके मतमैं नीलादिक पदनकी गुण औ गुणीमैं शक्तिहै लक्षणा नहीं । वेदांतपरिभाषाग्रंथमैं नीलादिक पदनकी गुणीमैं अजहल्लक्षणा कही सो न्यायका मतहै ॥

औ शक्यअर्थके एक देशकूं त्यागिकै एकदेशके बोधमैं वक्ताका तात्पर्य होवै तहां **भागत्यागलक्षणा** होवैहै । जैसैं " सोयं देवदत्तः " या स्थानमैं भागत्यागलक्षणाहै । इहां परोक्ष वस्तु तत्पदका अर्थहै औ अपरोक्ष वस्तु इदंपदका अर्थहै । दकारादिवर्णविशिष्ट नामवाला पुरुषशरीर देवदत्तपदका अर्थहै । तत्पदार्थका इदंपदार्थसैं अभेद तत्पदोत्तरविभक्तिका अर्थहै । इदंपदार्थका देवदत्तपदार्थसैं अभेद इदंपदोत्तरविभक्तिका अर्थहै । अथवा तत्पद औ इदंपदसैं उत्तरविभक्ति निरर्थकहैं । समानविभक्तिवाले पदनके सन्निधानतैं पदार्थनका अभेद प्रतीत होवैहै । यातैं परोक्ष वस्तुसैं अभिन्न अपरोक्ष वस्तुस्वरूप देवदत्तनामवाला शरीरहै । यह वाक्यके पदनका शक्य अर्थहै । सो उष्ण शीतलहै । याकी नांई बाधितहै । बाधित अर्थमैं वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं । यातैं तत्पद इदंपदके शक्यमैं परोक्षता अपरोक्षता भागकूं त्यागिकै वस्तुभागमैं लक्षणा होनेतैं भागलक्षणाहै ॥

इसरीतिसैं तीनिभांतिकी लक्षणा **प्रयोजनवतीलक्षणा** औ **निरूढलक्षणा** भेदतैं दो प्रकारकीहै:--जहां शक्तिवाले पदकूं त्यागिकै लाक्षणिक शब्दप्रयोगमैं प्रयोजन कहिये फल होवै सो **प्रयोजनवतीलक्षणा** कहियेहै । जैसैं गंगापदकी तीरमें प्रयोजनवतीलक्षणाहै। "तीरेग्रामः" ऐसा कहैं तौ तीरमैं शीतपावनतादिकनकी प्रतीति होवै नहीं । गंगापदसैं तीरका बोधन करे । गंगाके धर्म शीतपावनादिक तीरमैं प्रतीत होवैहैं । इसी वास्तै व्यंजनावृत्तिकूं आलंकारिक मानैंहैं । न्यायमतमैं शीतपावनादिक शाब्दबोधके विषय नहीं । किंतु अनुमितिके विषयहैं । तथा हि "गंगातीरं शीत-

पावनत्वादिमत् गंगापदबोध्यत्वात् गंगावत्" यह अनुमानहै सर्वथा प्रयोजनवतीलक्षणा है ॥

औ पदकी जिस अर्थमैं शक्तिवृत्ति होवै नहीं औ शक्यकी नांई जिस अर्थकी प्रतीति जिस पदसैं सर्वकूं प्रसिद्ध होवै तिस अर्थमैं ता पदकी प्रयोजनशून्यलक्षणा निरूढलक्षणा कहियेहै। जैसैं नीलादिक पदनकी कोशरीतिसैं गुणगुणीमैं शक्ति मानैं तो गौरव दोषहै। औ शक्यतावच्छेदक एकएक धर्मका लाभ होवै नहीं। यातैं गुणमात्रमैं शक्तिहै औ नीलो घटः इत्यादिक वाक्यनकूं सुनतेही सर्व पुरुषनकूं गुणीकी प्रतीति अति प्रसिद्धहै यातैं नीलादिक पदनकी गुणीमैं प्रयोजनशून्यलक्षणा होनेतैं निरूढलक्षणाहै। निरूढलक्षणा शक्तिकै सदृश होवैहै। कोई विलक्षण अनादि तात्पर्य होवै तहां निरूढलक्षणा होवैहै ॥

औ जहां प्रयोजन औ अनादि तात्पर्य दोनूं होवैं नहीं। किंतु ग्रंथकार अपनैं इच्छातैं लाक्षणिक शब्दका प्रयोग विना प्रयोजन करैहैं। तहां तीसरी ऐच्छिकलक्षणा होवैहै। परंतु अनादितात्पर्य औ प्रयोजन विना लाक्षणिक शब्दकै प्रयोगकूं विद्वान् समीचीन नहीं कहैहैं। इसीकारणतैं काव्यप्रकाशादिक साहित्यग्रंथनमैं निरूढलक्षणा औ प्रयोजनवतीलक्षणाके भेद उदाहरणसहित लिखेहैं। ऐच्छिक लक्षणा लिखी नहीं। गदाधरभट्टाचार्यादिकोंनैं ऐच्छिकलक्षणा लिखीहै। तिनका तात्पर्य ऐच्छिक लक्षणाकी संभावनामैंहै। औ "ऐच्छिकलक्षणावाले पदका प्रयोग साधूहै" इस अर्थमैं तात्पर्य नहीं। लक्षणाके अवांतर भेद मम्मटआदिकोंनैं और बहुत लिखेहैं। तथापि वेदांतग्रंथनमैं कहूं लिखे नहीं। यातैं जिज्ञासूकूं तिनकै लिखनेका उपयोग नहीं ॥

शाब्दबोधकी हेतुताका विचार ॥ २२ ॥

जैसैं शक्यतावच्छेदकमैं शक्तिहै। तैसैं लक्ष्यतावच्छेदक तीरत्वादिकनमैं गंगादिक पदनकी लक्षणा नहीं। किंतु व्यक्तिमात्रमैं लक्षणावृत्ति होवैहै। औ पदकी वृत्तिविना लक्ष्यतावच्छेदककी स्मृति औ

शाब्दबोध होवैहै । यह वार्ता शब्दार्थनिर्णयके ग्रंथनमैं प्रतिपादन करीहै औ मीमांसाकै मतमैं लाक्षणिक शब्दसैं लक्ष्य अर्थकी स्मृति तो होवैहै औ लक्ष्य अर्थकै शाब्दबोधका हेतु लाक्षणिकपद नहीं । किंतु लाक्षणिक पदकै समीप जो पदोत्तर सो अपने शक्य अर्थकै शाब्दबोधका औ लक्ष्य अर्थकै शाब्दबोधका हेतु होवैहै । जैसैं " गंगायां ग्रामः " या वाक्यमैं गंगापद तीरमैं लाक्षणिकहै । सो तीरकी स्मृतिका हेतुहै । औ तीरविषै शाब्दबोधका हेतु नहीं । किंतु तीरविषै शाब्दबोधका हेतु औ अपनैं शक्यविषैं शाब्दबोधका हेतु " ग्राम " पदहै । या मतकी साधक यह युक्तिहैः—लाक्षणिक शब्दकूं शाब्दबोधकी जनकता मानैं तौ सकल शब्द बोधकी जनकताका अवच्छेदक धर्मका लाभ नहीं होवैगा । काहेतें मीमांसाकै मतमैं तो शाब्दबोधकी जनकता लाक्षणिक पदमैं है नहीं । किंतु शक्तपदमैं है । यातैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्तिहै । औ लाक्षणिक पदकूंभी शाब्दबोधकी जनकता मानैं तौ ता जनकतासैं शक्ति-न्यूनवृत्ति होनेतैं ताका अवच्छेदक नहीं होवैगा । जो न्यूनदेशवृत्ति औ अधिकदेशवृत्ति न होवै । किंतु जाकै समानदेशवृत्ति जो होवै ताका अ-वच्छेदक सो होवैहै । शाब्दबोधकी जनकता सकल शक्तपदमैं रहैहै । ताकै समानदेशमैं शक्ति रहैहै । यातैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेद-क शक्ति संभवैहै । लाक्षणिक पदमैंभी शाब्दबोधकी जनकता मानैं तौ लाक्षणिकपदमैं शक्ति है नहीं शाब्दबोधकी जनकताहै । यातैं न्यूनदेशवृ-त्ति होनैतैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति तो संभवै नहीं औ शक्त लाक्षणिक सारे पदनमैं रहनैवाला एक धर्म है नहीं यातैं शाब्दबो-धकी जनकता निरवच्छेदक होवैगी । सो निरवच्छेदक जनकता अलीक है । दंडकुलालादिकनमैं घटादिकनकी जनकताके अवच्छेदक दंडत्व कु-लालत्वादिकहै यातैं निरवच्छेदक जनकता अप्रसिद्धहैं । इसरीतिसैं लाक्ष-णिकपदकूं शाब्दबोधकी जनकता नहीं । यह मीमांसाका मतहै । औ अद्वैतवादका अतिविरोधीहै । काहेतैं महावाक्यनमैं सकलपद लाक्षणि-

कहैं । तिनतैं शाब्दबोधकी अनुपपत्ति होवैगी । यातैं इस मतका खंडन अवश्य कर्तव्य है तामैं यह दोषहैः—“गंगायां ग्रामः” या वाक्यमैं ग्रामपदसैं तीरविषै शाब्दबोध मानै तौ ग्रामपदकी तीरमैंभी शक्ति हुई चाहिये । काहेतैं । जो पद लक्षणाविना जिस अर्थविषै शाब्दबोधका जनक होवै तिसपदकी ता अर्थविषै शक्तिहै । यह नियमहै । मीमांसकमतमैं ग्रामपद लक्षणाविना तीरविषै शाब्दबोधका जनक होनेतैं तीरमैं शक्ति हुआ चाहिये । औ यह नियमहैः—जा पदमैं जिस अर्थकी वृत्ति होवै । ता पदसैं तिस अर्थविषै स्मृति होवैहै । औ तिस अर्थविषैही ता पदसैं शाब्दबोध होवैहै । मीमांसक मतमैं या नियमका भंग होवैगा । काहेतैं मीमांसक मतमैं लक्षणावृत्ति तो तीरमैं गंगापदकी औ तीरकी स्मृतिभी गंगापदसैं और तीरविषै शाब्दबोध गंगापदसैं नहीं । किंतु शाब्दबोध तीरका ग्रामपदसैं होवैहै । ता ग्रामपदकी तीरमैं शक्ति वा लक्षणावृत्ति नहीं औ ग्रामपदसैं तीरकी स्मृतिभी नहीं । यातैं यह मत बुद्धिमानोंकूं हसनैं योग्यहै । औ ग्रामपदतैं तीरका शाब्दबोध मानै ग्रामविषै शाब्दबोध नहीं होवैगा । काहेतैं जहां हरिआदिक एक पदकी अनेक अर्थनमैं शक्तिहै। तहांभी एक कालमैं एक पुरुषकूं हरिपदसैं एकही अर्थका बोध होवैहै । जो अनेक पदार्थनका एक पदसैं बोध होवै तौ हरि या कहनेतैं वानरकै ऊपरि सूर्यहै । इसरीतिसैं शाब्दबोध हुआ चाहिये । जैसैं एक ग्रामपदतैं परस्पर संबंधी ग्राम तीरका शाब्दबोध होवैहै । तैसैं एक हरिपदतैं परस्परसंबंधी वानर सूर्यका शाब्दबोध हुवा चाहिये । जो ऐसैं कहैः—एक पदतैं दो शक्यका शाब्दबोध होवै नहीं। तो एक पदतैं अपनै शक्यकै साथि अपनैं अशक्य अलक्ष्यकै संबंधका तो शाब्दबोध अत्यंत दूरहै । यातैं “ लाक्षणिकं नानुभावके ” यह मीमांसाका वचन असंगतहै । औ जो लाक्षणिक शब्दकूं शब्दानुभवकी जनकतामैं दोष कहा शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक नहीं मिलैगा ताका यह समाधानहैः—शब्दमैं शक्ति औ लक्षणाके भेदतैं दो प्रकारकी वृत्ति है । कहूं अर्थकी शक्तिवृत्तिहै

कहूं अर्थकी लक्षणावृत्तिहै । शाब्दबोधकी जनकता शब्दमात्रमैंहै । औ वृत्तिभी शब्दमात्रमैंहै । यातैं तिस जनकताकैं समान देशमैं रहनैतैं ताका अवच्छेदक वृत्तिहै । अथवा शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक योग्य शब्दत्वहै इसरीतिसैं लाक्षणिक पदसैंभी शाब्दबोध होवैहै ॥

महावाक्यमें लक्षणाका उपयोग औ तामें शंकासमाधान ॥ २३ ॥

महावाक्यनमैं जहल्लक्षणा औ अजहल्लक्षणा नहीं । किंतु भागत्यागलक्षणाहै । ताकी रीति विचारसागरमैं लिखीहै सो भागत्यागलक्षणा महावाक्यनमैं लक्षितलक्षणा नहीं । किंतु केवल लक्षणाहै । काहेतैं लक्ष्यचेतनतैं वाच्यका साक्षात्संबंधहै परंपरा नहीं । जहां भागत्यागलक्षणा होवै तहां वाच्यका एक देश लक्ष्य होवैहै । ता वाच्यके एकदेशतैं वाच्यका साक्षात्संबंध होवैहै । यातैं केवललक्षणा होवैहै । औ महावाक्यतैं जिज्ञासूकूं अखंड ब्रह्मका बोध होवै । ऐसा ईश्वरका अनादि तात्पर्यहै । यातैं निरूढलक्षणाहै प्रयोजनवती नहीं । इहां ऐसी शंका होवैहैः—वाच्य अर्थका लक्ष्य चेतनसैं संबंध मानैं तो लक्ष्य अर्थमैं असंगताकी हानि होवैगी । संबंध नहीं मानैं तो लक्षणा बनै नहीं । काहेतैं शक्यसंबंध अथवा बोध्यसंबंधकूं लक्षणा कहेहैं । सो असंगमैं संभवै नहीं । ताका यह समाधानहैः—वाच्य अर्थमैं चेतन औ जड दोभागहैं । ताका चेतनभागका लक्ष्यअर्थमैं तादात्म्यसंबंधहै । सकल पदार्थनका स्वरूपमैं तादात्म्यसंबंध होवैहै । वाच्य भागचेतनका स्वरूपही लक्ष्य चेतन है । यातैं वाच्यमैं चेतनाभागका लक्ष्यचेतनमैं तादात्म्यसंबंधहै । औ वाच्यमैं जडभागका लक्ष्यचेतनसैं अधिष्ठानता संबंधहै कल्पितके संबंधतैं अधिष्ठानका स्वभाव विगरैनहीं । औ अपनैं तादात्म्यसंबंधसैं भी स्वभावकी हानि होवै नहीं । यातैं लक्ष्य अर्थकी असंगता विगरै नहीं । अन्यशंकाः--तत्पदकी अखंड चेतनमैं लक्षणा मानैं औ त्वंपदकीभी अखंड चेतनमैं लक्षणा मानैं तो पुनरुक्तिदोष होनेतैं " घटोघटः " इस वाक्यकी नांई अप्रमाणवाक्य

होवैगा। दोनूं पदनका लक्ष्यअर्थ जुदा मानै तौ अभेदबोधकता नहीं हो वैगी? ताका यह समाधानहैः--मायाविशिष्ट औ अंतःकरणविशिष्ट तो तत्पद औ त्वंपदका शक्यहै। उपहित लक्ष्यहै। जो ब्रह्मचेतन दोनूं पदनका लक्ष्य होवै तौ पुनरुक्ति दोष होवै सो ब्रह्मचेतनलक्ष्य नहीं किंतु मायाउपहित औ अंतःकरणउपहित लक्ष्यहै सो उपाधिके भेदतैं भिन्नहै पुनरुक्ति नहीं। औ उपहित दोनूं परमार्थसैं अभिन्नहैं। यातैं अभेद बोधकता वाक्यकूं संभवैहै। इसरीतिसैं तत्पदार्थ औ त्वंपदार्थका उद्देश्य विधेयभाव मानिकै अभेदबोधकता निर्दोषहै। तत्पदार्थमैं परोक्षताभ्रम निवृत्तिकै अर्थ तत्पदार्थकूं उद्देश करिकै त्वंपदार्थता विधेयहै त्वंपदार्थमैं परिछिन्नताभ्रमनिवृत्तिकै अर्थ त्वंपदार्थकूं उद्देशकरिकै तत्पदार्थता विधेयहै। औ पुनरुक्तिके परिहारवास्तै कोई ग्रंथकारका यह तात्पर्यहै जो दोपदनकूं भिन्न भिन्न लक्षकता मानै तौ पुनरुक्तिकी शंका होवै सो भिन्न भिन्न लक्षकता नहीं। किंतु मीमांसकरीतिसैं दोनूं पद मिलिकै अखंडब्रह्मके लक्षकहै। इसीवास्तै प्राचीन आचार्योंनैं महावाक्यनकूं प्रतिपादकार्थमात्रकी बोधकता कहीहै। यद्यपि उद्देश्यविधेयभावशून्य अर्थका बोधक वाक्य लोकमैं अप्रसिद्धहै। तथापि अलौकिक अर्थ महावाक्यका है। यातैं अप्रसिद्धि दोष नहीं किंतु भूषणहै। जो अप्रसिद्ध होवै तो असंगि अर्थकी बोधकताभी वाक्यकूं लोकमैं अप्रसिद्धहै यातैं असंगि ब्रह्मकी बोधकताभी महावाक्यनकूं नहीं होवैगी। जैसैं लोकमैं अप्रसिद्ध असंगिब्रह्मकी बोधकता मानियेहै। तैसैं उद्देश्यविधेय भावशून्य अखंड अर्थकी बोधकता संभवैहै। इसरीतिसैं लक्षणाके प्रसंगमैं बहुत विचार प्राचीन आचार्योंनैं लिखाहै॥

लक्षणा विना शक्तिवृत्तिसै महावाक्यकूं अद्वैत ब्रह्मकी बोधकता॥ २४॥

कोई आधुनिक ग्रंथकार लक्षणा विना शक्तिवृत्तिसैंहीं महावाक्यनकूं अद्वितीय ब्रह्मकी बोधकता मानैंहैं तिनोंनैं यह प्रकार लिखाहैः--विशिष्ट-

वाचकपदके अर्थका अन्यपदके विशिष्ट अर्थसैं जहां संबंध नहीं संभवै तहां पदकी शक्तिसैंही विशेषणकूं त्यागिकै विशेष्यकी प्रतीति होवैहै । जैसैं "अनित्यो घटः" या वाक्यमैं घटत्वविशिष्ट व्यक्तिका वाचक घटपदहै ताका अनित्यत्वविशिष्ट अनित्यपदार्थसैं अभेदसंबंध बोधन करियेहै । औ घटत्वजाति नित्यहै । यातैं घटत्वविशिष्टका अनित्य पदार्थसैं अभेद बाधित होनेतैं ताका अनित्यपदार्थसैं अभेदसंबंध संभवै नहीं तहां घटत्वरूप विशेषणकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्रकी घटपदसैं स्मृति औ अनित्य पदार्थसैं संबंधबोधरूप शाब्दबोध होवैहै । तैसैं "गेहे घटः" या वाक्यमैं घटत्वरूप विशेषणकूं त्यागिकै विशेष्य व्यक्तिमात्रकी घटपदसैं स्मृति औ शाब्दबोध होवैहै । तैसैं "घटेरूपं" या वाक्यमैं भी घटत्वकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्रकी प्रतीति होवैहै । काहेतैं "गेहे घटः" या वाक्यतैं गेहकी आधेयता घटपदार्थमैं प्रतीत होवैहै । औ घटत्व जातिमैं अपना आश्रय व्यक्तिकी आधेयता होवैहै । गेहकी आधेयता बाधितहै यातैं घटत्वकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्रमैं गेहकी आधेयताका संबंध बोधन करियेहै । तैसैं । गेहपदार्थमैं गेहत्वका त्याग होवैहै । "घटे रूपम्" या वाक्यमैं भी घटत्वकूं त्यागिकै द्रव्यस्वरूप व्यक्तिमात्रमैं अधिकरणता औ रूपत्वकूं त्यागिकै गुणमात्रमैं आधेयता प्रतीत होवैहै । काहेतैं । घटपदार्थकी आधेयतावाला रूपपदार्थहै यह वाक्यका अर्थहै । तहां घटत्वकी आधेयता किसीमैं है नहीं । यातै घटत्वकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्र घटपदका अर्थहै ताकी आधेयता रूपत्वजातिमैं नहीं । किंतु रूपव्यक्तिकी आधेयता रूपत्वमैंहैं । यातैं रूपपदार्थमैं रूपत्वका त्यागहै तैसैं । "उत्पन्नोघटः" "नष्टोघटः" इत्यादिक वाक्यनमैं जातिरूप विशेषणकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्र घटादिक पदनका अर्थहै । काहेतैं जाति नित्यहै ताके उत्पत्तिनाश बनै नहीं। जैसैं पूर्व वाक्यनमैं विशिष्ट वाचक पदनमैं शक्तिबलतैंही विशेष्यमात्रका बोध होवैहै। तैसैं महावाक्यनमैं भी विशिष्टवाचक पदनकी शक्तिबलतैंही माया अंतःक-

रणरूप विशेषणकूं त्यागिकै चेतनरूप विशेष्यमात्रकी प्रतीति संभवैहै। लक्षणाका अंगीकार निष्फलहै। परंतु इतना भेदहैः—विशिष्टवाचकपदकै वाच्यका एकदेश विशेष्य होवैहै औ एकदेश विशेषण होवैहै जाति विशेषण होवैहै व्यक्ति विशेष्य होवैहै। तिनमें विशेष्य भागका बोध तो शक्तिसैं होवैहै औ केवल विशेषणका बोध होवै नहीं जो वाच्यकै विशेषणमात्रकाभी विशिष्टवाचकके शब्दकी शक्तिसैं बोध होवै तौ "अनित्यो घटः" या वाक्यकी नांई "नित्यो घटः" यह वाक्यभी घटपदसैं जातिमात्रका बोध करिकै साधु हुआ चाहिये। यातैं विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यमात्रकी प्रतीति होवैहै। "सोयं देवदत्तः" या वाक्यमैंभी परोक्षत्व अपरोक्षत्व विशेषणकूं त्यागिकै विशेष्यमात्रकी प्रतीति शक्तिवृत्तिसैंही होवैहै। भागत्याग लक्षणाका कोई उदाहरण है नहीं। यातैं जहति लक्षणा अजहति लक्षणा भेदतैं दोप्रकारकी लक्षणा मानी चाहिये। भागत्याग लक्षणा अलीकहै औ वेदांतपरिभाषामैं धर्मराजनैं पूर्वप्रकारसैं महावाक्यनमैं लक्षणाका खंडन करिकै भागत्यागलक्षणाका स्वरूप औ उदाहरण इस रीतिसैं कहेहैंः— सांप्रदायिक रीतिसैं वाच्यकै एकदेशमैं वृत्ति भागलक्षणाका स्वरूपहै। या मतमैं वाच्यकै एकदेशमैं वृत्तिशक्तिकाही स्वरूपहै सो भागलक्षणाका स्वरूप नहीं। किंतु शक्य औ अशक्यमैं जो वृत्ति सो भागत्यागलक्षणा कहियेहै। यद्यपि अजहल्लक्षणाभी शक्य अशक्यमैं वृत्तिहै। तथापि जहां शक्य अर्थका विशेषणतासैं बोध औ अशक्यका विशेष्यतासैं बोध होवै तहां अजहल्लक्षणा कहियेहै। जैसैं। "नीलो घटः" या वाक्यमैं नीलपदका शक्यरूप है। ताका विशेषणतासैं बोध होवैहै औ नीलरूपका आश्रय द्रव्य अशक्यहै। ताका विशेष्यतासैं बोध होवैहै। यातैं नीलपदकी नीलरूपके आश्रयमैं अजहल्लक्षणाहै ऐसैं "मंचाः क्रोशंति" या वाक्यमैं मंचपदका शक्य विशेषणहै अशक्यपुरुष विशेष्यहै। यातैं अजहल्लक्षणाहै। औ जहां शक्य अशक्य दोनूं विशेष्य होवै औ अशक्यतावच्छेदकसैं व्याप-

क लक्ष्यतावच्छेदक धर्मविशेषण होवै तहां भागत्यागलक्षणा कहियेहै । जैसैं "काकेभ्यो दधिरक्ष्यताम्" या वाक्यमैं काकपदका शक्य वायस औ अशक्य बिडालादिक विशेष्यहैं । औ शक्यतावच्छेदक काकत्वका व्यापक दध्युपघातकत्वलक्ष्यतावच्छेदक विशेषणहै । काहेतैं दधिके उपघातक काक बिडालादिकनतैं दधिकी रक्षा कर । यह वाक्यका अर्थहै। तहां काकत्वविशिष्टव्यक्ति काकपदका शक्यहै तामैं काकत्वका त्याग करिकै दध्युपघातकत्वविशिष्ट काकबिडालादिकनका लक्षणासैं बोध होनेतैं काकपदकै वाच्यके एक भाग काकत्वका त्याग होवैहै । व्यक्तिभागका बोध होवैहै । तैसैं बिडालत्वादिकनका त्याग व्यक्तिका बोध होवैहै यातैं भागत्यागलक्षणाहै तैसैं "छत्रिणो यांति" या वाक्यमैंभी भागत्यागलक्षणाहै । काहेतैं छत्रसहित औ छत्ररहित एकसाथवाले पुरुष जावैहै । यह वाक्यका अर्थहै। तहां छत्रिपदका शक्य छत्रसहित अशक्य छत्ररहित दोनूं विशेष्यहैं । औ शक्यतावच्छेदक छत्रिताका व्यापक एकसार्थवाहिता लक्ष्यतावच्छेदक विशेषणहै। या स्थानमैंभी छत्रके संबंधविशिष्ट जो छत्रीपदका शक्यतामैं छत्रसंबंधरूप शक्यतावछेदककूं त्यागिकै एकसार्थवाहित्वविशिष्ट छत्री तदन्यका लक्षणासैं बोध होनेतैं वाच्यके एक भाग छत्रसंबंधकूं त्याग करिकै एक भाग पुरुषका बोध होवैहै । यातैं भागत्यागलक्षणाहै। इसरीतिसैं वेदांतपरिभाषामैं भागत्यागलक्षणाके उदाहरण कहेहैं । सो सांप्रदायिक मतमैं सारे अजहल्लक्षणाके उदाहरणहैं । कहूं अजहल्लक्षणाके उदाहरणमैं शक्य अर्थ विशेषणहै कहूं विशेष्यहै शक्यसहित अशक्यकी प्रतीति समानहै । किंचित् भेदकूं देखिकै लक्षणाका भेद मानना निष्फलहै । सर्व आचार्योंनैं अजहल्लक्षणाके जो उदाहरण कहे तिनकूं भागत्यागलक्षणाके उदाहरण कहनैका आचार्योंके वचनतैं विरोधही फलहै । औ शक्य अर्थकी विशेषणता औ विशेष्यतासैं अजहल्लक्षणा औ भागत्यागलक्षणाका भेद मानै तौ जहां शक्य अर्थकी विशेषणता तहां भागत्यागलक्षणा औ जहां शक्य अशक्य

दोनूंकी विशेष्यता तहां अजहल्लक्षणा इसरीतिसैं विपरीत मानै तो कोई बाधक नहीं । यातैं महावाक्यनमैं औ 'सोयं देवदत्तः' या वाक्यमैं लक्षणाका निषेध करिकै भागत्यागलक्षणाका स्वरूप औ उदाहरण कथन धर्मराजका निष्फलहै । औ महावाक्यनमैं लक्षणाविना जो निर्वाह कहा सोभी असंगतहै । काहेतैं घटादिक पदनकी जातिविशिष्टमैं शक्ति मानिकै लक्षणाविना केवल व्यक्तिका पदतैं बोधकथन निर्युक्तिकहै । केवल व्यक्तिमैं शक्ति मानैं औ जातिविशिष्ट व्यक्तिमैं नहीं मानैं तौ केवल व्यक्तिका बोध घटादिक पदनतैं संभवैहै सो मानी नहीं किंतु विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यमात्रका बोध होवैहै यह धर्मराजनै लिखाहै । सो शक्तिवादादिक ग्रंथनमैं निपुणमति पंडितकूं आश्चर्यका जनकहै । शक्तिवादमैं यह प्रसंग स्पष्टहै । कोई शब्द एकधर्मविशिष्ट धर्मीका वाचकहै । कोई शब्द अनेकधर्मविशिष्ट धर्मीका वाचकहै । कोई शब्द अनेकधर्मविशिष्ट अनेक धर्मीका वाचकहै । जिस पदकी जा अर्थमैं शक्तिहै सो पद ता अर्थका वाचक कहियेहै । जैसैं घटपदकी घटत्वरूप एकधर्मविशिष्ट धर्मीमैं औ गोपदकी गोत्वरूप एकधर्मविशिष्ट धर्मीमैं शक्तिहै सो तिनके वाचकहैं औ धेनुपदकी प्रसव औ गोत्वरूप अनेकधर्मविशिष्ट एकधर्मीमैं शक्तिहै सो ताका वाचकहै । पुष्पवंतपदकी चंद्रत्व सूर्यत्वरूप अनेकधर्मविशिष्ट अनेक धर्मी चंद्र सूर्यमैं शक्तिहै सो पुष्पवंतपद चंद्रसूर्य दोनूंका वाचकहै । जिस धर्मविशिष्टमैं शक्तिहै ता धर्मकूं त्यागिकै केवल आश्रयका बोध लक्षणातैं होवैहै । लक्षणाविना होवै नहीं । यातैं घटादिक पदनतैं केवल व्यक्तिका बोध लक्षणातैं होवैहै औ अनेकधर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक जो धेनु पदहै तासैं एक धर्मकूं त्यागिकै एकधर्मविशिष्ट धर्मीका बोध लक्षणाविना होवैहै नहीं । यातैं धेनुपदतैं अप्रसूत गोका वा प्रसूत महिषीका शक्तिसैं बोध होवै नहीं औ कहूं गोमात्रका बोध धेनुपदसैं होवैहै । सो भागत्यागलक्षणातैं होवैहै । शक्तिसैं नहीं । तैसैं पुष्पवंतपदसैं चन्द्रकूं त्यागिकै सूर्यका औ सूर्यकूं त्यागिकै चन्द्रका बोध शक्तिसैं होवै नहीं।इसरीतिसैं शक्ति-

वादमैं लिखाहै। सोई संभवैहै। शक्ति तो विशिष्टमैं औ शक्तिसैं बोध विशेष्यका यह कथन सर्वथा निर्युक्तिकहै। जिस धर्मवाले अर्थमैं पदकी शक्ति होवै उसतैं न्यून वा अधिक अर्थ लक्षणातैं प्रतीत होवैहै। शक्तिसैं उस धर्मवाले अर्थकीही प्रतीति होवैहै। यह नियमहै। जो ऐसैं कहै व्यक्तिमात्रमैं शक्तिहै विशिष्टमैं नहीं। यह धर्मराजका अभिप्रायहै। सो बनै नहीं:—काहेतैं विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यका बोध होवैहै यह धर्मराजनैं कहाहै। जो व्यक्तिमात्रमैं शक्ति वांछित होती तो व्यक्तिमात्रमैं पदकी शक्तिसैं ताका बोध होवैहै ऐसा कहते। विशिष्टवाचक पद नहीं कहते। औ व्यक्तिमात्रमैं शक्ति किसीके मतमैंहै नहीं। सर्वमतसैं विरुद्धहै। यद्यपि शिरोमणिभट्टाचार्यनैं व्यक्तिमात्रमैं शक्ति मानीहै तथापि पदसैं अर्थकी स्मृति औ शाब्दबोध जातिविशिष्टका ताकै मतमैं होवैहै। व्यक्तिमात्रका शाब्दबोध शक्तिसैं किसीकै मतमैं होवै नहीं। और जो ऐसैं कहैं घटादिक पदनकी जातिविशिष्टमैं शक्तिहै। औ केवल व्यक्तिमैं शक्तिहै। कहूं जातिविशिष्टका बोध होवैहै, कहूं केवल व्यक्तिका बोध होवैहै। जैसैं हरिपद नानार्थहै तैसैं सकल पद नानार्थहैं। यह अर्थ अत्यंत अशुद्धहै। औ ताके ग्रंथनमैं यह अर्थहै नहीं। अशुद्धतामैं यह हेतुहै:—लक्षणातैं जहां निर्वाह होवै। तहां नाना अर्थमैं शक्तिकूं त्यागैहै एक अर्थमैं शक्ति औ दूसरेमैं लक्षणा मानैंहै। धर्मराजनैंही लिखाहै:—नीलादिक शब्दनकी गुणमैं शक्तिहै औ गुणीमैं लक्षणाहै। दोनूंमैं शक्ति नहीं कही। यातैं लक्षणाके भयतैं नानार्थताका अंगीकार नहीं। किंतु नानार्थताके भयतैं लक्षणाका अंगीकारहै यातैं विशिष्टमैं शक्तिहै औ व्यक्तिमात्रमैं शक्तिहै। इस अशुद्ध अर्थमैं धर्मराजका तात्पर्य नहीं। किंतु विशिष्टमैं सकल पदनकी शक्तिहै ता विशिष्टमैं शक्तिके माहात्म्यतैं कहूं विशिष्टका अन्यपदार्थसैं अन्वय होवैहै कहूं विशेष्यका अन्य पदार्थसैं अन्वय होवैहै। जहां विशिष्टमैं अन्वयकी योग्यता होवै तहां विशिष्टका औ जहां विशिष्टमैं अन्वयकी योग्यता नहीं तहां विशेष्यमात्रका शक्तिसैं अन्वयबोध होवैहै यह धर्मराजका मतहै सो असंगतहै।

काहेतैं शक्तिविशिष्टमैं औ लक्षणाविना अन्वयबोध व्यक्तिमात्रका मानैं तौ धेनुपदतैंभी अप्रसूत गौकी अथवा प्रसूत महिषीकी लक्षणाविना प्रतीति हुई चाहिये औ पुष्पवंतपदसैं लक्षणाविना एक सूर्यका अथवा एक चंद्रका बोध हुवा चाहिये औ होवैनहीं। यातैं 'अनित्यो घटः' इत्यादिक वाक्यनमैं घटादिपदनकी व्यक्तिमात्रमैं भागत्यागलक्षणाहै। जो ऐसैं कहै बहुत प्रयोगनमैं व्यक्तिमात्रका बोध होनेतैं शक्तिसैंही बोध होवैहै ताका यह समाधानहैः—प्रयोगबाहुल्यतैं अर्थमैं शक्यता मानै तो नीलादिपदनका प्रयोगबाहुल्य गुणीमैंहैं। सोभी शक्य हुवा चाहिये। औ नीलादिपदनका गुणी शक्य नहीं किंतु लक्ष्यहै यह धर्मराजनैं औ वेदांतचूडामणिटीकामैं ताके पुत्रनैं लिखाहै। यातैं जहां विशिष्टवाचकपदतैं विशेष्यमात्रका बोध होवै तहां सारे भागत्यागलक्षणाहै। परंतु सो निरूढलक्षणाहै। निरूढलक्षणाका शक्तिसैं ईषत्‌ही भेद होवैहै। ताका प्रयोगबाहुल्य होवैहै। जिस अर्थमैं शब्दप्रयोगका बाहुल्य होवै तिस अर्थमैं सारे शक्ति मानै तौ जातिशक्तिवादमैं व्यक्तिका बोध सारै लक्षणातैं होवैहै। सो असंगत होवैगा। औ न्यायमतमैं राजपुरुष इत्यादिक वाक्यनमैं राजपदकी राजसंबंधीमैं सारै लक्षणाहै सो असंगत होवैगी। इसरीतिसैं विशिष्टवाचकपदतैं विशेष्यमात्रका बोध लक्षणाविना होवै नहीं। यातैं महावाक्यनमैं लक्षणाहै। यह सांप्रदायिक मतही जिज्ञासूकूं उपादेयहै। वेदांतवाक्यनतैं असंग ब्रह्मका आत्मरूप करिकै साक्षात्कार होवैहै। तासैं प्रवृत्तिनिवृत्तिशून्य ब्रह्मरूपतैं स्थितिफल होवैहै यह अद्वैतवादका सिद्धांतहै॥

मीमांसाका मत ॥ २८ ॥

तामैं मीमांसाकै अनुसारीकी यह शंकाहैः—सकल वेद प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका बोधकहै प्रवृत्तिनिवृत्तिरहित अर्थकूं वेद बोधन करै नहीं। और जो बोधन करै तो निष्फल अर्थका बोधक वेद अप्रमाण होवैगा यातैं विधिनिषेधशून्य वेदांतवाक्यनका विधिवाक्यनसैं संबंध होनेतैं विधिवा-

क्यनके वेदांतवाक्य शेषहैं । कोई वाक्य कर्मकर्ताके स्वरूपके बोधकहैं । जैसें त्वंपदार्थके बोधक पंचकोशवाक्यहैं । कोई वाक्य कर्मशेषदेवताके स्वरूपके बोधकहैं सो तत्पदार्थबोधक वाक्यहैं जीवब्रह्मका अभेदबोधक वाक्यनका यह अर्थहैः—कर्मकर्त्ता जीव देवभावकूं प्राप्त होवैहै । यातें कर्म अवश्य कर्तव्यहै । इसरीतिसैं कर्मकै फलकी स्तुति करनैंतें अभेदबोधक वाक्य अर्थवादरूपहैं । यद्यपि मीमांसामतमैं मंत्रमयी देवताहै । विग्रहवान् ऐश्वर्यवाला कोई देवहै नहीं । यातें देवभावकी प्राप्ति कहना संभवै नहीं । तथापि संभावनामात्रसैं कर्मफलकी स्तुतिहै । जैसें कृष्णप्रभाकी उपमा कोटिसूर्यप्रभा कहीहै तहां कोटिसूर्यप्रभा अलीक पदार्थहै तौभी संभावनासैं उपमा कहीहै । जो कोटिसूर्यकी प्रभा एकत्र होवै तौ कृष्णप्रभाकी उपमा संभवै इसरीतिसैं सर्वज्ञतादिकगुणविशिष्ट परमऐश्वर्यवाला कोई अद्भुत देव होवै तौ ऐसा स्वरूप कर्मकर्ताका होवैहै । इसरीतिसैं संभावनातैं देवभावकी प्राप्ति कहीहै । इसरीतिसैं साक्षात् वा परंपरातैं प्रवृत्तिनिवृत्तिके बोधक सकल वेदहैं । प्रवृत्तिमैं अनुपयोगी ब्रह्मबोध वेदवाक्यनतैं संभवै नहीं ॥

प्राचीनवृत्तिकारका मत ॥ २६ ॥

औ प्राचीनवृत्तिकार वेदांती कहावैहैं तिनका यह मतः—कर्मविधिके प्रकरणमैं वेदांतवाक्य नहीं । यातैं भिन्नप्रकरणमैं पठित वेदांतवाक्य कर्मविधिके शेष नहीं । किंतु उपासनाविधि वेदांतप्रकरणमैं है । यातैं सकल वेदांतवाक्य उपासनाविधिके शेषहैं । त्वंपदार्थके बोधकवाक्य उपासककै स्वरूपकूं बोधन करैहैं । तत्पदार्थबोधक वाक्य उपास्यकै स्वरूपकूं बोधन करैहैं । त्वंपदार्थ औ तत्पदार्थकी अभेदबोधक वाक्यनका यह अर्थहैः—संसारदशामैं जीवब्रह्मका भेदहै । औ उपासनाकै बलतैं मोक्षदशामैं अभेद होवैहै । अद्वैतवादमैं तो सदा अभेदहै । भेदप्रतीति संसारदशामैंभी भ्रमरूपहै । औ या मतमैं संसारदशामैं भेद औ मोक्षदशामैं अभेद होवैहै । मोक्षदशामैंभी

जीवब्रह्मका भेद माननैंवाले या मतमैं दोष कहैहैं। जीवमैं ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं है। अथवा उपाधिकृतहै। जो स्वरूपसैं भेद मानैं तौ जितनैं स्वरूप रहै उतनैं भेदकी निवृत्ति होवै नहीं। जो मोक्षदशामैं भेदकी निवृत्तिवास्तै जीवकै स्वरूपकी निवृत्ति मानै तौ सिद्धांतका त्याग औ मोक्षकूं अपुरुषार्थता होवैगी। काहेतैं:—मोक्षदशामैं स्वरूपकी निवृत्ति वृत्तिकारनैं मानी नहीं। और किसीके सिद्धांतमैं स्वरूपकी निवृत्ति मोक्षमैं होवै नहीं। जो कोई स्वरूपकी निवृत्ति मोक्षदशामैं मानैं तौ स्वरूपकी निवृत्तिमैं किसी पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं। यातैं मेक्षमैं पुरुषार्थताका अभाव होवैगा। पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहियेहै। यातैं जीवमैं ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं मानैं तौ मोक्षदशामैं अभेद संभवै नहीं। जीवमैं ब्रह्मके भेदकूं उपाधिकृत कहै तौ उपाधिकी निवृत्तिसैं मोक्षदशामैं अभेद तौ संभवैहै। परंतु अद्वैतमतसैं या मतका भेद सिद्ध नहीं होवैगा। काहेतैं अद्वैतवादमैंभी उपाधिकृत भेदका अंगीकारहै। औ उपाधिकृत भेद मिथ्या होवैगा। ताकी निवृत्तिभी अद्वैतवादकी नांई केवल ज्ञानसैं माननी योग्यहै। मोक्षनिमित्त उपासनाक्रिया निष्फल होवैगी। वृत्तिकारकै मतमैं नैयायिकादिक यह कुतर्क करैहैं सो संभवै नहीं। काहेतैं जीवमैं ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं नहीं उपाधिकृतहै। उपाधि मिथ्या होवै तौ उपाधिकृत भेदभी मिथ्या होवै ताकी केवल ज्ञानसैं निवृत्तिभी होवै। वृत्तिकारकै मतमैं प्रलयपर्यंत स्थायी आकाशादिक पदार्थहैं सो मिथ्या नहीं तैसैंही जीवकी उपाधि अंतःकरणादिक सत्यहैं। ज्ञानमात्रसैं तिनकी निवृत्ति होवै नहीं। यद्यपि मोक्षदशामैं अंतःकरणादिकनका नाश होवैहै यातैं ध्वंसशून्यतारूप नित्यता वृत्तिकारकै मतमैंभी बनैं नहीं। तथापि ज्ञानतैं अबाध्यतारूप नित्यता वृत्तिकारकै मतमैं सकल पदार्थनमैं संभवैहै। इसरीतिसैं उपाधि सत्यहै। ता सत्यउपाधिकृत भेदभी सत्यहै। जैसैं जलसंयोगरूप सत्यउपाधिकृत शीतलता पृथिवीमैं सत्यहै। तैसैं सत्यउपाधिकृत भेद सत्यहै। ता सत्यभेदकी औ उपाधिकी ज्ञानमात्रसैं नि-

वृत्ति होवै नहीं किंतु नित्यकर्म औ उपासनासहित ज्ञानतैं उपाधिनिवृत्तिसैं मोक्षदशामैं भेदकी निवृत्ति होवैहै । औ अद्वैतमतमैं सकल उपाधि और भेद मिथ्याहैं तिनकी ज्ञानमात्रसैं निवृत्ति होवैहै । और संसारदशामैंभी मिथ्याउपाधितैं परमार्थिक अद्वैतता बिगरै नहीं । यातैं अद्वैतमतसैं वृत्तिकारकै मतका भेदहै । इसरीतिसैं वृत्तिकारकै मतका भेदहै । इसरीतिसैं वृत्तिकारकै मतमैं भेदबोधक औ अभेदबोधक वाक्यनकी गति संभवैहै । जीवमैं ब्रह्मका भेदबोधक वाक्य तो सांसारिक जीवका स्वरूप बोधन करैहै । औ अभेदबोधक वाक्य मुक्तजीवका स्वरूप बोधन करैहै । मुक्तदशामैंभी जो भेद अंगीकार करैं तिनकै मतमैं अभेदबोधक वाक्यनका बाध होवैहै । अद्वैतवादमैं सदा अभेदका अंगीकारहै तामतमैं जीवब्रह्मका भेदबोधक वाक्यनका बाध होवै यातैं संसारदशामैं भेद औ मुक्तिदशामैं अभेद मानना योग्यहै ॥

यह मतभी समीचीन नहीं । काहेतैं सकल वेदांतवाक्य अहेय अनुपादेय ब्रह्मके बोधकहैं; विधिशेष अर्थके बोधक नहीं । यह अर्थ प्रथमाध्यायका चतुर्थ सूत्रकै व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं विस्तारसैं लिखाहै । किसी मंदमति पुरुषनकी मीमांसावृत्तिकारादिकनकै मतमैं अधिक श्रद्धा होवै और शास्त्रमैं प्रवेश होवै तो भामतीनिबंध औ ब्रह्मविद्याभरणसैं आदिव्याख्यानसहित भाष्यविचारसैं बुद्धिदोषकी निवृत्ति करै सूत्रभाष्यविचारमैं जाकी बुद्धि समर्थ नहीं होवै सो भाष्यकारकै व्याख्यानसहित उपनिषद्ग्रंथनकूं विचारै तिनका तात्पर्य अहेय अनुपादेय ब्रह्मबोधमैं है । उपासनाविधिमैं तात्पर्य नहीं; काहेतैं लौकिकवाक्यका तात्पर्य तो प्रकरणादिकनतैं जानियेहै सो प्रकरणादिक काव्यप्रकाशकाव्यप्रदीपमैं लिखेहैं ॥

षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग ॥ २७ ॥

औ वैदिक वाक्यकै तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमोपसंहारादिक

षट्है । उपक्रमउपसंहारकी एकरूपता १ अभ्यास २ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद ५ उपपत्ति ६ ये षट् वैदिकवाक्यकै तात्पर्यके लिंगहैं । इनतैं वैदिकवाक्यका तात्पर्य जानियेहै यातैं तात्पर्यके लिंग कहियेहैं जैसें; धूमतैं वन्हि जानियेहैं वन्हिका लिंग धूम कहियेहै। उपनिषदनतैं भिन्न कर्मकांडबोधक वेदका तात्पर्य कर्मविधिमैं है । जैसें उपक्रमोपसंहारादिक पूर्ववेदके कर्मविधिमैंहैं तैसें जैमिनिकृत द्वादशाध्यायीमैं स्पष्टहैं । औ उपनिषद्रूप वेदके उपक्रमोपसंहारादिक अद्वितीय ब्रह्ममैंहैं यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं तिनका तात्पर्यहै जैसें छांदोग्यकै षष्ठाध्यायका उपक्रम कहिये आरंभमैं अद्वितीय ब्रह्महै । औ उपसंहार कहिये समाप्तिमैं अद्वितीय ब्रह्महै । जो अर्थ आरंभमैं होवै सोई समाप्तिमैं होवै तहां उपक्रमोपसंहारकी एकरूपता कहियेहै । पुनःपुनः कथनका नाम अभ्यासहै । छांदोग्यके षष्ठाध्यायमैं नववार तत्त्वमसि वाक्यहै । यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अभ्यासहै । प्रमाणांतरतैं अज्ञातताकूं अपूर्वता कहैहैं।उपनिषद्रूप शब्दप्रमाणतैं औ प्रमाणका अद्वितीय ब्रह्मविषय नहीं यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अज्ञाततारूप अपूर्वताहै । अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोक मोहकी निवृत्ति फल कहाहै । स्तुति अथवा निंदाका बोधक वचन अर्थवाद कहियेहै । अद्वितीय ब्रह्मबोधकी स्तुति उपनिषदनमैं स्पष्टहै कथन करै। अर्थकै अनुकूल युक्तिकूं उपपत्ति कहैहैं। छांदोग्यमैं सकल पदार्थनका ब्रह्मसैं अभेद कथनकै अर्थकार्यका कारणतैं अभेद प्रतिपादन अनेक दृष्टांतनसैं कह्याहै । इसरीतिसै षट्लिंगतैं सकल उपनिषदनका तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्ममैं है । सोउपनिषदनके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं षट्लिंग स्पष्ट लिखेहैं । तिनतैं वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्ममैं तात्पर्यनिश्चय होवैहै । जा अर्थमैं वक्ताकै तात्पर्यका ज्ञान होवै ता अर्थका श्रोताकूं शब्दसैं बोध होवैहै । काहेतैं शब्दकी शक्तिवृत्ति अथवा लक्षणावृत्तिका ज्ञान शब्दबोधका हेतुहै ॥

आकांक्षाआदिक चारी शब्दबोधके सहकारी ॥ २८ ॥

आकांक्षाज्ञान योग्यता तात्पर्यज्ञान आसत्ति ये चारि सहकारी हैं। एक पदार्थका पदार्थांतरसैं अन्वय बोधका अभाव आकांक्षा कहियेहै।"अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्"। या वाक्यमैं राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुयां पाछै पुरुषपदार्थसैं आकांक्षाके अभावतैं शाब्दबोध होवै नहीं। काहेतैं एकपदार्थसैं अन्वय हुयां पाछै अन्वयबोधाभावरूप आकांक्षाहै नहीं। स्थूलरीति यहहैः--आकांक्षा नाम इच्छाका है सो यद्यपि चेतनमैं होवैहै तथापि पदके अर्थका जितने काल पदार्थांतरसैं अन्वयका ज्ञान होवै नहीं इतनैं काल अपनैं अर्थके अन्वयवासतै पदांतरकी इच्छासदृश प्रतीति होवैहै। अन्वयबोध हुआं पाछै प्रतीति होवै नहीं सो आकांक्षा कहियेहै। आकांक्षाका स्वरूप सूक्ष्मरीतिसैं ग्रंथनमैं लिखाहै सो कठिनहै यातैं रीतिमात्र जनाईहै। यह राजाका पुत्र आवैहै। इसरीतिसैं राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुआ पाछै पुरुषपदार्थसैं अन्वयबोधकी हेतु आकांक्षा राजपदार्थमैं है नहीं। यातैं राजाके पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध होवैनहीं। किंतु पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध होवैहै। जो आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ राजाका पुत्र आवैहै। राजाके पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध हुवा चाहिये यातैं आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतुहै ॥ एक पदार्थका पदार्थांतरमैं संबंधकूं योग्यता कहेहैं। जहां योग्यता नहीं होवै तहां शाब्दबोध होवै नहीं। जैसे "वह्निना सिंचति"। या वाक्यमैं वह्निवृत्तिकरणतारूप तृतीयापदार्थका सेचन पदार्थमैं निरूपकतासंबंधरूप योग्यताहै नहीं। यातैं शाब्दबोध होवै नहीं। जो शाब्दबोधमैं योग्यता हेतु नहीं होवै तौ "वह्निना सिंचति"। या वाक्यतैं शाब्दबोध हुआ चाहिये ॥ वक्ताकी इच्छाकूं तात्पर्य कहेहैं। जा अर्थमैं तात्पर्यज्ञान होवै नहीं ताका शाब्दबोध होवै नहीं। जैसैं "सैंधवमानय"। या वाक्यतैं भोजनसमयमैं अश्वविषै

वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य संभवै नहीं यातैं अश्वका शाब्दबोध होवै नहीं। तैसैं गमनसमयमैं लवणका शाब्दबोध होवै नहीं जो तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ। सैंधवमानय। यावाक्यतैं भोजनसमयमैं अश्वका बोध औ गमनसमयमैं लवणका बोध हुआ चाहिये। यातैं शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतुहै॥

इहां ऐसी शंका होवैहै:—वक्ताकी इच्छाकूं तात्पर्य कहेहैं शुकवाक्यमैं वक्ताकी इच्छाहै नहीं औ शुकवाक्यतैं शाब्दबोध होवैहै यातैं तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु संभवै नहीं। औ मीमांसक वेदकूं नित्य मानैहैं। ईश्वरका तिनकै मतमैं अंगीकार नहीं। और कोई जीवभी वेदका कर्त्ता नहीं किंतु वेद नित्यहैं तिनकूं वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्यका ज्ञान वैदिक वाक्यनमैं संभवै नहीं॥

या शंकाका समाधान मंजूषाग्रंथमैं नागोजीभट्टनैं यह लिखाहै:—सकल शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञान होवै तौ यह दोष होवै सकल शाब्दका हेतु तात्पर्यज्ञान नहीं। किंतु नानार्थकपदसहित वाक्यजन्य शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञानहैं। यातैं दोष नहीं॥

औ विवरणग्रंथमैं प्रकाशात्म श्रीचरणनैं तात्पर्यज्ञानकूं शाब्दबोधकी कारणता सर्वथा निषेध करीहै सो दोनूंकी उक्ति समीचीन नहीं। काहेतैं इन दोनूंके मतमैं वेदवाक्यनका तात्पर्यनिर्णयके हेतु पूर्वमीमांसा उत्तरमीमांसा व्यर्थ होवैगे। यातैं तात्पर्यनिश्चय सकल शाब्दबोधका हेतुहै। शुकवाक्यमैं औ मीमांसककूं तात्पर्यज्ञान संभवै नहीं ताका यह समाधानहै:—मीमांसककूं वेदकर्ताके तात्पर्यका ज्ञान तो नहीं संभवै परंतु वेदवक्ता जो पाठकताकै तात्पर्यका ज्ञान संभवैहै। शुकवाक्यमैं यद्यपि तात्पर्यज्ञान संभवै नहीं। तथापि श्रोताकूं बोधकी इच्छा करिकै जो वाक्य उच्चारण करिये सो बुबोधयिषाधीन वाक्य कहिये। शुकवाक्य बुबोधयिषाधीन नहीं औ वेदवाक्यभी पाठककी बुबोधयिषाधीनहै बुबोधयिषाधीन वाक्यजन्य ज्ञानमैं तात्पर्यज्ञान कारणहै। बोधकी इच्छाकूं बुबोध-

यिषा कहैहैं। शुककूं बोधकी इच्छा नहीं यातैं शुकवाक्यजन्य ज्ञानमैं तात्पर्यज्ञान कारण नहीं औ वेदांतपरिभाषामैं शुकवाक्यमैंभी तात्पर्य मानाहै सो वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य नहीं । किंतु इष्टअर्थका बोधजननमैं योग्यताकूं तात्पर्य कहाहै । यामैं शंकासमाधान औरभी लिखाहै सो सारा निष्फलहै तात्पर्यका अर्थ वक्ताकी इच्छा प्रसिद्धहै ताकूं त्यागिकै पारिभाषिकअर्थ तात्पर्यपदका मानिकै शुकवाक्यमैं तात्पर्य प्रतिपादनका लोकप्रसिद्धिकै विरोधीविना और फल नहीं केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फलहै। काहेतैं ।शुकवाक्यं न तात्पर्यवत्।यह सर्वलोकमैं अनुभवप्रसिद्धहै। औ शुकवाक्यं तात्पर्यवत् । ऐसा कोई कहै नहीं । यातैं बुबोधयिषाधीन वाक्यजन्य शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतुहै औ बोधरहित पुरुषनैं उच्चारण करे वाक्यतैं शाब्दबोध होवैहै । परंतु सो वाक्य बुबोधयिषाधीन नहीं। यातैं ताके अर्थके बोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतु नहीं औ मौनिरचित श्लोकमैं वक्ताकी इच्छा तात्पर्य संभवै नहीं। काहेतैं उच्चारणका कर्त्ता वक्ता कहियेहै । मौनी उच्चारण करै नहीं । यातैं मौनीकी इच्छा वक्ताकी इच्छा नहीं। यह वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं धर्मराजकै पुत्रनै लिखाहै ॥

सो शब्दरत्नव्याकरणकै ग्रंथसैं खंडितहै। तहां यह प्रसंगहैः—उच्चारण करै शब्दसैं बोध होवैहै । उच्चारणविना शाब्दबोध होवै नहीं या अर्थका बोधक महाभाष्यका वचन लिखिकै यह शंका लिखी । उच्चारणतैं विना शाब्दबोध नहीं होवै तो एकांतमैं उच्चारणविना पुस्तक देखनेवालेकूं शाब्दबोध नहीं हुआ चाहिये । ताका समाधान यह लिखाहैः—तहांभी पुस्तक देखनेवाला सूक्ष्म उच्चारण करैहै । या रीतिसैं मौनिलिखित श्लोकका उच्चारणकर्त्ता मौनीहै ॥

और अभेदरत्नकारका यह मतहैः—जहां तात्पर्यका संदेह होवै तहां शाब्दबोध होवै नहीं। और जहां तात्पर्यके अभावका निश्चय होवै तहांभी शाब्दबोध होवै नहीं।जहां प्रथम तात्पर्यका संदेह होवै अथवा तात्पर्याभावका निश्चय होवै उत्तरकालमैं तात्पर्यका निश्चय होय जावै तहां शाब्दबो

होवैहै। यातैं तात्पर्यके संदेहतैं उत्तरकालभावि शाब्दबोधमैं औ तात्पर्याभावनिश्चयतैं उत्तरकालभावि शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतुहै। सारे शाब्दबोधमैं हेतु नहीं या मतमैं दोष वेदांतशिखामणिमैं लिखाहै खंडनमैं आग्रह नहीं। यातैं दोष लिखा नहीं। विवरणकार औ मंजूषाकारके मतमैं जैसैं पूर्व उत्तरमीमांसा निष्फल होवैहै। तैसैं या मतमैं मीमांसा निष्फल नहीं। काहेतैं या मतमैं तात्पर्यसंदेहोत्तर शाब्दबोधका तात्पर्यज्ञान हेतुहै। औ वेदवाक्यनमैं तात्पर्यका संदेह होवैहै। ताकी निवृत्ति मीमांसातैं होवैहै। जैसैं वेदवाक्यनमैं संदेह औ ताकी निवृत्ति होवै सो पूर्वोत्तरमीमांसामैं स्पष्टहै॥

इसरीतिसैं आकांक्षा योग्यता तात्पर्य शाब्दबोधके हेतुहैं। परंतु आकांक्षादिकका ज्ञान हेतुहै। स्वरूपसैं आकांक्षादिक हेतु नहीं। काहेतैं जहां आकांक्षादिक शून्यवाक्यमैं आकांक्षादिकनका भ्रम होवै तहां शाब्दबोध होवैहै. स्वरूपसै आकांक्षादिकनकूं हेतुता मानै तौ आकांक्षादिकभ्रमस्थलमैं शाब्दबोध नहीं हुआ चाहिये औ आकांक्षादिकै ज्ञानकूं हेतुता माने शाब्दबोधका कारण भ्रमरूप ज्ञान होनैतैं शाब्दबोध संभवैहै। औ स्वरूपसैं आकांक्षादिकनकूं हेतुता माने जहां आकांक्षादिकहैं औ श्रोताकूं ऐसा भ्रमहोवै यह वाक्य आकांक्षादिकशून्यहै तहां शाब्दबोध हुआ चाहिये औ होवै नहीं। यातैं आकांक्षादिकनका ज्ञान हेतु है सो ज्ञान भ्रम होवै चाहै प्रमा होवै शाब्दबोधका हेतु भ्रमप्रमासाधारण आकांक्षादिकनका ज्ञानहै। भ्रमसामग्रीतैं शाब्दबोध भ्रम नहीं होवैहै। किंतु विषयके अभावतैं शाब्दबोध भ्रम होवैहै। जैसैं वह्निकी व्यभिचारी पृथिवीत्वमैं वह्निव्याप्यता भ्रम होयकै पृथिवीत्व हेतुसैं वह्निवाले पर्वतमैं वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो विषयके सद्भावतैं प्रमा होवैहै। विषयशून्य देशमैं व्यभिचारी हेतुसैं अनुमितिभ्रम होवैहै। यातैं विषयके सद्भावतैं जैसैं भ्रमसामग्रीतैं अनुमिति प्रमा होवैहै। तैसैं आकांक्षादिक ज्ञानरूप

शाब्दबोधकी सामग्री भ्रम होवै अथवा प्रमा होवैहै जहां विषयका सद्भाव होवै तहां शाब्दबोध प्रमा होवैहै जहां विषयका अभाव होवै तहां शाब्द-बोध भ्रम होवैहै परंतु जहां योग्यताज्ञान भ्रम होवै तहां नियमतैं शाब्द-बोध भ्रम होवैहै प्रमा होवै नहीं । काहेतैं जहां शाब्दबोधका विषय होवै तहां नियमतैं योग्यताज्ञान प्रमा होवैहै जहां योग्यताज्ञान भ्रम होवै तहां नियमतैं शाब्दबोधका विषय होवै नहीं । यातैं यह नियमहैः— विषयके सद्भावतैं शाब्दबोध प्रमा औ विषयके अभावतैं भ्रम होवैहै । जैसैं आकांक्षादिकनके ज्ञान शाब्दबोधके हेतुहैं तैसे आसत्तिभी शाब्दबोधकी हेतुहै. न्यायके ग्रंथनमैं पदनकी समीपताकूं आसत्ति कहैहैं । व्यवहित पदनके अर्थोंका अन्वयबोध होवै नहीं । जैसैं "गिरिर्भुक्तं वह्निमान् देवदत्तेन" या वाक्यतैं अन्वयबोध होवै नहीं । किंतु । गिरिर्वह्निमान् भुक्तं देवदत्तेन । ऐसा कहै शाब्दबोध होवैहै । यातैं पदनकी समीपतारूप आसत्ति शाब्द-बोधकी हेतुहै. जहां समीपता न होवै औ समीपताका भ्रम होवै तहां शाब्दबोध होवैहै यातैं भ्रमप्रमासाधारण आसत्तिका ज्ञान हेतुहै स्वरूपसैं आसत्ति हेतु नहीं । और ग्रंथनमैं यह लिखाहैः—जहां व्यवहित पदहैं तहां श्लोकादिकनमैं शाब्दबोध होवैहै । यातैं उक्त आसत्ति शाब्दबोधकी हेतु नहीं किंतु शक्ति वा लक्षणारूप पदके संबंधसैं जो पदार्थनकी व्यवधान-रहित स्मृति सो आसत्ति शाब्दबोधकी हेतुहै । पदनका व्यवधान होवै अथवा अव्यवधान होवै जा पदार्थका जा पदार्थसैं अन्वयबोध होवै तिन पदार्थनकी स्मृति व्यवधानरहित चाहिये । पदार्थनकी स्मृतिमात्रसैं शाब्द-बोध होवै तो किसी रीतिसैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध हुआ चाहिये । पदके संबंधसैं पदार्थकी स्मृतिकूं शाब्दबोधका हेतु कहैं तौ सकल पदनका आकाशसैं समवायसंबंधहै और आत्मामैं सकल पद-नका स्वानुकूलकृति संबंधहै यातैं घटादिपदके समवायसंबंधतैं आ-काशकी जहां स्मृति होवै औ स्वानुकूलकृतिसंबंधतैं आत्माकी जहां

स्मृति होवै तिनकाभी "घटमानय" इत्यादि वाक्यनतैं बोध हुआ चाहिये । यातैं शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप पदकै संबंधतैं पदार्थकी स्मृति शाब्दबोधका हेतुहै । घटादि पदनका समवायसंबंध आकाशमैं है औ स्वानुकूलकृतिसंबंध आत्मामैं है शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूपसंबंध घटादिपदनका आकाश आत्मामैं नहीं आकाशगगनादि पदनका शक्तिरूप संबंध आकाशमैं है स्वपद आत्मपदका शक्तिसंबंध आत्मामैं है । यातैं आकाशपदसहित वाक्यतैं आकाशका शाब्दबोध होवैहै । आत्मपदसहित वाक्यतैं आत्माका शाब्दबोध होवैहै । इसरीतिसैं जापदकै वृत्तिरूप संबंधतैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध होवैहै । ऐसा कहैंभी "घटमानय" या वाक्यतैं जो बोध होवैहै ताबोधकी उत्पत्ति । घटः कर्मता । आनयनं कृतिः । इतने पदनतैं हुई चाहिये । काहेतैं दोनूं वाक्यनके पदनकी शक्ति समानहै । औ प्रथम वाक्यतैं शाब्दबोध होवैहै दूसरैतैं होवैनहीं याकै विषै यह हेतुहैः--योग्य पदकी वृत्तिसैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध होवैहै, प्रथम वाक्यके पद योग्यहैं दूसरेके योग्य नहीं । योग्यता अयोग्यता अनुभवकै अनुसार अनुमेयहैं । जिन पदनतैं शाब्दबोध अनुभवसिद्धहै तिनमैं योग्यताहै । जनपदनतैं शाब्दबोधका अभाव अनुभवसिद्धहै तिनमैं योग्यता नहिं । इसरीतिसै योग्यपदकै वृत्तिरूपसंबंधतैं व्यवधानरहित पदार्थनकी स्मृति आसत्ति कहियेहै । इसरीतिकी आसत्ति स्वरूपसैं शाब्दबोधका हेतुहै ताका ज्ञान हेतु नहीं । या प्रकारतैं आकांक्षाज्ञान योग्यताज्ञान तात्पर्यज्ञान आसत्ति शाब्दबोधके हेतुहैं इन चारिकूं शाब्दसामग्री कहैहै ॥

उत्कटजिज्ञासाकूं बोधकी हेतुता ॥ २९ ॥

अनुमितिकी सामग्री व्याप्तिज्ञानहै प्रत्यक्षसामग्री इंद्रियसंयोगादिकहैं, जहां दो सामग्री होवै तहां दोनूंका फलहोवै नहीं काहेतैं एक क्षणमैं दो ज्ञानकी उत्पत्ति होवै नहीं, यद्यपि ज्ञानद्वयका आधार तो एक क्षण होवै

है तथापि ज्ञानद्वयकी उत्पत्तिका आधार एकक्षण होवै नहीं सो उत्पत्तिभी व्यधिकरण दो ज्ञानकी तो एकक्षणमैं होवैहै । जैसैं देवदत्तका ज्ञान औ यज्ञदत्तका ज्ञान व्यधिकरणहै तिनकी उत्पत्ति एकक्षणमैं होवैहै । तथापि समानाधिकरण दो ज्ञाननकी उत्पत्ति एकक्षणमैं होवैनहीं यह सिद्धांतहै । दोनूं सामग्रीका फल एक कालमैं होवै नहीं यातैं प्रबल सामग्रीका फल होवैहै दुर्बलका बाध होवैहै । प्रबलता दुर्बलता अनुभवके अनुसार अनुमेयहैं जैसैं भूतल औ घटकै साथि नेत्रका संयोग होवै तिस कालमैं "घटवद्भूतलम्" इस वाक्यका श्रवण होवै तहां घटवाला भूतलहै । ऐसैं प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामग्री औ शाब्दज्ञानकी सामग्रीहै तथापि प्रत्यक्षज्ञान होवैहै शाब्दज्ञान होवै नहीं; यातैं समानविषयक प्रत्यक्षज्ञानकी औ शब्दज्ञानकी दो सामग्री होवै तहां प्रत्यक्षज्ञानकी सामग्री प्रबलहै शाब्दज्ञानकी दुर्बलहै । औ जहां भूतलसंयुक्त घटसैं नेत्रका संयोग होवै औ उस कालमैं " पुत्रस्ते जातः " इस वाक्यका श्रवण होवै तहां भूतलमैं घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं । किंतु पुत्रजन्मका शाब्दबोध होवैहै । यातैं भिन्नविषयक ज्ञानकी प्रत्यक्ष सामग्री औ शाब्दसामग्री होवै तहां शाब्दसामग्री प्रबलहै प्रत्यक्षसामग्री दुर्बलहै । इसरीतिसैं बाध्यबाधकभाव विचारिकै सूक्ष्मदर्शी पुरुष प्रबलदुर्बलताकूं जानिलेवै परंतु जिज्ञासाशून्य स्थलमैं पूर्व उक्त बाध्यबाधकभावहै । जहां एक वस्तुकी जिज्ञासा होवै अपरकी जिज्ञासा होवै नहीं औ दोनूंकै बोधकी सामग्री होवै तहां जिज्ञासितका बोध होवैहै अजिज्ञासितका बोध होवै नहीं । यातैं जिज्ञासितकै बोधकी सामग्री प्रबलहै अजिज्ञासितकै बोधकी सामग्री दुर्बलहै । ज्ञानकी इच्छा जिज्ञासा कहियेहै ताका विषय जिज्ञासित कहिये है । जिज्ञासासहित सामग्री सारी प्रबलहै । जहां उभयकी जिज्ञासा होवै तहां उत्कटजिज्ञासा बाधकहै । इसीकारणतैं अध्यात्मग्रंथनमैं लिखाहै । उत्कटजिज्ञासावालेकूं ब्रह्मबोध होवैहै उत्कटजिज्ञासारहितकूं ब्रह्मबोध होवै नहीं काहे

जिसपदार्थकी जिज्ञासासहित बोधसामग्री होवै तासैं उत्कटजिज्ञासासहित बोधसामग्रीतैं ताका बोध होवैहै अन्यथा जिज्ञासासहित सामग्रीतैं अन्यसामग्रीका बाध होवैहै। लौकिक पदार्थनकी जिज्ञासा औ तिनके प्रत्यक्षादिक बोधकी सामग्रीका सर्वदा जाग्रत्कालमैं संभवैहै। तासैं जिज्ञासारहित ब्रह्मबोधकी सामग्रीका बाध होवैगा। यातैं लौकिक पदार्थनके जिज्ञासासहित प्रत्यक्षादि बोधकी सामग्रीकै बाधवास्ते ब्रह्मकी उत्कटजिज्ञासा चाहिये।उत्कटजिज्ञासासहित ब्रह्मबोधकी सामग्रीतैं लौकिक पदार्थनकै बोधकी सामग्रीका बाध होवैहै। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"। या सूत्रकाभी इसी अर्थमैं तात्पर्यहै। यद्यपि व्याख्यानकारोंनैं विचारमैं जिज्ञासापदकी लक्षणा कहीहै औ कर्तव्यपदका अध्याहार कहाहै। यातैं ब्रह्मज्ञानकै अर्थ वेदांतवाक्यनका विचार कर्त्तव्यहै यह सूत्रका अर्थहै। तथापि विचारवाचक पदकूं त्यागिकै लाक्षणिक जिज्ञासा पदकै प्रयोगतैं सूत्रकारका वाच्य औ लक्ष्य दोनूं अर्थनमैं तात्पर्यहै। ब्रह्मजिज्ञासा ब्रह्मबोधका हेतुहै। यह वाच्य अर्थहै औ एक शब्दसैं लक्षणावृत्ति औ शक्तिवृत्तिसैं दो अर्थका बोध होवै नहीं या प्राचीन उक्तिका "गंगायां मीनघोषौ" या वाक्यमैं व्यभिचार होनैतैं श्रद्धायोग्य नहीं। "गंगायां मीनघोषौ" या वाक्यमैं गंगापदकै वाच्यअर्थका मीनसैं संबंध औ लक्ष्य अर्थका घोषसैं संबंध होवैहै। यातैं गंगाकै प्रवाहमें मीनहै औ तीरमैं घोषहै यह वाक्यका अर्थहै। ग्रंथकारोंनैं यद्यपि सूत्रके अनेक अर्थ लिखेहैं तथापि अनेक अर्थ सूत्रका भूषणहै। विचारकी नांई जिज्ञासामैं विधिका संभवहै अथवा नहीं इस अर्थकै लिखनैमैं ग्रंथकी वृद्धि होवैहै यातैं लिखा नहीं॥

वेदांतके तात्पर्य औ वेद अरु शब्दविषय विचार॥ ३०॥

आकांक्षाज्ञानादिक शाब्दबोधके हेतुहैं तिनमैं तात्पर्यज्ञानहै। वेदवाक्यकै तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमादिकहैं तिन उपक्रमादिकनतैं वेदांतवा-

कथनका तात्पर्य अद्वितीयब्रह्ममैं है । उपासनाविधिमैं तात्पर्य नहीं । यह अर्थ भाष्यकारनैं समन्वयसूत्रमैं विस्तारसैं लिखाहै । यातैं मीमांसक औ वृत्तिकारका मत समीचीन नहीं । तिनके मतखंडनके अनुकूल तर्क भाषाके श्रोताकूं दुर्ज्ञेयहैं यातैं लिखे नहीं । इस वाक्यतैं श्रोताकूं इस अर्थका बोध होवै ऐसी वक्ताकी इच्छा तात्पर्य कहियेहै । मीमांसकमतमैं वेद नित्यहै तहां कर्त्ताकी इच्छा तो संभवै नहीं; अध्यापककी इच्छा संभवैहै । नैयायिकमतमैं शब्दका तीसरे क्षणमैं नाश होवैहै । वेदभी शब्दरूप है यातैं क्षणिकहै । तीसरे क्षणमैं जाका नाश होवै सो क्षणिक कहियेहै । नैय्यायिकमतमैं उच्चारणके भेदतैं वेदका भेदहै । एकवेरी उच्चारण करिकै फेरि जो उच्चारण करिये सो वाक्य पूर्ववाक्यतैं भिन्न होवैहै । परंतु पूर्ववाक्यके सजातीय उत्तरवाक्यहै यातैं अभेदभ्रम होवैहै । नैय्यायिक मतमैं भारतादिकनकी नांई वेद पौरुषेयहै औ क्षणिकहै काहेतैं वर्णसमुदायतैं भिन्नतो वेदहै नहीं । वर्णसमुदायकूंही वेद कहैहैं सो समुदाय प्रत्येक वर्णतैं न्यारा नहीं यातैं वेद वर्णरूप है । सो वर्ण शब्दरूपहै । आकाशका गुण शब्दहै । नानाशब्दकी एककालमैं उत्पत्ति होवै नहीं काहेतैं जैसैं आत्माके विशेष गुण ज्ञानादिकहैं तैसैं आकाशका विशेष गुण शब्दहै । औ विभुके जो विशेषण सो एककालमैं दो उत्पन्न होवै नहीं । यद्यपि देवदत्तका शब्द औ यज्ञदत्तका शब्द एक कालमैं होवैहै । औ भेरीका शब्द तैसैं तालका शब्द एक कालमैं होवैहै और जो ऐसैं कहैं समानाधिकरण दो शब्दनकी एक कालमैं उत्पत्ति होवै नहीं तौभी सारे शब्दनका समवाय एक आकाशमैं है । सारे शब्द समवायसंबंधतैं आकाशवृत्ति होनैतैं समानाधिकरणहै । कोई शब्द व्यधिकरण नहीं । तथापि जैसैं आकाशमैं शब्दका समवायसंबंधहै तैसैं कंठ तालु दंत नासिका ओष्ठ जिह्वामूल उरस् शिरस् इन अष्टअंगनमैं वर्णरूप शब्दका अवच्छेदकतासंबंधहै । औ ध्वनिरूपशब्दका भेरीतालादिकनमैं अवच्छेदकतासंबंधहै । एक अधिकरणमैं वृत्तिकूं समानाधिकरण कहैहैं । समवायसंबंधसैं सारे शब्द आकाशवृत्ति

होनेतैं समानाधिकरणहैंभी परंतु अवच्छेदकतासंबंधसैं देवदत्तशब्द यज्ञदत्तशब्द व्यधिकरणहैं । तैसैं भेरीशब्द तालशब्दभी अवच्छेदकतासंबंधसैं व्यधिकरणहैं । औ यह नियमहैः—अवच्छेदकतासंबंधसैं एक अधिकरणमैं दो शब्दनकी उत्पत्ति एककालमैं होवै नहीं । अर्थ यह हैः—एक अवच्छेदकमैं दो शब्दनकी उत्पत्ति एककालमैं होवै नहीं । यातैं वाक्यपदके अवयवरूप वर्णनकी एक कालमैं उत्पत्ति होवै नहीं किंतु सारे वर्ण क्रमतै उपजैहैं । क्रमतैं उपजते वर्णनका निमित्तविना नाश मानै तौ सकल वर्णनकी प्रथमक्षणमैं उत्पत्ति औ द्वितीयक्षणमैं नाश होवैगा । यातैं उत्पत्तिनाशविना शब्दमैं और कोई प्रत्यक्षतादिक व्यापार सिद्ध नहीं होवैगा । यातैं शब्दके नाशका कोई निमित्त मानना चाहिये । जा निमित्तविना द्वितीयक्षणमैं शब्दका नाश होवै नहीं सो और तौ कोई शब्दके नाशका निमित्त संभवै नहीं । पूर्व शब्दके नाशका हेतु स्वोत्तरवर्त्ति शब्दहै । "गौः"- या वाक्यमैं पुरुषकी कृतिसैं नाभिदेशतैं वायुमैं क्रिया होयकै गकारका जनक जिह्वामूलमैं वायुका संयोग होयकै औकारका जनक कंठओष्ठसैं वायुका संयोग होवैहै । तिसतैं अनंतर विसर्गका जनक कंठसैं वायुका संयोग होवैहै । जिसक्रमतैं तीनि संयोग होवैहैं । उसीक्रमतैं गकार औकार विसर्गरूप तीनि वर्ण होवैहैं । यद्यपि कौमुदीआदिक ग्रंथनमैं कवर्गका कंठस्थान लिखाहै तथापि पाणिनिकृत शिक्षामैं कवर्गका जिह्वामूल स्थान लिखाहैः—ता शिक्षावचनकै अनुसारतैं जिह्वामूलमैं वायुके संयोगतैं गकारकी उत्पत्ति कहीहै । व्याकरणमतमैं यद्यपि 'गौः'—इतने वर्ण वाक्यरूप नहींहैं तथापि न्यायमतसैं वाक्य कहा है । प्रथम क्षणमैं गकारकी द्वितीय क्षणमैं औकारकी तृतीय क्षणमैं विसर्गकी उत्पत्ति होवैहै । तहां गकारनाशमैं औकार हेतुहै; औकारके नाशमैं विसर्ग हेतुहै । तृतीयक्षणमैं शब्दका नाश होवैहै द्वितीयमैं नहीं काहेतैं नाशका हेतु स्वोत्तरशब्दहै सो द्वितीयक्षणमैं उपजैहै । कारणकै

सिद्धि विना कार्य होवै नहीं । प्रथमक्षणमैं द्वितीयशब्द असिद्धहै यातैं द्वितीयक्षणमैं सिद्ध द्वितीयशब्दसैं तृतीयक्षणमैं प्रथम शब्दका नाश होवैहै ऐसे तृतीय शब्दसै द्वितीयका नाश होवैहै । इसरीतिसैं उपांत्यशब्द-पर्यंत स्वोत्तरवर्ति शब्दसैं शब्दका नाश होवैहै. औ अंत्यशब्दका उपांत्य-शब्दसैं सुंदोपसुंदन्यायतैं नाश होवैहै । सुंद औ उपसुंद दो भ्राता हुयेहैं तिनका परस्पर नाश भारतमैं प्रसिद्धहैं । परंतु यामैं यह दोषहैः—जो उपां-त्यशब्दसैं अंत्यशब्दका नाश मानै तौ द्वितीयक्षणमैंही अंत्यशब्दका नाश होवैगा । यातैं उत्पत्तिनाशतें अन्यव्यापाररहित अंत्यशब्द अप्रत्यक्ष हुआ चाहिये । जो ऐसैं कहै जगदीशभट्टाचार्यनैं अंत्यशब्द अप्रत्यक्ष कहाहै यातैं अप्रत्यक्षका अपादान इष्टहै दोष नहीं । तौभी तृतीयक्षणमैं शब्दका नाश होवैहै या नियमका भंग होवैगा । यातैं अंत्यशब्दकै नाशमैं उपांत्यशब्दका नाश हेतुहै उपांत्यशब्द हेतु नहीं । या पक्षमैं अंत्यशब्दकै नाशमैं द्वितीय क्षणमैं नाशकी आपत्ति नहीं काहेतैं उपांत्यशब्दका नाश अंत्यशब्दसै होवैहै । यातैं अंत्यशब्दकै द्वितीय क्षणमैं उपांत्यका नाश-तासैं उत्तरक्षणमैं अंत्यका नाश होवैहै । इसरीतिसैं सकल शब्दका नाश तृतीयक्षणमैं होवैहै । यामैं यह शंका होवैहैः—जहां एकही वर्णरूप शब्द होवै तहां शब्दकै नाशका हेतु कोईशब्द नहीं । ताका यह समाधानहैः—जैसैं कंठादिकनतैं वायुका संयोग वर्णरूपशब्दका हेतुहै । औ भेरीआ-दिकनतैं दंडादिकनका संयोग ध्वनिरूपशब्दका हेतुहै । औ वंशके दलद्वय-का विभाग ध्वनिरूपशब्दका हेतुहै । तैसे शब्दभी शब्दका हेतुहै । भेरी-दंडकै संयोगतै जो भेरीदेशमैं शब्द होवैहै तासैं उत्पन्नहुवा जो शब्द ताका श्रवणसैं साक्षात्कार होवैहै । तैसैं कंठादिक देशमैं वायुके संयोगतैं जो वर्णरूपशब्द उपजैहै ताका श्रोत्रसैं साक्षात्कार होवै नहीं । किंतु वर्ण-रूप शब्दसैं अन्यशब्द उपजैहै ताका साक्षात्कार होवैहै । इस रीतिसैं अन्य शब्दरहित एक शब्द अलीकहै । परंतु या मतमैं वर्णका समुदायरूप पदका एककालमैं संभव नहीं यातैं पदका साक्षात्कार तो संभवै नहीं

तथापि प्रत्येक वर्णके साक्षात्कारनतैं सकलवर्णकूं विषय करनैंवाली एक स्मृति होवैहै। स्मृतपदसैं पदार्थकी स्मृति होवैहै तासैं शाब्दबोध होवैहै। अथवा पूर्वपूर्ववर्णके अनुभवतैं संस्कार होवैहै। संस्कारसहित अंत्यवर्णका अनुभवही पदका अनुभव कहियेहै। तासैं पदार्थकी स्मृति होवैहै। तासैं शाब्दबोध होवैहै। यह न्यायका मतहै। औ मीमांसाके मतमैं वर्ण नित्य हैं यातैं वर्णका समुदायरूप वेदभी नित्यहैं। और सारे वर्ण विभुहैं। जहां कंठादिदेशमैं अध्यात्मवायुका संयोग होवै। तहां वर्णकी अभिव्यक्ति होवैहै। नैयायिकमतमैं जो वर्णकी उत्पत्तिके हेतुहैं सोई मीमांसकमतमैं वर्णका अभिव्यक्तिके हेतुहै। इसरीतिसैं वर्णसमुदायरूप वेद नित्यहै यातैं अपौरुषेयहै। औ वेदांतमतमैं वर्ण औ तिनका समुदायरूप वेद नित्य नहीं काहेतैं वेदकी उत्पत्ति श्रुतिनैं कहीहैं औ चेतनसैं भिन्न सकल अनित्यहै। यातैं वेद नित्य नहीं औ क्षणिक नहीं। किंतु सृष्टिके आदिकालमैं सर्वज्ञ ईश्वरके संकल्पमात्रतैं वेदकी उत्पति होवैहै। यातैं श्वासकी नांई अनायासतैं ईश्वर वेदकूं रचैहै। नैयायिकमतमैं भारतादिकनकी नांई वेद पौरुषेयहै वेदांतमतमैं भारतादिकनकी नांई ईश्वररूपपुरुषतैं रचित होनेतैं पौरुषेय तो है परंतु सर्वज्ञ व्यासादिक सकल सर्गनमैं भारतादिकनकूं रचैहैं। तहां यह नियम नहीं जैसी पूर्वसर्गमैं आनुपूर्वी होवै तैसेही भारतादिक उत्तरसर्गमैं होवैहै। किंतु अपनी इच्छाके अनुसार भारतादिकनकी आनुपूर्वी रचैहै औ वेदकी आनुपूर्वी विलक्षण नहीं होवैहै। किंतु पूर्वसर्गकी आनुपूर्वीकूं यादि करिकै उत्तरसर्गमैं पूर्वकल्पके समान आनुपूर्वीवाले वेदकूं ईश्वर रचैहै। पुरुषरचिततारूपपौरुषेयता वेदमैं भारतादिकनके समानहै। अन्यसर्गकी आनुपूर्वीके स्मरणविना पुरुषरचितत्वरूप पौरुषेयत्व भारतादिकनमैं हैं वेदमैं नहीं। वेदमैं पूर्वसर्गकी आनुपूर्वीकूं स्मरण करिकै पुरुषरचितत्वहै। यातैं वेदकी आनुपूर्वी अनादिहै औ ईश्वररूपपुरुष करिकै रचितहै विरोध नहीं ॥ इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयः प्रकाशः ॥ ३ ॥

अथ उपमाननिरूपणं नाम चतुर्थप्रकाशप्रारंभः ॥ ४ ॥

क्रमभंगके अभिप्रायपूर्वक दो न्यायरीतिसैं उपमान औ उपमितिका द्विधास्वरूप ॥ १ ॥

यद्यपि न्यायवेदांतके सकलग्रंथनमैं उपमाननिरूपणतैं उत्तर शब्द निरूपण कियाहै तथापि तीनि प्रमाणवादी सांख्यादिक उपमानकूं नहीं मानैंहैं। प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीनि मानैंहैं । तिनके उपयोगी प्रमाण पहली कहे चाहिये । यातैं शब्द प्रमाणतैं उत्तर उपमाननिरूपण करियेहै । जिसक्रमतैं शास्त्रमैं अधिक प्रमाणका अंगीकारहै । तिसक्रमतै याग्रंथमैं प्रमाणनिरूपणहै । यातैं अन्यसंगतिकी इहां अपेक्षा नहीं। उपमितिप्रमाका करण उपमानप्रमाण कहियेहै । न्यायरीतिसैं उपमिति उपमानका यह स्वरूपहैः—संज्ञीमैं संज्ञाकी वाच्यताका ज्ञान उपमिति कहियेहै । ताका कारण कहिये । व्यापारवाला असाधारण कारण जो होवै सो उपमान कहियेहै । कोई नगरवासी पुरुष गवयशब्दके वाच्यकूं नहीं जानिकै आरण्यकपुरुषतैं " कीदृश गवय होवैहै" ऐसा प्रश्नकरै तब, " गौके सदृश गवय होवैहै " ऐसा आरण्यक पुरुषका वचन सुनिकै वाक्यर्थअनुभवकरिकै वनमें गोसदृश गवयकूं देखिकै "गौकै सदृश गवय होवैहै" इसरीतिसैं वाक्यार्थका स्मरण करैहै । तिसतैं अनंतर दृष्टपशुमैं गवयपदवाच्यता जानैहै । तहां पशुविशेषमैं गवयपदवाच्यताज्ञान उपमितिहै । आरण्यकपुरुषबोधितवाक्यकै अर्थका शाब्दानुभव करणहै। गोसदृशपिंडकूं देखिकै वाक्यार्थकी स्मृति व्यापार है औ गोसदृशपिंडका प्रत्यक्षसंस्कारका उद्बोधक होनेतैं सहकारीहै । यातैं वाक्यार्थानुभव उपमानहै । वाक्यार्थस्मृति व्यापारहै । जैसैं आकांक्षादिक शाब्दके सहकारीहैं । तैसैं गोसदृशपिंडका प्रत्यक्ष सहकारीहै । उपमिति फलहै । यह सांप्रदायिक नैयायिकनका मतहै ॥

औ नवीन नैयायिक यह कहैहैंः—गोसदृशपिंडका प्रत्यक्ष सहकारी

मानाहै सो उपमानहै । औ वाक्यार्थस्मृत्ति व्यापारहै । गवयपदकी वाच्यताका ज्ञान उपमितिरूप फलहै । या मतमैं वाक्यार्थका अनुभव कारणका कारण होनेतैं कुलालपिताकी नांई अन्यथासिद्धहै। अर्थ यहहैः- जैसै कुलालपिता घटकी सामग्रीतैं बाह्यहै तैसें उपमितिसामग्रीतैं वाक्यार्थानुभव बाह्यहै । यह दो मत नैयायिकनके हैं इनमैं अनेक शंकासमाधानरूप विचार न्यायकौस्तुभादिकोंमैं लिखाहै । सिद्धांतमैं उपयोगी नहीं यातैं हमनैं लिखा नहीं ॥

जैसैं सदृशज्ञानतैं उपमिति होवैहै तैसैं विधर्मज्ञानसैंभी होवैहै । जहां खड्गमृगपदकै वाच्यकूं नहीं जानता आरण्यकपुरुषतैं उष्ट्रविधर्मा शृंगसहित नासिकावाला खड्गमृगपदका वाच्यहै । इस वाक्यकूं सुनिकै वाक्यार्थानुभवसैं उत्तर वनमें जायकै उष्ट्रविधर्म खड्गमृगकै प्रत्यक्षसैं उत्तर गैडेमैं खड्गमृगपदकी वाच्यता जानैहै । औ पृथिवीपदकै वाच्यकूं नहीं जानता "जलादिवैधर्म्यवती पृथिवी" ऐसा गुरुवाक्य सुनिकै ताकै अर्थकूं अनुभवकरिकै जलादिवैधर्म्यवान् पदार्थकूं देखिकै वाक्यार्थकूं स्मरण करिकै तापदार्थमैं पृथिवीपदकी वाच्यता निश्चय करैहै । विरुद्धधर्मवालेकूं विधर्म कहैहैं विरुद्धधर्मकूं वैधर्म्य कहैहैं । खड्गमृगमैं उष्ट्रतैं विरुद्धधर्म ह्रस्वग्रीवादिकहैं; पृथिवीमैं जलादिकनतैं विरुद्धधर्म गंधहै; दोनूं उदाहरणनमैं सांप्रदायिक रीतिसैं वाक्यार्थानुभव करणहै वाक्यार्थस्मृति व्यापार है । विरुद्धधर्मवत्पदार्थदर्शन सहकारीहै । नवीनरीतिसैं विरुद्धधर्मविशिष्ट पदार्थका प्रत्यक्ष करणहै । वाक्यार्थस्मृति व्यापार वाक्यार्थनुभवसामग्री बाह्यहै। खड्गमृगपदकी वाच्यताज्ञान औ पृथिवीपदकी वाच्यताज्ञान उपमितिरूप फलहै । इसरीतिसैं न्यायमतमैं संज्ञाका वाच्यताज्ञान उपमानप्रमाणका फलहै औ प्राचीनमतमैं वाक्यार्थानुभवकूं उपमानप्रमाण कहैहैं । नवीनमतमैं सादृश्यविशिष्ट पिंडदर्शन वा वैधर्म्यविशिष्ट पिंडदर्शनकूं उममानप्रमाण कहैहै ॥

वेदांतरीतिसे उपमान औ उपमितिका स्वरूप ॥ २ ॥

वेदांतमतमैं उपमिति उपमानका अन्यस्वरूपहै:—ग्रामविषै गोव्यक्तिकूं देखनैवाला वनमैं जायकै गवयकूं देखै तब " यह पशु गौकै सदृशहै " ऐसा प्रत्यक्ष होवै हैं। तिसतैं अनंतर "मेरी गौ इस पशूकै सदृशहै" ऐसा ज्ञान होवैहै। तहां गवयमैं गोसदृशका ज्ञान उपमानप्रमाण कहियेहै। औ गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति कहियेहै। या मतमैंभी उपमितिका करणही उपमान कहियेहै। परंतु उपमितिका स्वरूप औ लक्षण भिन्नहै यातैं उपमानकै लक्षणभेदविना स्वरूपका भेद सिद्ध होवैहै। न्यायमतमैं तो संज्ञाका संज्ञीमैं वाच्यताज्ञान उपमिति कहियेहै। औ वेदांतमतमैं सादृश्यज्ञानतैं जन्यज्ञानकूं उपमिति कहैहैं। गवयमैं गोकै सादृश्यज्ञानतैं गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान जन्यहै। इसरीतिसैं उपमितिका लक्षण न्यायमतसैं भिन्नहै ताका जो करण होवै सो उपमान कहियेहै। सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानरूप उपमिति गोमैं गवयका सादृश्यज्ञानहै ताका करण गवयमैं गोका सादृश्यज्ञानहै सोई उपमानहै। या मतमैं उपमानप्रमाण व्यापारहीनहै उपमानतैं अनंतर उपमितिकी उत्पत्तिमैं कोई व्यापार मिलै नहीं। यामतमैं वैधर्म्यविशिष्टज्ञानतैं उपमितिका अंगीकार नहीं। काहेतैं सादृश्यज्ञान जन्यज्ञानकूंही उपमिति कहैहैं अन्यकूं नहीं ॥

विचारसागरमैं न्यायरीतिसैं उपमितिके कथनका अभिप्राय ॥ ३ ॥

औ विचारसागरमैं न्यायकी रीतितैं उपमितिका स्वरूप कहा है ताका यह अभिप्रायहै:—न्यायकी रीतिसैं उपमिति उपमानका स्वरूप मानैं तौभी अद्वैतसिद्धांतमैं हानि नहीं उलटान्यायकी रीतिसैं सिद्धांतके अनुकूल उदाहरण मिलैहैं; काहेतैं वैधर्म्यज्ञानतैं उपमिति न्यायमतमैं मानीहै। ताका सिद्धांतके अनुकूल यह उदाहरणहै:-"आत्मपदका अर्थ कैसाहै"या प्रश्नका " देहादिवैधर्म्यवान् आत्मा " ऐसा गुरुके उत्तरसैं अनित्य अशुचि दुःखस्वरूपदेहादिकनसैं विधर्मा नित्यशुद्ध आनंदरूप आत्मपदका वाच्यहै ऐसा एकांतदेशमैं विवेचनकालमैं मनका आत्मासैं संयोग होयके उपमि-

तिज्ञान होवैहै। औ सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानकूंही उपमिति मानैं सौ आत्मामैं किसीका सादृश्य नहीं यातैं जिज्ञासूकै अनुकूल उदाहरण मिलै नहीं। यद्यपि असंगतादिक धर्मनतैं आकाशकै सदृश आत्माहै यातैं आकाशमैं आत्माका सादृश्यज्ञान उपमानहै आत्मामैं आकाशका सादृश्यज्ञान उपमितिहै। यह जिज्ञासूकै अनुकूल उदाहरण सिद्धांतकी उपमितिका संभवैहै। तथापि जिस अधिकरणमैं जिस पदार्थकै अभावका ज्ञान होवै तहां अभावज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना तिस अधिकरणमैं ता पदार्थका ज्ञान होवै नहीं। जैसैं आत्मामैं कर्तृत्वादिकनका अभावज्ञान हुआ न्यायादिक शास्त्र सुनैंभी प्रथम ज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुयेविना कर्त्ता भोक्ता आत्माहै। ऐसा ज्ञान होवै नहीं। जाकूं वेदांतअर्थ निश्चय करिकै नैयायिकादिकनकै कुसंगतैं कर्ता भोक्ता आत्माहै ऐसा ज्ञान होवैहै। तहां प्रथम ज्ञानमैं भ्रमबुद्धि होयकै होवैहै। प्रथम ज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना विरोधी ज्ञान होवै नहीं। सो भ्रमबुद्धि भ्रमरूप होवै अथवा यथार्थ होवै इसमैं आग्रह नहीं। परंतु भ्रमबुद्धिमैं भ्रमत्व निश्चय नहीं चाहिये यह आग्रहहै। इसरीतिसैं जिसकालमैं गुरुवाक्यनतैं जिज्ञासूकूं ऐसा दृढ़ निश्चय हुआहैः—आकाशादिक सकल प्रपंच गंधर्वनगरकी नांई दृष्टनष्टस्वभावहै तातैं विलक्षणस्वभाव आत्माहै। आकाशादिकनमैं आत्माका किंचित्‌भी सादृश्य नहीं। तिसकालमैं आकाश औ आत्माका सादृश्यज्ञान संभवै नहीं। यातैं उत्तम जिज्ञासूकै अनुकूल सिद्धांतकी उपमितिका उदाहरण मिलै नहीं॥

पूर्वउक्तवेदांतरीति औं न्यायरीतितैं विलक्षण उपमिति औ उपमानका लक्षण॥ ४॥

औ सर्वथा नैयायिक रीतिकी उपमितिमैं विद्वेष होवै तो उपमितिका यह लक्षण करना चाहियेः—सादृश्यज्ञानजन्यज्ञान अथवा वैधर्म्यज्ञानजन्यज्ञान इन दोनूंमैं कोई एक होवै सो उपमिति कहियेहै। खड्गमृगमैं उष्ट्रकै वैधर्म्यज्ञानतैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान होवैहै। पृथिवीमैं जलकै वैधर्म्यज्ञानतैं जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान होवैहै। यातैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका

वैधर्म्यज्ञान औ जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान उपमितिहै । ताका करण उपमान कहियेहै । इहां खड्गमृगमैं उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञान औ पृथिवीमैं जलका वैधर्म्यज्ञान करण होनैतैं उपमानहै और विपरीतभी उपमानउपमितिभाव संभवैहै । इंद्रियसंबद्धमैं सादृश्यज्ञान उपमानहै औ इंद्रियसैं व्यवहितमैं सादृश्यज्ञान उपमितिहै । तैसे प्रपंचमैं आत्माके वैधर्म्यज्ञानतैं आत्मातैं प्रपंचका वैधर्म्यज्ञान उपमिति होवैहै । इसरीतिसैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान दोनूंकूं उपमिति कहैं तौ जिज्ञासूकै अनुकूल उदाहरण संभवैहै ॥

वेदांतपरिभाषा औ ताकी टीकाकी उक्तिका खंडन ॥ ९ ॥

औ वेदांतपरिभाषामैं एक सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानही उपमितिका लक्षण कहाहै औ ताके व्याख्यानमैं ताके पुत्रनैं दूसरी उपमितिके खंडनवास्तै यह कहाहैः—जहां "कमलेन लोचनमुपमिनोमि" इस रीतिसैं उपमानउपमेयभाव होवै तिसीस्थानमैं **उपमान प्रमाण** होवैहै । वैधर्म्यज्ञान होवै तहां उपमानउपमेयभाव होवै नहीं । यातैं उपमान प्रमाण संभवै नहीं । ताकूं यह पूछा चाहियेः—वैधर्म्यज्ञानजन्य उपमितिके जो उदाहरण कहे तिनमैं उपमितिके विषयका ज्ञान उपमान प्रमाणसैं होवै नहीं । तौ किस प्रमाणतैं तिनका ज्ञान होवैहै । जा प्रमाणतैं तिनका ज्ञान कहै तिसीप्रमाणतैं सादृश्यज्ञानजन्य उपमितिकै विषयकाभी ज्ञान होय जावैगा । उपमानप्रमाणका प्रयोजनकै अभावतैं अनंगीकार चाहिये । जो ऐसैं कहै गवयकै प्रत्यक्षसमैं गौका सादृश्य तो प्रत्यक्षहै परंतु गौमैं गवयका सादृश्य प्रत्यक्ष नहीं । काहेतैं धर्मीके साथि इंद्रियका संयोग होवै तौ इंद्रियसंयुक्त तादात्म्यसंबंधसै सादृश्यधर्मका प्रत्यक्ष होवै । गोरूपधर्मीके साथि इंद्रियसंयोगके अभावतैं गौमैं गवयका सादृश्य प्रत्यक्षका विषय नहीं । यातैं गौमैं गवयकै सादृश्यज्ञानका हेतु गवयमैं गौका सादृश्यज्ञानरूप उपमानप्रमाण चाहिये तौ तैसैंही खड्गमृगमैं उष्ट्रकै वैधर्म्यका तो प्रत्यक्षज्ञानहै । उष्ट्रकै साथि इंद्रियसंयोगकै अभावतैं उष्ट्रमैं खड्गमृगकै वैधर्म्यका ज्ञान

प्रत्यक्षरूप संभवै नहीं । ताका हेतु खड्गमृगमैं उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञानरूप उपमानही प्रमाण मानना योग्यहै और जो वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं लिखाहैः- जा ज्ञानतैं उत्तर "उपमिनोमि" ऐसी प्रतीति ज्ञाताकूं होवै सो ज्ञान उपमितिहै । औ वैधर्म्यज्ञानजन्य वैधर्म्यज्ञानसैं उत्तर "उपमिनोमि" ऐसी प्रतीति होवै नहीं । यातैं उपमिति नहीं । सोभी अशुद्धहैः—काहेतैं मुखमैं चन्द्रके सादृश्य प्रत्यक्षसैं उत्तर " मुखं चंद्रेण उपमिनोमि " ऐसी प्रतीति होवैहै । औ मुखमैं चंद्रकै सादृश्यका प्रत्यक्ष ज्ञानहै उपमिति नहीं यातैं "उपमिनोमि" इस व्यवहारका विषय उपमालंकारहै । जहां उपमानउपमेयकी समान शोभा होवै तहां उपमालंकार कहियेहै । अलंकारका सामान्य लक्षण औ उपमादिकनके विशेष लक्षण अलंकारचंद्रिकादिकनमैं प्रसिद्धहैं । कठिन औ अनुपयोगि जानिकै इहां लिखे नहीं यातैं जहां " उपमिनोमि " ऐसी प्रतीति होवै ताका विषय उपमितिज्ञान नहीं । किंतु सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञानमैं उपमितिशब्द पारिभाषिकहै । शास्त्रकै संकेतकूं परिभाषा कहैहैं । परिभाषातैं बोधक शब्दकूं पारिभाषिक कहैहैं । जैसैं छंदोग्रंथनमैं पंचषट्सप्तमैं बाणरसमुनि शब्द पारिभाषिकहैं । तैसैं उपमिति शब्दभी न्यायशास्त्र औ अद्वैतशास्त्रमैं भिन्नभिन्न अर्थमैं पारिभाषिकहै । यातैं अद्वैतशास्त्रमैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानकी नांई वैधर्म्य ज्ञानजन्य ज्ञानभी उपमितिशब्दका अर्थहै ॥

भेदसहित समान धर्मकूं सादृश्य कहैहैं जैसैं गवयमैं गौके भेदसहित समान अवयव गवयमैं हैं । सोई गोका सादृश्यहै गौकै समानधर्म गौमैं है भेद नहीं । गोका भेद अश्वमैं है समान धर्म नहीं यातैं सादृश्य नहीं । चंद्रकै भेदसहित आल्हादजनकतारूप समानधर्म मुखमैंहै । सोई मुखमैं चंद्रका सादृश्यहै । इसरीतिसैं उपमान उपमेयका भेदसहित समान धर्मही सादृश्यपदका अर्थहै । और कोई ऐसैं कहैहैः—सादृश्य नाम कोई भिन्न पदार्थहै उपमान उपमेय वृत्तिहै उपमान-

उपमेयकैं निर्णीत धर्मनसैं भिन्नहै। सो समीचीन नहीं काहेतैं जहां दो पदार्थनमैं अल्प समान धर्म होवै तहां अपकृष्ट सादृश्य कहियेहैं। समान धर्म अधिक होवै तहां उत्कृष्ट सादृश्य कहियेहै। इसरीतिसैं समान धर्मनकी न्यूनता अधिकतासैं सादृश्यमैं अपकर्ष उत्कर्ष होवैहै। निर्णीत धर्मनसैं अतिरिक्त सादृश्य होवै तौ ब्राह्मणत्वादिक जातिकी नांई अखंड होवैगा तामैं अपकर्ष उत्कर्ष बनै नहीं। यातैं समान धर्मरूप सादृश्यहै। यह उदयनाचार्यका मत सिद्धांतमैं अंगीकरणीयहै॥

करणके लक्षणका निर्णय॥ ६॥

परंतु उपमितिशब्दकी परिभाषाका न्यायमतमैं औ अद्वैतमतमैं भेदहै उपमानशब्दका अर्थ दोनूं मतमैं यद्यपि भिन्न नहीं काहेतैं उपमितिका करण उपमान कहियेहै। सो न्यायमतमैं गवयपदकी वाच्यता ज्ञान उपमिति पदका पारिभाषिक अर्थहै। ताका करण वाक्यार्थानुभव वा सादृश्यविशिष्ट पिंड प्रत्यक्षहै। औ अद्वैतमतमैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान उपमितिपदका पारिभाषिक अर्थहै। ताका करण सादृश्यज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानहै। इसरीतिसैं उपमितिशब्दकी परिभाषामैं भेदहै। ताकै भेदतैं उपमानका भेद सिद्ध होवैहै। उपमानपद पारिभाषिक नहीं। किंतु यौगिकहै। व्याकरणकी रीतिसैं जो पद अवयव अर्थकूं त्यागै नहीं सो यौगिक पद कहियेहै। इहां व्याकरणकी रीतिसैं उपमितिका करण उपमानपदके अवयवनका अर्थहै। उपमानसैं उपमितिकी उत्पत्तिमैं व्यापार नहींहैं। यातैं व्यापारवत्कारणही करण होवैहै। यह नियम नहींहै। किंतु निर्व्यापारकारणभी करण होवैहै। यद्यपि न्यायमतनिरूपणके प्रसंगमैं व्यापारवाले असाधारण कारणकूंही करणता कहीहै। यातैं निर्व्यापार कारणमैं करणता संभवै नहीं। तथापि सिद्धांतमतमैं व्यापारसैं भिन्न असाधारण कारणकूं करणता

कही चाहिये । व्यापारवाले असाधारण कारणकूंही करणता नहीं। जैसैं व्यापारवत् कहेसैं व्यापारमैं करण लक्षण जावै नहीं । तैसैं व्यापारभिन्न कहेंभी व्यापारमैं करणलक्षण जावै नहीं । काहेतैं जैसैं व्यापारमैं व्यापारवत्ता नहीं है तैसैं व्यापारसैं भिन्नताभी व्यापारमैं नहीं है । इसरीतिसैं व्यापारभिन्न असाधारण कारण करण कहियेहै । सो निर्व्यापार होवै अथवा सव्यापार होवै प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीनि तो प्रत्यक्षप्रमा अनुमितिप्रमा शाब्दीप्रमाके व्यापारवाले कारणहैं । औ उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि ये तीनुं उपमितिआदिक प्रमाके निर्व्यापार कारणहैं । यातैं सिद्धांतकी रीतिसैं करणलक्षणमैं व्यापारवत् पदके स्थानमैं व्यापारभिन्न कहा चाहिये । औ न्यायमतमैं तो करणलक्षणकी व्यापारमैं अति व्याप्तिका परिहारके अर्थ व्यापारवत् पदका निवेश होवै अथवा व्यापारभिन्न पदका निवेश होवै दोनूं प्रकारसैं करणलक्षण संभवैहै । काहेतैं न्यायमतमैं उपमिति प्रमाके करण उपमान प्रमाणमैं वाक्यार्थ स्मृतिव्यापारहै । यह न्यायानुसारी उपमानके निरूपणमैं पूर्व कहाहै । यातैं उपमितिके करण उपमानमैं व्यापारवत् कहेंभी करणलक्षणकी अव्याप्ति नहीं । औ अर्थापत्तिका अनुमानमैं अंतर्भाव नैय्यायिक मानैहैं। यातैं अर्थापत्तिमैं प्रमा करणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं तामैं करणता व्यवहारकी अपेक्षा नहीं तैसैं अभावकी प्रमामैं अनुपलब्धिकूं सहकारी कारणही मानैहैं औ प्रमाकरणतारूप प्रमाणता अनुपलब्धिकूं नैय्यायिक मानैं नहीं किंतु अभावप्रमामैं अनुपलब्धिसहकृत इंद्रियादिकनकूं प्रमाणता मानैहैं । यातैं अनुपलब्धिमैंभी प्रमाकरणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं करणताव्यवहारकी अपेक्षा नहीं । या स्थानमैं यह निष्कर्षहैः—अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैं करणता व्यवहार इष्ट होवै औ करणका लक्षण नहीं होवै तौ करणलक्षणमैं अव्याप्ति दोष होवै अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैं प्रमाणता होवै तौ करणताकी अवश्य अपेक्षा होवै । काहेतैं प्रमाके करणकूं प्रमाण कहे-

हैं। यातैं प्रमाणतामैं करणताका प्रवेश होनेतैं करणता विना प्रमाणता संभवै नहीं। तिस प्रमाणताका न्यायमतमैं अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं अनंगीकार होनेतैं दोनूंमैं करणताव्यवहार अपेक्षित नहीं ॥ इस रीतिसैं करणतारहित अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं करणलक्षणके नहीं होनेतैं अव्याप्ति दोष होवै नहीं। इस रीतिसैं न्यायमतमैं व्यापारवत् असाधारण कारणकूं करणता कहैंभी अव्याप्ति नहीं औ सिद्धांतमैं तो व्यापारवत् कहे उपमानादिक तीनि प्रमाणोंमैं करणलक्षणकी अव्याप्ति होवैहै। काहेतैं सिद्धांतमतमैं इंद्रियसंबंधि गवयमैं गोका प्रत्यक्षरूप सादृश्यज्ञान उपमानप्रमाण है। औ व्यवहित गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति प्रमाहै। तैसैं इंद्रियसंबंधि पशुमैं व्यवहित पशुका वैधर्म्यज्ञान तो उपमान प्रमाणहै। औ व्यवहित पशुमैं इंद्रियसंबंधि पशुका वैधर्म्यज्ञान उपमितिप्रमाहै। इस प्रकारसैं उपमानतैं उपमितिकी उत्पत्तिमैं कोई व्यापार संभवै नहीं। औ उपमितिप्रमाके करणकूं उपमानप्रमाण कहैहैं। यातैं उपमानप्रमाणमैं करणता व्यवहार इष्टहै। तैसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैंभी प्रमाणता कहैंगे यातैं करणताव्यवहार इष्टहै औ व्यापारका संभव नहीं। यातैं उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं करणलक्षणकी अव्याप्ति होवैगी। यातैं करणके लक्षणमैं सिद्धांतरीतिसैं व्यापारवत् पदकूं त्यागिकै व्यापारभिन्न कहा चाहिये। वेदांतपरिभाषाग्रंथमैं धर्मराजनैं। "व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्" यह करणका लक्षण कहाहै। औ "प्रमाकरणं प्रमाणम्" यह प्रमाणका लक्षण कहाहै। औ धर्मराजके पुत्रनैं वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं यह कहाहैः—उपमितिका असाधारण कारण उपमानहै सो व्यापारहीन है। तैसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिभी व्यापारहीन कारणहै। यातैं उपमानादिक तीनिके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं। उपमितिप्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण उपमानहै। उपपादककी प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण अर्थापत्ति प्रमाणहै। अभावप्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण अनुपलब्धिप्रमाणहै। इस रीतिसैं उपमानादिक तनूंके व्यापा-

रवत् पदघटित लक्षण करै तौ तीनूंकूं व्यापारवत्त्वके अभावतैं उपमानादिकनके विशेष लक्षणोंका असंभव होवैगा । यातैं व्यापारवत्पदरहित विशेष लक्षणहैं । उपमितिप्रमाका असाधारण उपमानप्रमाण कहियेहै । इसरीतिसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिके लक्षणमैंभी व्यापारवत् नहीं कहना यातैं असंभव नहीं । इसरीतिसैं धर्मराजके पुत्रनैं उपमानप्रमाणादिकनके विशेष लक्षण तो यथासंभव कहे । औ करणका लक्षण तथा प्रमाणका सामान्य लक्षण जो मूलकारका पूर्व कहाहै तामैं कछू विलक्षणता कही नहीं । यातैं तिसके पुत्रकी उक्तिमैं न्यूनताहै । काहेतैं करणके लक्षणमैं विशेष कहेविना व्यापारवत्ताके अभावतैं उपमितिका करण उपमानहैं । औ अर्थापत्तिप्रमाका करण अर्थापत्तिहै । अभाव प्रमाका करण अनुपलब्धिहै । ऐसा व्यवहार नहीं हुआ चाहिये ॥ तैसैं करणताके अभावतैं उपमानादिकनमैं प्रमाणता व्यवहारभी नहीं हुआ चाहिये । यातैं मूलकारके करणलक्षणमैं व्यापारवत्पदका व्यापारभिन्नव्याख्यान करणैंमैं सर्वइष्टकी सिद्धि होवैहै । यातैं मूलकारके करणलक्षणमैं व्यापारवत्पदका विलक्षण अर्थ नहीं करणैंतैं पुत्रकी उक्तिमैं न्यूनताहै । औ हमारी रीतिसैं तो व्यापाररहित उपमानादिकनमैंभी उपमितिआदिक प्रमाकी करणता संभवैहै । इस रीतिसैं प्रपंचमैं ब्रह्मकी विधर्मताका ज्ञान उपमानहै । औ प्रपंचतैं विधर्म ब्रह्म है । यह उपमानप्रमाणका फल उपमिति ज्ञानहै ॥ इति श्रीमन्निश्चलदासाख्यसाधुविरचितेवृत्तिप्रभाकरेउपमाननिरूपणंनामचतुर्थःप्रकाशः॥ ४ ॥

अथ अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमप्रकाशप्रारंभः ॥ ५ ॥

न्यायमतमैं अर्थापत्तिका अनंगीकार त्रिधा अनुमानका वर्णन ॥ १ ॥

नैय्यायिकमतमैं पूर्वउक्त चारिही प्रमाणहैं । व्यतिरेकि अनुमानमैं

अर्थापत्ति प्रमाणका अंतर्भावहै । औ सिद्धांतमैं केवल व्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं । यातैं अर्थापत्ति भिन्न प्रमाणहै । केवलव्यतिरेकि अनुमानका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं सिद्ध होवैहै ॥ जहां अन्वय व्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं । औ साध्याभावमैं हेतुकै अभावकी व्याप्तिका उदाहरण मिलै सो केवलव्यतिरेकी अनुमान कहिये । जैसैं "पृथिवी इतरभेदवती गंधवत्त्वात्" या स्थानमैं । यत्र गंधवत्त्वं तत्रेतरभेदः । या अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं । काहेतैं पक्षसैं भिन्न दृष्टांत होवैहै । इहां सकलपृथिवी पक्षहै तासैं भिन्न जलादिकनमैं इतर भेद औ गंध रहै नहीं यातैं यह केवल व्यतिरेकी अनुमानहै ॥ "यत्र इतरभेदाभावः । तत्र गंधाभावः । यथा जले" इस रीतिसैं साध्याभावमैं हेतुकै अभावकी व्याप्तिज्ञानका हेतु जो सहचार ज्ञान सो जलादिकनमैं होवैहै । यातैं जलादिक उदाहरणहैं । व्याप्तिज्ञानका हेतु सहचारज्ञान जहां होवै सो उदाहरण कहियेहै । अन्वयि अनुमानमैं जैसा व्याप्यव्यापक भाव होवै तासैं विपरीत व्यतिरेकिमैं होवैहै । अन्वयिमैं हेतु व्याप्य होवैहै । औ साध्य व्यापक होवैहै । व्यतिरेकिमैं साध्याभाव व्याप्य होवैहै । औ हेत्वभाव व्यापक होवैहै । परंतु या स्थानमैं नैय्यायिकनके दो मतहैं । साध्याभावमैं हेतुकै अभावका सहचारदर्शन होवैहै । यातैं हेतुकै अभावकी व्याप्तिका ज्ञानभी साध्याभावमैं होवैहै । या पक्षमैं कोई नैय्यायिक यह दोष कहैहैः—जा पदार्थमैं जिसकी व्याप्तिका ज्ञान होवै ता हेतुसैं तिस साध्यकी अनुमिति होवैहै । जिन पदार्थनका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव जाना नहीं तिनका परस्पर हेतु साध्यभाव बनै नहीं । व्याप्यव्यापक भाव तो इतरभेदाभाव गंधाभावका औ गंध इतरभेदका हेतु साध्यभाव कहना आश्चर्यजनकहै । यातैं साध्याभाव हेत्वभावकै सहचारदर्शनतैंभी हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवैहै । अन्वयि व्यतिरेकी अनुमानका इतनाही भेदहैः—जहां हेतु साध्यकै सहचारज्ञानतैं हेतुमैं

व्याप्तिका ज्ञान होवैहै सो अन्वयि अनुमान कहियेहै। जहां साध्याभावमैं हेत्वभावकै सहचार दर्शनतैं हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै सो व्यतिरेकि अनुमान कहियेहै। साध्यभावमैं हेत्वभावकी व्याप्तिका ज्ञान कहुंभी होवै नहीं औ जहां साध्याभावमैं हेतुकै अभावकी व्याप्तिका ज्ञान होयजावै तहां साध्याभावतैं हेत्वभावकी अनुमितिही होवैहै। हेतुसैं साध्यकी अनुमिति होवै नहीं। काहेतैं व्याप्यज्ञानतैं व्यापककी अनुमिति होवैहै यह नियमहै। आदिपक्ष प्राचीनकाहै। द्वितीय पक्ष नवीनकाहै। अनुमानप्रकरणमैं न्यायग्रंथकै अध्ययन विना बुद्धिका प्रवेश होवै नहीं। यातैं कोई अर्थ अनुमानका हमनैं विस्तारसैं लिखा नहीं। इसरीतिसैं केवलव्यतिरेकि अनुमानके उदाहरणहै। औ जहां साध्याभाव हेत्वभावकै सहचारका उदाहरण मिलै नहीं सो केवलान्वयि अनुमान कहियेहै। जैसैं "घटः पदशक्तिमान् ज्ञेयत्वात् पटवत्" इहां साध्याभाव हेत्वभावका सहचार कहूं मिलै नहीं। न्यायमतमैं ज्ञेयता औ पदशक्ति सर्वमैं है। यातैं अभावनकै सहचारका उदाहरण मिलै नहीं। जहां दोनूंकै उदाहरण मिलै सो अन्वयव्यतिरेकि अनुमान कहियेहै। ऐसा प्रसिद्ध अनुमानहै "पर्वतो वह्निमान्" याकूं प्रसिद्धानुमान कहैहैं। इहां अन्वयकै सहचारका उदाहरण महानसहै। औ व्यतिरेककै सहचारका उदाहरण महान्ह्रदहै। इसरीतिसैं तीनिप्रकारका अनुमान नैय्यायिक कहैहैं॥

वेदांतरीतिसैं एकान्वयि (अन्वयव्यतिरेकि) अनुमान औ अर्थापत्तिका स्वीकार॥ २॥

वेदांतमतमैं केवलव्यतिरेकिका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं होवैहै। इतर भेदविना गंधवत्ता संभवै नहीं यातैं गंधवत्ताकी अनुपपत्ति इतरभेदकी कल्पना करैहै। इसरीतिसैं अर्थापात्ति प्रमाणतैं केवल व्यतिरेकि गतार्थहै। औ केवलान्वायि अनुमान कोई है नहीं काहेतैं सर्व पदार्थनका ब्रह्ममैं अभा-

वहै यातैं व्यतिरेकसहचारका उदाहरण ब्रह्म मिलैहै । यद्यपि वृत्ति-ज्ञानकी विषयतारूप ज्ञेयता ब्रह्मविषैहै ताका अभाव ब्रह्मविषै बनै नहीं तथापि ज्ञेयतादिक मिथ्याहैं । मिथ्या पदार्थ औ ताका अभाव एक अधिष्ठानमैं रहैहैं यातैं जिसकूं नैय्यायिक अन्वयव्यतिरेकि कहैहै सोई अन्वयि नाम एक प्रकारका अनुमानहै । यह वेदांतका मतहैं । या मतमैं केवलव्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं । अर्थापत्तिप्रमाणका अंगीकारहै । औ विचार दृष्टि करै तौ दोनूं माने चाहियें । काहेतैं जहां एक पदार्थकै ज्ञानके अनुव्यवसाय भिन्न होवैं तहां तिसपदार्थके ज्ञानोंके प्रमाण भिन्न होवैहैं । व्यवसायज्ञानका जनक प्रमाणभेदविना अनुव्य-वसायका भेद होवै नहीं । एक वन्हिका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब " वह्निं साक्षात्करोमि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । अनुमानजन्य ज्ञान होवै तब "वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । जहां शब्दतैं वह्निका ज्ञान होवै तहां " वह्निं शाब्दयामि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । औ जहां सूर्यमैं वन्हिकै सादृश्यज्ञानरूप उपमान प्रमाणतैं सूर्यसदृश वह्निका ज्ञान होवै तहां " सूर्येण वह्निमुपमिनोमि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । ज्ञानकै ज्ञानकूं अनुव्यवसाय कहैहैं । अनुव्यवसायका विषय जो ज्ञान होवै सो व्यवसाय कहियेहै । इसरीतिसैं व्यवसायज्ञानका जनक प्रमाण-कै भेदतैं अनुव्यवसायका भेद होवैहै । कदाचित् "गंधेन इतरभेदं पृथि-व्यामनुमिनोमि "ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । औ "गंधानुपपत्त्या इतर-भेदं पृथिव्यां कल्पयामि " कदाचित् ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसाय अनुमान प्रमाणजन्यहै तहां प्रथम अनुव्यवसाय होवैहै । जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसाय अ-र्थापत्तिप्रमाणजन्यहै । तहां द्वितीय अनुव्यवसाय होवैहै । इसरीतिसैं अनुव्यवसायके भेदतैं व्यवसायके भेदतैं व्यवसायज्ञानके जनक अनुमान अर्थापत्ति दोनूंहै । एककूं मानिकै दूसरेका निषेध बनैं नहीं औ

शब्दशक्तिप्रकाशिकादिकग्रंथनमैं अनुमानप्रमाणतैं शब्दप्रमाणका भेद अनुव्यवसायके भेदसैंही सिद्ध कहाहै । यातैं प्रमाणके भेदकी सिद्धिमैं अनुव्यवसायका भेद प्रबल हेतुहै । इसरीतिसैं अर्थापत्ति औ केवल व्यतिरेकि अनुमान दोनूं माने चाहिये । जहां विषयका प्रकाश एक प्रमाणतैं सिद्ध होवै तहां अपरप्रमाणका निषेध होवै नहीं । केवल व्यतिरेकिका स्वरूप संक्षेपतैं दिखायाहै ॥

अर्थापत्तिप्रमाण औ प्रमाका स्वरूपभेद अरु उदाहरण ॥ ३ ॥

अर्थापत्तिका यह स्वरूपहैः—जैसैं प्रमाण औ प्रमाका बोधक प्रत्यक्ष शब्दहै तैसैं अर्थापत्ति शब्दभी प्रमाण औ प्रमा दोनूंका बोधकहै । उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्य ज्ञानकूं अर्थापत्ति प्रमाण कहैहैं । उपपादक ज्ञानकूं अर्थापत्ति प्रमा कहैहैं । उपपादक संपादक पर्यायशब्दहैं । उपपाद्य संपाद्य पर्यायहैं । यातैं विचारसागरमैं संपादक ज्ञानकूं अर्थापत्ति कहाहै । तासैं विरोध नहीं । जिसविना जो संभवै नहीं तिसका सो उपपाद्य कहियेहै । जैसैं रात्रिभोजन विना दिवाअभोजी पुरुषमैं स्थूलता संभवै नहीं यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता उपपाद्यहै । जिसकै अभावसैं जाका अभाव होवै सो ताका उपपादक कहियेहै । जैसैं रात्रिभोजनकै अभावसैं स्थूलताका दिवाअभोजीकूं अभाव होवैहै । रात्रिभोजन स्थूलताका उपपादकहै । शंकाः—इसरीतिसैं व्यापककूं उपपादकता औ व्याप्यकूं उपपाद्यता सिद्ध होवैहै । उपपादक ज्ञानका हेतु उपपाद्यज्ञान अर्थापत्ति प्रमाणहै । या कहनेतैं व्यापकज्ञानका हेतु व्याप्यज्ञान अर्थापत्ति प्रमाणहै यह सिद्ध होवैहै । ऐसा अनुमानप्रमाणहै । अर्थापत्तिप्रमाणका अनुमानप्रमाणसैं भेद प्रतीत होवै नहीं । उत्तर—स्थूलता रात्रिभोजनका व्याप्यहै । औ स्थूलतावाला देवदत्तहै । ऐसे दो ज्ञान होयकै जहां रात्रिभोजनका ज्ञान होवै तहां अनुमितिज्ञानहै औ दिवाअभोजीपुरुषमैं रात्रि-

भोजन विना स्थूलताकी अनुपपत्तिहै ऐसैं ज्ञानतैं उत्तर रात्रिभोजनका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाहै । इसी कारणतैं प्रथम रीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर " स्थौल्येन रात्रिभोजनमनुमिनोमि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । द्वितीयरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर " स्थूलतानुपपत्त्या रात्रिभोजनं कल्पयामि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । इसरीतिसैं उपपाद्य अनुपपत्ति ज्ञानतैं उपपादक कल्पना अर्थापत्तिप्रमा कहियेहै । उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण कहियेहै । अर्थ कहिये उपपादकवस्तु ताकी आपत्ति कहिये कल्पना । या अर्थसैं अर्थापत्ति शब्दप्रमाका बोधकहै । तहां " अर्थस्य आपत्तिः " ऐसा षष्ठीतत्पुरुषसमासहै । औ " अर्थस्य आपत्तिर्यस्मात् " इस बहुव्रीहिसमासतैं अर्थकी कल्पना जिसतैं होवै सो उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञानरूप प्रमाण अर्थापत्तिशब्दका अर्थहै । अर्थापत्ति दो प्रकारकी है । एक दृष्टार्थापत्तिहै । दूसरी श्रुतार्थापत्तिहै । जहां दृष्ट उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां दृष्टार्थापत्ति कहियेहै । जैसैं दिवाअभोजी स्थूलमैं रात्रिभोजनका ज्ञान दृष्टार्थापत्तिहै । काहेतैं उपपाद्य स्थूलता दृष्टहै औ जहां श्रुत उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै। तहां श्रुतार्थापत्ति कहियेहै । जैसैं "गृहेऽसन् देवदत्तो जीवति" या वाक्यकूं सुनिके गृहसैं बाह्य देशमैं देवदत्तकी सत्ताविना गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन बनै नहीं । यातैं गृहमैं असत्देवदत्तके जीवनकी अनुपपत्तिसैं देवदत्तकी गृहतैं बाह्यसत्ता कल्पना करियेहै । तहां गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन दृष्ट नहीं किंतु श्रुतहै । श्रुत अर्थकी अनुपपत्तिसैं उपपादककी कल्पना श्रुतार्थापत्तिप्रमा कहियेहै । ताका हेतु श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिका ज्ञान श्रुतार्थापत्तिप्रमाण कहियेहै । या स्थानमैं गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन उपपाद्यहै । गृहतैं बाह्यसत्ता उपपादकहै । अभिधानानुपपत्ति औ अभिहितानुपपत्ति भेदतैं श्रुतार्थापत्ति दो प्रकारकी है।

"द्वारम्" अथवा "पिधेहि" इत्यादि स्थानमैं जहां वाक्यका एकदेश उच्चारित होवै एकदेश उच्चारित नहीं होवै तहां श्रुतपदके अर्थके अन्वययोग्य अर्थका अध्याहार होवैहै । अथवा अन्वययोग्य अर्थका बोधक जो पद ताका अध्याहार होवैहै । इनहीकूं क्रमतैं अर्थाध्याहारवाद औ शब्दाध्याहारवाद ग्रंथनमैं कहैहैं । परंतु अर्थके अध्याहारका ज्ञान वा पदके अध्याहारका ज्ञान अन्य प्रमाणतैं संभवै नहीं । अर्थापत्तिप्रमाणतैं होवैहै । इहां अभिधानानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिहै । काहेतैं अन्वयबोधफलवाले शब्दप्रयोगकूं अभिधान कहैहैं । "द्वारम्" इत्यादिक शब्द प्रयोगरूप अभिधानकी पिधानरूप अर्थके वा "पिधेहि " पदके अध्याहारविना अनुपपत्तिहै । अथवा या स्थानमैं एक पदार्थका दृष्टपदार्थांतरसैं अन्वयबोधमैं वक्ताका तात्पर्य अभिधानशब्दका अर्थहै ।"द्वारम्"इतना कहै तहां द्वारकर्मताका निरूपकता संबंधसैं पिधानान्वयिबोध श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्यरूप अभिधानहै । औ"पिधेहि"इतना कहै तहांभी पूर्वोक्त वक्ताका तात्पर्यरूप अभिधानहै । वक्ताके तात्पर्यरूप अभिधानकी अध्याहारविना अनुपपत्तिहै यातैं अभिधानानुपपत्ति कहियेहै । इहां अर्थका अध्याहार अथवा शब्दका अध्याहार उपपादकहै बोधफलक शब्द प्रयोग उपपाद्यहै । अथवा पूर्वउक्त तात्पर्य उपपाद्यहै । बोधफलक शब्दप्रयोगरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अथवा तात्पर्यरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अर्थ अथवा शब्दरूप उपपादककी कल्पनाहै । यातैं अध्याहृत अर्थका वा शब्दका अभिधानानुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं बोध होवैहै । जहां सारे वाक्यका अर्थ अन्य अर्थकल्पनविना अनुपपन्न होवै तहां अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिहै । जैसैं " स्वर्गकामोयजेत " या वाक्यका अर्थ अपूर्वकल्पनविना अनुपपन्नहै यातैं अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिहै । इहां यागकूं स्वर्गसाधनता उपपाद्यहै ताकी अनुपपत्तिसैं उपपादक अपूर्वकी कल्पनाहै औ स्वर्गसाधनता दृष्ट नहीं किंतु श्रुतहै । यातैं श्रुतार्थापत्तिहै ॥

अर्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण ॥ ४ ॥

श्रुतार्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण " तरति शोकमात्मवित् " यहहै । इहां ज्ञानतैं शोककी निवृत्ति श्रुतहै ताकी शोकमिथ्यात्वविना अनुपपत्तिहै यातैं ज्ञानतैं शोककी निवृत्तिका अनुपपत्तिसैं बंधमिथ्यात्वकी कल्पना होवैहै । बंधमिथ्यात्व उपपादकहै ज्ञानतैं शोकनिवृत्ति उपपाद्यहै सो दृष्ट नहीं किंतु श्रुतहै यातैं श्रुतार्थापत्तिहै । तैसैं महावाक्यनमैं जीवब्रह्मका अभेद श्रवण होवैहै । सो औपाधिकभेद होवै तौ संभवै स्वरूपसैं जीवब्रह्मका भेद होवै तौ संभवै । यातैं जीवब्रह्मके अभेदकी अनुपपत्तिसैं भेदका औपाधिकत्वज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणजन्यहै । इहां जीवब्रह्मका अभेद उपपाद्यहै भेदमैं औपाधिकता उपपादकहै सारे उपपाद्यज्ञानप्रमाणहै । उपपादकज्ञान प्रमाहै । इहां जीवब्रह्मका अभेद विद्वान्कूं दृष्टहै । अन्यकूं श्रुतहै यातैं दृष्टार्थापत्ति औ श्रुतार्थापत्ति दोनूंका उदाहरणहै । जहां वाक्यमैं पदका वा अर्थका अध्याहार नहीं होवै औ अन्य अर्थकी कल्पना विना वाक्यार्थकी अनुपपत्ति होवै । तहां अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति होवैहै । यातैं "द्वारम्" इस एक उदाहरणविना अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिके उदाहरणहैं तैसैं रजतके अधिकरण शुक्तिमैं रजतका निषेध दृष्टहै । सो रजतके मिथ्यात्वविना संभवै नहीं । यातैं निषेधकी अनुपपत्तिसैं रजतमिथ्यात्वकी कल्पना होवैहै । यह दृष्टार्थापत्तिका उदाहरणहै । इहां रजतनिषेध उपपाद्यहै औ मिथ्यात्व उपपादकहै औ मनके विलयसैं अनंतर निर्विकल्प समाधिकालमैं अद्वितीय ब्रह्ममात्र शेष रहैहै । सकल अनात्मवस्तुका अभाव होवैहै सो अनात्मवस्तु मानस होवै तो मनके विलयतैं ताका अभाव संभवै जो मानस नहीं होवै तौ मनके विलयतैं अभाव होवै नहीं काहेतैं अन्यके विलयतै अन्यका अभाव होवै नहीं यातैं मनके विलयतैं सकल द्वैताभावकी अनुपपत्तिसैं सकल द्वैत मनोमात्रहै यह कल्पना होवैहै । या स्थानमैं मनके

विलयतैं सकल द्वैतका विलय उपपाद्यहै ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणहै। सकल द्वैतकूं मानसता उपपादकहै ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाहै । या स्थानमैं उपपादक प्रमाका असाधारण कारण अर्थापत्तिप्रमाणहै सो निर्व्यापारहै तौभी तामैं उपपादक प्रमाकी करणता संभवैहै । यह उपमाननिरूपणमैं कह्याहै ॥ ॥ इति श्रीमन्निश्चलदासाख्यसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरेअर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणंनामपंचमःप्रकाशः ॥ ५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

अथ अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणनामकषष्ठप्रकाशप्रारंभः॥ ६ ॥

अभावका सामान्यलक्षण औ भेद ॥ १ ॥

अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावकी प्रमा होवैहै यातैं अभावकी प्रमाके असाधारण कारणकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहैहैं । न्यायवेदांतके संस्कारहीन अभावके स्वरूपकूं जानै नहीं यातैं प्रथम अभावका स्वरूप कहैहैं । निषेधमुख प्रतीतिका विषय होवै अथवा प्रतियोगि सापेक्ष प्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहियेहै प्राचीन मतसैं प्रथम लक्षणहै नवीन मतमैं ध्वंस औ प्रागभावनशब्दजन्य प्रतीतिके विषय नहीं यह अर्थ आगै स्पष्ट होवैगा । यातैं दूसरा लक्षण कह्याहै । प्रतियोगिकूं त्यागिकै अभावकी प्रतीति होवै नहीं यातैं प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिके विषय सकल अभावहैं । यद्यपि अभावकी नांई संबंध औ सादृश्यभी प्रतियोगिनिरपेक्ष प्रतीतिके विषय नहीं किंतु प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिके विषयहैं तिनमैं अभावलक्षण जावैहै तथापि संबंध औ सादृश्यकी प्रतियोगितासैं अभावकी प्रतियोगिता विलक्षणहै सो न्यायग्रंथनमैं अभावाभावरूपता अभावकी प्रतियोगिताका स्वरूप आचार्यनैं लिखाहै ऐसी प्रतियोगिता संबंधकी औ सादृश्यकी है नहीं यातैं संबंधकी औ सादृश्यकी प्रतियोगितासैं विलक्षण प्रतियोगितावाला जाका प्रतियोगि होवै सो अभाव कहियेहै । स्थूलरीति यह हैः— संबंधसादृश्यतैं भिन्न होवै औ प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहियेहै सो अभाव दो प्रकारका है । एक संसर्गाभावहै।

दूसरा अन्योन्याभावहै । तिनमैं अन्योन्याभाव तो एकहीविधहै । संसर्गाभावके चारी भेदहैं एक प्रागभावहै १ प्रध्वंसाभावहै २ सामयिकाभावहै ३ अत्यंताभावहै ४ इसरीतिसैं चारि प्रकारका संसर्गाभाव औ अन्योन्याभाव मिलिकै पांच प्रकारका अभावहै । कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका अभावहै औ कच्चे कपालमैं रक्तरूपकी उत्पत्तिसैं पूर्व रक्तरूपका अभावहै सो प्रागभावहै । घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर मुद्गरादिकतैं कपालमैं घटका अभावहै सो प्रध्वंसाभावहै । औ पक्व कपालमैं श्यामरूपका अभाव होवैहै सो श्यामरूपका प्रध्वंसाभावहै नैयायिकमतमैं प्रध्वंसाभाव सादि है औ अनंतहै। काहेतैं घटकै ध्वंसकी उत्पत्ति तो मुद्गरादिकनतैं होवैहै यह अनुभवसिद्धहै औ ध्वंसका ध्वंस संभवै नहीं काहेतैं प्रागभाव प्रतियोगि ध्वंस इन तीनूंमैं एकका अधिकरणकाल अवश्य होवैहै । प्रागभावध्वंसका अनाधारकाल प्रतियोगिका आधार होवैहै यह नियमहै । जैसैं घटकी उत्पत्ति हुये नाशतैं पूर्व घटकै प्रागभावका अनाधारकालहै । काहेतैं प्रागभावका नाश होगया औ घटका ध्वंस हुआ नहीं यातैं घट ध्वंसका अनाधारकालहै सो घटका आधारकालहै । जो घटकै ध्वंसका ध्वंस मानैं तौ घटध्वंसकै ध्वंसका अधिकरणकाल घटप्रागभावका औ घटध्वंसका अनाधार होनेतैं घटका आधार हुआ चाहिये । इसरीतिसैं ध्वंसका ध्वंस माने प्रतियोगिका उन्मज्जन हुआ चाहिये इसीवास्ते प्रागभावकूं अनादि मानैहैं । जो सादि मानैं तौ प्रागभावकी उत्पत्तिसैं प्रथमकाल प्रागभाव औ ध्वंसका अनाधार होनेतैं प्रतियोगिका आधार हुआ चाहिये । यातैं प्रागभाव अनादि सांतहै । ध्वंस अनंत सादिहै भूतलादिकनमैं जहां कदाचित् घट होवै तहां घटशून्यकालमैं घटका सामयिकाभावहै । किसी समयमैं होवै सो सामयिकाभाव कहियेहै । वायुमैं रूप कदाचित्भी होवै नहीं यातैं वायुमैं रूपका अत्यंताभावहै । घटसैं इतर पदार्थनमैं जो घटका भेद सो घटका अन्योन्याभावहै । सामयिका-

भाव तो सादि सांतहै । अत्यंताभाव अन्योन्याभाव दोनूं अनादि अनंतहैं । इसरीतिसैं पांच प्रकारका अभावहै ॥

प्राचीन न्यायमतमैं अभावके परस्पर विलक्षणता-की साधकप्रतीति ॥ २ ॥

तिनकी परस्पर विलक्षणताकी साधक विलक्षण प्रतीति कहैहैं:—कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व " कपाले घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवैहै । ताका विषय घटका प्रागभावहै । काहेतैं प्रतियोगिके उपादानकारणमैं सामयिकाभाव औ अत्यंताभाव तो रहै नहीं यह अर्थ आगे कहैंगे । किंतु अपनैं प्रतियोगिकै उपादानकूं त्यागिकै अन्यस्थानमैं दोनूं अभाव रहैहैं । यातैं " कपाले घटो नास्ति " इस प्रतीतिके विषय सामयिकाभाव अत्यंताभाव नहीं । औ घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व ध्वंसका संभव नहीं काहेतैं ध्वंसका प्रतियोगि निमित्तकारण होवैहै । कारणतैं पूर्व कार्य संभवै नहीं यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय घटध्वंसभी नहीं । औ घटका अन्योन्याभाव यद्यपि कपालमैं सर्वदाहै तथापि " कपालो न घटः " ऐसी अन्योन्याभावकी प्रतीति होवैहै " कपाले न घटः " ऐसी प्रतीति अन्योन्याभावकी होवै नहीं । जो ऐसी प्रतीतिका विषयहै सो प्रागभाव कहियेहै । तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै तब " कपाले घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवैहै ताका विषय प्रागभाव नहींहै काहेतैं प्रागभावका नाश प्रतियोगिरूप होवैहै । घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर प्रागभावका संभव नहीं औ जो तीनि अभावहैं तिनकाभी पूर्व उक्त प्रकारसैं संभव नहीं । यातैं मुद्गरादिजन्य घटके अदर्शनकालमैं " कपाले घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवैहै ताका विषय प्रध्वंसाभावहै । इसरीतिसैं प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावभी नशब्दजन्य प्रतीतिके विषयहैं यह प्राचीनका मतहै ॥

नवीनन्यायमतमैं अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधकप्रतीति ॥ ३ ॥

औ नवीन मतमैं प्रतियोगिकै उपादान कारणमैंभी अत्यंताभाव रहैहै। काहेतैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोधहै। अन्यतैं नहीं । जहां प्रतियोगी नहीं होवै तहां सारै अत्यंताभाव होवैहै ।यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व औ प्रतियोगिकै नाशकालमैं भी प्रतियोगीका अत्यंताभाव होनैंतैं " कपाले घटो नास्ति " इस प्रतीतिका विषय अत्यंताभावहै । ऐसी प्रतीतिसैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावकी सिद्धि होवै नहीं। किंतु " कपाले घटो भविष्यति " ऐसी प्रतीति घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व होवैहै । ताका विषय प्रागभावहै। औ " घटो ध्वस्तः "ऐसी प्रतीतिका विषय ध्वंसहै। इसरीतिसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमैं घटका अत्यंताभाव औ प्रागभाव दोनूंहैं । तिनमैं " कपाले घटो नास्ति " इस प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका अत्यंताभावहै औ " कपाले घटो भविष्यति " इस प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका प्रागभावहै तैसैं मुद्गरादिकनतैं कपालमैं घटका अदर्शन होवै तिसकालमैं भी " कपाले घटो नास्ति । कपाले घटो ध्वस्तः " इसरीतिसैं द्विविध प्रतीति होवैहै तिनमैं आद्य प्रतीतिका विषय घटका अत्यंताभावहै । औ द्वितीय प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका प्रध्वंसाभावहै । इसरीतिसैं नवीन मतमैं प्रागभाव प्रध्वंसाभाव नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय नहीं यातैं प्रथम लक्षण प्राचीनमतकै अनुसारीहै उभयमतानुसारी द्वितिय लक्षणहै यातैं द्वितीय लक्षणही समीचीनहै ॥

अभावका द्वितीय लक्षण औ विलक्षणप्रतीति ॥ ४ ॥

संबंध औ सादृश्यतैं भिन्न जो अन्यसापेक्ष प्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहियेहै । यह द्वितीय लक्षणहै " भूतले घटो नास्ति " इस प्रतीतिके विषय प्रागभाव औ ध्वंस नहीं काहेतैं प्रतियोगिके उपादानमैं दोनूं अभाव रहैहैं । घटाभावके प्रतियोगी घटका उपादान भूतल नहीं यातैं उक्त प्रतीतिके विषय दोनूं अभाव नहीं । अत्यंताभाव अन्योन्याभाव तो नित्यहै । औ भूतलमैं घटाभाव अनित्यहै । यातैं घटका सामयिकाभावही उक्त प्रतीतिका विषयहै "वायौ रूपं नास्ति " इस प्रतीति

का विषय केवल अत्यंताभावहै। अनंत होनेतैं प्रागभाव नहीं। अनादि-तासैं ध्वंस नहीं। सर्वदा होनेतैं सामयिकाभाव नहीं यातैं उक्त प्रतीतिका विषय अत्यंताभावहै। तैसैं " वायुर्न रूपवान् " इस प्रतीतिका विषय अन्योन्याभावहै उक्त प्रतीतिसैं वायुमैं रूपवत्का भेद मानैहै। तैसैं "घटः पटो न" या प्रतीतिका विषय अन्योन्याभावहै। अन्योन्याभावकूंही भेद कहैहै॥

अन्योन्याभावलक्षणा औ तामैं शंकासमाधान ॥ ८ ॥

अभेदका निषेधक जो अभाव सो अन्योन्याभाव कहियेहै " घटः पटो न" ऐसा कहनैतैं घटमैं पटके अभेदका निषेध होवैहै यातैं घटमैं पटके अभेदका निषेध घटमैं पटका अन्योन्याभावहै; काहेतैं नशब्दविना जामैं जो प्रतीत होवै नशब्दसैं ताका निषेध होवैहै। जैसैं नशब्दविना "घटः पटः" या वाक्यतैं "नीलो घटः" इत्यादिकनकी नांई पटमैं घटका अभेद वा घटमैं पटका अभेद प्रतीत होवैहै। तिस अभेदका निषेध नश-ब्दसैं होवैहै। परंतु इतना भेदहैः—जा पदसैं नशब्दका संबंध होवै ता पदके अर्थके अभेदका निषेध होवैहै। जैसैं "घटः पटो न" या वाक्य-मैं पटपदसैं नशब्दका संबंधहै तहां घटमैं पटपदके अर्थके अभेदका निषेध होवैहै औ " पटो घटो न " या वाक्यमैं नशब्दका संबंध घटपदसैं है। तहां घटपदके अर्थके अभेदका निषेध पटमैं होवैहै। इसी-वास्तै "घटः पटो न" या वाक्यतैं जो अन्योन्याभाव प्रतीत होवै ताका घट अनुयोगिहै। औ पट प्रतियोगिहै। तैसैं " पटो घटो न " या वाक्यतैं प्रतीत हुये अन्योन्याभावका पट अनुयोगिहै। घट प्रतियोगिहै। जामैं अभाव होवै सो अभावका अनुयोगि कहियेहै। जाका अभाव होवै सो प्रतियोगि कहियेहै॥

शंकाः—जाका निषेध करिये ताका अभाव कहियेहै। सोई अभावका प्रतियोगि कहिये। औ पूर्व यह कहाः-- " घटः पटो न " या वाक्यतैं घ-टमैं पटके अभेदका निषेध करियेहै। औ " पटो घटो न " या वाक्यतैं पटमैं

घटके अभेदका निषेध करियेहै । यातैं "घटः पटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अभावका प्रतियोगी पटका अभेदहै पट नहीं । तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अभावका प्रतियोगी घटका अभेदहै घट नहीं । यातै दोनूं वाक्यनमैं अभेदका निषेध कहें पटमैं औ घटमैं क्रमतैं प्रतियोगिता-कथनसैं विरोध होवैगा ॥

ताका समाधानः—अभेद नाम असाधारणधर्मकाहै । जो अपने आत्मा विना किसी पदार्थमैं नहीं रहै केवल अपनेमैं ही रहै सो अपना असाधारण धर्म कहियेहै । घटका अभेद घटमैंही रहै है । अन्यमैं नहीं । यातैं घटका अभेद घटका असाधारण धर्महै । सो असाधारणधर्मरूप अभेदही सकल पदार्थनका अपनैंमैं संबंधहै । इसरीतिसैं सारे पदार्थनका असाधारणधर्मरूप अभेदसंबंध अपनैं स्वरूपमैं रहैहै । जा पदार्थका जो संबंध जामैं रहैहै सो पदार्थ ता संबंधसैं तिसमैं रहैहैं । जैसैं घटका संयोगसंबंध भूतलमैं होवै तहां संयोगसंबंधसैं "भूतलमैं घट रहैहै" यह व्यवहार होवैहै । यातैं घटका भूतलमैं संयोगसंबंधहै औ संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घटहै । या कहनेमैं अर्थका भेद नहीं । तैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घटाभावहै औ भूतलमैं घटसंयोगका अभावहै या कहनैमैं एकही अर्थहै । इस प्रकारतैं पटमैं अभेदसंबंधतैं घटाभाव औ घटके अभेदसंबंधका पटमैं अभाव दोनूं समनियत होनेतैं एकही पदार्थहै । समनियतअभावनका भेद होवै नहीं । जैसैं घटत्वात्यंताभाव औ घटान्योन्याभाव दोनूं घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमैं रहैहैं । यातैं समनियत होनेतैं परस्पर भिन्न नहीं किंतु एकहीं अभावमैं घटत्वात्यंताभावत्व औ घटान्योन्याभावत्व दो धर्महैं । औ एकही अभावके घटत्व औ घट दोनूं प्रतियोगीहै । घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं जिस अभावका घटत्व प्रतियोगीहै तिसी अभावका घटान्योन्याभावत्वरूपतैं घटभी प्रतियोगिहै । औ जिस रीतिसैं एकही अभावके रूपभेदसैं दो प्रतियोगीहैं तैसैं

रूपभेदसैं एकही अभावकै प्रतियोगितावच्छेदक दो संबंधहैं । घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंधहै। औ घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंधहै। इसरीतिसैं पटादिक सकल पदार्थनमैं घटाभेदका अत्यंताभाव औ घटान्योन्याभावभी एकहैं तिस एक अभावमैं घटाभेदात्यंताभावत्व औ घटान्योन्याभावत्व दो धर्महैं । औ घटाभेदात्यंताभावत्वरूपतैं तिस अभावका घटाभेद प्रतियोगीहै । प्रतियोगितावच्छेदक स्वरूपसंबंधहै औ घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका घट प्रतियोगीहै। प्रतियोगितावच्छेदक अभेद संबंधहै। तिस अभेदसंबंधकूंही तादात्म्य कहैहैं। तद्व्यक्तित्व कहैहैं । इसरीतिसैं घटके अभेदके निषेधका घट प्रतियोगीहै। यह कथनभी संभवैहै। विरुद्ध नहीं ॥

या स्थानमैं यह निष्कर्षहैः—जिस वाक्यतैं नशब्दविना जा पदार्थमैं जा संबंधसैं जो पदार्थ प्रतीत होवै नशब्दसहित तिस वाक्यतैं ता पदार्थमैं ता संबंधसैं तिस पदार्थका निषेध प्रतीत होवैहै । जैसैं " नीलो घटः " यावाक्यतैं घट पदार्थमैं अभेदसंबंधसैं नीलपदार्थ प्रतीत होवैहै। काहेतैं अभेदसंबंधसैं नीलविशिष्ट घटहै। यह वाक्यका अर्थहै नसहित " घटो न नीलः " यावाक्यतैं अभेदसंबंधतैं नीलका निषेध घटमैं प्रतीत होवैहै । तैसैं " घटः पटः " या वाक्यतैंभी नशब्दविना पटपदार्थमैं अभेदसंबंधतैं घटपदार्थ प्रतीत होवैहै काहेतैं जहां दोनूं पदनमैं समान विभक्ति होवै तहां एक पदार्थमैं अभेदसंबंधसैं अपर पदार्थ प्रतीत होवैहै यह नियमहै। " नीलो घटः " या वाक्यकी नांई " घटः पटः " या वाक्यमैं दोनूं पद समानविभक्तिवाले हैं । यातैं नशब्दविना " घटः पटः " या वाक्यतैंभी पटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं घटपदार्थ प्रतीत होवैहै । यद्यपि अभेदसंबंधसैं पटपदार्थमैं घटपदार्थ संभवै नहीं । तथापि एक पदार्थमैं अभेदसंबंधसैं अपरपदार्थकी प्रतीतिकी सामग्री समान विभक्तिहै सो " घटः पटः " या वाक्यमैंभी है यातैं नशब्दविना " घटः

पटः " या वाक्यतैं पटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं घट प्रतीत होवैहै । परं पटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं घटपदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप होवैगी प्रमा नहीं । यातैं नशब्दविना एक पदार्थमैं जा संबंधसैं अपरपदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप वा प्रमारूप होवै तहां नशब्द मिलें एक पदार्थमैं तासंबंधसैं अपरपदार्थका निषेध होवैहै । इसरीतिसैं एक पदार्थमैं अभेदसंबंधसैं अपरपदार्थका निषेधक अभाव अन्योन्याभाव कहियेहै ॥

नवीन रीतिसैं संसर्गाभावके चारि भेद औ तिनके लक्षण औ परीक्षा ॥ ६ ॥

तासैं भिन्न जो अभाव ताकूं संसर्गाभाव कहैहैं। संसर्गाभाव प्राचीनमतमैं चारि प्रकारका हैः—अनादि सांत जो अभाव सो प्रागभाव कहियेहै। अपनैं प्रतियोगिकै उपादानकारणमैं प्रागभाव रहैहैं । जैसैं घटके प्रागभावका प्रतियोगि घटहै ताके उपादानकारण कपालमैं घटका प्रागभाव रहैहै। कपालकी उत्पत्तिसैंभी प्रथम कपालके उपादानकारणमैं घटका प्रागभाव रहैहै । इसरीतिसैं सृष्टितैं प्रथम घटारंभक परमाणुसमुदायमैं घटका प्रागभाव रहैहै । औ परमाणु घटकै मध्य जो द्व्यणुकादि कपालांत अवयवीहै । तिन सर्वके प्रागभाव सृष्टितैं प्रथम परमाणुमैं रहैहै । इसरीतिसैं प्रागभाव अनादि कहिये उत्पत्तिरहितहै । औ सांत कहिये अंतवालाहै । अंतनाम ध्वंसका है जाकूं नाश कहैहैं । जो घटकी उत्पत्तिकी सामग्री तासैं घटके प्रागभावका अंत होवैहै । यातैं घटके प्रागभावका अंत घटरूपहीहै । घटके प्रागभावका ध्वंस घटसैं पृथक् नहीं । यद्यपि प्रध्वंसाभाव अनंतहै औ घट सांतहै ॥ घटकै प्रागभावका ध्वंस घटरूप होवै तो प्रध्वंसाभावभी सांत होवैगा । प्रध्वंसाभाव अनंतहै या नियमका भंग होवैगा तथापि ध्वंस नाश अंत ये पर्यायशब्दहैं । सो ध्वंस दोप्रकार होवैहै । एकतो भावपदार्थका नाशरूपध्वंस होवैहै । औ दूजा अभावका नाशरूपध्वंस होवैहै । भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस तो अभावरूप होवैहै । ताहीकूं प्रध्वंसाभाव कहैहैं । जैसैं घटादिक

भावपदार्थनका नाश अभावरूपहै ताकूं प्रध्वंसाभाव कहैहैं। औ अभाव पदार्थका नाशरूपध्वंस भावरूप होवैहै ताकूं ध्वंसप्रध्वंस तो कहैहैं। औ ध्वंसाभाव प्रध्वंसाभाव कहै नहीं। जैसैं घटका प्रागभाव अभावपदार्थहै। ताका नाशरूप ध्वंस घटहै सो भावरूपहै। ताकूं प्रध्वंसाभाव नहीं कहैहैं। किंतु घटके प्रागभावका नाशरूप घटकूं स्वप्रागभावका ध्वंस औ प्रध्वंस ही कहैहैं। इसरीतिसैं दो प्रकारका ध्वंस होवैहै। तिनमैं भावरूप ध्वंस तो सांतहै। परंतु अभावरूप ध्वंस अनंतहै यातैं घटकै प्रागभावका ध्वंस घटरूप तो सांतहै। तथापि प्रध्वंसाभाव अनंतहै। या नियमकी हानि नहीं। इसरीतिसैं अनादि सांत जो अभाव सो प्रागभाव कहियेहै। अनादि अभाव तो अत्यंताभावभी है सो सांत नहीं औ सांत अभाव सामयिकाभावभीहै सो अनादि नहीं औ वेदांतसिद्धांतमैं अनादि औ सांत मायाहै सो अभाव नहीं किंतु जगत्का उपादानकारण मायाहै जो अभावरूप माया होवै तौ उपादानकारणता संभवै नहीं। काहेतैं घटादिकनके उपादानकारण कपालादिक भावरूपही प्रसिद्धहैं। अभाव किसीका उपादानकारण नहीं। यातैं माया अभावरूप नहीं किंतु भावरूपहै। यद्यपि माया भावअभावसैं विलक्षण अनिर्वचनीयहै यातैं भावरूपताभी मायाविषै संभवै नहीं। तथापि अभावरूप माया नहीं यातैं प्रागभावकै लक्षणमैं अभावपदकै प्रवेशतैं मायामैं प्रागभावका लक्षण जावै नहीं। औ माया भावरूप नहीं या कथनका यह अभिप्रायहै। कालत्रयमैं जाका बाध न होवै सो परमार्थ सत् कहियेहै औ भाव कहियेहै ऐसा ब्रह्महै। माया नहीं। काहेतैं ज्ञानतैं उत्तरकालमैं मायाका बाध होवैहै। यातैं परमार्थ सत्स्वरूपभावतौ यद्यपि माया नहीं तथापि विधिमुख प्रतीतिका जो विषय होवै सोभी सत् कहियेहै औ भावभी कहियेहै। निषेधमुख प्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहियेहै। निषेधमुख प्रतीतिकी विषयता मायामैं नहीं। यातैं मायाभी भावरूपहै॥

यद्यपि माया प्रकृति अविद्या अज्ञान ये शब्द पर्यायहैं। औ अ-

विद्या अज्ञान शब्दनमैं अकार निषेधका वाचक है । यातैं मायाभी निषेध-मुखप्रतीतिका विषय होनेतैं अभावरूप कही चाहिये । तथापि अकारका केवल निषेध अर्थ नहींहै किंतु विरोधि भेदवान् अल्पभी अकारके अर्थहैं । जैसैं अधर्म शब्दमैं अकारका विरोधी अर्थहै । धर्मविरोधीकूं अधर्म कहैहैं। औ " अब्राह्मणो नाचार्यः " या स्थानमैं अकारका भेदवान् अर्थहै । ब्राह्मणसैं भिन्न आचार्यताके योग्य नहीं यह वाक्यका अर्थहै । औ "अनुदरा देवदत्तकन्या" या स्थानमैं अकारका अल्प अर्थहै। अल्पउदरवाली देवदत्तकी कन्याहै।यह वाक्यका अर्थहै । जैसैं इतने स्थानोंमैं अकारका निषेध अर्थ नहीं । तैसैं अविद्या शब्द औ अज्ञान शब्दमैंभी अकारका निषेधअर्थ नहीं किंतु विरोधी अर्थहै । मायाका ज्ञानसैं वध्यघातकभाव विरोधहै।यातैं अज्ञान कहैहैं माया वध्यहै । औ ज्ञान घातकहै । वेदांतवाक्यजन्यब्रह्माकारवृत्तिकूं विद्या कहैहैं । सो मायाकी विरोधिनी है। यातैं अविद्या कहैहै । अज्ञानशब्द औ अविद्याशब्दका वाच्यभी मायाहै । तौभी अकारका विरोधी अर्थ होनेतैं माया भावरूपहै । भावरूपभी ब्रह्मकी नांई परमार्थसत्वरूप नहीं किंतु विधिमुखप्रतीतिका विषय होनैतैं व्यावहारिक सत्‌रूपहै ॥

प्रागभावके लक्षणमैं अभावपद नहीं होता तौ मायामैं लक्षणकी अतिव्याप्ति होती; काहेतैं माया अनादिहै औ सांत है यातैं अनादि सांत जो अभाव सो प्रागभाव कहियेहै । सादि अनंत जो अभाव सो प्रध्वंसाभाव कहियेहै । घटादिकनका ध्वंस मुद्गरादिकनतैं होवैहै यातैं सादि है औ अनंततामैं युक्तिपूर्वकहीहै । अनंत अभावकूं प्रध्वंसाभाव कहैं तौ अत्यंताभावमैं अतिव्याप्ति होवैगी । यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं सादि कह्या चाहिये । अत्यंताभाव सादि नहीं । किंतु अनादिहै । औ सादि अभावकूं प्रध्वंसाभाव कहै तौ सादि अभाव सामयिकाभावभी है तहां अतिव्याप्ति होवैगी। सामयिकाभाव अनंत नहीं किंतु सांत है सादि अनंतकूं प्रध्वंसाभाव कहैं तौ मोक्षमैं अतिव्याप्ति होवैगी काहेतैं ज्ञानतैं मोक्ष होवैहै यातैं

सादि है औ मुक्तकूं फेरि संसार होवै नहीं यातैं अनंतहै। परंतु मोक्ष भावरूपहै अभावरूप नहीं यातैं प्रध्वंसाभावकै लक्षणमैं अभाव कह्या चाहिये। यद्यपि अज्ञान औ तिसकै कार्यकी निवृत्तिकूं मोक्ष कहैहैं। औ निवृत्ति नाम ध्वंसका है यातैं मोक्षभी अभावरूपहै। यातैं प्रध्वंसाभावकै लक्षणमैं अभावपद नहीं गेरैं तौभी मोक्षमैं अतिव्याप्तिरूप दोष नहीं काहेतैं अलक्ष्यमैं लक्षण जावै ताकूं अतिव्याप्ति कहैहैं अज्ञान औ ताकै कार्यकै ध्वंस मोक्षकूं लक्ष्यता स्पष्टही है। सकलनाश ध्वंसाभावके लक्षणके लक्ष्य है। सकलनाशनके अंतर्भूतही कार्यसहित अज्ञानका नाशरूप मोक्षहै तथापि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै। अज्ञान औ ताका कार्य कल्पितहै यातैं तिन्हकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूपहै। यातैं अभावरूप मोक्ष नहीं किंतु ब्रह्मरूप होनेतैं भावरूपहै। तामैं ध्वंसका लक्षण जावैतौ अतिव्याप्ति होवैगी। यातैं सादि अनंत जो अभाव सो प्रध्वंसाभाव कहियेहै। उत्पत्ति औ नाशवाला जो अभाव सो **सामयिकाभाव** कहियेहैं। जहां किसी कालमैं पदार्थ होवै औ किसीकालमैं न होवै तहां पदार्थशून्यकालमैं तिस पदार्थका **सामयिकाभाव** होवैहै। जैसैं भूतलादिकनमैं घटादिक किसी कालमैं होवैहैं किसी कालमैं नहीं होवैहैं तहां घटशून्यकालसंबंधी भूतलादिकनमैं घटादिकनका सामयिकाभावहै। समयविशेषमैं उपजै औ समयविशेषमैं नष्ट होवै सो **सामयिकाभाव** कहियेहै। भूतलसैं घटकूं अन्यदेशमैं लेजावैं तब घटका अभाव भूतलमैं उपजैहै। औ तिसी भूतलमैं घटकूं लेआवै तब घटका अभाव भूतलमैं नष्ट होवैहै। इसरीतिसैं सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवालाहै उत्पत्तिवाला अभाव प्रध्वंसाभावभी है तहां अतिव्याप्ति परिहारवासतैं सामयिकाभावकै लक्षणमैं नाशपद कह्याहै। प्रध्वंसाभाव यद्यपि उत्पत्तिवाला अभावहै तथापि नाशवाला नहीं यातैं नाशपद कहें अतिव्याप्ति दोष नहीं। नाशवाले अभावकूं **सामयिकाभाव** कहैं तौ प्रागभावमैं अतिव्याप्ति होवैगी यातैं सामयिकाभावकी लक्षणमैं उत्पत्तिपद कह्याहै। लक्षणमैं उत्पत्तिपदकै प्रवेशतैं प्रागभावमैं अतिव्याप्ति

नहीं । काहेतैं प्रागभावका नाश तो होवैहै परंतु अनादि होनेतैं उत्पत्ति होवै नहीं औ सामयिकाभावके लक्षणमैं अभावपद नहीं गेरैं किंतु उत्पत्ति-नाशवालेकूं सामयिकाभाव कहैं तौ घटादिकनमैं अतिव्याप्ति होवैगी; काहेतैं घटादिकभी भूतभौतिक अनंत पदार्थ उत्पत्ति औ नाशवालेहैं । औ अभावपदके प्रवेशतैं घटादिकनकूं भावरूपता होनेतैं तिनमैं सामयिकाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं । इसरीतिसैं भूतलादिकनमैं घटादिकनका उत्पत्ति औ नाशवाला अभाव सामयिकाभावहै ॥ अन्योन्याभावसैं भिन्न जो उत्पत्तिशून्य औ नाशशून्य अभाव सो अत्यंताभाव कहियेहै । जहां किसीकालमैं जो पदार्थ नहोवै तहां तिसपदार्थका अत्यंताभाव कहियेहै । जैसैं वायुमैं रूप किसी कालमैं नहीं होवैहै तहां रूपका अत्यंताभावहै । तैसैं गंधभी वायुमैं सर्वदा नहीं होवैहै यातैं गंधका वायुमैं अत्यंताभावहै । स्नेह गुण केवल जलमैंही रहैहै अन्यमैं कदी रहै नहीं यातैं जलविना अन्यपदार्थनमैं स्नेहका अत्यंताभावहै । आत्मामैं रूप रस गंध स्पर्श शब्द कदीभी रहैं नहीं । यातैं रूपादिकनके अत्यंताभाव आत्मामैं रहैहैं । पृथिवी औ जलमैं रस रहैहै अन्यमैं कदी रहै नहीं । यातैं पृथिवीजलभिन्न पदार्थनमैं रसका अत्यंताभावहै । पृथिवीत्व जाति केवल पृथिवीमैं रहैहै जलादिकनमैं कदी रहै नहीं । यातैं जलादिकनमैं पृथिवीत्वका अत्यंताभावहै ।ब्राह्मणभिन्न क्षत्रियादिकनमैं ब्राह्मणत्व कदी रहै नहीं यातैं क्षत्रियादिकनमैं ब्राह्मणत्वका अत्यंताभाव है । आकाश काल दिशा आत्मा व्यापकहै तिनमैं कदीभी क्रिया होवै नहीं यातैं आकाशादिकनमैं क्रियाका अत्यंताभावहै । पृथिवी जल तेज पवन मनमैं क्रिया होवैहै औ कदाचित् क्रियाका अभाव होवैहै यातैं पृथिवीआदिक निष्क्रिय होवैं तब पृथिवी जल तेज पवन मनमैं क्रियाका अत्यंताभाव नहीं तैसैं सामयिकाभावभी नहीं । काहेतैं । सामयिकाभाव केवल द्रव्यका होवैहै । क्रियाका सामयिकाभाव संभवै नहीं । यह वार्ता आगैं कहैंगे ।

यातैं सामयिकाभावभी नहीं । किंतु पृथिवीआदिक पांचमैं क्रियाका प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावहै ॥

चारी संसर्गाभावका प्रतियोगीसैं विरोध औ अन्योन्याभावका अविरोध ॥ ७ ॥

इसरीतिसैं भूतलादिकनमैं जहां कदाचित् घटादिक होवै कदाचित् नहीं होवै तहां सारै सामयिकाभावहै अत्यंताभाव नहीं। काहेतैं अभावका प्रतियोगिसैं विरोधहै । जहां प्रतियोगी होवै तहां अभाव होवै नहीं किंतु अभावका अभाव होवैहै । औ जहां भूतलादिकनमैं कदाचित् घटादिक होवैं औ कदाचित् नहीं होवैं तहां अत्यंताभाव मानैं तौ अत्यंताभाव नित्यहै यातैं घटकालमैंभी घटका अत्यंताभाव होनेतैं अत्यंताभावका अपनें प्रतियोगिसैं विरोध नहीं होवैगा। यातैं भूतलादिकनमैं घटादिकनका अत्यंताभाव संभवै नहीं। जैसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमैं घटका प्रागभाव होवैहै। घटरूप प्रतियोगिकै उपजैं कपालमैं घटका प्रागभाव रहैं नहीं ताका नाश होयजावैहै । यातैं प्रागभावका प्रतियोगिसैं विरोधहै। तैसैं कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै तब घट रहै नहीं। औ घट रहै जितनें काल कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै नहीं। यातैं प्रध्वंसाभावकाभी प्रतियोगिसैं विरोध स्पष्टहै। तैसैं भूतलादिकनमैं संयोगसंबंधसैं घटादिक रहैं जितनें भूतलादिकनमैं घटादिकनके सामयिकाभाव रहै नहीं किंतु जितनैं काल घटादिक प्रतियोगि भूतलादिकनमैं न होवैं उतनें काल सामयिकाभाव रहैहै । औ घटादिक प्रतियोगि आयजावै तब सामयिकाभावका नाश होवैहै। आये घटकूं उठायलेवै तब घटका सामयिकाभाव और उपजैहै । इसीवास्तैं सामयिकाभावके उत्पत्ति औ नाश मानेहैं । इसरीतिसैं सामयिकाभावकाभी प्रतियोगिसैं विरोध स्पष्टहै। जैसैं प्रागभावादिकनका प्रतियोगिसैं विरोधहै तैसैं अत्यंताभावकाभी प्रतियोगिसैं विरोध कह्या चाहिये । यद्यपि सकल अभावनका प्रतियोगिसैं विरोध होवै तौ जिसकालमैं भूतलमैं घट धऱ्या होवै

तिसकालमैं घटका अन्योन्याभाव भूतलमैं नहीं हुया चाहिये । औ घटवाले भूतलमैं घटका अन्योन्याभाव रहैहै; काहेतैं भेदकूं अन्योन्याभाव कहैहैं । जाकूं अपनेसैं अतिरिक्तता कहैहै, भिन्नता कहैहै, जुदापना कहैहै । घटवाला भूतलभी घटस्वरूप नहीं किंतु घटसैं अतिरिक्त कहियेहै, घटसैं भिन्न कहियेहै, घटसैं जुदा कहियेहै । इसरीतिसैं घटवाले भूतलमैं घटका अन्योन्याभावहै । यातैं घटकै अन्योन्याभावका घटरूपप्रतियोगिसैं विरोध नहीं । तैसैं पटादिकनकै अन्योन्याभावका पटादिकनसैं विरोध नहीं यातैं सकलअभावका प्रतियोगिसैं विरोध कहना संभवै नहीं । किंतु किसी अभावका प्रतियोगिसैं विरोधहै किसीका विरोध नहींहै ॥

प्रागभावादिक दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोध साधै तब अन्योन्याभाह दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं अविरोधभी सिद्ध होवैगा । यातैं घटकै अन्योन्याभावकी नांई घटका अत्यंताभावभी घटकै अधिकरणमैं संभवैहै ॥

तथापि घटकै अधिकरणमैं घटका अत्यंताभाव संभवै नहीं । काहेतैं, अभावके दो भेदहैं:—एक अन्योन्याभावहै १ दूसरा संसर्गाभावहै २ संसर्गाभाव चारि प्रकारकाहै । इसरीतिसैं पंचविध अभावहै । तिनमैं अभावत्वधर्म सर्वमैं समानहै औ निषेधमुखप्रतीतिकी विषयताभी सर्व अभावनमैं समानहै । तथापि अन्योन्याभावसैं चतुर्विध संसर्गाभावमैं विलक्षणता अनेकविधहै । जिस वाक्यमैं प्रतियोगिअनुयोगिबोधकभिन्न विभक्तिवाले पद होवैं तिस वाक्यसैं संसर्गाभावकी प्रतीति होवैहै । जैसैं उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस वाक्यमैं अनुयोगिबोधक कपालपद सप्तम्यंतहै औ प्रतियोगिबोधक घटपद प्रथमांतहै । तहां प्रागभावकी प्रतीति होवैहै । तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै तब तिसी वाक्यतैं घटध्वंसकी प्रतीति होवैहै "वायौ रूपं नास्ति" इस वाक्यतैं वायुमैं रूपात्यंताभावकी प्रतीति होवैहै । तहांभी अनुयोगिबोधक वायुपद सप्तम्यंतहै औ प्रतियोगिबोधकरूपपद प्रथमांतहै । तैसैं "भूतले घटो नास्ति" इस

वाक्यजन्य प्रतीतिका विषय सामयिकाभावहै। तहांभी अनुयोगिबोधक भूतलपद सप्तम्यंतहै,प्रतियोगिबोधक घटपद प्रथमांतहै।औ"भूतलं न घटः" इस वाक्यसैं भूतलमैं घटका अन्योन्याभाव प्रतीत होवैहै। तहां अनुयोगिबोधक भूतलपद औ प्रतियोगिबोधक घटपद दोनूं प्रथमांतहैं। इस रीतिसैं भिन्नविभक्त्यंतपदघटितवाक्यजन्यप्रतीतिकी विषयता संसर्गाभावमैं है अन्योन्याभावमैं नहीं। औ समानविभक्त्यंतपदघटित वाक्यजन्यप्रतीतिकी विषयता अन्योन्याभावमैं है संसर्गाभावमैं नहीं। इसरीतिसैं अन्योन्याभावतैं विलक्षण स्वभाववाले चतुर्विध संसर्गाभावहैं। यातैं प्रागभावप्रध्वंसाभावके दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगितैं विरोधही सिद्ध होवैहै। विलक्षण स्वभाववाले अन्योन्याभावके दृष्टांतसैं प्रतियोगितैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं। संसर्गाभावकी अन्योन्याभावतैं औरभी विलक्षणताहै॥

चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोध औ अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोध ॥ ८ ॥

चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोधहैः—एकसंसर्गाभावके अधिकरणमैं अपरसंसर्गाभाव रहै नहीं। जैसैं कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वघटका प्रागभावहै। तहां घटका ध्वंस वा अत्यंताभाव वा सामयिकाभाव रहै नहीं। तैसैं कपालमैं घटका ध्वंस होवै तब प्रागभावादिक तीनूं संसर्गाभाव रहै नहीं। औ घटका अन्योन्याभाव कपालमैं सदा रहैहै। तैसैं भूतलमैं घटका सामयिकाभाव रहै तहांभी घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अत्यंताभाव तीनूं रहैं। नहीं औ घटका अन्योन्याभाव तहांभी रहैहै। तैसैं वायुमैं रूपका अत्यंताभाव रहैहै। तामैं रूपका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव सामयिकाभाव तीनूं रहै नहीं। औ रूपका अन्योन्याभाव वायुमैं रहैहै। इसरीतिसैं चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोधहै। अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोधहै। जैसैं अन्योन्याभावका अन्यअभावनतैं अविरोध होतेभी प्रागभावादिकनके परस्पर अविरोधकी सिद्धि होवै नहीं।

तैसैं अन्योन्याभावका परस्पर औ प्रतियोगितैं अविरोधि देखिकैं किसी संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं ॥

प्राचीन मतमैं अभावनके परस्पर औ प्रतियोगीसैं विरोधाविरोधका विस्तारसैं प्रतिपादन ॥ ९ ॥

अथ अभावनका परस्पर औ प्रतियोगिसैं विरोधाविरोधका विस्तारसैं प्रतिपादन करेहैं:—यद्यपि प्रतियोगिके उपादानकारणमैं प्रागभाव प्रध्वंसाभाव दोनूं रहैहैं । जैसैं घटके उपादानकारण कपालमैं घटका प्रागभाव घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम रहैहै । मुद्गरादिकनतैं घटकूं तोडे तब घटका प्रध्वंसाभाव तिसी कपालमैं रहैहै यातैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्पर विरोध कहना संभवै नहीं । तथापि एक कालमैं दोनूं रहै नहीं किंतु भिन्नकालमैं रहैहैं यातैं एकदासहानवस्थानरूपविरोध प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्परहै । तैसैं अत्यंताभावकाभी तिनसैं विरोध माना चाहिये । यद्यपि अन्योन्याभावका किसी अभावसैं विरोध नहींहै; काहेतैं, कपालमैं घटका प्रागभावहै तहां घटका अन्योन्याभवभीहै । औ जब कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै तबभी घटका अन्योन्याभावहै । औ तंतुमैं घटका अत्यंताभावहै तहांभी घटका अन्योन्याभावहै । भूतलमैं घटका सामयिकाभावहै तहांभी घटका अन्योन्याभावहै । इसरीतिसैं अन्योन्याभावका किसी अभावसैं विरोध नहींहै । तथापि संसर्गाभावका यह स्वभावहै:—चतुर्विध संसर्गाभावमैं एक संसर्गाभाव एककालमैं रहैहैं दूसरा रहै नहीं, जैसैं कपालमैं उत्पत्तिसैं प्रथम घटका प्रागभाव रहैहै तिसकालमैं घटका प्रध्वंसाभाव रहै नहीं । प्रध्वंसाभाव घटका होवै तब प्रागभाव रहै नहीं । औ सामयिकाभाव अत्यंताभाव कपालमैं घटके कदेभी रहैं नहीं । यद्यपि कपालमैं घटके प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होवैं तब घटका अत्यंताभावभी रहैहै । तथापि एक प्रतियोगिके दो संसर्गाभाव रहैं नहीं यह नियमहै । अपर प्रतियोगिका दूजा संसर्गाभाव रहनैंका विरोध नहीं तैसैं भूतलादिकनमैं घटका सामयिकाभाव रहैहै । तहां घटका अत्यंता-

भाव अथवा प्रागभाव तथा ध्वंसाभाव रहै नहीं। औ वायुमैं रूपात्यंताभा-वहै तहां रूपके प्रागभावादिक रहैं नहीं ॥

यद्यपि संयोगसंबंधतैं कदाचित् भूतलादिकनमैं घट रहैहै समवायसंबंधतैं कपालविना अन्यपदार्थमैं घट कदेभी रहै नहीं यातैं समवायसंबंधतैं घटका अत्यंताभाव भूतलादिकनमैं है औ संयोगसंबंधतैं घटका सामयिकाभावहै। यातैं सामयिकाभाव औ अत्यंताभावका परस्पर विरोध संभवै नहीं। तथापि घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावका घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसैं विरोधहै।समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसैं विरोध नहीं। यातैं यह नियम सिद्ध हुआः—जिस अधिकरणमैं जा कालमैं जिस पदार्थ-का जा संबंधसैं एक संसर्गाभाव होवै तिस अधिकरणमैं ता कालमैं तिस पदार्थका ता संबंधसैं अपरसंसर्गाभाव होवै नहीं। अन्य संबंधसैं होवैहै। जा संबंधसैं जो पदार्थ जहां नहोवै तहां तिस पदार्थका तत्संबंधावच्छि-न्नाभाव कहियेहै। भूतलमैं संयोगसंबंधतैं कदाचित् घट होवैहै यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका भूतलमैं कदीभी नहीं। किंतु भूतलत्वजातिमैं औ भूतलके रूपादिकगुणनमैं संयोगसंबंधतैं घट कदा-चित्भी रहै नहीं काहेतैं दो द्रव्यका संयोग होवैहै। द्रव्यका औ जातिका तैसैं द्रव्यका औ गुणका संयोग होवै नहीं यातैं भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपा-दिक गुणनमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै। औ भूलतत्वमैं तैसैं रूपादिक गुणनमैं समवायसंबंधतैंभी घट कदाचित्भी रहै नहीं।काहेतैं॥ कार्यद्रव्यका अपने उपादानकारणमैं समवायसंबंध होवैहै अन्यमैं नहीं। गुणका समवाय गुणमैं होवैहै। जातिका समवाय व्यक्तिमैं होवैहै। क्रि-याका समवाय क्रियावालेमैं होवैहै। अन्यस्थानमैं कहूं समवायसंब-ध होवै नहीं। यद्यपि परमाणुआदिक नित्यद्रव्यनमैंभी विशेष पदा-र्थका समवाय नैय्यायिक मानैहै। तथापि विशेषपदार्थ अप्रसिद्धहै ताकी कल्पना निष्प्रयोजनहै। यह अद्वैतग्रंथनमैं स्पष्ट है। औ दीधि-तिकारशिरोमणि भट्टाचार्यनैं भी विशेष पदार्थका खंडनही कह्याहै ॥

यातैं उपादानकारण गुणी व्यक्ति क्रियावान्मैंही कार्य द्रव्य गुण जाति क्रिया का क्रमतैं समवायसंबंधहै । औ किसीका किसीमैं समवायसंबंध नहीं । इसरीतिसैं भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमैं घटका समवायसंबंध कदीभी होवै नहीं । किंतु कपालमैंही घटका समवाय होवैहै यातैं घटके उपादानकारण कपालकूं त्यागिकै और स्थानमैं सारे घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । औ घटका अन्यसंसर्गाभाव तिस अत्यंताभावकै साथि रहै नहीं काहेतैं घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तो कपालविना अन्य स्थानमैं रहै नहीं औ सामयिकाभाव तहां होवैहै । जहां किसी कालमैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै तहां तिसी संबंधसै जाकालमैं प्रतियोगी न होवै ता कालमैं तत्संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवैहै । जहां किसी कालमैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै नहीं तहां तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवैहै । कपालविना अन्य पदार्थनमैं समवायसंबंधतैं घट कदाचित्भी रहै नहीं यातैं घटकै समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावकै अधिकरणमैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव रहै नहीं ॥

औ विचार करै तो द्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै । संयोगसंबंधावच्छिन्नसामायिकाभावही द्रव्यका प्रसिद्धहै । काहेतैं, नित्यद्रव्य तो समवायसंबंधतैं किसीमैं रहैनहीं यातैं नित्यद्रव्यका तो समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही है । समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका कहूं नहीं । औ कार्यद्रव्यका अपनैं उपादानकारणमैं तौ प्रागभाव अथवा प्रध्वंसाभाव होवैहै । तहां समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अथवा समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहै नहीं । औ अपनै उपादानकारणकूं त्यागिकै अन्यपदार्थमैं समवायसंबंधतैं कार्यद्रव्य कदाचित् रहता होवै कदाचित् नहीं रहता होवै तौ समवायसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव होवैहै औ उपादानस भिन्नमैं कार्यद्रव्य कदाचित्भी रहै नहीं यातैं उपादान-

सैं भिन्नपदार्थनमैं कार्यद्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव संभवे नहीं किंतु तहांभी समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहीका कार्यद्रव्यकाहै । इसरीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका अप्रसिद्धहै ॥

औ गुणक्रियाभी समवायसंबंधतैं जा द्रव्यमैं उपजिकै नष्ट होयजावै ता द्रव्यमैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं । किंतु प्रथम प्रागभावहै । पश्चात् प्रध्वंसाभावहै । औ घटके गुणक्रिया समवायसंबंधसैं अन्यद्रव्यमैं कदीभी रहैं नहीं । तहांभी तिनका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै सामयिकाभाव नहीं । इसरीतिसैं गुणक्रियाकाभी समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै । तैसैं संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावभी गुणक्रियाका अप्रसिद्धहै । काहेतैं संयोगसंबंधतैं गुणक्रिया कदाचित् रहते होवैं कदाचित् नहीं रहते होवैं; तौ संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावगुणक्रियाका होवै औ संयोगसंबंधतैं गुणक्रिया किसीमैं कदाचित् रहैनहीं । यातैं गुणक्रियाका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहींहै । सो अत्यंताभाव सकलपदार्थनमैंहै । काहेतैं संयोगसंबंधतैं गुणक्रिया किसी पदार्थमैं रहते होवैं तौ तिस पदार्थमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव गुणक्रियाका नहोवै सो संयोग संबंधतैं गुणक्रियाका आधार कोई है नहीं यातैं गुणक्रियाका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव केवलान्वयिहै । जाका अभाव कहूं नहोवै सो केवलान्वयि कहियेहै। उक्त अत्यंताभाव सारैहै तिस अत्यंताभावका अभाव कहूं नहीं यातैं केवलान्वयि कहियेहै । इसरीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव औ संयोगसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव गुणका औ क्रियाका अप्रसिद्धहै ॥

तैसैं जातिकाभी सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै । काहेतैं, संयोगसंबंधसैं तो जाति किसी पदार्थमैं कदाचित्भी रहे नहीं । यातैं सकलपदार्थनमैं जातिका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । सामयिकाभाव नहीं ।

तैसैं अपना आश्रय जो व्यक्ति तामैं समवायसंबंधसैं जाति सदा रहैहै ता व्यक्तिमैं जातिका समवायसंबंधतैं कोई अभाव रहै नहीं । जैसैं घटत्व-जाति घटव्यक्तिमैं समवायसंबंधतैं रहैहै । तहां घटत्वका अत्यंताभाव वा सामयिकाभाव अथवा प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव रहै नहीं । काहेतैं प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तो अनित्यके होवैहैं । घटत्व नित्यहै ताके प्रागभाव प्रध्वंसाभाव संभवै नहीं । औ जहां प्रतियोगि कदाचित्‌भी होवै नहीं तहां अत्यंताभाव होवैहै । औ जहां प्रतियोगि कदाचित् होवै कदाचित् नहीं होवै । तहां सामयिकाभाव होवैहै । घटमैं घटत्व सदा समवायसंबंधतैं रहैहै । यातैं घटमैं घटत्वका समवायसंबंधावच्छिन्नात्यंताभाव औ समवा-यसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव संभवै नहीं । तैसैं घटसैं भिन्न जो घटत्वके अनाधार सकल पटादिकहैं। तिनमैं घटत्व जाति समवायसंबंधतैं कदेभी रहै नहीं यातैं तिनमैंभी घटत्वजातिका समवायसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव नहीं । किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । इसरीतिसैं द्रव्यसैं भिन्नपदार्थका सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै ॥

औ द्रव्यभी नित्य अनित्य भेदसे दो प्रकारके हैं। पृथिवी जल तेजो वायु द्व्यणुकादिरूप अनित्यहैं। आकाश काल दिशा आत्मा मन औ परमा-णुरूप पृथिवी जल तेजो वायु ये नित्यद्रव्यहैं सो नित्यद्रव्य समवायसंबंधतैं कदाचित् किसी पदार्थमैं रहैं नहीं। यातैं तिनका तो समवायसंबंधावच्छि-न्न सामयिकाभाव कहूं नहीं । किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभा-वही सारेहै । तैसैं अनित्यद्व्यणुकादि द्रव्य समवायसंबंधतैं अपनें अवयव परमाणुआदिकमैं रहैहैं । अवयवविना अन्यपदार्थमैं अनित्य द्रव्य समवायसंबंधसैं कदेभी रहै नहीं; अवयवनमैं अवयवीका प्रागभाव प्रध्वंसा-भाव होवैहै । यातैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अवयवमैं कार्य-द्रव्यका नहीं होवैहै । अवयवसैं भिन्नपदार्थनमैं समवायसंबंधतैं अवयवी कदेभी रहै नहीं । यातैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव तहां नहीं किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । इसरीतिसैं द्रव्यकाभी

समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै । केवल संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका प्रसिद्धहै सोभी कार्यद्रव्यकाहै । नित्यद्रव्यका तो संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारे है सामयिकाभाव कहूंभी नित्यद्रव्यका नहीं । काहेतैं नित्यद्रव्यका अवृत्तिस्वभावहै । यातैं संयोगसंबंधतैं नित्यद्रव्य किसी पदार्थमैं कदाचित्भी रहै नहीं । यद्यपि नित्यद्रव्यकाभी अपर द्रव्यसैं संयोग होवैहै । औ जाका संयोग जामैं होवै सो तामैं संयोगसंबंधसैं रहैहै । तथापि नित्यद्रव्यका संयोगवृत्ति नियामक नहीं । जैसैं कुंडबदरका संयोग बदरकी वृत्तिका नियामकहै । कुंडकी वृत्तिका नियामक नहीं । तैसैं नित्यद्रव्यका कार्यद्रव्यसैं संयोगभी कार्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामकहै । नित्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामक नहीं । इसकारणतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका अप्रसिद्धहै संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं जो पदार्थ किसीमैं रहै नहीं सो अवृत्ति कहियेहै नित्यद्रव्यमैं तो संयोगसंबंधतैं औ समवायसंबंधतैं अन्यपदार्थ रहैहै । अन्यपदार्थनमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं नित्यद्रव्य रहै नहीं यातैं नित्यद्रव्यनकूं अवृत्ति कहैहैं । इसरीतिसैं संसर्गाभाव अन्योन्याभावके भेदतैं अभाव दो प्रकारका है । तिनमैं संसर्गाभावके चारि भेदहैं । तिन चारूंका परस्पर विरोधहै औ तिन चारिकाही अपनैं प्रतियोगिसैं विरोधहै । प्रतियोगिसैं विरोध इसभांतिहैः—जो प्रतियोगी जा संबंधसैं जहां होवै ताका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव होवै नहीं औ एकसंबंधसैं प्रतियोगी होवै अन्यसंबंधतैं ताका अभावभी होवैहै । जैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घट होवै तब समवायसंबंधतैं घट है नहीं । यातैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं भी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । यातैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोधहैः—संसर्गाभावनका परस्पर विरोधभी समान संबंधसैं है । औ एकसंबंधावच्छिन्न एकसंसर्गाभाव जहां होवै तहांभी अन्यसंबंधावच्छिन्न अपरसंसर्गाभाव होवैहै । जैसैं घटशून्य भूतलमैं

घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावहै । औ तिसी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिसी भूतलमैं रहैहै। इसरीतिसैं प्रतियोगितैं संसर्गाभावका एक संबंधतैं विरोधहै औ समानसंबंधतैंही परस्पर संसर्गाभावनका विरोधहै । औ अन्योन्याभावका तो जैसैं प्रागभावादिकनतैं विरोध नहीं तैसैं स्वप्रतियोगीसैंभी विरोध नहीं । औ विचार करें तो अन्योन्याभावका अन्यभावनतैं यद्यपि विरोध नहीं तथापि अपनैं प्रतियोगितैं अन्योन्याभावकाही विरोधहै ॥ औ बहुत ग्रंथनमैं यह लिखाहैः— संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोधहै औ अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं विरोध नहीं किंतु प्रतियोगितावच्छेदक धर्मसैं विरोधहै । जैसैं भूतलमैं घट होवै तिसकालमैं भी घटका अन्योन्याभावहै काहेतैं भेदकूं अन्योन्याभाव कहैहैं । घटवाला भूतलभी घटरूप नहीं किंतु घटसैं भिन्न है घटसैं भिन्न कहिये घटकै भेदवाला भूतलहै । भेदवाला औ अन्योन्याभाववाला कहनेमैं एकही अर्थहै । घटविना और सारे पदार्थ घटभिन्नहैं घटमैं घटत्व रहैहै तहां घटका भेदरूप घटान्योन्याभाव रहै नहीं । घटविना और किसी पदार्थनमैं घटत्व रहै नहीं। तहां सारे घटका अन्योन्याभावहै । इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका घटसैं विरोध नहीं किंतु घटत्वसैं विरोधहै । तहां घटान्योन्याभावका प्रतियोगी घटहै औ प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वहै । जाका अभाव होवै सो प्रतियोगी कहियेहै । औ प्रतियोगिमैं जो धर्म रहै सो प्रतियोगितावच्छेदक कहियेहै । यद्यपि प्रतियोगीमैं रहनेवाले धर्म बहुतहैं जैसैं घटमैं घटत्वहै औ पृथ्वीत्व द्रव्यत्व पदार्थत्वादिक भी घटमैं रहैहैं । तिनमैं पृथ्वीत्वादिकभी घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक हुये चाहिये औ पृथिवीत्वादिक घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक नहींहैं । पृथिवी अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक पृथ्वीत्वहै । द्रव्यान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्वहै । घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक नहींहै । औ घटरूप प्रतियोगिमैं तो रहैहैं यातैं घटकी नांई घटान्योन्याभावके पृथिवीत्व द्र-

व्यत्वादिक प्रतियोगितावच्छेदक कहे चाहियें तथापि अभावबोधक पदके साथि प्रतियोगिबोधक पदकै उच्चारण करें जिस धर्मकी प्रतीति होवै सो प्रतियोगितावच्छेदक कहियेहै। घटान्योन्याभाव कहनेमैं प्रतियोगिबोधक पटपदहैं। तैसें "पटो घटो न" इसरीतिसैंभी प्रतियोगिबोधक घटपदहै। ताकैं उच्चारण करें घटत्वकी प्रतीति होवैहै पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिकनकी प्रतीति होवै नहीं। यातें घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वहै पृथिवीत्वादिक नहीं। औ "जलं पृथिवी न" इसरीतिसैं कहैं औ पृथिवी अन्योन्याभाव कहै तब प्रतियोगिबोधक पृथिवी पदहै ताकैं उच्चारण करैं पृथिवीत्वकी प्रतीति होवैहै। तहां प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्वहै "गुणो द्रव्यं न" इसरीतिसैं कहैं औ द्रव्यान्योन्याभाव कहैं तब प्रतियोगिबोधक द्रव्यपदहै ताकै उच्चारण करें द्रव्यत्वकी प्रतीति होवैहै। तहां प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्वहै। घटपदकै उच्चारणकरें घटत्वकी प्रतीति होवैहै। पृथिवीत्वादिकनकी नहीं। यामैं यह हेतुहैः— घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्तिहै जिस धर्मविशिष्टमैं जा पदकी शक्ति होवै तिस धर्मकी ता पदसैं प्रतीति होवैहै। इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वहै सो घटमैं रहैहै घटान्योन्याभाव घटमैं रहै नहीं। घटसैं भिन्न सकलपदार्थनमैं घटका अन्योन्याभाव रहैहै। तहां घटत्व रहै नहीं। यातैं घटत्वरूप प्रतियोगितावच्छेदकसैं घटान्योन्याभावका निरोधहै औ घटरूप प्रतियोगिसैं विरोध नहीं। औ संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोधहै। इसरीतिसैं बहुत ग्रंथकारोंनैं लिख्याहै। औ संसर्गाभाव अन्योन्याभावके लक्षणभी इसी अर्थके अनुसारी करैहैं। प्रतियोगिविरोधी जो अभाव सो संसर्गाभाव कहियेहै। औ प्रतियोगितावच्छेदक विरोधी अभाव अन्योन्याभाव कहियेहै। इसरीतिके लक्षण कहनेतैंभी अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं अविरोधही सिद्ध होवैहै औ चतुर्विध संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध सिद्ध होवैहै। परंतु ग्रंथकारनका यह समग्र लेख स्थूलदृष्टिसैंहै विवेकदृष्टिसैं नहीं। काहेतें अत्यंताभावका

जिसरीतिसैं प्रतियोगितैं विरोधहै । तिस रीतिसैं अन्योन्याभावकाभी प्रतियोगितैं विरोधहै । जा भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट होवै तिसी भूतलमैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटका अत्यंताभावकाभी प्रतियोगिसैं सर्वथा विरोध नहीं। किंतु जिस संबंधसैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवै नहीं । यातैं अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगिसैं विरोध है । प्रतियोगितावच्छेदक संबंधतैं अन्यसंबंधविशिष्ट प्रतियोगिसैं किसी अभावका विरोध नहीं । जिस संबंधसैं पदार्थका अभाव कहिये सो प्रतियोगितावच्छेदकसंबंध कहियेहै। अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेकहैं । काहेतैं जिस अधिकरणमैं एक संबंधतैं जो पदार्थ होवै तिसी अधिकरणमैं अपरसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिस पदार्थका होवैहै। जैसैं पृथिवीमैं समवायसंबंधतैं गंध होवैहै। संयोगसंबंधतैं कदेभी होवै नहीं । यातैं पृथिवीमैं गंधका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै। तहां प्रतियोगितावच्छेदका संयोग संबंधहै। जलमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं गंध नहीं । किंतु कालिकसंबंधतैं जलमैंभी गंधहै। यातैं जलमैं गंधका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । औ समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । तहां प्रथम अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संयोग संबंधहै । द्वितीय अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंधहै औ कालिकसंबंधसैं एक एकजन्यमैं सारे पदार्थ रहैहैं । यातैं द्व्यणुकादिरूप जलमैं गंध होनेतैं जलवृत्ति गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिकसंबंध नहीं । औ नित्यपदार्थमैं कालिकसंबंधसैं कोई पदार्थ रहै नहीं। यातैं परमाणुरूप जलमैं गंधका कालिकसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावभी है । यातैं परमाणुवृत्ति गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिकसंबंधहै। इसरीतिसैं अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेकहैं । अन्यअभावनका प्रतियोगितावच्छेदक संबंध एक एकहै । जैसैं कपालमैं

घटका प्रागभावहै अन्यमैं कहूं घटका प्रागभाव नहीं सो कपालमैं घटकै प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंधहै । प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक अन्यसंबंध नहीं। यत्संबंधावच्छिन्न प्रागभाव जाका जामैं होवै ता संबंधसैं ताकी उत्पत्ति तिसमैं होवैहै यह नियमहै। कपालमैं घटकी उत्पत्ति समवायसंबंधतैं होवैहै । अन्यसंबंधसैं नहीं होवैहै यातैं कपालमैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न प्रागभावहै । ताका प्रतियोगितावच्छेदक एक समवायसंबंधहै। तैसैं " कपाले समवायेन घटो नष्टः " ऐसी प्रतीति प्रध्वंसाभावकी होवैहै यातैं ध्वंसका प्रतियोगितावच्छेदकभी एक समवायसंबंधहै । तैसैं सामयिकाभावभी जन्यद्रव्यकाहीं होवैहै। औ जन्यद्रव्यकाभी संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावही होवैहै समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै । यह पूर्व कहीहै । यातैं सामयिकाभावकाभी प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंधहै । तैसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक एक अभेद संबंधहै। तिस अभेदकूंही नैय्यायिक तादात्म्यसंबंध कहैहैं। अभेदसंबंधावच्छिन्नाभावकूंही अन्योन्याभाव कहैहैं । अन्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं संसर्गाभाव कहैहैं । अन्योन्याभाव कहैं नहीं । इसरीतिसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंध एक तादात्म्यनामा अभेदहै। और कोई संबंध अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक नहीं । औ प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधविशिष्ट प्रतियोगिका अभावसैं विरोधहै । अन्यसंबंधविशिष्ट प्रतियोगिका तो अत्यंताभावसैंभी विरोध नहीं यह निर्णीतही है। अन्योन्याभावका जो प्रतियोगितावच्छेदक अभेदसंबंधहै । ता अभेदसंबंधसैं अपनैं आत्मामैं ही घट रहैहै भूतल कपालादिकनमैं अभेदसंबंधसैं घट कदीभी रहैं नहीं। जहां अभेदसंबंधसैं घट नहीं रहै तहां सारे घटका अन्योन्याभावहै। औ अपनैं स्वरूपमैं अभेदसंबंधसैं घट रहैहै । तहां घटका अन्योन्याभाव नहीं इसरीतिसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगिका जैसैं अत्यंता-

भावसैं विरोधहै तैसैं अन्योन्याभावसैंभी प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका विरोध स्पष्टहै। प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट-प्रतियोगिसैं अत्यंताभावकी नांई अन्योन्याभावका विरोध स्पष्ट होतैं प्रतियोगिसैं अविरोध कथन सकल ग्रंथकारोंनैं विवेकनेत्रनिमीलनसैं कह्याहै। यातैं सकल अभावनका प्रतियोगिसैं विरोधहै । प्रथम प्रसंग यहहैः—जहां भूतलादिकनमैं कदाचित् घट होवै कदाचित् नहीं होवै । तहां घटका सामयिकाभावहै । अत्यंताभाव नहीं । काहेतैं । अभावका प्रतियोगिसैं विरोध होवैहै सो विरोध पूर्वउक्तरीतिसैं निर्णीतहै। यातैं भूतलमैं संयोग-संबंधतैं घट होवै तब तो घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव नहीं। औ घटकूं उठायलेवै तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै ऐसा मानना होवैगा । यातैं भूतलमैं घटके अत्यंताभावके उत्पत्तिनाश मानने होवैंगे। उत्पत्तिनाश माने विना कदाचित्है कदाचित् नहीं यह कहना अत्यंताभावमैं संभवै नहीं । सो उत्पत्तिनाश घटात्यंताभावके संभवै नहीं काहेतैं जहां संयोगसंबंधतैं घट नहीं तहां सारे घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । सो घटका अत्यंताभाव सारे पदार्थनमैं एकहै नाना नहीं । काहेतैं प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद होवैहै । अधिकरणभेदसैं अभावका भेद होवै नहीं यह तार्किक सिद्धांतहै । जैसैं घटाभाव पटाभावके प्रतियोगि भिन्नहैं सो अभाव भिन्नहैं । औ भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घटात्यंताभावहै तैसैं भूतलत्वमैंभी संयोगसंबंधतैं घट नहींहै तैसैं घटत्वजातिमैंभी संयोगसंबंधतैं घट नहीं । यातैं संयोग संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै । तैसैं पटत्वादिकनमैंभी संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै । इसरीतिसैं अनंत अधिकरणमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै तिसके अधिकरण यद्यपि अनंतहैं तथापि प्रतियोगि एक घटहै। यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव एकहै । परंतु भूतलत्व घटत्वादिक जातिसैं तो घटका संयोगसंबंध कदीभी होवै नहीं। यातैं भूतलत्व घटत्वादिक जातिमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न

अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्यहै । औ भूतलादिकनमैं संयोगसंबंधतैं कदाचित् घट होवैहै । कदाचित् नहीं होवैहै। यातैं घटकालमैं भूतलवृत्ति घटात्यंताभाव नष्ट होवैहै । औ घटकै अपसरणकालमैं घटात्यंताभाव उपजैहै।इसरीतिसैं घटत्वादि जातिमैं घटात्यंताभाव नित्य कहना सोई घटात्यंताभाव भूतलादिकनमैं उत्पत्तिनाशवाला अनित्यहै । यह कहना असंगतहै यातैं जहां संयोगसंबंधतैं कदाचित् घट होवै तहां घटशून्यकालमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्नाभाव कोई अनित्य अभाव मान्या चाहिये सोई सामयिकाभाव कहियेहै । औ तिसीभूतलमैं समवायसंबंधतैं कदाचित्भी घट होवै नहीं यातैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै । तैसैं घटत्व भूतलत्वादिकनमैं संयोगसंबंधतैं कदाचित्भी घट होवै नहीं औ समवायसंबंधतैंभी कपालविना अन्यपदार्थमैं घटहोवै नहीं यातैं घटत्वादिकनमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै । औ समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै । सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्यहै । यातैं यह निष्कर्ष सिद्ध हुवाः—जहां कदाचित् संयोगसंबंधतैं प्रतियोगी होवै कदाचित् नहीं होवै तहां संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव कहियेहै घटके सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवालेहैं । यातैं प्रतियोगिभेदाविनाभी एक घटके सामयिकाभाव अनंतहैं औ जा संबंधसैं जहां घटरूप प्रतियोगि कदेभी रहै नहीं तहां घटका तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव कहियेहै । सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहितहै यातैं नित्यहै । औ घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव अनंत अधिकरणमैं एकहै । तैसैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावभी अनंत अधिकरणमैं एकहै किसीअधिकरणका नाशभी होयजावै तौभी सोई अत्यंताभाव अन्यअधिकरणमैं रहैहै । यातैं अत्यंताभावका नाश होवै नहीं । जैसैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तंतुमैं है तंतुत्वजातिमैं है घटत्वमैं है पटत्वमैं है कपालत्वमैं है एक कपालकूं त्यागिकै सारे पदार्थ-

नमैं है तिनमैं सारै समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव एकहै । तंतु-आदिक अनित्य पदार्थनका नाश हुयेंभी तंतुत्वादिक नित्यपदार्थनमैं सोई अत्यंताभाव रहैहै । यातैं अत्यंताभाव नित्यहै औ प्रतियोगिभेदसैं अत्यंताभावका भेद होवैहै । जैसैं घटात्यंताभावसैं पटात्यंताभाव भिन्नहै औ प्रतियोगितावच्छेदक संबंधके भेदतैं प्रतियोगिभेदविनाभी अत्यंताभावका भेद होवैहै । समवायसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावका औ संयोगसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावका प्रतियोगी तो एक गंधहै । परंतु प्रतियोगितावच्छेदक संबंध दो होनेतैं दो अभावहैं । जो दो नहीं होवै एकही मानै तौ पृथिवीमैं समवायसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावके नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावभी नहीं होवैगा जो ऐसैं कहै पृथ्वीमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावभी नहींहै तौ "पृथिव्यां संयोगेन गंधो नास्ति " ऐसी प्रतीति नहीं हुई चाहिये । यातैं पृथिवीमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावहै औ समवायसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभाव नहींहै । यातैं प्रतियोगीभेदतैं जैसैं अत्यंताभावका भेद होवैहै तैसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदतैंभी अत्यंताभावका भेद होवैहै औ सामयिकाभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधके भेदविनाभी समयभेदसैं भेद होवैहै । जैसैं भूतलमैं घटका संयोग जितनें होवै नहीं तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावहै औ भूतलमैं घटका संयोग होवै तब घटके प्रथम सामयिकाभावका नाश होयजावैहै । जब भूतलसैं घटकूं उठायलेवैं तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और उपजैहै । तिसी घटकूं भूतलमैं फेरिल्यावैं तब दूजा सामयिकाभाव नष्ट होवैहै। फेरि तिस घटकूं उठायलेवैं तब तिसी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और तृतीय उपजैहै । इसरीतिसैं प्रतियोगिभेदविना औ प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदविनाभी कालभेदसैं सामयिकाभावका भेद होवैहै यह सामयिकाभाव औ अत्यंताभावकी विलक्षणता स्पष्टहै । इसरीतिसैं न्यायसंप्रदायमैं पांचप्रकारका अभावहै ॥

नवीन तार्किककरि सामयिकाभावके स्थानमैं अनित्य अत्यंताभावका अंगीकार औ तामैं शंका समाधान॥१०॥

औ नवीन तार्किक सामयिकाभावकूं नहीं मानैहैं । भूतलादिकनमैं घटादिकनका जहां सामयिकाभाव कह्याहै तहांभी सारे घटादिकनका अत्यंताभावहै और जो भूतलादिकनमैं घटादिकनका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव माननैमैं दोष कह्याहै । जातिगुणादिकनमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव नित्यहै । औ भूतलादिकनमैं तिसी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अभाव अनित्यहै सो नित्य अनित्य परस्पर भिन्नहैं एक नहीं ॥ जातिगुणादिकनमैं औ भूतलादिकनमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटाभावका भेद नहीं मानै तौ नित्यता औ अनित्यतारूप जो विरोधीधर्म तिनका संकर होवैगा? ताका समाधान इसरीतिसैं गंगेशोपाध्यायादिक नवीन करैहैं:—भूतलादिकनमैंभी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अभाव अनित्य नहीं । किंतु नित्यहै । जब भूतलमैं घटका संयोग होवै तिस कालमैंभी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहैहै ताका नाश होवै नहीं । यातैं अत्यंताभाव केवलान्वयिहै । जाका अभाव कहूं न होवै किंतु सकलपदार्थनमैं सर्वदा रहै सो केवलान्वयि कहियेहै ॥

और जो यह शंका होवैः—संयोगसंबंधतैं घटकै होतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव मानोंगे तौ संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये ॥

ताका यह समाधान करैहैं:—यद्यपि संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं भी निर्घटभूतलकी नांई संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटकाहै । तथापि निर्घट भूतलमैं तो " संयोगेन भूतले घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवैहै औ सघट भूतलमैं उक्त प्रतीति होवै नहीं । काहेतैं उक्त प्रतीतिका विषय केवल घटका अत्यंताभाव नहीं है किंतु भूतलसंबंधी घटके आधारकालतैं अतिरिक्त काल औ संयोगसंबंधाव-

च्छिन्न घटात्यंताभाव ये दोनूं जहां होवैं तहां " संयोगेन घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवैहै । भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट नहीं होवै तब भूतलसंबंधीं घटाधार काल नहींहै किंतु भूतलअसंबंधी जो घट ताका आधार कालहै । यातैं भूतलसंबंधी घटके आधारकालसैं अतिरिक्तकाल है । औ संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै । यातैं " संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवैहै । औ जहां भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घटहै तहांभी अत्यंताभावकूं नित्यता होनेंतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव तो है परंतु भूतलसंबंधी जो घट ताका आधार कालहै । यातैं भूतलसंबंधी घटाधारकालसैं अतिरिक्त काल नहींहै । यातैं संयोगसंबंधतैं घट होतैं "संयोगेन भूतले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै नहीं । इसरीतिसैं अत्यंताभाव तो सारे देशमैं प्रतियोगिके होतैं औ नहीं होतैं सर्वदा रहैहै परंतु अभावका घटादिक प्रतियोगिका संबंधी जो भूतलादिक अनुयोगी ताका आधारकाल प्रतियोगीके होतैं होवैहै । प्रतियोगिसंबंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्त काल होवै नहीं । यातैं "प्रतियोगी नास्ति " ऐसी प्रतीति प्रतियोगीके होतैं होवै नहीं औ प्रतियोगी नहीं होवै तब प्रतियोगिसंबंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्तकाल औ अत्यंताभाव दोनूं हैं । यातैं " भूतले संयोगेन घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवैहै । इसरीतिसैं जहां प्राचीन सामयिकाभाव मानेहैं तहांभी सारे अत्यंताभावहै औ अत्यंताभावकूं अनित्यता होवै नहीं । औ उक्त कालके अभावतैं प्रतियोगीके होतैं अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं ॥

नवीन तार्किकके उक्त मतका खंडन ॥ ११ ॥

यह नवग्रंथकारोंका मतहै सो समीचीन नहीं । प्राचीनमतही समीचीनहैः—काहेतैं प्रतियोगीके होतैं अत्यंताभाव माने तो प्रतियोगी अभावका परस्पर विरोधहै या कथाका उच्छेद हुआ चाहिये । और जो नवीन ऐसैं कहैं विरोध दो प्रकारका होवैहैः—एक तो सहानवस्थानरूप होवैहै । औ दूजा सहाप्रतीतिरूप विरोध होवैहै । एक अधिकरणमैं एककालमैं

नहीं रहै तिनका सहानवस्थानरूप विरोध कहियेहै । जैसें आतप शी-तताका है । ऐसा विरोध अभाव प्रतियोगीका नहींहै । काहेतें प्रतियोगी-के होतें अत्यंताभाव रहैहै । किंतु अभाव प्रतियोगीका सहाप्रतीतिरूप विरोधहै । एककालमें एकअधिकरणमें जिनकी प्रतीति न होवै तिनका स-हाप्रतीतिरूप विरोध कहियेहै । प्रतियोगीके होतें अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं । यातें प्रतियोगी अभावका सहाप्रतीतिरूप विरो-धहै । सहानवस्थानरूप विरोध नहीं । इसरीतिसें नवीनका समाधान सर्वलोकशास्त्रसें विरुद्धहैं काहेतें अभावका अभाव प्रतियोगी-कहियेहै । जहां अभाव न होवै तहां अभावका अभाव होवैहै । जैसें घटवाले देशमें घटका अभाव नहींहै किंतु घटाभावका अभावहै सोई घटहै औ घटाभावका प्रतियोगीहै । इसरीतिसें अभावके अभावकूं सर्व शास्त्रनमें प्रतियोगी कहेहैं । नवीन रीतिसें सो कथन असंगत होवैगा । काहेतें । नवीन मतमें घटवाले देशमें घटका अभावभी है यातें घटाभा-वका अभाव कहना बनैं नहीं । यद्यपि वक्ष्यमाण रीतिसें घटतें भिन्नही घटाभावाभावहै घटरूप नहीं तथापि घटके समनियत घटाभावाभावहै । यह वार्त्ता निर्विवादहै औ नवीन रीतिसें घटवाले देशमें घटाभावहै यातें घटाभावका अभाव नहीं होनेतें दोनूंकी समनियतता संभवै नहीं । यातें नवीनमत शास्त्रविरुद्धहै । औ प्रतियोगिअभाव समानाधिकरण होवै नहीं यह सर्वलोकमें प्रसिद्धहै । ता लोकप्रसिद्ध अर्थका नवीनकल्पनासें बाध होवैगा। औ घटके अधिकरणमें घटका अत्यंताभाव मानना प्रमाणशून्य है । किसी प्रमाणसें सिद्ध होवै नहीं । जहां घट नहीं है । तहां "घटो नास्ति" इस प्रतीतिसें अत्यंताभाव सिद्ध होवैहै । घटवाले देशमें "घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै नहीं । और कोई प्रतीति घटवाले देशमें अ-त्यंताभावकी साधक है नहीं यातें प्रतियोगिदेशमें अत्यंताभावका अंगी-कार प्रमाणसिद्ध नहीं । उलटा घटवाले देशमें "घटात्यंताभावो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवैहै । ता प्रतीतिसें विरुद्ध अत्यंताभावका अंगीकारहै

औ घटवाले देशमैं जो घटात्यंताभावकूं मानैं ताकूं वृद्धिवांछा करिकै चलै पुरुषका मूलभी नष्ट होयगया इस न्यायकी प्राप्ति होवैगी । काहेतैं अत्यंताभावकूं केवलान्वयि साधनैं वास्तै औ नित्यता साधनैं वास्तै घटवाले देशमैं घटात्यंताभाव मानाहै परंतु घटवाले देशमैं घटात्यंताभाव मानें सो अत्यंताभावही निष्फल औ निष्प्रमाण होय जावैगा ॥ तथाहि सर्व पदार्थनका फलव्यवहार सिद्धहै " घटो नास्ति " इस व्यवहारकी सिद्धि बिना और तो घटात्यंताभावका फल संभवै नहीं । उक्तव्यवहारकी सिद्धिही फलहै औ " घटो नास्ति " या प्रतीतिसैंही घटात्यंताभाव सिद्ध होवैहै उक्त प्रतीतिबिना घटात्यंताभावके होनेमैं कोई प्रमाण नहीं नवीन मतमैं घटात्यंताभावसैं "घटो नास्ति " इस व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं किंतु घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त कालसैं उक्त व्यवहारकी सिद्धि होवैहै । काहेतैं घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त काल होवै तब " घटो नास्ति " यह प्रतीति होवैहै । घटसंबंधी भूतलाधिकरणकाल होवै । तब " घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवै नहीं । इसरीतिसैं " घटो नास्ति " या प्रतीतिसैं घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त कालकी सिद्धि होवैहै । घटात्यंताभावकी सिद्धिहोवै नहीं । प्रतीतिकी नांई " घटो नास्ति " इस व्यवहारकी सिद्धि नवीन मतमैं घटात्यंताभावसैं व्यवहार होवै नहीं किंतु उक्तकालसैं " घटो नास्ति " यह होवैहै । यातैं घटात्यंताभाव नवीनमतमैं निष्फल औ निष्प्रमाणहै । शब्दप्रयोगकूं व्यवहार कहैहैं । ज्ञानकूं प्रतीति कहैहैं । इसरीतिसैं नवीनमतसैं अत्यंताभावकूं नित्यता माननैंवास्तै प्रतियोगीवाले देशमैं अत्यंताभाव मानैं मूलतैं अत्यंताभावकी हानि होवैगी । यातैं घटवाले देशमैं घटात्यंताभाव संभवै नहीं । औ जहां भूतलमैं कदाचित् घट होवै तहां अत्यंताभाव होवै तौ अत्यंताभाव यह संज्ञाभी निरर्थक होवैगी । जहां अत्यंत अभाव होवै तीनि कालमैं प्रतियोगी न होवै सो अत्यंताभाव संज्ञाकी रीतिसैं सिद्ध होवैहै । यातैं जहां कदाचित् प्रतियोगी होवै कदाचित् न

होवै तहां कालत्रयमैं प्रतियोगीका अभाव नहीं । यातैं अत्यंताभाव नहीं तासैं भिन्न कोई अभावहै ताकूं सामयिकाभाव कहैहैं ॥

न्यायसम्प्रदायमैं घटके प्रध्वंसके प्रागभाव-की घट औ घटप्रागभावरूपता ॥ १२ ॥

इसरीतिसैं चारि प्रकारका संसर्गाभाव औ अन्योन्याभाव मिलिकै पांचप्रकारका अभाव है । सो अभाव एक एक दो प्रकारकाहैः—एक भावप्रतियोगिक होवैहै दूजा अभावप्रतियोगिक होवैहै । भावका अभाव भावप्रतियोगिकअभाव कहियेहैं।अभावका अभाव अभावप्रतियोगिक अभाव कहियेहैं । जैसैं प्रागभाव दो प्रकारका है । घटादिकनका कपालादिकनमैं प्रागभाव भावप्रतियोगिकहै । जैसैं भावपदार्थका प्रागभाव है तैसैं अभावकाभी प्रागभाव होवैहै । परंतु सादि पदार्थनका प्रागभाव होवैहै अनादिका प्रागभाव होवै नहीं । अत्यंताभाव अन्योन्याभाव प्रागभाव तो अनादिहैं । यातैं तिनका तो प्रागभाव संभवै नहीं प्रध्वंसाभाव अनंत तो है परंतु सादिहै यातैं प्रध्वंसाभावका प्रागभाव होवैहै । सो प्रध्वंसाभावका प्रागभाव प्रतियोगिरूप औ प्रतियोगीका प्रागभावरूप होवैहै। जैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका नाश होवै ताकूं घटका प्रध्वंसाभाव कहैहैं । सो प्रध्वंसाभाव मुद्गरादिजन्यहै मुद्गरादिकनके व्यापारतैं पूर्व घटकालमैं औ घटकै प्रागभाव कालमैं नहीं होनेतैं सादिहै । यातैं मुद्गरादि व्यापारतैं पूर्व घटध्वंसका प्रागभावहै सो ध्वंसका प्रागभाव घटकालमैं है औ घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटकै प्रागभाव कालमैं हैं । यातैं घटध्वंसका प्रागभाव घटकालमैं तो घटरूपहै औ घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका प्रागभावरूपहै । इसरीतिसैं घटध्वंसका प्रागभाव घट औ घटके प्रागभावके अंतर्भूतहै तिनतैं न्यारा नहीं यह सांप्रदायिक मतहै ॥

उक्तमतका खंडन औ घटध्वंसके अभावप्रतियोगिकप्रागभावकी सिद्धि ॥ १३ ॥

परंतु यह मत युक्तिविरुद्धहैः—काहेतैं घट तो भावरूपहै औ सादि है

घटका प्रागभाव अभावरूपहै औ अनादिहै । एकही घटध्वंस प्रागभावकूं कदाचित् भावरूपता कदाचित् अभावरूपता कहना विरुद्धहै । तैसैं कदाचित् सादिरूपता औ कदाचित् अनादिरूपता कहनाभी विरुद्धहै औ घटकालमैं " कपाले समवायेन घटोऽस्ति । घटप्रध्वंसो नास्ति " इस-रीतिसैं विधिरूप औ निषेधरूप दो प्रतीति विलक्षण होवैहैं । तिनके विषयभी परस्पर विलक्षण दो पदार्थ माने चाहिये । तैसैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वभी " कपाले घटो नास्ति । घटप्रध्वंसो नास्ति " इसरीतिसैं दो प्रतीति होवैहै । यद्यपि सो दोनूं प्रतीति निषेधमुखहैं । तथापि विलक्षणहैं । काहेतैं प्रथम प्रतीतिमैं तो नास्ति कहनैसैं प्रतीति जो होवैहै अभाव ताका प्रतियोगी घट प्रतीत होवैहै । औ दूसरै प्रतीतिमैं नास्ति कहनैसैं प्रतीत हुये अभावका घटप्रध्वंस प्रतियोगी प्रतीत होवैहै । यातैं प्रतियोगीका भेद होतैं घटप्रागभावका घटप्रध्वंस प्रागभावका अभेद संभवै नहीं । किंतु घट औ ताके प्रागभावतैं घटप्रध्वंसका प्रागभाव न्यारा मानना योग्यहै । अनुभवसिद्धपदार्थका लाघवबलसैं लोप संभवै नहीं । यातैं सांप्रदायिक रीतिसैं घटप्रध्वंसप्रागभावका घट औ ताके प्रागभावमैं अंत-र्भाव मानें लाघवभी अकिंचित्करहै ॥ इसरीतिसैं प्रध्वंसाभावका प्रागभाव अभावप्रतियोगिक प्रागभाव अभावहै ॥

सामयिकाभावके प्रागभावकी अभाव-प्रतियोगिता ॥ १४ ॥

तैसैं सामयिकाभावभी सादि होवैहै । ताका प्रागभावभी अभावप्राति-योगिक प्रागभाव होवैहै ॥

प्राचीन प्रागभावके प्रध्वंसकी प्रतियोगिप्रतियोगी औ प्रति-योगिप्रतियोगीके ध्वंसमैं अंतर्भावका नवीनकारि खंडन औ ताकी अभावप्रतियोगिता ॥ १५ ॥

औ प्रध्वंसाभावभी अत्यंताभाव अन्योन्याभावका तो होवै नहीं ।

काहेतैं दोनूं अभाव अनादि अनंतहैं । तैसैं प्रध्वंसाभावभी अनंतहै ताकाभी प्रध्वंस संभवै नहीं । परंतु प्रागभाव औ सामयिकाभावका प्रध्वंस होवैहै । सांप्रदायिक रीतिसैं प्रागभावध्वंसभी प्रतियोगिप्रतियोगि औ प्रतियोगि-प्रतियोगिकै ध्वंसकै अंतर्भूतहै तिनतैं पृथक् नहीं । जैसैं घटकै प्रागभावका ध्वंस होवैहै । सो घटकालमैं है औ घटकै ध्वंसकालमैं है । घटकालमैं तो घटप्रागभावका ध्वंस प्रतियोगिप्रतियोगीस्वरूपहै । काहेतैं घटप्रागभावकै ध्वंसका प्रतियोगी घटप्रागभावहै औ घटप्रागभावका प्रतियोगी घटहै । यातैं घटकालमैं घटप्रागभावका ध्वंस प्रतियोगिका प्रतियोगीस्वरूपहै । औ मुद्गरादिकनतैं घटका नाश होवै तिसकालमैंभी घटप्रागभावका ध्वंस है औ घट है नहीं यातैं तिसकालमैं घटप्रागभावका ध्वंस प्रतियोगिप्रति-योगीका ध्वंसरूपहै । काहेतैं घटप्रागभावध्वंसका प्रतियोगि जो घटप्राग-भाव ताका प्रतियोगि घटहै ता घटका ध्वंसही घटप्रागभावका ध्वंसहै । घटध्वंसतैं पृथक् घटप्रागभावध्वंस नहीं । इसरीतिसैं प्रागभावका ध्वंस कदाचित् अपने प्रतियोगीका प्रतियोगीरूपहै औ कदाचित् अपनै प्रतियोगिकै प्रतियोगीका ध्वंसरूपहै प्रागभावध्वंस पृथक् नहीं ॥

यह सांप्रदायिकरीतिभी युक्तिविरुद्धहै:— काहेतैं घट तो सांतहै औ भावरूपहै औ घटध्वंस अनंतहै अभावरूपहै एकही घटप्रागभावध्वंसकूं सां-त औ अनंतसैं अभेदकथन तैसैं भाव औ अभावसैं अभेद कथन विरु-द्धहै । औ घटकी उत्पत्ति होवै तब "घटो जातः" औ "घटप्रागभावो नष्टः" इसरीतिसैं दो विलक्षण प्रतीति होवैहैं । तिनमैं "घटो जातः" या प्रतीति-का विषय उत्पन्न घटहैं । औ "घटप्रागभावो नष्टः" या प्रतीतिका विषय घटप्रागभावका ध्वंसहै । तिनका अभेदकथन संभवै नहीं । तैसैं मुद्गरादि-कनसैं घटका ध्वंस होतेंही ऐसी प्रतीति होवैहै "इदानीं घटध्वंसो जातः घटप्रागभावध्वंसः पूर्वं घटोत्पत्तिकाले जातः" तहां वर्तमानकालमैं घटध्वं-सकी उत्पत्ति औ अतीतकालमैं घटप्रागभावध्वंसकी उत्पत्ति सिद्ध होवैहै वर्तमानकालमैं उत्पत्तिवालेसैं अतीतकालकी उत्पत्तिवालेका अभेद

संभवै नहीं । यातैं घटप्रागभावका ध्वंस घटकै ध्वंसतैं पृथक्है । यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक अद्वैतग्रंथनमैंभी ध्वंसप्रागभाव औ प्रागभावका ध्वंस पृथक् नहीं लिखे किंतु पूर्वउक्त न्यायसंप्रदायकी रीतिसैं अंतर्भावही लिख्याहै । तथापि श्रुतिसूत्रभाष्य तो इस निरूपणमैं उदासीनहै । यातैं जैसा अर्थ युक्ति अनुभवकै अनुसार होवै सो मान्या चाहिये । युक्ति अनुभवसैं विरुद्ध आधुनिक ग्रंथकारका लेख प्रमाण नहीं यातैं पूर्वउक्त अर्थ प्रमाणविरुद्ध नहीं उलटा पृथक् माननाही युक्ति अनुभवकै अनुसारहै । इस रीतिसैं प्रागभावका ध्वंस अभावप्रतियोगिक प्रध्वंसाभावहै ॥

घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकी घटत्वरूपता औ तामैं दोष ॥ १६ ॥

सामयिकाभाव केवल द्रव्यकाही होवैहै यह पूर्व प्रतिपादन कराहै ॥ यातैं अभावप्रतियोगिक सामयिकाभाव अप्रसिद्धहै ॥ अभावप्रतियोगिक अत्यंताभावके तो अनेक उदाहरणहैं:—कपालमैं घटका प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावहै तंतुमैं नहीं । यातैं तंतुमैं घटप्रागभावका अत्यंताभावहै। औ घटप्रध्वंसाभावका अत्यंताभावहै । तैसैं कपालमैं घटका सामयिकाभाव औ घटका अत्यंताभाव नहीं यातैं कपालमैं घटके सामयिकाभावका अत्यंताभावहै । औ घटात्यंताभावका अत्यंताभावहै । तैसैं कपालमैं कपालका अन्योन्याभाव नहीं । तहां कपालान्योन्याभावका अत्यंताभावहै। तैसैं घटमैं घटका अन्योन्याभाव नहीं । तहां घटान्योन्याभावका अत्यंताभावहै । परंतु अन्योन्याभावका अत्यंताभाव पृथक् नहीं । किंतु अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूपहै । जैसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्म घटत्वहै । सो केवल घटमैंही रहैहै औ घटान्योन्याभावका अत्यंताभावभी घटमैं ही रहैहै । घटसैं भिन्न सकलपदार्थनमैं घटान्योन्याभाव रहैहै । यातैं घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव घटसैं भिन्नपदार्थनमैं रहै नहीं । इस-

रीतिसैं घटत्वकै समनियत घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव होनेतैं घटत्वरूपही घटान्योन्याभावका अत्यंताभावहै ॥

इसरीतिका प्राचीन लेखभी श्रद्धायोग्य नहीं। काहेतैं "घटे समवायेन घटत्वम्" या प्रतीतिका विषय घटत्वहै। औ "घटे घटान्योन्याभावो नास्ति" या प्रतीतिका विषय घटान्योन्याभावका अत्यंताभावहै। यातैं अन्योन्याभावका अत्यंताभाव अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप नहीं। तासैं पृथक्ही अभावरूपहै ॥

अत्यंताभावके अत्यंताभावकी प्रथमात्यंताभावकी प्रतियोगिरूपताका प्रतिपादन औ खंडन ॥ १७ ॥

तैसैं अत्यंताभावकै अत्यंताभावकूं भी प्रथम अभावका प्रतियोगिरूप प्राचीन मानैहैं ताका खंडन तो नवीन न्यायग्रंथनमैं स्पष्टहै। तथाहि जहां घट कदीभी नहोवै तहां घटका अत्यंताभावहै। जहां घट होवै तहां घटात्यंताभाव नहींहै। यातैं ताका अत्यंताभावहै। इसरीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगि जो घट ताकै समनियत होनैतैं घटस्वरूपहै तासैं पृथक् नहीं। औ घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूप नहीं मानैं पृथक् मानैं तौ अत्यंताभावनकी अनवस्था होवैगी जैसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव पृथक्है तैसैं द्वितीय अत्यंताभावका तृतीय अत्यंताभाव। तृतीयका चतुर्थअत्यंताभाव। ताका पंचम। इसरीतिसैं अत्यंताभावनकी कहूं समाप्ति न होवै ऐसी अनंत धारा होवैगी औ द्वितीय अत्यंताभावकूं प्रथम अत्यंताभावका प्रतियोगिस्वरूप मानैं तब अनवस्था दोष नहीं। काहेतैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूपमानैं द्वितीयात्यंताभावका अत्यंताभावभी घटात्यंताभावही है। काहेतैं द्वितीय अत्यंताभाव घटरूपहै। यातैं ताका अत्यंताभाव घटकाही अत्यंताभावहै तैसैं तृतीय अत्यंताभावका चतुर्थ अत्यंताभाव फेरि घटरूपहै। चतुर्थ अत्यंताभावका पंचम अत्यंताभाव घटात्यंताभावरूपहै ॥
इसरीतिसैं प्रतियोगी औ एक अत्यंताभावके अंतर्भूत सारे अत्यंताभाव होवै-

है । अनवस्थादोष होवै नहीं । यातैं अत्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगिस्वरूप प्राचीनोंनैं मान्याहै ॥

तहां नवीनग्रंथकारोंनैं यह दोष लिख्याहैः--जहां भूतलमैं घट होवै तहां " भूतले घटोऽस्ति । भूतले घटात्यंताभावो नास्ति " इसरीतिसैं विलक्षणप्रतीति दो होवैहैं । विधिमुखप्रतीति औ निषेधमुखप्रतीतिका एक विषय संभवै नहीं । यातैं विधिमुखप्रतीतिका विषय घटहै औ निषेधमुखप्रतीतिका विषय घटात्यंताभावका अत्यंताभावहै । सो घटरूप नहीं किंतु अभावरूपहै यातैं घटसैं पृथक्‌है ॥

औ द्वितीय अत्यंताभावकूं पृथक् मानें अनवस्थादोष कह्याहै । ताका यह समाधानहैः--द्वितीय अत्यंताभाव प्रथम अत्यंताभावके प्रतियोगीके समनियतहै ।औ तृतीयाभाव प्रथमाभावके समनियतहै ।औ प्रतियोगिकै समानदेशमैं जो द्वितीयाभाव ताके समनियत चतुर्थाभावहै । प्रथम तृतीयकै समनियत पंचम अभावहै । इसरीतिसैं युग्म संख्याके सारे अभाव द्वितीयाभावके समनियतहैं । औ विषमसंख्याके सारे अभाव प्रथमाभावके समनियतहैं । तहां द्वितीयाभाव यद्यपि प्रथमाभावके प्रतियोगिके समनियतहैं । तथापि भाव अभावकी एकता बनै नहीं । यातैं घटके समनियतभी घटात्यंताभावाभाव घटसैं पृथक्‌है । औ प्रथमाभावके समनियत तृतीयाभाव तो प्रथमाभावस्वरूपहै पृथक् नहीं । काहेतैं "घटो नास्ति" ऐसी निषेधमुखप्रतीतिका विषय प्रथमाभावहै । औ "घटात्यंताभावाभावो नास्ति" ऐसी निषेधमुखप्रतीतिकाही विषय तृतीयाभावहै ॥ यातैं तृतीयाभाव प्रथमाभावरूपहै । तैसैं " घटात्यंताभावो नास्ति " ऐसी निषेधमुखप्रतीतिका विषय द्वितीयाभावहै । औ "तृतीयाभावो नास्ति" इसरीतिसैं चतुर्थाभावभी निषेधमुखप्रतीतिका विषयहै । यातैं द्वितीयाभावके समनियत चतुर्थाभाव द्वितीयाभावरूपहै । परंतु घटके समनियतभी द्वितीयाभावाभावरूप घटसैं पृथक् अभावरूपहै । इसरीतिसैं प्रथमाभाव औ द्वितीयाभावके अंतर्भूत सारी अभावमाला होवैहै अनवस्था दोष नहीं ॥

यद्यपि प्राचीन रीतिसैं प्रतियोगी औ अभावके अंतर्भूत सारे अभाव होवैहैं। यातैं एकही अभाव मानना होवैहै। नवीन रीतिसैं दो अभाव मानने होवैहैं। यातैं नवीनमतमैं गौरव है। तथापि भावाभावकी एकता बनैं नहीं। यातैं प्राचीनमत प्रमाणविरुद्धहैं। औ नवीनमत अनुभवानुसारीहै। यातैं प्रमाणसिद्धगौरव दोषकर नहीं। इसरीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभावभी अभावप्रतियोगिक अभावहै। इसरीतिसैं अभावप्रतियोगिक संसर्गाभावके उदाहरण कहे॥

अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण औ उक्त अर्थका अनुवाद॥ १८॥

औ अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण अति स्पष्टहैं। जैसैं प्रागभावका अन्योन्याभाव प्रागभावमैं नहीं और सकलपदार्थनमैं है। काहेतैं भेदकूं अन्योन्याभाव कहैहैं। स्वरूपमैं भेद रहै नहीं। स्वरूपातिरिक्त सर्वमैं सर्वका भेद रहैहै। यातैं प्रागभावभिन्नपदार्थनमैं प्रागभावका अन्योन्याभावहै। प्रध्वंसाभावतैं भिन्नमैं प्रध्वंसाभावका अन्योन्याभावहै। अत्यंताभावसैं भिन्नमैं अत्यंताभावका अन्योन्याभावहै। अन्योन्याभावसैं भिन्नमैं अन्योन्याभावका अन्योन्याभावहै अन्योन्याभावसैं भिन्न चारिप्रकारका संसर्गाभाव और सारे भावपदार्थहैं। काहेतैं संसर्गाभाव औ भावपदार्थ अन्योन्याभावरूप नहीं। यातैं अन्योन्याभावसैं भिन्नहै। जो जासैं भिन्न होवै तामैं तिसका अन्योन्याभाव होवैहै। यातैं संसर्गाभावमैं और सकलभावपदार्थनमैं अन्योन्याभावका अन्योन्याभावहै॥

इसरीतिसैं पंचविध अभावमैं सामयिकाभाव तो केवल द्रव्यकाही होवैहै। यातैं अभावप्रतियोगिक है नहीं। चारि अभावनके अभाव प्रतियोगिकके उदाहरण कहे। अभावप्रतियोगिक अभावकूं कितनी जगहमैं प्राचीन भावरूप मानैहैं। जैसैं घटप्रागभावके ध्वंसकूं घटरूप मानैहैं घटध्वं-

सैके प्रागभावकूं घट मानैहैं । घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकूं घटत्व मानैहैं । घटात्यंताभावके अत्यंताभावकूं घट मानैहैं । ताका खंडन कन्या यातैं अभावप्रतियोगिकभी अभावहै । औ भावप्रतियोगिक अभाव तो अतिप्रसिद्धहै । इसरीतिसैं अभावका निरूपण न्यायशास्त्रकी रीतिसैं किया औ कहूं प्राचीनमतमैं वा नवीनमतमैं दोष कहे सोभी न्यायकी मर्यादा लेकै दोष कहेहैं ॥

उक्तन्यायमतमैं वेदांतसे विरुद्ध आशंकाप्रदर्शन औ अनादि प्रागभावका खंडन ॥ १९ ॥

औ उक्त प्रकारसैं अभावका निरूपण वेदांतशास्त्रसैंभी विरुद्ध नहीं । औ जितना अंश वेदांतविरुद्धहै सो दिखावैहै । कपालमैं घटके प्रागभावकूं अनादि कहेहैं सो प्रमाणविरुद्धहै । यातैं वेदांतके अनुसारी नहीं । काहेतैं घटप्रागभावका अधिकरण कपाल सादि औ प्रतियोगि घटभी सादिप्रागभावकूं अनादिता किस रीतिसैं होवै । औ मायामैं सकल कार्यके प्रागभावकूं अनादिता कहै तौ संभवैहै । काहेतैं माया अनादिहै । परंतु मायामैं कार्यका प्रागभाव मानना व्यर्थहै । औ सिद्धांतमैं इष्टभी नहीं । काहेतैं घटकी उत्पत्ति कपालमैं होवैहै अन्यमैं नहीं । तैसैं पटकी उत्पत्ति तंतुमैं होवैहै । कपालमैं नहीं । यातैं घटका प्रागभाव कपालमैंहै तंतुमैं नहीं । पटका प्रागभाव तंतुमैंहै कपालमैं नहीं । जाका जिसमैं प्रागभावहै ताकी तिसमैं उत्पत्ति होवैहै । अन्यमैं होवै नहीं । सर्वसैं सर्वकार्यकी उत्पत्ति मति होवै इसवास्तैं प्रागभावका अंगीकारहै ॥

औ मुख्य प्रयोजन प्रागभावका नैय्यायिक यह कहेहैंः—कपाल तंतु आदिकनके घटपटादिक परिणाम तो है नहीं । किंतु कपालमैं घटका आरंभ होवैहै । तंतुमैं पटका आरंभ होवैहै । औ घटपटादिक होवैं तब पूर्वकी नांई कपालतंतुभी विद्यमान रहेहै । जो परिणामवाद होवै तो घटाकारकूं प्राप्त हुआँ पाछे स्वरूपसैं कपाल रहै नहीं । तैसैं पटाकारकूं

प्राप्त हुआँ पाछे तंतु रहै नहीं। सो परिणामवाद तो है नहीं । आरंभवादहै। कपाल ज्यूंका त्यूं रहैहै औ अपनैंमैं घटकी उत्पत्ति करैहै। जब घट उत्पन्न होयलैवै तबभी घटकी सामग्री पूर्वकी नांई बनी रहैहै । परिणामवादमैं तो कार्यकी उत्पत्ति हुए उपादानकारण रहै नहीं। काहेतैं परिणामवादमैं उपादानकारणही कार्यरूपकूं प्राप्त होवैहै। यातैं घटरूपकूं प्राप्त हुए कपाल घटकी सामग्री नहीं। औ आरंभवादमैं उपादानकारण अपनैं स्वरूपकूं त्यागै नहीं उपादानसैं भिन्न कार्यकी उत्पत्ति होवैहै। अपनैं स्वरूपसैं उपादानकारण बनारहैहै। यातैं घटकी उत्पत्ति हुएभी ज्यूंकी त्यूं सामग्री होनैंतैं फेरि घटकी उत्पत्ति चाहिये। यद्यपि एक घटकी उत्पत्ति हुए अन्यघटकी उत्पत्तिमैं तो प्रथम घट प्रतिबंधकहै घटसैं निरुद्ध कपालमैं अन्य घटकी उत्पत्ति होवै नहीं॥ तथापि प्रथम उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये। जो प्रथम उत्पन्नकी फेरि उत्पत्ति मानैं तौ जैसैं उत्पत्तिकालमैं "घट उत्पद्यते" यह व्यवहार होवैहै। तैसैं उत्पत्तिकालसैं उत्तरकालमैं भी "घट उत्पद्यते" यह व्यवहार हुआ चाहिये सिद्ध घटका जो आधारकाल सो घटकी उत्पत्तिकालसैं उत्तरकालहै। सिद्धघटके आधारकालमैं "उत्पन्नो घटः" यह व्यवहार होवैहै। औ "उत्पद्यते घटः" ऐसा व्यवहार एक उत्पत्तिक्षणमैं होवै है। घटके आधार द्वितीयादि क्षणमैं "उत्पद्यते" ऐसा व्यवहार होवै नहीं। काहेतैं वर्त्तमान उत्पत्तिवाला घटहै। यह अर्थ "घट उत्पद्यते" या कहनैसैं प्रतीत होवैहै "उत्पन्नो घटः" या कहनैंतैं अतीत उत्पत्तिवाला घटहै। यह अर्थ प्रतीत होवैहै। उत्पन्नकी उत्पत्ति मानैं तौ घटकी सिद्धदशामैं भी कोई उत्पत्ति वर्त्तमान रहैगी। यातैं उत्पन्न घटमैं भी "उत्पद्यते घटः" ऐसा व्यवहार चाहिये। यातैं उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति नहीं देखनैतैं घटकी उत्पत्तिकी सामग्री नहीं रहैहै। ऐसा मान्या चाहिये। तहां और सामग्री कपालादिक तो हैं तिस घटका प्रागभाव नहीं रहैहै। घटके प्रागभावका घटउत्पत्तिक्षणमैं ध्वंस होवैहै। सो घट-

का प्रागभाव घटकी उत्पत्तिमैं कारणहै ताकै अभावतैं उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं। यह प्रागभावका मुख्य प्रयोजनहै ॥

सो मायामैं घटादिकनके प्रागभावका प्रथम प्रयोजन तो संभवै नहीं। काहेतैं घटादिकनका साक्षात् उपादान माया नहीं किंतु कपालादिक हैं। औ मायाकूं सर्व पदार्थनका साक्षात् उपादानता सिद्धांतपक्षमैं मानीहै। तौभी कार्यकी उत्पत्तिमैं दूसरे कारणकी अपेक्षा करै नहीं। अद्भुतशक्ति मायामैं है। यातैं प्रागभावादिरूप अन्यकारणकी अपेक्षा नहीं। यातैं मायामैं किसीका प्रागभाव नहीं। औ कपालमैं घटकी उत्पत्ति होवैहै पटकी नहीं। यामैं प्रागभाव हेतु कह्या सोभी बनै नहीं। कपालमैं घटकी कारणताहै पटकी नहीं। काहेतैं अन्वयव्यतिरेकसैं कारणताका ज्ञान होवैहै। औ कपालके अन्वय कहिये सत्ता होवे तौ घटका अन्वय होवैहै। कपालके व्यतिरेक कहिये अभावतैं घटका व्यतिरेक होवैहै। इसरीतिसैं कपालके अन्वयव्यतिरेकतैं घटका अन्वयव्यतिरेक देखियेहै पटका नहीं। यातैं कपालमैं घटकी कारणताहै पटकी नहीं। इसवास्तैं कपालसैं घटही होवैहै पटादिक होवै नहीं। पटादिकनकी व्यावृत्तिवास्तैं घटका प्रागभाव कपालमैं संभवै नहीं। औ जो मुख्य प्रयोजन प्रागभावका कह्या कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं अनंतर उत्पत्ति हुई चाहिये। सोभी परिणामवादमैं दोष नहीं। काहेतैं स्वरूपसैं स्थित कपाल घटकी उत्पत्ति करैहै कार्यरूपकूं प्राप्तहुये कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं। यातैं परिणामवादमैं प्रागभाव निष्फलहै ॥

औ विचार करैं तौ आरंभवादमैं भी प्रागभाव निष्फलहै ॥ काहेतैं घटकी उत्पत्ति हुए फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये। जो ऐसैं कहैं ताकूं यह पूछा चाहियेः—घटांतरकी उत्पत्ति हुई चाहिये अथवा जो घट जिस कपालमैं उपजाहै तिसकी उत्पत्ति हुई चाहिये। जो ऐसैं कहै। अन्यघटकी उत्पत्ति हुई चाहिये सो तो संभवैनहीं। काहेतैं जिस कपालसैं जो घट होवैहै तिस कपालमैं तिसी घटकी करणताहै। घटांतरकी करणता कपालांतरमैं है।

यातैं अन्यघटकी उत्पत्तिकी प्राप्ति नहीं । औ जो ऐसैं कहै जो घट पूर्व उपजाहै तिसीकी उत्पत्ति होवैगी सोभी संभवै नहीं । काहेतैं जहां कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै तहां प्रथमउत्पत्ति अन्यउत्पत्तिकी प्रतिबंधकहै । यातैं फेरिउत्पत्तिकी प्रतीति नहीं । प्रागभाव निष्फलहै ॥

औ उत्पत्तिकै स्वरूपका सूक्ष्मविचार करै तौ फेरिउत्पत्ति हुई चाहिये । यह कथनहीं विरुद्धहै । काहेतैं आद्यक्षणसैं संबंधकूं उत्पत्ति कहैहैं । घटका आद्यक्षणसैं संबंध घटकी उत्पत्ति कहियेहै । घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण जो क्षण सो घटका आद्यक्षण कहियेहै । घटके अधिकरण अनंतरक्षणहैं तिनमैं घटके अधिकरण जो द्वितीयादि क्षण तिनमैं घटाधिकरण प्रथमक्षणका ध्वंस रहैहै । औ प्रथम क्षणमैं घटाधिकरणक्षणका ध्वंस रहै नहीं । यातैं घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण घटका प्रथमक्षणहै ता क्षणसैं संबंधही घटकी उत्पत्ति कहियेहै । द्वितीयादिक्षणमैं प्रथमक्षणसैं संबंध होवै नहीं । यातैं प्रथमक्षणमैं हीं " उत्पद्यते " ऐसा व्यवहार होवैहै । द्वितीयादिक्षणमैं नहीं । इसरीतिसैं प्रथमक्षण संबंधरूप उत्पत्ति फेरि हुई चाहिये ऐसा कहना " मम जननी वंध्या " इस वाक्य तुल्यहै । काहेतैं घटकी उत्पत्तिसैं उत्तरक्षण घटाधिकरणके ध्वंसका अधिकरणही होवैगा । यातैं घटाधिकरण क्षणके ध्वंसका अनधिकरणक्षण फेरि संभवै नहीं । यातैं उत्पन्नकी उत्पत्ति हुई चाहिये यह कहना विरुद्धहै । इसरीतिसैं प्रागभाव निष्फलहै " कपाले समवायेन घटो नास्ति " या प्रतीतिका विषय सामयिकाभावही संभवैहै । औ "कपाले घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषयभी घटका भविष्यत्कालहै प्रागभाव असिद्धहै॥

औ अपनैं शास्त्रके संस्कारसैं नैय्यायिक प्रागभावकूं मानैं तौभी सादि मान्या चाहिये । अनादि संभवै नहीं । काहेतैं अन्यमतमैं तौ सारे अभावनका अधिकरणभेदसैं भेद होवैहै । औ नैय्यायिकमतमैं अधिकरणभेदसैं अभावका भेद नहीं । किंतु प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद

होवैहै । यातैं एक प्रतियोगिक अभाव नानाअधिकरणमैं एकही होवैहै । परंतु प्रागभाव तो नैय्यायिकमतमैं भी अधिकरणभेदसैं भिन्नही होवैहै । काहेतैं घटका प्रागभाव घटके उपादानकारण कपालमैंही रहैहै ॥ तिनमैं भी जो घट जिस कपालमैं होवै ता घटका प्रागभाव तिस कपालमैं है । अन्यघटका प्रागभाव अन्यकपालमैं है ॥ इसरीतिसैं एक प्रागभाव एकही अधिकरणमैं रहैहै । सो कपालादिक प्रागभावके अधिकरण सादिहै । तिनमैं रहनैंवाला प्रागभाव किसी रीतिसैं अनादि संभवै नहीं जो अनादि अधिकरणमैं औ सादिमैं एक प्रागभाव रहता होवै तौ अनादि कहनाभी संभवै सो नाना अधिकरणमैं प्रागभाव संभवै नहीं ॥ यातैं कपालमात्रवृत्ति घटप्रागभावकूं अनादिता संभवै नहीं ॥

औ जो ऐसैं कहै कपालकी उत्पत्तिसैं पूर्व कपालके अवयवनमैं घटका प्रागभाव रहैहै । तिसतैं पूर्व अवयवके अवयवनमैं रहैहै । इसरीतिसैं अनादि परमाणुमैं घटका प्रागभाव अनादिहै ॥

सो संभवै नहीं:—काहेतैं अपनैं प्रतियोगिकै उपादानकारणमैं प्रागभाव रहैहै अन्यमैं नहीं । यह नैय्यायिकनका नियमहै । कपालकै अवयव कपालकै उपादानकारणहै घटके नहीं । यातैं कपालावयवमैं कपालकाहीं प्रागभाव संभवैहै घटका प्रागभाव कपालमैं ही है । कपालावयवमैं संभवै नहीं । इसरीतिसैं परमाणु केवल द्व्यणुकका उपादानकारणहै । यातैं द्व्यणुकका प्रागभावही परमाणुमैं ही रहैहै । द्व्यणुकसैं आगे अणुकादिक घटपर्यंतके प्रागभाव परमाणुमैं संभवै नहीं । औ परमाणुमैं द्व्यणुक भिन्न पदार्थनका भी प्रागभाव मानै तौ परमाणुसैं भी घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये॥

औ परिणामवादमैं तो कार्यकारणका अभेदहै । यातैं द्व्यणुकसैं लेकै अंत्यावयवी घटपर्यंत कार्यकारणधाराका भेद नहीं । तिस मतमैं तो परमाणुमैं द्व्यणुकका प्रागभावही घटपर्यंत कार्यधाराका प्रागभावहै । यातैं परमाणुमैं घटादिकनके प्रागभाव कहना संभवै । सो आरंभवादमैं कार्य-कारणका अभेद तो है नहीं किंतु कार्यकारणका परस्पर अत्यंत भेदहै ।

यातैं कपालावयवमैं घटका प्रागभाव नहीं । तैसैं परमाणुमैं द्व्यणुकके कार्यका प्रागभाव संभवै नहीं । इसरीतिसैं सादि कपालादिकनमैं घटादिकनके प्रागभावकूं अनादिता कथन असंगतहै ॥

अनंत प्रध्वंसाभावका खंडन ॥ २० ॥

तैसैं नैय्यायिकमतमैं प्रध्वंसाभावभी अपनैं प्रतियोगिकै उपादानमैं ही रहैहै । यातैं घटका ध्वंस कपालमात्रवृत्तिहै सो अनंत है यह कथन असंगतहै घटध्वंसका अधिकरण जो कपाल ताके नाशतैं घटध्वंसका नाश होवैहै ॥ औ घटध्वंसका नाश माननैमैं नैय्यायिक यह दोष कहैहैं:— घटध्वंसका ध्वंस होवै तौ घटका उज्जीवन हुआ चाहिये । काहेतैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावका अनाधारकाल प्रतियोगिका आधार होवैहै । यह नियमहै । जा कालमैं घटध्वंसका ध्वंस होवै सो काल घटध्वंसका अनाधार होवैगा । औ प्रागभावका अनाधार होवैगा । यातैं घटका आधार होवैगा । इस रीतिसैं ध्वंसका ध्वंस माने घटादिकप्रतियोगीका उज्जीवन होवैगा । यह दोषभी नहीं । काहेतैं प्रागभावकूं अनादिता औ ध्वंसकूं अनंतता मानै तो उक्त नियमकी सिद्धि होवै । औ उक्त नियम मानै तो प्रागभावकूं अनादिताकी औ ध्वंसकूं अनंतताकी सिद्धि होवै । औ सिद्धांतपक्षमैं प्रागभाव सादिहै । यातैं प्रागभावकी उत्पत्तिसैं पूर्वकाल घटकै प्रागभावका औ घटकै ध्वंसक अनाधारहै । घटका आधार नहीं । अथवा मुख्यसिद्धांतमैं सर्वथा प्रागभावका अंगीकार नहीं यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकाल घटकै प्रागभावका अनाधारहै । औ घटकै ध्वंसका अनाधारहै । घटरूपप्रतियोगीका अनाधारहै । घटरूपप्रतियोगीका आधार नहीं । यातैं प्रागभावध्वंसका अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवैहै यह नियम संभवै नहीं । यातैं घटध्वंसकाभी ध्वंस होवैहै । औ उक्त नियमकी असिद्धिसैं घटका उज्जीवन होवै नहीं ॥

अन्योन्याभावकी सादि सांतता औ अनादिता अंगीकार ॥ २१ ॥

तैसैं अन्योन्याभावभी सादि सांत अधिकरणमैं सादि सांतहै । जैसैं घटमैं पटका अन्योन्याभावहै । ताका अधिकरण घटहै सो सादिहै । औ सांतहै । यातैं घटवृत्ति पटान्योन्याभावभी सादि सांतहै । अनादि अधिकरणमैं अन्योन्याभाव अनादिहै । परंतु अनादिभी सांतहै अनंत नहीं । जैसैं ब्रह्ममैं जीवका भेदहै सो जीवका अन्योन्याभावहै । ताका अधिकरण ब्रह्महै सो अनादिहै । यातैं ब्रह्ममैं जीवका भेदरूप अन्योन्याभाव अनादिहै । औ ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा भेदका अंत होवैहै यातैं सांतहै ॥

अनादि पदार्थकी भी ज्ञानसैं निवृत्ति अद्वैतवादमैं इष्टहै इसी वास्तै शुद्धचेतन १ जीव २ ईश्वर ३ अविद्या ४ अविद्याचेतनका संबंध ५ अनादिका परस्पर भेद ६ ये षट्पदार्थ अद्वैत मतमैं स्वरूपसैं अनादि कहैहैं । औ शुद्धचेतन बिना पांचकी ज्ञानसैं निवृत्ति मानैहै ॥

यामैं यह शंका होवैहैः—जीवईश्वरकूं अद्वैतवादमैं मायिक कहैहैं । मायाका कार्य मायिक कहियेहै । जीव ईश मायाके कार्यहैं औ अनादि हैं यह कहना विरुद्धहै ॥

ता शंकाका यह समाधानहैः—जीव ईशमायाके कार्यहैं यह मायिक पदका अर्थ नहीं है । किंतु मायाकी स्थितिकै अधीन जीवईशकी स्थिति है । मायाकी स्थिति बिना जीव ईशकी स्थिति होवै नहीं । यातैं मायिकहै । औ मायाकी नांई अनादिहैं । इसरीतिसैं अनादि अन्योन्याभावभी सांतहै अन्योन्याभाव अनंत नहीं ॥ तैसैं अत्यंताभावभी आकाशादिकनकी नांई अविद्याका कार्यहै । औ विनाशीहै । इसरीतिसैं अद्वैतवादमैं सारे अभाव विनाशीहैं । कोई अभाव नित्य नहीं औ अद्वैतवादमैं अनात्मपदार्थ सारे मायाका कार्यहैं यातैं आत्म-

भिन्नकूं नित्यता संभवै नहीं । जैसैं घटादिक भाव पदार्थ मायाके कार्यहैं । तैसैं अभावभी मायाके कार्य हैं ॥

यद्यपि अद्वैतवादमैं मायाकूं भावरूप कहैहैं । यातैं अभावपदार्थकी उपादानता मायाकूं संभवै नहीं । कार्यके सजातीय उपादान होवैहै । अभावके सजातीय माया नहीं । किंतु माया औ अभावभावत्व अभावत्वसैं विजातीयहैं मायामैं भावत्वहै । औ अभावमैं अभावत्वहै । तथापि सकल अभावनाका उपादान मायाहीहै । काहेतैं अनिर्वचनीयत्व मिथ्यात्व ज्ञाननिवर्त्यत्व अनात्मत्वादिक धर्मनतैं माया औ अभाव सजातीयहैं । औ सकल धर्मनसैं उपादान औ कार्यकी सजातीयता कहै तौ घट कपालमैं भी घटत्व कपालत्व विजातीयधर्म होनेतैं घटका उपादान कपाल नहीं होवैगा । जैसैं मृन्मयत्वादिक धर्मनसैं घटकपाल सजातीयहै । तैसैं अनिर्वचनीयत्वादिक धर्मनसैं अभाव मायाभी सजातीयहै । यातैं सकल अभाव मायाके कार्यहैं । यातैं मिथ्याहैं ॥

औ कोई ग्रंथकार अद्वैतवादी एक अत्यंताभावकूं मानैहैं । और अभावकूं अलीक कहैहैं । जैसैं घटका प्रागभाव कपालमैं कहैहैं सो अलीक है । काहेतैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकालसंबंधी कपालही " घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषयहै । घटका प्रागभाव अप्रसिद्धहै । तैसैं मुद्गरादिकनसैं चूर्णीकृत कपाल अथवा विभक्त कपालसैं पृथक् घटध्वंसभी अप्रसिद्धहै । तैसैं घटासंबंधी भूतलही घटका सामयिकाभावहै । घट होवै तब घटका संबंधी भूतलहै । यातैं घटासंबंधी भूतल नहीं । इसरीतिसैं सामयिकाभाव अधिकरणसैं पृथक् नहीं ॥ तैसैं घटमैं पटके भेदकूं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव कहैहैं । सो दोनूंके अभेदका अत्यंताभावरूपहै । दो पदार्थनके अभेदात्यंताभावसैं पृथक् अन्योन्याभाव अप्रसिद्धहै । इसरीतिसैं एक अत्यंताभावही है । और कोई अभाव नहीं । इसरीतिसैं अभावके निरूपणमैं बहुत विचारहै । ग्रंथवृद्धिके भयतैं रीतिमात्र जनाईहै ॥

अभावकी प्रमाके हेतु प्रमाणका निरूपण अभावज्ञानके भेद-पूर्वक न्यायमतमैंभ्रमप्रत्यक्षमैं विषयअनपेक्षा ॥ २२ ॥

अभावका स्वरूप निरूपण किया तामैं प्रमाणनिरूपण करियेहैं:—अभावका ज्ञान दो प्रकारकाहै । एक भ्रमरूपहै दूजा प्रमारूपहै । भ्रमज्ञानभी प्रमाकी नांई प्रत्यक्ष परोक्ष भेदसैं दो प्रकारका है । घटवाले भूतलमैं इंद्रियका संयोग हुयेंभी किसी प्रकारतैं घटकी उपलब्धि न होवै । तहां घटाभावका प्रत्यक्ष भ्रम होवैहै । परंतु विषय विना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं । अन्यथा ख्यातिवादीकेमतमैं तो भ्रम प्रत्यक्षमैं विषयकी अपेक्षा नहीं किंतु अन्यपदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञानकूं अन्यथाख्याति कहैहै । यातैं जा पदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञान होवै तिसकी तो अपेक्षाहै । जैसैं रज्जुका सर्पत्वरूपतैं ज्ञान होवैहै तामैं रज्जुकी अपेक्षाहै । तथापि जिस विषयका ज्ञानमैं आकार प्रतीत होवै तिसकी अपेक्षा अन्यथाख्यातिवादीकै मतमैं नहीं । जैसैं सर्पका आकार भ्रममैं भासैहै । ताकी अपेक्षा नहीं ॥

सिद्धांतमैं परोक्षभ्रममैं विषयकी अनपेक्षा औ अपरोक्षभ्रममैं अपेक्षा ॥ २३ ॥

तथापि सिद्धांतमैं अनिर्वचनीय ख्यातिहै । जहां प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां भ्रमज्ञानकी नांई अनिर्वचनीय विषयकी भी उत्पत्ति होवैहै । यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमैं प्रातिभासिक घटाभाव अनिर्वचनीय उपजैहै । व्यावहारिक घटका व्यावहारिक घटाभावतैं विरोधहै । प्रातिभासिक घटाभावतैं व्यावहारिक घटका विरोध नहीं । यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमैं अनिर्वचनीय घटाभाव और ताका अनिर्वचनीय ज्ञान दोनूं उपजैहैं । तहां घटाभावका प्रत्यक्षभ्रम कहियेहैं । जहां अंधकूं विप्रलंभक वचनतैं घटवाले भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै सो अभावका परोक्षभ्रम है । परोक्षज्ञानमैं विषयकी अपेक्षा नहीं । काहेतैं अतीतका औ अनाग-

तका भी परोक्षज्ञान होवैहै । यातैं अभावका जहां परोक्षभ्रम होवै तहां प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं । केवल अभावाकार वृत्तिरूप ज्ञानकी ही उत्पत्ति होवैहै ॥

सिद्धांतमैं अभावभ्रमआदि स्थानमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार ॥ २४ ॥

अथवा परोक्ष भ्रमकी नांई जहां अभावका प्रत्यक्ष भ्रम होवै तहांभी प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं किंतु अभावका भ्रम अन्यथा-ख्यातिरूपहै । काहेतैं रज्जुआदिकनमैं सर्पादि भ्रमकूं अन्यथा ख्यातिरूप मानै तौ यह दोषहैः—रज्जुमैं सर्पत्व धर्मकी प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैहैं सो संभवै नहीं । काहेतैं इंद्रियका संबंध रज्जुसैं औ रज्जुत्वसैं हैं । सर्पत्वसैं इंद्रियका संबंध नहीं । औ विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं । यातैं रज्जुका सर्पत्वधर्मसैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं । इसरीतिसैं प्रत्यक्षभ्रमस्थलमैं अन्यथाख्यातिका निषेध करिकै अनिर्वचनीय ख्याति मानीहै । ताकी रीति पूर्व कहीहै ॥

परंतु जहां अधिष्ठान औ आरोप्य दोनूं इंद्रियसंबंधी होवैं तहां उक्त दोष संभवै नहीं । यातैं सिद्धांतग्रंथनमैं भी तहां अन्यथा ख्यातिही लिखी है । जैसैं पुष्पकै उपरि धरे स्फटिकमैं रक्तताका प्रत्यक्ष भ्रम होवैहै । तहां पुष्पकी रक्ततासैं भी नेत्रका संयुक्तसमवाय अथवा संयुक्त-तादात्म्यसंबंधहै । औ स्फटिकसैं नेत्रका संयोगसंबंधहै तहां रक्त-ता आरोप्यहै । औ स्फटिक अधिष्ठानहै । तहां पुष्पकी व्यावहारिक रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवैहै । स्फटिकमैं अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्ति होवै नहीं । काहेतैं जो रक्ततासैं सर्पत्वकी नांई नेत्रका संबंध नहीं होता तौ विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं । यह दोष होता नेत्रसैं रक्तताका उक्त संबंध होनेतैं उक्त दोष संभवै नहीं । यातैं आरोप्यकै सन्निधानस्थलमैं अन्यथाख्यातिही संभवैहै ॥

तैसैं घटवाले भूतलमैं घटाभाव भ्रम होवै । तहां आरोप्य अधिष्ठानका सान्निधान होनेतैं आरोप्यसैं भी अधिष्ठानकी नांई इंद्रियका संबंधहै । काहेतैं अधिष्ठानभूतलहै औ आरोप्य घटाभाव भूतलमैं तो नहींहै । परंतु भूतलवृत्ति भूतलत्वमैं घटाभावहै । औ भूतलवृत्ति जो रूपस्पर्शादि गुणहैं तिनमैं घटाभाव है । भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमैं घटका संयोग कदीभी होवै नहीं । काहेतैं दो द्रव्यनका संयोग होवैहै । घट तो द्रव्यहै। भूतलत्व द्रव्य नहीं किंतु जातिहै । तासैं घटका संयोग संभवै नहीं । भूतलके रूप स्पर्शादिकभी द्रव्य नहीं । किंतु गुणहैं तिनमैंभी घटका संयोग संभवै नहीं । औ जामैं जाका संयोगसंबंध नहीं होवै तो तिसमैं तिस पदार्थका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवैहै इसरीतिसैं भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट होतेंभी भूतलत्वमैं औ भूतलके गुणनमैं संयोगसंबंधतैं घट नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै । तहां अधिष्ठान भूतलहै । औ आरोप्य घटात्यंताभावहै । ताका भूतलसैं स्वाधिकरण समवायसंबंध है । स्व कहिये घटात्यंताभाव ताका अधिकरण भूतलत्व औ भूतलके रूपादि गुण तिनका समवाय भूतलमैं है । औ भूतलका घटात्यंताभावसैं स्वसमवेत वृत्तित्वसंबंधहै । स्व कहिये भूतल तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधसैं रहनैंवाले भूतलत्व औ गुण तिनमैं वृत्तित्व कहिये आधेयता अत्यंताभावकी है । इसरीतिसैं आरोप्य अधिष्ठानके परस्पर संबंध होनेतैं सन्निधानहै । यातैं भूतलत्ववृत्ति औ रूपस्पर्शादि वृत्ति जो व्यावहारिक घटात्यंताभाव ताकी भूतलमैं प्रतीति होनेतैं अभावका भ्रम अन्यथाख्यातिरूपहै । प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति निष्प्रयोजनहै । इसरीतिसैं प्रत्यक्ष परोक्ष भेदसैं अभावभ्रम दो प्रकारका है ॥

प्रत्यक्षपरोक्षयथार्थभ्रमरूप अभावप्रमाकी इंद्रिय औ अनुपलंभादि सामग्रीका कथन ॥ २९ ॥

तैसैं अभावकी प्रमाभी प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दो प्रकारकी है:—

नय्यायिकमतमैं तो इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहैहैं। तासैं भिन्नज्ञानकूं परोक्षज्ञानकहैहैं। औ अभावसैं भी इंद्रियका विशेषणता अथवा स्वसंबद्धविशेषणतासंबंध जहां होवै तहां अभावकी प्रत्यक्षप्रमा औ परोक्षप्रमा कहियेहैं। जैसैं श्रोत्रसैं शब्दाभावका विशेषणतासंबंधहै तहां शब्दाभावकी श्रोत्रजन्य प्रत्यक्षप्रमाहै। तैसैं भूतलमैं घटाभाव होवै तहां नेत्रसंबद्ध भूतलमैं विशेषणतासंबंध अभावका होनेतैं नेत्रजन्य प्रत्यक्षप्रमा घटाभावकी होवैहै। परंतु पुरुषशून्यभूतलमैं जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवैहै तहां पुरुषाभावहै औ पुरुषाभावतैं नेत्रका स्वसंबद्ध विशेषणतासंबंधभी है तथापि पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं। यातैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रियकरणहै प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारीहै। जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै तहां प्रतियोगीका अनुपलंभ नहींहै। किंतु पुरुषरूप प्रतियोगीका उपलंभ कहिये ज्ञानहै। जैसैं घटादिक द्रव्यकै चाक्षुषप्रत्यक्षमैं नेत्र करणहै औ अंधकारमैं घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं। यातैं नेत्रजन्य चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारीहै। यातैं अंधकारस्थ घट होवै तहां नेत्रइंद्रियहै औ नेत्रइंद्रियका घटसैं संयोग भी है। तथापि घटका आलोकसैं संयोग रूप सहकारी नहीं। यातैं अंधकारस्थघटका चाक्षुषप्रत्यक्षहोवैनहीं। चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोक संयोग सहकारीहै। तहां इंद्रियसैं आलोकका संयोग हेतु नहीं। किंतु विषयसैं आलोकसंयोग हेतुहै। यातैं प्रकाशमैं स्थितपुरुषकूं अंधकारस्थघटका प्रत्यक्ष होवै नहीं। तहां इंद्रियसैं तो आलोकसंयोगहै विषय जो घट तासैं आलोकसंयोग नहीं औ अंधकारस्थपुरुषकूं प्रकाशस्थ घटका प्रत्यक्ष होवैहै। तहां इंद्रियसैं तो आलोकका संयोग नहींहै विषयतैं आलोकका संयोगहै। यातैं विषय औ आलोकसंयोग नेत्रजन्य ज्ञानमैं सहकारीहै। तथापि घटके पूर्वदेशमैं आलोकका संयोग होवै पश्चिमदेशमैं नेत्रका संयोग होवै। तहां घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं। हुआ चाहिये। काहेतैं विषयतैं आलोकका संयोगरूप सहकारीहै औ संयोगरूप व्यापारवाला नेत्र इंद्रिय करणभी है। यातैं

जिस घटके देशमैं नेत्रका संयोग होवै तिसी देशमैं आलोकसंयोग सहकारीहै । यह मान्या चाहिये । दीपसूर्यादिकनकी प्रभाकूं आलोक कहैहैं । जैसैं द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारीहै । तैसैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रियकरणहै औ प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारीहै । यातैं स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवैहै तहां पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं । तैसैं जहां भूतलमैं घट नहीं होवै औ घटकै सदृश अन्यपदार्थ धरा होवै तामैं घट भ्रम होय जावै ता भूतलमैं घटाभावहै औ घटाभावसैं इंद्रियका स्वसंबद्ध विशेषणतासंबंधभी है । काहेतैं घटका तो भ्रम हुआहै औ घटहै नहीं किंतु घटाभावहै । ताका भूतलमैं विशेषणतासंबंधहै तिसभूतलसैं इंद्रियका संयोगहै । यातैं इंद्रियसंबद्ध कहिये इंद्रियसैं संबंधवाले भूतलमैं अभावका विशेषणतासंबंधहै । यातैं संबंधरूप व्यापारवाला इंद्रिय करण तो है प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी नहीं । काहेतैं ज्ञानकूं उपलंभ कहैहैं । सो ज्ञान भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै । यामैं विशेष नहीं जहां घटका भ्रम होवै तहां घटाभावका प्रतियोगी जो घट ताका अनुपलंभ नहीं । किंतु भ्रमरूप उपलंभ कहिये ज्ञानहै । इसरीतिसैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करणहैं औ प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारीहै । केवल प्रतियोगीके अनुपलंभकूं सहकारी कहैं तौभी निर्वाह होवै नहीं । काहेतैं स्तंभमैं पिशाचका भेद तो प्रत्यक्षहै । औ स्तंभमैं पिशाचका अत्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं । यह स्तंभ पिशाच नहीं । ऐसा अनुभव सर्वलोकनकूं होवैहै । औ स्तंभमैं पिशाच नहींहै ऐसा निश्चय होवै नहीं । तहां प्रथम अनुभवका विषय स्तंभवृत्ति पिशाचान्योन्याभावहै । औ द्वितीय अनुभवका विषय पिशाचात्यंताभावहै । दोनूं अभावनका प्रतियोगी पिशाचहै ताका अनुपलंभहै । औ इंद्रियसंबद्धस्तंभहै तामैं पिशाचान्योन्याभाव औ पिशाचात्यंताभाव दोनूं विशेषणतासंबंधसैं रहैहै । यातैं पिशाचान्योन्याभावकी नांई पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुआ चाहिये । तैसैं आत्मामैं सुखाभाव दुःखाभावका प्रत्यक्ष होवैहै औ धर्माभाव अधर्माभावका प्रत्यक्ष

होवै नहीं। यह वार्ता सर्वकै अनुभवसिद्धहै। "इदानीं मयि सुखं नास्ति। इदानीं मयि दुःखं नास्ति" इसरीतिका अनुभव सर्वकूं होवैहै। सो अनुभव न्यायमतमैं मानसप्रत्यक्षरूपहै। मनका सुखाभावतैं औ दुःखाभावतैं स्वसंयुक्तविशेषणता संबंधहै। काहेतैं स्व कहिये मन तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा तामैं विशेषणतासंबंधसैं सुखाभाव दुःखाभाव रहैहै। तैसैं धर्माभाव अधर्माभावसैं भी मनका स्वसंयुक्तविशेषणता संबंधहै। तथापि प्रत्यक्ष होवै नहीं "मयि धर्मो नास्ति। मय्यधर्मो नास्ति" ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव किसीकूं होवै नहीं औ सुखाभाव दुःखाभावके प्रतियोगी सुख दुःखहै तिनका जैसैं अनुपलंभ अभावकालमैं होवैहै। तैसैं धर्माभाव अधर्माभावके प्रतियोगी जो धर्म अधर्म तिनकाभी अनुपलंभ होवैहै। यातैं प्रतियोगिका अनुपलंभरूप सहकारिसहित मनसैं सुखाभाव दुःखाभावका प्रत्यक्ष होवैहै। तैसैं धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभरूप सहकारीसहित मनसैं धर्माधर्मके अभावकाभी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। तैसैं वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्षहै औ गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं है। रूपाभावका प्रतियोगी रूपहै। गुरुत्वाभावका प्रतियोगी गुरुत्वहै। तिन दोनूंका वायुमैं अनुपलंभहै। औ नेत्रका वायुसैं संयोगसंबंध होवैहै। नेत्रसंयुक्त वायुमैं रूपाभाव गुरुत्वाभाव विशेषणता संबंधसैं रहैहै यातैं स्वसंबद्धविशेषणतासंबंधसैं जैसैं वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै। तैसैं स्वसंबद्धविशेषणतासंबंध गुरुत्वाभावसैंभी नेत्रका है। यातैं "वायौ रूपं नास्ति" इस चाक्षुषप्रतीतिकी नांई "वायौ गुरुत्वं नास्ति" ऐसी चाक्षुषप्रतीति भी हुई चाहिये। यातैं इंद्रियजन्य अभावके प्रत्यक्षमैं केवल अनुपलंभ सहकारी नहीं है। किंतु योग्यानुपलंभ सहकारीहै। वायुमैं अनुपलंभ जैसैं रूपका है तैसैं गुरुत्वकाभी अनुपलंभहै। परंतु योग्यानुपलंभ रूपका है गुरुत्वका योग्यानुपलंभ नहीं। काहेतैं प्रत्यक्ष योग्यकी अप्रतीतिकूं योग्यानुपलंभ कहैहैं। रूप तो प्रत्यक्षयोग्यहै।

औ गुरुत्व प्रत्यक्षयोग्य नहीं । काहेतैं तराजूके ऊर्द्ध्वादिभावसैं गुरुत्वकी अनुमिति होवैहै । किसी इंद्रियसैं गुरुत्वका ज्ञान होवै नहीं यातैं प्रत्यक्षयोग्य गुरुत्व नहीं होनेतैं ताका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं । तैसैं आत्मामैं सुखाभाव दुःखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवैहै । तहांभी प्रत्यक्षयोग्य सुखका अनुपलंभ औ प्रत्यक्षयोग्य दुःखका अनुपलंभ होनैतैं योग्यानुपलंभसहकारीका संभवहै । औ धर्माभावका अधर्मभावका आत्मामैं मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं । तहांभी धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तो है परंतु धर्माधर्म केवल शास्त्रवेद्यहैं; प्रत्यक्षयोग्य नहीं । यातैं धर्माधर्मका योग्यानुपलंभ नहीं । ताके अभावतैं धर्माभावतैं अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥

स्तंभमैं पिशाचके दृष्टांतसैं समाधानपूर्वक अनुपलंभका निर्णय ॥ २६ ॥

तैसैं स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं । तहांभी पिशाचरूपप्रतियोगीका अनुपलंभ तो है परंतु प्रत्यक्षयोग्य पिशाच नहीं । यातैं योग्यानुपलंभ नहीं । प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीके अनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहैहैं । पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं । यातैं पिशाचका अनुपलंभयोग्यानुपलंभ नहीं ॥

यामैं यह शंका रहैहैः—स्तंभमैं पिशाचका भेदभी प्रत्यक्ष नहीं चाहिये । काहेतैं पिशाचान्योन्याभावकूं पिशाचभेद कहैहैं । ताका प्रतियोगीभी पिशाचहै । सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं । यातैं योग्यानुपलंभके अभावतैं पिशाचात्यंताभावकी नांई पिशाचान्योन्याभावभी अप्रत्यक्ष हुआ चाहिये । जो सिद्धांती ऐसैं कहैः—उक्तरूप योग्यानुपलंभ नहींहै । किंतु प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीके अनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहैहैं । प्रतियोगी चाहै प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अप्रत्यक्ष होवै; अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य चाहिये । तामैं प्रतियोगीका अनुपलंभ चाहिये । स्तंभमैं जो पिशाचान्योन्याभाव ताका प्रतियोगी पिशाच

है सो तो प्रत्यक्षयोग्य नहींहै। औ तामैं प्रत्यक्षयोग्यताकी अपेक्षाभी नहीं। तथापि पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभहै सो प्रत्यक्षयोग्य होनेतैं योग्यानुपलंभका सद्भावहै। यातैं पिशाचका अन्योन्याभाव स्तंभमैं प्रत्यक्ष संभवैहै। सिद्धांतिका यह समाधान संभवै नहीं। काहेतैं उक्तरीतिसैं यह सिद्ध होवैहैः—अभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा प्रत्यक्षके अयोग्य होवै! जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्ष होवै तामैं प्रतियोगीका अनुपलंभ होवै। औ सो योग्यानुपलंभ अभावके प्रत्यक्षमैं सहकारीहै। ऐसा अर्थ मानें स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावभी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। तैसैं आत्मामैं धर्माभाव अधर्माभावभी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। काहेतैं स्तंभवृत्ति पिशाचात्यंताभावका अधिकरण स्तंभहै। सो प्रत्यक्षयोग्यहै। आत्मवृत्ति धर्माभाव अधर्माभावका अधिकरण आत्मा प्रत्यक्षयोग्यहै। परंतु इतना भेदहै। स्तंभ तो बाह्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षयोग्यहै। यातैं स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका बाह्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षहुआ चाहिये। औ आत्मा मानसप्रत्यक्षयोग्यहै। यातैं आत्मामैं धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष हुआ चाहिये। जो वायुकूं प्रत्यक्षयोग्यता मानै तौ वायुवृत्ति गुरुत्वाभावका प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। जो वायुकूं प्रत्यक्षयोग्यता नहीं मानै तो वायुवृत्ति रूपाभावकाभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ चाहिये। औ वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्षहै यह सिद्धांतहै। औ अनुभवसिद्धहै। यह अर्थ आगैं स्पष्ट होवैगा। औ जो सिद्धांती इसरीतिसैं समाधान करैः—योग्यानुपलंभ दोप्रकारकाहै। एक तो प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्यानुपलंभहै। औ दूसरा प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्यानुपलंभहै। अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रथम योग्यानुपलंभ सहकारीहै। यातैं अधिकरण तो प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै। जिस अत्यंताभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै ताका अनुपलंभ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं सहकारीहै। औ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं द्वितीय योग्यानुपलंभ सहकारीहै। यातैं अन्योन्या-

भावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारीहै। यातैं कहूंभी दोष नहीं। स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी पिशाच प्रत्यक्षयोग्य नहीं। यातैं स्तंभवृत्ति पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्षहै। औ स्तंभवृत्ति पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभहै सो प्रत्यक्षहै। यातैं स्तंभमैं पिशाचान्योन्याभाव प्रत्यक्षहै। आत्मवृत्ति सुखात्यंताभाव-दुःखात्यंताभावके प्रतियोगी सुखदुःख मानसप्रत्यक्षयोग्यहैं। तिनके अत्यंताभावनका मानसप्रत्यक्ष होवैहै। धर्म अधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं। यातैं तिनकै अत्यंताभावनका प्रत्यक्ष होवै नहीं। रूपगुण तो प्रत्यक्षयोग्यहैं यातैं वायुमैं रूपात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवैहै। गुरुत्वगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं यातैं वायुमैं गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं। इसरीतिसैं यह अर्थ सिद्ध हुआः—अधिकरणसैं प्रत्यक्षयोग्यता औ प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारीहै। औ प्रतियोगीमैं प्रत्यक्षयोग्यता औ प्रतियोगीका अनुपलंभ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं सहकारीहैं। ऐसा नियम सिद्धांती कहैं सोभी संभवै नहीं। काहेतैं अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणकी योग्यता हेतु होवै तौ वायुमैं रूपवद्भेदका प्रत्यक्ष होवैहै। सो नहीं हुआ चाहिये "वायू रूपवान्न" ऐसा प्रत्यक्ष सर्वकूं होवैहै। औ वक्ष्यमाण रीतिसैं ऐसा प्रत्यक्ष संभवैहै। तहां अन्योन्याभावका अधिकरण वायुहै सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं। औ वायुकूं आग्रहसैं प्रत्यक्षयोग्यता मानै तौ वायुमैं गुरुत्ववद्भेदकाभी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। औ "वायुर्गुरुत्ववान्न" ऐसा प्रत्यक्ष किसीकूं होवै नहीं। वक्ष्यमाणरीतिसैं संभवै नहीं। औ स्तंभमैं पिशाचवद्भेद अप्रत्यक्षहै। अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणकी योग्यता हेतु होवै तौ पिशाचवद्भेदका अधिकरण स्तंभहै। ताकूं प्रत्यक्षयोग्यता होनेतैं पिशाचवदन्योन्याभावरूप पिशाचवद्भेद प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। औ "स्तंभः पिशाचवन्न" ऐसा प्रत्यक्ष होवै नहीं। यातैं प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभरूप योग्यानुपलंभ

अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारीहैं। यह नियम संभवै नहीं। तैसैं अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रतियोगीकी योग्यताकूं सहकारी मानैं तो जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। काहेतैं जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वके अत्यंताभावका प्रतियोगी पृथिवीत्वहै। ताका घटादिकनमैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै। यातैं प्रत्यक्षयोगीहै। औ ताका जलपरमाणुमैं उपलंभ कहिये प्रतीति होवै नहीं। यातैं अनुपलंभहै; औ जलपरमाणुसैं नेत्रका संयोग होवैहै। यातैं जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वात्यंताभावसैं नेत्रका स्वसंयुक्तविशेषणतासंबंधभी है। औ जो ऐसैं कहै परमाणु निरवयवहैं तासैं नेत्रका संयोग संभवै नहीं। काहेतैं पदार्थके एकदेशमैं संयोग होवैहै। अवयवकूं देश कहेहैं। परमाणुके अवयवरूप देश संभवै नहीं। सकल परमाणुमैं संयोग कहे तो अव्याप्यवृत्ति संयोगका स्वभाव नहीं होवैगा। एकदेशमैं होवै एकदेशमैं नहीं होवै सो अव्याप्यवृत्ति कहियेहै। यातैं परमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै नहीं सो संभवै नहीः—काहेतैं परमाणुका संयोग नहीं होवै तौ द्व्यणुक नहीं होवैगा। औ परमाणुमैं महत्त्वात्यंताभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै सो नहीं होवैगा। परमाणुमैं महत्त्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै यह आगे स्पष्ट होवैगा। यातैं नेत्रसंयुक्त विशेषणता संबंधसैं जैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै। तैसैं नेत्रसंयुक्त विशेषणता संबंधसैं पृथ्वीत्वाभावका भी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। नेत्रसंयुक्त परमाणुमैं महत्त्वाभावकी नांई पृथिवीत्वाभावका विशेषणतासंबंधहै परमाणुका संयोग व्याप्यवृत्ति होवैहै। यह मंजूषाकी टीकामैं लिखाहैः—यातैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं ताकाभी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। औ वक्ष्यमाणरीतिसैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं। इसरीतिसैं सकल अभावनके प्रत्यक्षमैं एकरूप योग्यानुपलंभ संभवै नहीं। औ अन्योन्याभाव अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं भिन्न भिन्न रूपवाला योग्यानुपलंभ सहकारी कहनाभी संभवै नहीं॥

या शंकाका यह समाधानहैः— "योग्ये अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा सप्तमीसमास करैं तौ अधिकरणमैं प्रत्यक्षयोग्यता होवै तहां योग्या-

नुपलंभ सिद्ध होवैहै । औ "योग्यस्य अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा षष्ठीसमास करैं तौ प्रतियोगीमैं प्रत्यक्षयोग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवैहै । तहां एक एक प्रकारके योग्यानुपलंभ माननेमैं दोष कहा । तैसैं अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणयोग्यताका साधक सप्तमीसमासवाला योग्यानुपलंभ मानैं औ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रतियोगीकी योग्यतासाधक षष्ठीसमासवाला योग्यानुपलंभ सहकारी मानै तौ अभावभेदसैं दोनूंका अंगीकार होवै तामैं भी दोष कह्या यातैं अन्यप्रकारका योग्यानुपलंभ सहकारीहैं । औ योग्यानुपलंभशब्दमैं सप्तमीसमास औ षष्ठीसमास नहीं किंतु "नीलघटः" या शब्दकी नांई प्रथमासमासहै सो इसरीतिसैंहै जैसैं "नीलश्चासौ घटो नीलघटः" या शब्दमैं प्रथमासमासहै । ताकूं व्याकरणमैं **कर्मधारय** कहैहैं । जहां कर्मधारय समास होवै तहां पूर्वपदार्थका उत्तरपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवैहै । जैसैं "नीलघटः" या शब्दमैं कर्मधारय समास करैं नीलपदार्थका घटपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवैहै । तैसैं "योग्यश्चासौ अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" इसरीतिसैं कर्मधारयसमास करैं योग्यानुपलंभशब्दसैं योग्यपदार्थका अनुपलंभपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवैहै । यातैं अभावके प्रतियोगी औ अधिकरण चाहै जैसैं होवै तिनकी योग्यतासैं प्रयोजन नहीं।अनुपलंभमैं योग्यता चाहिये।जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवैहै। जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ अयोग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं । अनुपलंभमैं योग्यता अयोग्यता इसप्रकारकी है:—उपलंभाभावकूं **अनुपलंभ** कहैहै । प्रतीतिज्ञान उपलंभ ये पर्यायशब्दहैं । प्रतियोगीकी प्रतीतिका अभाव **अनुपलंभशब्दका अर्थहै** । यातैं इंद्रियसैं घटाभावके प्रत्यक्षमैं घटकी प्रतीतिका अभाव सहकारीहैं । तहां घटाभावका ज्ञान प्रमारूप फलहै । औ घटज्ञानका अभाव घटाभावप्रमाका सहकारी कारणहै । सो घटज्ञानका अभाव योग्य चाहिये । घटज्ञानाभावकूं ही घटानुपलंभ कहैहैं । तिस अभावरूप अनुपलंभमैं अन्यप्रकारकी तो योग्यता संभवै नहीं ।

किंतु जा अनुपलंभका उपलंभरूप प्रतियोगी योग्य होवै सो अनुपलंभ योग्य कहियेहै। जा अनुपलंभका प्रतियोगी उपलंभअयोग्य होवे सो अनुपलंभ अयोग्य कहियेहै। यातैं यह सिद्ध हुआः—योग्यउपलंभका अभावरूप योग्यानुपलंभ सहकारीहैं। इसरीतिसैं अनुपलंभकी योग्यता कहनैंका उपलंभकी योग्यतामैं पर्यवसान होवैहै। यातैं उपलंभमैं योग्यता चाहिये। योग्यउपलंभका अभाव योग्यानुपलंभ कहियेहै। उपलंभकी योग्यताका अनुपलंभमैं व्यवहार होवैहै। यद्यपि प्रथमैंही योग्यउपलंभके अभावकूं योग्यानुपलंभ कहें लाघवहै। उपलंभरूप प्रतियोगीद्वारा अनुपलंभकूं योग्य कहना निष्फलहै। तथापि व्याकरणकी मर्यादासैं योग्यानुपलंभशब्दका अर्थ करैं तब अनुपलंभमैं योग्यता प्रतीत होवैहै। यातैं उपलंभवृत्ति मुख्ययोग्यताका अनुपलंभसैं आरोप कह्याहै। यातैं यह सिद्धअर्थहैः— जहां प्रतियोगिके योग्य उपलंभका अभाव होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवैहै। जहां प्रतियोगीकी सत्तासैं नियमकरिकै प्रतियोगीकै उपलंभकी सत्ता होवै सो उपलंभयोग्यहै। ताका अभाव अनुपलंभभी योग्य कहियेहै। जहां प्रतियोगी हुयेभी नियम करिकै प्रतियोगीका उपलंभ न होवै सो उपलंभ अयोग्यहै। ताका अभाव अनुपलंभभी अयोग्य कहियेहैं। जैसैं आलोकमैं घटकी सत्ता होवै तब नियमकरिकै घटका उपलंभ होवैहै। तहां घटका उपलंभ योग्यहै ताका अनुपलंभभी योग्य कहियेहै। तैसैं संयोगसंबंधसैं जहां पिशाच होवै तहां पिशाचसत्तासैं नियमकरिकै पिशाचका उपलंभ होवै नहीं। यातैं पिशाचका उपलंभ अयोग्यहै। ताका अभाव पिशाचानुपलंभभी अयोग्य कहियेहै। इसरीतिसैं घटानुपलंभ योग्यहै। सो घटाभावकै प्रत्यक्षमैं हेतुहै। और पिशाचानुपलंभ योग्य नहीं। यातैं पिशाचानुपलंभतैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं। यद्यपि घटाभावाधिकरणमैं घटकी सत्ता औ घटोपलंभकी सत्ता संभवै नहीं। तथापि घटका औ घटोपलंभका ऐसा आरोप होवैहै "यदि भूतले घटः

स्यात् । तदा घटोपलंभः स्यात् ” यातैं घटाभावाधिकरणमैं भी आरोपित घटकी सत्ता औ घटानुपलंभ होतें भी आरोपित घटोपलंभकी सत्ता संभवैहै । यातैं यह निष्कृष्ट अर्थहैः—जिस अभावके अधिकरणमैं प्रतियोगिका आरोप करें प्रतियोगीके उपलंभका नियमतैं आरोप होवै सो उपलंभ योग्यहै; तिसका अनुपलंभभी योग्य कहियेहै । औ तिस अधिकरणमैं सो अभाव प्रत्यक्षहै । जिस अभावके अधिकरणमैं जिस अभावके प्रतियोगीका आरोप करै प्रतियोगीके उपलंभका आरोप होवै नहीं । सो अभाव अप्रत्यक्षहै । जैसैं अंधकारमैं घटाभाव प्रत्यक्ष नहीं । काहेतैं अंधकारमैं “ यदि अत्र घटः स्यात् तदा तस्योपलंभः स्यात् ” इसरीतिसैं घटके आरोपतैं घटकै उपलंभका नियमतैं आरोप संभवै नहीं । यातैं अंधकारमैं घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं । स्तंभमैं पिशाचका भेद प्रत्यक्षहै । काहेतैं “ यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभे स्यात्तदा उपलभ्येत ” इसरीतिसैं स्तंभवृत्ति तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचकै आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप नियमसैं होवैहै । काहेतैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभहै । ताका नियमतैं उपलंभ होवैहै । तैसैं पिशाचभी तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमैं होवै तौ स्तंभकी नांई ताकाभी नियमतैं उपलंभ होवै । ता उपलंभके अभावतैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच नहीं । यातैं पिशाचका स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभावहै । तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं ही अन्योन्याभाव कहैहैं।औ स्तंभमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव तथा समवायसंबंधावच्छिन्नपिशाचात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं । काहेतैं “स्तंभे यदि संयोगेन पिशाचः स्यात् । समवायेन वा पिशाचः स्यात् । तदा तस्योपलंभः स्यात् ” इसरीतिसैं संयोगसंबंधतैं अथवा समवायसंबंधतैं पिशाचका स्तंभमैं आरोप करैं पिशाचका उपलंभका आरोप होवै नहीं । काहेतैं जहां श्मशानके वृक्षादिकनमैं संयोगसंबंधसैं पिशाच रहैहै । औ अपने अवयवनमैं समवायसंबंधसैं पिशाच रहैहै । तहांभी पिशाचका उपलंभ होवै नहीं । औ जो स्तंभमैं संयोग-

संबंधसैं अथवा समवायसंबंधसैं होवै तिन सर्वका उपलंभ होवै तौ स्तंभमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचकै आरोपतैं पिशाचकै उपलंभका आरोप होवै । औ स्तंभमैंही द्व्यणुकादिकनका संयोगहै औ वायुका संयोगहै । यातैं द्व्यणुकवायु संयोगसंबंधसैं स्तंभवृत्तिहैं । तिनका उपलंभ होवै नहीं । औ समवायसंबंधसैं गुरुत्वादिक अप्रत्यक्ष गुण रहैहैं । तिनका स्तंभमैं उपलंभ होवै नहीं । यातैं स्तंभमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचकै आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप होवै नहीं । यातैं स्तंभमैं संयोगसंबंधावच्छिन्नपिशाचात्यंताभाव औ समवायसंबंधावच्छिन्नपिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्षहै । यद्यपि जहां तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच होवै तहां पिशाचका नियमतैं उपलंभ होवै नहीं । काहेतैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचमैं पिशाचहै । औ उपलंभ होवै नहीं । यातैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचकै आरोपतैंभी नियमतैं पिशाचोपलंभका आरोप संभवै नहीं । अत्यंताभावकी रीतिही अन्योन्याभावमैं है तथापि अन्यप्रकारसैं भेदहै । स्तंभमैं जो तादात्म्यसंबंधसैं होवै ताका नियमतैं उपलंभ होवैहै । स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभहै अन्य नहीं । औ स्तंभका नियमतैं उपलंभ होवै है । जो और कोई पदार्थ स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं रहै तौ स्तंभकी नांई ताकाभी उपलंभ चाहिये । यातैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमैं पिशाचकै आरोपतैं ताकै उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै । "यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभः स्यात्तदा तस्य स्तंभस्येव उपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं स्तंभमैं तादात्म्यसैं पिशाचकै आरोपतैं पिशाचोपलंभका आरोप होवैहै । यातैं स्तंभमैं पिशाचभेद प्रत्यक्ष है तिसी स्तंभमैं पिशाचवत्का भेद अप्रत्यक्ष है । काहेतैं " यदि तादात्म्येन स्तंभः पिशाचवान् स्यात्तदा पिशाचवत्त्वेन स्तंभस्योपलंभः स्यात् " इसरीतिसैं स्तंभमैं तादात्म्यसैं पिशाचवत्के आरोपतैं पिशाचवत्के उपलंभका आरोप संभवै नहीं । काहेतैं पिशाचवत्– वृक्षादिकनमैं

पिशाचवताका उपलंभ होवै नहीं । यातैं स्तंभमैं पिशाचवताका भेद अप्रत्यक्षहै; पिशाचके भेदकी नांई प्रत्यक्ष नहीं । इस प्रकारसैं बुद्धिमान् अनुभवसैं देखिलेवै । प्रतियोगीके उपलंभका आरोप जहां संभवै सो अभाव प्रत्यक्ष होवैहै ॥

उपलंभके आरोप औ अनारोप करिकै अभावकी प्रत्यक्षता औ अप्रत्यक्षतामैं उदाहरण ॥ २७ ॥

तैसैं "आत्मनि यदि सुखं दुःखं वा स्यात्तदा सुखस्य च दुःखस्य च उपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं आत्मामैं सुखदुःखके आरोपतैं तिनके उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै । काहेतैं कदीभी अज्ञात सुखदुःख होवै नहीं ज्ञातही होवैहैं । यातैं सुखदुःखका आरोप हुये तिनका उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै।यातैं आत्मवृत्ति सुखाभाव दुःखाभाव प्रत्यक्षहै । औ " आत्मनि धर्मो यदि स्यात्, अधर्मो वा स्यात्तदा तस्य उपलंभः स्यात् " इस रीतिसैं धर्माधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं । काहेतैं प्रत्यक्षज्ञानकूं उपलंभ कहैहैं । यद्यपि ज्ञान प्रतीति उपलंभ ये शब्द पर्यायहैं यातैं ज्ञानमात्रका नाम उपलंभहै । तथापि इस प्रसंगमैं जा इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै ता इंद्रियजन्य ज्ञानका उपलंभशब्दसैं ग्रहण जानना । जैसैं सुखाभावका मनसैं प्रत्यक्ष होवैहै । तहां सुखके आरोपतैं सुखके उपलंभका आरोप कहिये मानसप्रत्यक्षका आरोप होवैहै । तैसैं वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै । तहां रूपके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप कहिये । चाक्षुषप्रत्यक्षका आरोप होवैहै । इसरीतिसैं अन्य इंद्रियतैं जहां अभावका प्रत्यक्ष होवै तहां अन्य इंद्रियजन्य प्रत्यक्षही उपलंभ शब्दका अर्थ जानना । औ धर्म अधर्म केवल शास्त्रवेद्यहैं । तिनका उपलंभ इंद्रियजन्य ज्ञान कदीभी होवै नहीं । यातैं धर्म अधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं । यातैं धर्माभाव अधर्माभाव प्रत्यक्ष नहीं । तैसैं वायुमैं गुरु-

त्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं। औ वायुमैं रूपात्यंताभाव प्रत्यक्षहै। काहेतैं वायुमैं जो गुरुत्व होता तौ ताका उपलंभ होता। इसरीतिसैं गुरुत्वके आरोपतैं गुरुत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं। काहेतैं जहां पृथिवीजलमैं गुरुत्व है तहांभी गुरुत्वका प्रत्यक्षरूप उपलंभ होवै नहीं। किंतु अनुमितिज्ञान गुरुत्वका होवैहै। यातैं गुरुत्वके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै नहीं। इसकारणतैं वायुमैं गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं। औ जो वायुमैं रूप होता तो घटरूपकी नांई वायुरूपका उपलंभ होता। केवलरूपकाही उपलंभ नहीं होता। वायुकाभी उपलंभ होता। काहेतैं जा द्रव्यमैं महत्वगुण होवै औ उद्भूतरूप होवै सो द्रव्य प्रत्यक्ष होवैहै। औ जा द्रव्यमैं महत्व होवै ताका रूप प्रत्यक्ष होवैहै। परमाणु द्व्यणुकमैं महत्व नहीं तिनका रूप प्रत्यक्ष नहीं यातैं त्र्यणुकादिरूपवायुमैं महत्व है तामैं रूप होता तो त्र्यणुकादिरूप वायुका प्रत्यक्ष होता। औ ताके रूपकाभी प्रत्यक्ष होता। इसरीतिसैं परमाणु द्व्यणुकरूप वायुकूं त्यागिके त्र्यणुकादिरूप वायुमैं रूपके आरोपतैं रूपके उपलंभका आरोप होवैहै। यातैं त्र्यणुकादिरूप वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्षहै। परमाणु द्व्यणुकरूप वायुमैं रूपका आरोप हुयेभी महत्वके नहीं होनेतैं रूपके उपलंभके आरोपके नहीं होनेतैं परमाणुद्व्यणुक वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष नहीं। तैसैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं। काहेतैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्व होवै तौ ताका उपलंभ होवै। इसरीतिसैं पृथिवीत्वके आरोपतैं पृथिवीत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं। काहेतैं आश्रय प्रत्यक्ष होवै तौ जातिका प्रत्यक्ष होवै। यातैं जलपरमाणुमैं जलत्वहै जैसैं जलत्वका प्रत्यक्ष नहीं तैसैं आरोपित पृथिवीत्वके उपलंभका आरोप संभवै नहीं। यातैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वका अभाव प्रत्यक्ष नहीं। औ परमाणुमैं महत्वका अभाव प्रत्यक्षहै। काहेतैं परमाणुमैं चाक्षुषप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूतरूपहै। औ त्वाचप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूतस्पर्शभी है। परंतु महत्व नहींहै। यातैं परमाणुका प्रत्यक्ष होवै नहीं। औ परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य-

रूपादिकगुणनकाभी महत्वाभावतैं प्रत्यक्ष होवै नहीं । महत्ववाले द्रव्यके रूपादिक गुण प्रत्यक्ष होवैहैं । जो परमाणुमैं महत्व होता तौ परमाणुका प्रत्यक्ष होता औ परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी प्रत्यक्ष होता । घटादिकनका महत्व प्रत्यक्षहै यातैं रूपादिकनकी नांई महत्वगुणभी प्रत्यक्षयोग्य है । आकाशादिकनमैं महत्व तो है परंतु उद्भूतरूप समानाधिकरण महत्वका प्रत्यक्ष होवैहै । आकाशादिकनमैं उद्भूतरूप है नहीं । यातैं तिनके महत्वका प्रत्यक्ष होवै नहीं । तथापि महत्वगुण प्रत्यक्षयोग्यहै । इसरीतिसैं परमाणुमैं महत्वविना अन्यसामग्री प्रत्यक्षकी है । जो महत्व होता तौ परमाणु औ ताके गुणनका प्रत्यक्ष होता । यातैं परमाणुमैं महत्वके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप संभवैहै । महत्वके आरोपतैं केवल महत्वके उपलंभका आरोप नहीं होवैहै । किंतु परमाणुके उपलंभका औ परमाणुमैं समवेतप्रत्यक्षयोग्य गुणादिकनके उपलंभका आरोप होवैहै । जो परमाणुमैं महत्व होवै तौ परमाणुका उपलंभ होवै औ परमाणुमैं समवेतप्रत्यक्षयोग्य गुणनका भी उपलंभ होवै । औ प्रत्यक्षयोग्य जातिका तथा क्रियाकाभी उपलंभ होवै सो परमाणु आदिकनका उपलंभ नहीं । यातैं परमाणुमैं महत्व नहीं । इसरीतिसैं परमाणुमैं महत्वाभाव प्रत्यक्षहै । इसरीतिसैं जिस अधिकरणमैं जा अभावके प्रतियोगीके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै तिस अधिकरणमैं सो अभाव प्रत्यक्षहै ॥

जिस इंद्रियतैं उपलंभका आरोप तिस इंद्रियतैं उपलंभके आरोपतैं अभावका प्रत्यक्ष ॥ २८ ॥

परंतु जिस इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवैहै । जैसैं भूतलमैं घट होवै तो नेत्रसैं घटका उपलंभ हुआ चाहिये; उपलंभ होवै नहीं । यातैं घट नहीं । इसरीतिसैं जहां नेत्रजन्य उपलंभका आरोप होवै । तहां घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै । औ भूतलमैं घट होवै तौ त्वक्इंद्रियतैं घटका उपलंभ हुआ चाहिये । इसरीतिसैं अंधकूं अथवा अंधकारमैं त्वक्इं-

द्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तहां घटाभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै । इसरीतिसैं जिस इंद्रियके उपलंभका आरोप होवै तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवैहै । वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै । त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं । काहेतैं वायुमैं रूप होता तौ रूपका नेत्र-इंद्रियजन्य उपलंभ होता औ उपलंभ होवै नहीं । यातैं वायुमैं रूप नहीं । इसरीतिसैं नेत्रइंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवैहै । औ वायुमैं रूप होता तो त्वक्सैं ताका उपलंभ होता । इसरीतिसैं त्वक्इंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवै नहीं । काहेतैं रूपसाक्षात्कारका हेतु केवल नेत्रहै त्वक् नहीं । तैसैं रसनादिइंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोपभी होवै नहीं । यातैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्षही होवैहै । तैसैं मधुरद्रव्यमैं तिक्तरसाभावका रासनप्रत्यक्षही होवैहै । काहेतैं सितामैं तिक्तरस होता तो ताका रसन इंद्रियतैं उपलंभ होता । औ उपलंभ होवै नहीं । यातैं सितामैं तिक्तरस नहीं । इसरीतिसैं सितामैं तिक्तरसके आरोपतैं रसनजन्य तिक्तरसोपलंभका आरोप होवैहै अन्यइंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै नहीं । यातैं रसनेंद्रियजन्यही रसाभावका प्रत्यक्ष होवैहै । तैसैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष त्वक्जन्यही होवैहै । काहेतैं अग्निमैं शीत स्पर्श होता तौ ताका त्वक्इंद्रियतैं उपलंभ होता । औ अग्निमैं शीतस्पर्शका त्वक्सैं उपलंभ होवै नहीं । इसरीतिसैं अग्निमैं शीतस्पर्शके आरोपतैं त्वक्जन्य उपलंभका आरोप होवैहै । यातैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष केवल त्वक्जन्य होवैहै । तैसैं परमाणुमैं महत्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्षही होवैहै । काहेतैं परमाणुका भेद महत्वहै । औ परिमाणगुणका ज्ञान चक्षु औ त्वचा दोनूंसैं होवैहै । यह अनुभवसिद्धहै । घटका छोटापना बडापना नेत्रसैं औ त्वचासैं जानियेहै । यातैं दोनूं इंद्रियका विषय महत्वहै । तथापि अपकृष्टतम महत्वका त्वचासैं ज्ञान होवै तौ त्र्यणुकके महत्वका त्वचासैं ज्ञान हुआ चाहिये । यातैं अपकृष्टतममहत्वका केवल नेत्रसैं ज्ञान होवैहै । औ परमाणुमैंभी अपकृष्टतममहत्वका ही आरोप होवैगा ता अपकृष्टतममहत्वका त्वाचप्र-

त्यक्ष तो होवै नहीं चाक्षुप्रत्यक्ष होवैहै यातैं परमाणुमैं महत्वके आरोप-नेतैं नेत्रजन्य उपलंभकाही आरोप होतैं परमाणुमैं महत्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै। त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं । जो परमाणुमैं महत्व होता तो त्र्यणुक महत्वकी नांई नेत्रसैं ताका उपलंभ होता। इसरीतिसैं चाक्षुषउपलंभका आरोप होवैहै। त्वाच उपलंभका नहीं। आत्मामैं सुखाभावादिकनका मानसप्रत्यक्षही होवैहै। काहेतैं आत्मामैं सुख होता तौ मनसैं सुखका उपलंभ होता। इस कालमैं सुखका उपलंभ होवै नहीं यातैं इसकालमैं मेरैविषैं सुख नहीं। इसरीतिसैं आत्मामैं सुखके आरोपतैं ताके मानसउपलंभका आरोप होवैहै । यातैं सुखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवैहै तैसैं दुःखाभाव इच्छाभाव द्वेषाभावका भी मानसप्रत्यक्ष होवैहै। परंतु अपने सुखादिकनके अभाव प्रत्यक्षहै; परसुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष नहीं किंतु शब्दादिकनसैं तिनका परोक्ष ज्ञान होवैहै। काहेतैं अन्यकूं सुखादिक हुयेंभी तिनका उपलंभ दूजेकूं होवै नहीं । यातैं अन्यमैं सुख होता तौ मेरेकूं उपलंभ होता । इसरीतिसैं अन्यवृत्ति सुखादिकनका आपकूं उपलंभका आरोप होवै नहीं । यातैं अन्यवृत्ति सुखादिकनका अभाव प्रत्यक्ष नहीं। इसरीतिसैं प्रतियोगीके आरोपतैं जहां उपलंभका आरोप होवै सो अभाव प्रत्यक्षहै। ऐसै उपलंभका अभावरूप अनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहैहैं। यातैं प्रतियोगीके आरोपतैं जिस उपलंभका आरोप होवै सो उपलंभ जाका प्रतियोगी होवै ताकूं योग्यानुपलंभ कहैहै। या अर्थमैं कोई दोष नहीं । इसरीतिसैं जा अधिकरणमैं जिस पदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिस अधिकरणमैं ताका अभाव प्रत्यक्षहै । एकही पिशाचका भेद स्तंभमैं प्रत्यक्षहै । औ परमाणुमैं अप्रत्यक्षहै । यातैं जिस अधिकरणमैं कहा जिस पदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिसके अभावकूं प्रत्यक्ष कहते तौ पिशाचका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभभी स्तंभमैं होवैहै।परमाणुमैंभी पिशाचका भेद प्रत्यक्ष होवैगा । यातैं अधिकरणका नाम लेके कहाहै । स्तंभ-

अधिकरणमैं उपलंभका आरोप तो होवैहै स्तंभमैंही पिशाचभेद प्रत्यक्षहै। औ परमाणुमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच हुआभी परमाणुकी नांई ताका उपलंभ संभवै नहीं। यातैं परमाणुमैं पिशाचभेद प्रत्यक्ष नहीं। औ जिस पदार्थका ऐसा कहनेतैं वायुमैं रूपात्यंताभावकी नांई गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं जो जिस अधिकरणमैं इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिस अधिकरणमैं अभाव प्रत्यक्षहै इतनाही कहै तौ वायुअधिकरणमैं रूपका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवैहै। गुरुत्वाभावभी प्रत्यक्ष होवैगा। यातैं जिस पदार्थका उपलंभ संभवै ताका अभाव प्रत्यक्ष कह्या। यातैं रूपके आरोपित उपलंभसैं वायुमैं गुरुत्वका अभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं। इसरीतिसैं जहां प्रतियोगीका जा इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ होवै। तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवैहै। औ जहां उक्तरीतिसैं उपलंभ नहीं संभवै तहां अभावका परोक्ष ज्ञान होवैहै। यह नैयायिकमतहै॥

उक्तरीतिसैं न्यायमतमैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करणहै। इंद्रियमैं विशेषणता औ इंद्रियसंबंधमैं विशेषणता अभावमैं इंद्रियका संबंधहै सो व्यापारहै। अभावकी प्रत्यक्षप्रमा फलहै। औ योग्यानुपलंभ इंद्रियका सहकारी कारण है। करण नहीं॥

न्यायमतमैं सामग्रीसहित अभावप्रमाणका कथन॥ २९॥

जैसैं घटादिकनकै चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी कारणहै। औ नेत्रइंद्रिय करणहै। तैसैं अभावके प्रत्यक्षमैंभी योग्यानुपलंभ सहकारीहै। औ अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं भी आलोकसंयोग सहकारी नहीं। यद्यपि अंधकारमैं घटाभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं। आलोकमैं घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै। यातैं अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं अन्वयव्यतिरेकतैं आलोक संयोगभी सहकारी कह्या चाहिये। तथापि घटमैं कुलालपिताकी नांई अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग अन्यथासिद्धहै। जैसैं घटके कारण कुलालकी सिद्धि

करिकै कुलालका पिता कारणसामग्रीतैं बाह्य रहैहै घटका कारण नहीं कहियेहै । किंतु घटके कारणका कारणहै । तैसैं अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण योग्यानुपलंभहै । ताकी सिद्धि करिकै अभावप्रत्यक्षकी कारणसामग्रीतैं आलोकसंयोग बाह्य रहैहैं । काहेतैं अनुपलंभका प्रतियोगी जो उपलंभ ताका जहां आरोप संभवै सो अनुपलंभयोग्य कहियेहै । घटके चाक्षुषउपलंभका आरोप आलोकमैं होवैहै; अंधकारमैं चाक्षुषउपलंभका आरोप होवै नहीं यातैं घटाभावके चाक्षुषप्रत्यक्षका सहकारी कारण जो योग्यानुपलंभ ताका साधक आलोकहै । घटाभावके चाक्षुषप्रत्यक्षका साक्षात्कारण नहीं होनेतैं कारणसामग्रीतैं बाह्यहै । यातैं कुलालपिताकी नांई अन्यथासिद्धहैं । जैसैं कुलालपिता घटका कारण नहीं । तैसैं आलोकसंयोगभी अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण नहीं । किंतु चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण जो योग्यानुपलंभ ताका उक्त रीतिसैं साधकहै ॥

औ प्राचीनग्रंथनमैं तो योग्यानुपलंभ इसरीतिसैं कह्याहैः—जहां प्रतियोगीविना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री होवै औ उपलंभ होवै नहीं तहां योग्यानुपलंभहै । जैसैं आलोकमैं घट नहीं तहां योग्यानुपलंभहै । काहेतैं घटाभावका प्रतियोगी घट नहींहै । ता विना आलोकसंयोग द्रष्टाके नेत्ररूप घटके चाक्षुषउपलंभकी सामग्री होनेतैं योग्यानुपलंभहै । औ अंधकारमैं जहां घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ नहीं । काहेतैं प्रतियोगीके चाक्षुषउपलंभकी सामग्रीमैं आलोकसंयोगहै ताका अभावहै । तैसैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं जो रहै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभवृत्ति उद्भूतरूप महत्वहै। यातैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचका अनुपलंभ योग्यहै । औ संयोगसंबंधसैं जो स्तंभवृत्ति होवै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभके उद्भूतरूप औ महत्व नहींहै किंतु संयोगसंबंधसैं रहनैवालेमैं उद्भूतरूप महत्व चाहिये । सो पिशाचमैं है नहीं । यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्नपिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच ताके उपलंभकी सामग्री पिशाचवृत्ति उद्भूतरूपके अभावतैं संयोगसंबंधसैं

पिशाचका अनुपलंभ योग्य नहीं। इसरीतिसैं प्रतियोगीविना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री हुए उपलंभ नहीं होवै सो योग्यानुपलंभ अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारणहै। इसरीतिसैं जहां योग्यानुपलंभ होवै औ इंद्रियका अभावतैं संबंध होवै तहां इंद्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमा अभावकी होवैहै। जहां योग्यानुपलंभ नहीं होवै तहां अभावका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं। किंतु अनुमानादिकनतैं परोक्षज्ञान होवैहै। नैयायिकरीतिसैं अभावप्रत्यक्षमैं योग्यानुपलंभ सहकारीहै। इंद्रिय करणहै॥

भट्ट औ वेदांतमतमैं न्यायमततैं अभावप्रमाकी सामग्रीविषै विलक्षणता॥ ३०॥

औ भट्टमतमैं तथा अद्वैतमतमैं योग्यानुपलंभही करणहै। अभावज्ञानमैं इंद्रियकूं करणता नहीं। इसी वास्तैं अनुपलब्धि नाम भिन्न प्रमाण भट्टनैं मानाहै। तिसके अनुसारीही अद्वैतग्रंथनमैं भी अभावप्रत्यक्षका हेतु अनुपलब्धि नाम भिन्न प्रमाणही लिखाहै। अनुपलंभकूंही अनुपलब्धि कहैहैं॥ जैसा योग्यानुपलंभ नैयायिकनैं सहकारी मानाहै तैसाही योग्यानुपलंभ भट्टमत अद्वैतमतमैं प्रमाणहै। नैयायिकमतमैं अभावप्रत्यक्षके कारण इंद्रिय औ योग्यानुपलंभ दोनूंहैं। तिनमैं इंद्रिय तौ करणहै। यातैं अभावप्रमामैं प्रमाणहै। औ अनुपलंभकूं अभावप्रमाकी सहकारी कारणता मानैहै करणता नहीं मानैहै। यातैं अनुपलंभ प्रमाण नहीं। औ भट्टादिमतमैं अनुपलब्धिही प्रमाणहै॥

यद्यपि अभावप्रमाकी उत्पत्तिमैं अनुपलब्धिका व्यापार कोई संभवै नहीं। औ व्यापारवाला जो प्रमाका कारण सो प्रमाण कहियेहै। यातैं अनुपलब्धिकूं प्रमाणता संभवै नहीं। तथापि व्यापारवाले प्रमाके कारणकूंही प्रमाणता होवैहै। यह नियमभी नैयायिकमतमैं है। औ भट्टादिकनके मतमैं तौ सकल प्रमाणोंके भिन्न भिन्न लक्षणहैं। किसीके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेशहै। किसी प्रमाणके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहींहै। जैसैं प्रत्यक्षप्रमाका व्यापार-

वाला असाधारण कारण प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहै । अनुमितिप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण अनुमान कहियेहै । शाब्दीप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण शब्दप्रमाण कहियेहै । इसरीतिसैं तीनि प्रमाणोंके लक्षणमैं तो व्यापारका प्रवेशहै औ तिन्ह प्रमाणोंके निरूपणमैं तीनों स्थानमैं व्यापारका संभव कहि आये ॥ औ उपमान अर्थापत्ति उपलब्धि इनके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं । उपमितिके असाधारण कारणकूं उपमानप्रमाण कहेहैं । उपपादक कल्पनाका असाधारण हेतुं उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहियेहै । अभावकी प्रमाका असाधारणकारण अनुपलब्धि प्रमाण कहियेहै । यद्यपि अभावका परोक्ष ज्ञानभी अनुमानादिकनतैं होवैहै । यह पूर्व कहीहै । यातैं अनुपलब्धिके लक्षणकी अभावज्ञानके जनक अनुमानादिकनमैं अतिव्याप्ति होवैहै । तथापि अनुमानादिक प्रमाण भावकी प्रमाके औ अभावकी प्रमाके साधारण कारणहैं । अभावकी प्रमाके असाधारण कारण नहीं औ अनुपलब्धिसैं केवल अभावका ही ज्ञान होवैहै यातैं अभावप्रमाका असाधारण अनुपलब्धि प्रमाणहै अन्य नहीं । इसरीतिसैं तीनि प्रमाणोंके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं यातैं व्यापारकी अपेक्षा तीनि प्रमाणोंमैं नहीं । अनुपलब्धि प्रमाणसैं अभावका ज्ञान होवै सो तो प्रत्यक्ष होवैहै । औ अनुमानसैं तथा शब्दसैं जो अभावका ज्ञान सो परोक्ष होवैहै । जितने स्थानोंमैं नैयायिक इंद्रियजन्य अभावका ज्ञान कहेहैं । उतनें ज्ञानही अनुपलब्धिप्रमाणजन्यहैं । काहेतैं नैयायिक मतमैंभी अभावज्ञानका सहकारी कारण अनुपलब्धिहै । जैसी योग्यानुपलब्धिकूं नैयायिक इंद्रियका सहकारी मानैहैं । सोई योग्यानुपलब्धि भट्टादिमतमैं स्वतंत्र प्रमाणतैं विनाही भेदहै । नैयायिकमतमैं तो अभावका प्रमाण इंद्रियहै । वेदांतमतमैं प्रमाण अनुपलब्धिहै । औ वेदांतमतमैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी नैयायिकमतकी नांई प्रत्यक्षहै परोक्ष नहीं ॥

वेदांतरीतिसैं इंद्रियजन्य प्रत्यक्षके लक्षणका निर्णय ॥ ३१ ॥

ईहां ऐसी शंका होवैहै:—इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवैहै। अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यताका निषेध करिकै प्रत्यक्षता कहना बनै नहीं। ताका यह समाधानहै:—इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवै तौ। ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं चाहिये। काहेतें न्यायमतमैं तो ईश्वरका ज्ञान नित्यहै यातैं इंद्रियजन्य नहीं। औ वेदांतमैं ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूपहै इंद्रियजन्य नहीं। और ग्रंथनमैं इंद्रियजन्यज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमैं अनेक दूषण लिखेहैं। यातैं इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं है। किंतु प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै। जहां विषय सन्मुख होवै तहां कहूं तो इंद्रियविषयके संबंधतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति घटदेशमैं जावैहै। जायकै घटके समानाकार होयकै घटसैं वृत्ति मिलै है। तहां वृत्तिअवच्छिन्नचेतन प्रमाणचेतन कहियेहै। विषयमैं आया चेतन विषय चेतन कहियेहै। प्रमाणचेतन औ विषयचेतन स्वरूपसैं तो सदा एकहीहैं; उपाधिभेदसैं चेतनका भेद होवैहै। उपाधिभी भिन्नदेशमैं होवै तौ उपहितका भेद होवैहै। एकदेशमैं होवै तौ उपहितका भेद होवै नहीं। जैसैं घटका रूप औ घट एकदेशमैं होवैहै। तहां घटरूपोपहित आकाश औ घटोपहित आकाश एकही है। औ मठकै अंतर घट होवै तहां घटोपहित आकाश मठाकाशतैं भिन्न नहीं। यद्यपि मठाकाश तो घटाकाशतैं भिन्न भी है। काहेतैं घटशून्यदेशमैं भी मठहै। तथापि मठशून्यदेशमैं घट नहीं। यातैं मठाकाशतैं घटाकाश भिन्न नहीं। इसरीतिसैं वृत्ति औ विषय भिन्नदेशमैं रहैं इतने तो वृत्तिउपहित चेतन औ विषयउपहित चेतन भिन्न होवैहै। औ वृत्ति विषयदेशमैं होवै तब विषयचेतनभी वृत्तिचेतन होवैहै। यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं भेद रहै नहीं। किंतु अभेद होवैहै। यद्यपि विषयदेशमैं वृत्ति जावै तब द्रष्टाके शरीरकै अंतर

अंतःकरणसैं लेके विषयपर्यंत वृत्तिका आकार होवैहै । यातैं विषयदेशतैं बाह्यभी वृत्तिका स्वरूप होनेतैं विषयचेतनसैं भिन्नभी वृत्तिचेतनहै । तथापि तिसकालमैं वृत्तिसैं भिन्नदेशमैं विषय नहीं । यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद कहैहैं । औ जो दोनूंका परस्पर अभेद कहूं लिखा होवै तौ ताका अभिप्राय यहहैः—जितना वृत्तिभाग घटदेशमैं है उतना वृत्तिभागसैं उपहितचेतन घटचेतनसैं पृथक् नहीं । इसरीतिसैं जहां विषय-चेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहियेहै ॥

प्रत्यभिज्ञा औ अभिज्ञा प्रत्यक्षज्ञान औ स्मृति आदि परोक्षज्ञानोंका सामग्रीसहित निर्णय ॥ ३२ ॥

जहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होवै सो ज्ञान परोक्ष कहियेहैं । संस्कारजन्य स्मरणरूप अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतरही होवैहै । ताका विषय देशांतरमैं होवैहै । अथवा नष्ट होयजावैहै । यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होनेतैं स्मृतिज्ञान परोक्षहै । औ जिस पदार्थके पूर्वअनुभवके संस्कार होवै औ इंद्रियका संयोग होवै तहां " सोऽयम् " ऐसा ज्ञान होवैहै । ताकूं प्रत्यभिज्ञा कहैहैं । तहांभी इंद्रियजन्यवृत्ति विषयदेशमैं जावैहै । यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होनेतैं प्रत्यभिज्ञाज्ञानभी प्रत्यक्षही होवैहै । केवल इंद्रियजन्यवृत्ति होवै तहां " अन्यम् " ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै । ताकूं अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहैहैं । औ मुख्यसिद्धांतमैं तो पूर्व अनुभूतका " सोऽयम् " यह ज्ञानभी " तता " अंशमैं स्मृतिरूप होनेतैं परोक्षहै " अयम् " अंशमैं प्रत्यक्षहै यातैं " सोयम् " इस ज्ञानमैं केवल प्रत्यक्षत्व नहीं किंतु अंशभेदसैं परोक्षत्व प्रत्यक्षत्व दो धर्महैं ॥

केवल संस्कारजन्यवृत्ति होवै ताका " सः " ऐसा आकार होवैहै । ताकूं स्मृति कहैहैं । जा पदार्थका पूर्व इंद्रियतैं अथवा अनुमानादिकनतैं ज्ञान हुआ होवै ताकी स्मृति होवैहै । यातैं स्मृतिज्ञानमैं पूर्व अनुभव

करणहै औ अनुभवजन्य संस्कार व्यापारहै । काहेतैं जिस पदार्थका पूर्वज्ञान होवै ताकी वर्षके अंतरायसैं भी स्मृति होवैहै । तहां स्मृतिकै अव्यवहित पूर्वकालमैं अनुभव तो है नहीं औ अव्यवहित पूर्वकालमैं होवै सो हेतु होवैहै । यातैं पूर्वअनुभव स्मृतिका साक्षात् कारण संभवै नहीं किसीद्वारा कारण कहा चाहिये । यातैं ऐसा मानना योग्यहै । जा पदार्थका पूर्व अनुभव नहीं हुआ ताकी तो स्मृति होवै नहीं । जो पूर्व-अनुभव स्मृतिका कारण नहीं होवै तौ जाका अनुभव नहीं हुआ ताकी भी स्मृति हुई चाहिये । औ होवै नहीं । इसरीतिसैं पूर्वअनुभवसैं स्मृति-का अन्वयव्यतिरेकहै । पूर्व अनुभव हुये स्मृति होवैहै यह अन्वयहै । पूर्व अनुभव नहीं होवै तौ स्मृति होवै नहीं यह व्यतिरेकहै । एकके होनेसैं अपरका होना अन्वय कहियेहै । एकके नहीं होनेतैं अपरका नहीं होना व्यतिरेक कहियेहै । अन्वयव्यतिरेकसैं कारणकार्यभाव जानियेहैं । पूर्व अनुभव स्मृतिके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं तिनका कारणकार्यभाव तो अवश्यहै । परंतु अव्यवहित पूर्वकालमैं पूर्व अनु-भव मिलै नहीं यातैं स्मृतिकी उत्पत्तिमैं पूर्व अनुभवका कोई व्यापार माना चाहिये । जहां प्रमाणबलतैं कारणताका निश्चय होवै औ अव्यवहित पूर्वकालमैं कारणकी सत्ता संभवै नहीं तहां व्यापारकी कल्पना होवैहै । जैसैं शास्त्ररूपी प्रमाणतैं स्वर्गकी साधनताका यागमैं निश्चय होवैहै औ अंत्य आहुतिकूं **याग** कहैहैं । तिस यागकै नाश हुये बहुतकालकै अंतरायतैं स्वर्ग होवैहै । सुखविशेषकूं स्वर्ग कहैहैं । स्वर्गकै अव्यवहित पूर्वकालमैं यागकै अभावतैं कारणता यागकूं संभवै नहीं । यातैं शास्त्रसैं निर्णीत कारणताके निर्वाह वास्तैं यागका व्यापार अपूर्व मानैहै । जब अपूर्व अंगीकार किया तब दोष नहीं । का-हेतैं कार्यकै अव्यवहित पूर्वकालमैं कारण अथवा व्यापार एक चाहिये कहूं दोनूंभी होवैहैं । परंतु एक अवश्य चाहिये जिसकूं धर्म कहैहैं । सो या-गजन्य अपूर्वहै यागसैं अपूर्व उत्पन्न होवैहै औ यागजन्य जो स्वर्ग ताका

जनकहै। यातैं व्यापारहै। जैसैं यागकूं स्वर्गसाधनताके निर्वाहवास्तै अपूर्व व्यापार मानियेहै सो अपूर्व सदा परोक्षहै। तैसैं अन्वयव्यतिरेकबलतैं सिद्ध जो पूर्व अनुभवकूं स्मृतिकी कारणता ताके निर्वाहवास्तै संस्कार मानियेहै। सो संस्कार सदा परोक्षहै। जा अंतःकरणमैं पूर्व अनुभव होवैहै औ स्मृति होवेगी ता अंतःकरणका धर्म संस्कारहै। नैयायिकमतमैं अनुभव संस्कार स्मृति आत्माके धर्म्महैं। अनुभवजन्य संस्कारकूं नैयायिक भावना कहैहैं। सो संस्कार पूर्व अनुभवजन्यहै औ पूर्वअनुभवजन्य जो स्मृति ताका जनकहै। यातैं व्यापार कहियेहै। इसरीतिसैं पूर्वअनुभव स्मृतिका करणहै। संस्कार व्यापारहै। स्मृतिकी उत्पत्तिसैं अव्यवहित पूर्वकालमैं पूर्वअनुभवका तो नाश होनेतैं अभावहै। तथापि ताका व्यापार संस्कारहै। यातैं पूर्व अनुभवके नाश हुएभी स्मृति उपजैहै। सो संस्कार प्रत्यक्षतो है नहीं। अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं संस्कारकी सिद्धि होवैहै। यातैं जितने पूर्व अनुभूतकी स्मृति होवै उतनें काल संस्कार रहैहै॥ जा स्मृतिसैं उत्तर स्मृति न होवै सो चरमस्मृति कहियेहै। चरमस्मृतिसैं संस्कारका नाश होवैहै। यातैं फेरि तिस पदार्थकी स्मृति होवै नहीं। इसरीतिसैं पूर्व अनुभवजन्य संस्कारसैं अनेक स्मृति होवैहैं। जितनें चरमस्मृति होवैं इतनें एकही संस्कार रहैहै। स्मृतिमैं चरमता कार्यसैं जानीजावैहै। जा स्मृतिके हुए फेरि सजातीय स्मृति न होवै ता स्मृतिमैं चरमताका अनुमानसैं ज्ञान होवैहै। अंत्यकूं चरम कहैहैं। औ कोई ऐसैं कहैहैंः—पूर्वअनुभवजन्य संस्कारसैं प्रथम स्मृति होवैहै औ प्रथम स्मृतिकी उत्पत्तिसैं पहले संस्कारका नाश होवैहै। स्मृतिसैं और संस्कार उपजैहै। तासैं फेरि सजातीय स्मृति उपजैहै। ता स्मृतिसैं स्वजनक संस्कारका नाश होवैहै। अन्य संस्कार उपजैहै। तासैं तृतीय स्मृति होवैहै। इसरीतिसैं स्मृतिसैं भी संस्कारकी उत्पत्ति होवैहै। जा स्मृतिसैं उत्तर सजातीय स्मृति नहोवै सो स्मृति संस्कारकी हेतु नहींहै। या मतमैं संस्कारद्वारा स्मृतिज्ञानभी उत्तरस्मृतिका करणहै। औ प्रथम स्मृतिका करण

अनुभवहै । दोनूं स्थानमैं संस्कार व्यापारहै । औ पहले मतमैं स्मृतिज्ञान-का करण स्मृति नहीं । किंतु पूर्वानुभवसैं ही संस्कार होवैहै सो एकही संस्कार चरमस्मृतिपर्यंत रहैहै । यातैं पूर्वानुभवही स्मृतिका करणहै । औ पूर्वानुभवजन्य संस्कारही सकल सजातीय स्मृतिमैं व्यापारहै । दोनूं पक्ष-नमैं स्मृतिज्ञान प्रमा नहीं । काहेतैं प्रथम पक्षमैं तो स्मृतिज्ञानका करण पूर्वा-नुभवहै। सो षट्प्रमाणसैं न्याराहै । प्रमाणजन्य ज्ञानकूं प्रमा कहैहैं । पूर्वानुभव प्रमाण नहीं । द्वितीयपक्षमैं प्रथम स्मृतिका करण तो पूर्वानु-भवहै । औ द्वितीयादि स्मृतिका करण स्मृतिहै। सो स्मृतिभी षट्प्र-माणमैं नहीं । यातैं स्मृतिकूं प्रमा नहीं कहैहैं । तथापि यथार्थ भेदसैं स्मृति दो प्रकारकीहै । भ्रमरूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो अ-यथार्थहै। प्रमारूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो यथार्थहै। इसरीति-सैं दो पक्ष ग्रंथनमैं लिखेहैं । तिनमैं दूषण भूषण अनेकहैं; ग्रंथ-विस्तारभयतैं उपराम होयके प्रसंग लिखेहैं । जैसैं पूर्वअनुभवजन्य स्मृतिज्ञान परोक्षहै ॥

तैसैं अनुमानादिप्रमाणजन्य ज्ञानभी परोक्षहै । काहेतैं जैसैं स्मृतिका विषय वृत्तिसैं व्यवहित होवैहै । तैसैं अनुमानादिजन्य ज्ञानका वि-षयभी वृत्तिदेशमैं होवै नहीं । किंतु व्यवहित पर्वतादिदेशमैं होवैहै । औ अतीत अनागत पदार्थका भी अनुमानादिकनतैं अनुमितिसैं आदि लेकै वर्त्तमान ज्ञान होवैहै । यातैं अनुमानादिजन्यज्ञानके देशमैं औ कालमैं विषय होवै नहीं। किंतु अनुमितिआदिक ज्ञाननके देश औ कालतैं भिन्न-देश औ भिन्नकालमैं तिनके विषय होवैहै ॥

इंद्रियजन्यताके नियमसैं रहित प्रत्यक्षज्ञानका अनुसंधान ॥ ३३ ॥

इंद्रियजन्यज्ञानके विषय ज्ञानके देशकालतैं भिन्न देश भिन्नकालमैं होवै नहीं। किंतु ज्ञानके देशकालमैं ही होवैहैं।यातैं इंद्रियजन्यज्ञान सारे प्रत्य-क्षही होवैहैं ॥ अद्वैतमतमैं अंतःकरणका परिणाम जो वृत्ति ताकूं ज्ञान

कहे हैं । यातैं ज्ञानविषय एकदेशमैं होवैं । अथवा वृत्तिविषय एक देशमैं होवैं या कहनैमैं एकही अर्थहै । इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं । जहां अन्यप्रमाणजन्य वृत्तिदेशमैं भी विषय होवै तहां प्रत्यक्षज्ञानही होवैहै । जैसैं "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं उत्पन्न हुई वृत्तिके देशमैं विषयहै । यातैं शब्दप्रमाणजन्य ज्ञानभी कहूं प्रत्यक्ष होवैहै । महावाक्यजन्य ब्रह्माकारवृत्ति औ ब्रह्मात्मा दोनूं एकदेशमैं होवैहैं । यातैं महावाक्यजन्य ब्रह्मात्माज्ञान प्रत्यक्षहै । तैसैं ईश्वरज्ञानका उपादान कारण मायाके देशमैं सर्वपदार्थहैं । यातैं इंद्रियजन्य नहीं तौभी ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्षहै । तैसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी प्रत्यक्षहै । काहेतैं जहां भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां भूतलसैं नेत्रका संबंध होयके भूतलदेशमैं अंतःकरणकी वृत्ति जावैहै । "भूतले घटो नास्ति" ऐसा वृत्तिका आकारहै । तहां भूतलअंशसैं तो वृत्ति नेत्रजन्यहै औ घटाभावअंशमैं अनुपलब्धिजन्यहै । जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह वृत्ति पर्वतअंशमैं नेत्रजन्यहै, वह्निअंशमैं अनुमानजन्यहै । तैसैं एकही वृत्ति अंशभेदसैं इंद्रिय औ अनुपलब्धि दो प्रमाणसैं उपजैहै तहां भूतलावच्छिन्नचेतनका वृत्तिअवच्छिन्नचेतनसैं अभेद होवैहै औ भूतलावच्छिन्नचेतनही घटाभावावच्छिन्न चेतनहै । यातैं घटाभावावच्छिन्नचेतनका भी वृत्तिअवच्छिन्नचेतनसैं अभेद होवै है । यातैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्यभी घटाभावका ज्ञान प्रत्यक्षहै । परंतु जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्ष योग्यहै । अधिकरणके प्रत्यक्षमैं इंद्रियका व्यापार होवैहै । तहां उक्तरीतिका संभवहै ॥

औ जहां अधिकरणके प्रत्यक्षमैं इंद्रियका व्यापार नहीं होवै तहां अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं किंतु परोक्षहैं । जैसैं वायुमैं रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं निमीलितनयनकूंभी ज्ञान होवैहै औ परमाणुमैं योग्यानुपलब्धिसैं नेत्रका उन्मीलन व्यापारविनाही महत्वाभावका ज्ञान होवैहै । तहां विषयदेशमैं वृत्ति जावै नहीं । यातैं

अनुपलब्धिप्रमाणजन्य वायुमैं रूपाभावका ज्ञान तैसैं परमाणुमैं महत्वाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं, परोक्षहै ॥ इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान कहूं प्रत्यक्षहै कहूं परोक्षहै । औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका प्रत्यक्ष लिखाहै । अनुपलब्धिजन्य परोक्षज्ञानका उदाहरण नहीं लिखा । सो तिनमैं न्यूनताहै । लिखा चाहिये जो परोक्षका उदाहरण लिखेविना अनुपलब्धिजन्य ज्ञान परोक्ष होवै नहीं ऐसा भ्रम होवैहै ॥

अभावके ज्ञानकी सर्वत्र परोक्षताका निर्णय ॥ ३४ ॥

औ सूक्ष्मदृष्टिसैं विचार करैं तौ अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान सर्वत्र परोक्षहै कहूंभी प्रत्यक्ष नहीं । काहेतैं प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद हुयेभी जो प्रत्यक्षयोग्य विषय नहीं ताका परोक्षही ज्ञान होवैहै । जैसैं शब्दादिकप्रमाणतैं धर्माधर्मका ज्ञान होवै तब प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका भेद नहीं । काहेतैं । अंतःकरणदेशमैं धर्माधर्म रहैहैं । यातैं अंतःकरण औ धर्माधर्मरूपउपाधि भिन्नदेशमैं नहीं होनैतैं धर्माधर्मावच्छिन्नचेतन प्रमाणचेतनसैं भिन्न नहीं । तथापि धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं । यातैं शब्दादिजन्य धर्माधर्मका ज्ञान कदेभी प्रत्यक्ष नहीं । अनुभवके अनुसार विषयमैं योग्यता अयोग्यता जाननी । जैसैं धर्माधर्मप्रत्यक्षयोग्य नहीं तैसैं अभावपदार्थभी प्रत्यक्षयोग्य नहीं । जो अभावपदार्थ प्रत्यक्ष होवै तौ वादियोंका विवाद नहीं हुआ चाहिये । मीमांसक अभावकूं अधिकरणरूप मानैहैं । नैयायिकादिक अधिकरणसैं भिन्न मानैहैं । तैसैं नास्तिक अभावकूं तुच्छ औ अलीक मानैहैं । आस्तिक अभावकूं पदार्थ मानैहैं । इसरीतिसैं अभावके स्वरूपमैं विवादहै । औ प्रत्यक्षयोग्य जो घटादिक तिनकै स्वरूपमैं अधिकरणसैं भिन्न वा नहीं इत्यादिक विवाद होवै नहीं । यातैं अभावपदार्थ प्रत्यक्षयोग्य नहीं । इस कारणतैं जहां भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां प्रमाणचेतनसैं घटाभावावच्छिन्नचेतनका अभेदहै तौभी अभावांशमैं यह ज्ञान परोक्षहै,

भूतलांशमैं अपरोक्षहै । जैसैं " पर्वतो वह्निमान् " यह ज्ञान पर्वतअंशमैं अपरोक्षहै । औ वह्निअंशमैं परोक्षहै ॥ इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाण-जन्य अभावके ज्ञानकूं सर्वत्र परोक्ष मानै तो भट्टसैंभी विरोध नहीं । भट्टमतमैं अनुपलब्धिजन्य अभावका ज्ञान परोक्षहीहै ॥

औ अभावके ज्ञानकूं जो नैयायिक इंद्रियजन्य मानिकै प्रत्यक्ष कहैहैं सो सर्वथा असंगतहैः—काहेतैं वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै औ परमाणुमैं महत्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै यह नैयायिकनका सिद्धांतहै सो बनै नहीं । काहेतैं वायुमैं रूपाभावके ज्ञानवास्तै कोईभी नेत्रका उन्मीलनव्यापार करै नहीं किंतु निमीलित नेत्रकूंभी वायुमैं रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं ज्ञान होवैहै तैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका ज्ञानभी उन्मीलित नेत्रकी नांई निमीलित नेत्रकूं भी होवैहै । औ निमी-लित नेत्रकों घटादिकनका चाक्षुषज्ञान कदीभी होवै नहीं । यातैं वायुमैं रूपाभावका औ परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष बनैं नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धिसैं तिनका परोक्षज्ञान होवैहै ॥

औ जो नैयायिक कहैहैं अभावज्ञानमैं इंद्रियके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं अभावज्ञानमैं इंद्रिय हेतुहै औ याका जो भेदाधिक्कारादिक ग्रंथनमैं समाधान लिखाहैः—इंद्रियका अन्वयव्यतिरेक अधिकरणके ज्ञानमैं चारितार्थहै । जैसैं भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां नेत्रइंद्रियसैं अभावके अधिकरण भूतलका ज्ञान होवैहै । ता नेत्रसैं ज्ञातभूतलमैं घटा-भावका योग्यानुपलब्धिसैं ज्ञान होवैहै । इसरीतिसैं घटाभावका अधिकरण जो भूतल ताके ज्ञानमैं इंद्रिय चारितार्थ कहिये सफलहै ॥ सो शंका औ समाधान दोनूं असंगतहैंः—काहेतैं वायुमैं रूपाभावका औ परमाणुमैं मह-त्वाभावका नेत्रव्यापारसैं विनाभी ज्ञान होवैहै । यातैं किसी अभाव-ज्ञानमैं इंद्रियके अन्वयव्यतिरेक हुयें इंद्रियकूं कारणता सिद्ध होवै नहीं । सकलअभावके ज्ञानमैं इंद्रियका अन्वयव्यतिरेक असिद्धहैं । इसरीतिसैं शिथिलमूल शंकाका समाधान कथनभी असंगतहै ॥

औ जो नैयायिक इसरीतिसैं शंका करैंः—"घटानुपलब्ध्या इंद्रियेणाभावं निश्चिनोमि" ऐसी प्रतीति होवैहै । यातैं अनुपलब्धि औ इंद्रिय दोनूं घटादिकनके अभावज्ञानके हेतुहैं । या शंकाका उक्त समाधान करैं । घटाभावके अधिकरणका ज्ञान इंद्रियतैं होवैहै औ घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवैहै । सोभी समाधान संभवै नहींः—काहेतैं जहां इंद्रिययोग्य अधिकरणहै तहां तो उक्त समाधान संभवैहै । औ जहां अधिकरण इंद्रिययोग्य नहीं तहां उक्त समाधान संभवै नहीं ॥ जैसैं "वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि" इसरीतिसैं वायुमैं रूपाभावकी अनुपलब्धिजन्य औ नेत्रजन्य प्रतीति भासैहै तहां वायुकी प्रतीति नेत्रजन्यहै औ रूपाभावकी प्रतीति अनुपलब्धिजन्यहै यह कहना संभवै नहीं । काहेतैं वायुमैं रूपके अभावतैं नेत्रकी योग्यता नहीं ॥

यातैं अभावज्ञानकूं केवल अनुपलब्धिजन्य मानैं । उभयजन्यताकी प्रतीतिसैं विरोधका अद्वैतवादीका यह समाधानहै "भूतले अनुपलब्ध्या नेत्रेण घटाभावं निश्चिनोमि" या कहनैका अनुपलब्धिसहित नेत्रतैं भूतलमैं घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह अभिप्राय नहींहै । किंतु भूतलमैं इंद्रियजन्य घटकी उपलब्धिकै अभावतैं घटाभावके निश्चयवाला मैंहूं यह तात्पर्यहै । अभावके निश्चयका हेतु अनुपलब्धिहै औ अनुपलब्धिका प्रतियोगी जो उपलब्धि तामैं इंद्रियजन्यता भासैहै । यातैं निषेधनीय उपलब्धिमैं इंद्रियजन्यता प्रतीत होनेतैं इंद्रियजन्य उपलब्धिकै अभावतैं घटाभावका निश्चय उपजैहै यह सिद्ध हुवा । तैसैं "वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि" या कहनैकाभी रूपकी अनुपलब्धिसहित नेत्रतैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य नहींहै । काहेतैं नेत्रके व्यापारविनाभी रूपाभावका निश्चय होवैहै किंतु नेत्रजन्य रूपकी उपलब्धिकै अभावतैं वायुमैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्यहै । यातैं जिस उपलब्धिका अभाव रूपाभावके निश्चयका हेतु ता उपलब्धिमैं नेत्रजन्यता प्रतीत होवैहै ।

इसरीतिसैं सारे अभावनिश्चयका हेतु जो अनुपलब्धि ताके प्रतियोगी उपलब्धिमैं इंद्रियजन्यता कहियेहै औ विवेकविना अभावनिश्चयमैं इंद्रियजन्यता प्रतीत होवैहै । नैयायिककी शंकाका यह समाधान सर्वत्र व्यापकहै । औ अधिकरणज्ञानकी इंद्रियजन्यता अभावज्ञानमैं भासैहै । यह भेद धिक्कारवेदांतपरिभाषादिकनका समाधान सर्वत्र व्यापक नहीं किंतु जहां प्रत्यक्षयोग्य भूतलादिक अभावके अधिकरणहैं तहां तो यह समाधान संभवैहै । औ जहां प्रत्यक्षअयोग्य वायुआदिक अभावके अधिकरणहैं तहां उक्त समाधान संभवै नहीं । औ "अनुपलब्ध्या रसनेंद्रियेणाम्लरसाभावमात्रे जानामि" या स्थानमैं भी अधिकरणका ज्ञान रसनेंद्रियजन्य संभवै नहीं । काहेतैं अम्लरसके अभावका अधिकरण आम्रफलहै ताके ज्ञानके सामर्थ्य रसनेंद्रियमैं नहीं । रसनेंद्रियमैं केवल रसज्ञानकी सामर्थ्यहै । द्रव्यज्ञानकी सामर्थ्य नहीं । यातैं रसनेंद्रियजन्याम्लरसोपलब्धिके अभावतैं आम्रफलमैं रसके अभावका निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्यसैं उक्त व्यवहार होवैहै । यद्यपि उक्त वाक्यके अक्षरमर्यादासैं उक्त अर्थ क्लिष्टहै । तथापि अन्यगतिके असंभवतैं उक्त अर्थही माना चाहिये । यातैं नैयायिककी शंकाका अस्मदुक्तही समाधानहै । इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावका निश्चय होवैहै यह पक्ष निर्दोषहै ॥

औ जो नैयायिक शंका करैः—अभावप्रमाका पृथक् प्रमाण माननेमैं गौरवहै औ घटादिकनकी प्रत्यक्षप्रमामैं इंद्रियकी प्रमाणता निर्णीतप्रमाणसैं अभावप्रमाकी उत्पत्ति मानें लाघवहै ॥

अनुपलब्धिप्रमाणके अंगीकारमैं नैयायिककी शंकासमाधान ॥ ३९ ॥

ता शंकाका यह समाधानहैः—इंद्रियकूं प्रमाणता कहनेवाला नैयायिकभी अनुपलब्धिकूं कारणता तो मानैहैं अनुपलब्धिकूं करणता

नहीं कहैहैं । अद्वैतवादी इंद्रियकूं अभावकी करणता नहीं मानैहैं । यातैं इंद्रियका अभावतैं स्वसंबद्ध विशेषणता औ शुद्ध विशेषणता संबंध नहीं मानना होवैहै । नैयायिककूं अप्रसिद्धसंबंधकी कल्पना गौरवहै औ अनुपलब्धिमैं सहकारी कारणता तो नैयायिकभी मानैहैं । तिसकूं अद्वैतवादी कारणता नाम धरिकै प्रमाणता कहैहैं । यातै नैयायिकमतमैं ही गौरवहै अद्वैतमतमैं नहीं ॥

और वेदांतपरिभाषाका टीकाकार मूलकारका पुत्र हुआहै तिसकूं अद्वैतशास्त्रके संस्कार न्यून हुयेहैं औ न्यायशास्त्रके संस्कार अधिक रहैहैं । यातैं मूलका व्याख्यान करिकै नैयायिकमतका तिसनैं इसरीतिसैं उज्जीवन लिखाहैः—अनुपलब्धि पृथक् प्रमाण नहीं । अभावका ज्ञान इंद्रियतैंही होवैहै । औ जो कहै अभावके साथि इंद्रियका संबंध नहीं है । विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्य ज्ञान होवै नहीं । विशेषणता औ स्वसंबद्ध विशेषणता जो नैयायिक संबंध मानैहैं सो अप्रसिद्धहै । यातैं अप्रसिद्धकी कल्पना गौरवहै सो असंगतहैः—काहेतैं "घटाभाववद् भूतलम्" यह प्रतीति सर्वकूं संमतहै । या प्रतीति घटाभावमैं आधेयता भासैहै । औ भूतलमैं अधिकरणता भासैहै । परस्परसंबंधविना आधाराधेयभाव होवै नहीं । यातैं भूतलादिकअधिकरणमैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्टहै ॥ जो अभावकूं प्रत्यक्ष नहीं मानैं तिनकूंभी अभावका तो अंगीकारहै । औ भूतलादिकनमैं अभावकी अधिकरणताका अंगीकारहै । यातैं अधिकरणसैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्टहै । ता संबंधका व्यवहारवासतैं कोई नाम कह्या चाहिये यातैं अधिकरणमैं अभावकै संबंधकूं विशेषणता कहैहै । इसरीतिसैं विशेषणतासंबंध अप्रसिद्ध नहीं । यातैं अप्रसिद्ध कल्पनारूप गौरव नैयायिकमतमैं नहीं । अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वमतसिद्धहै औ इंद्रियअधिकरणका संयोगादि संबंधभी सर्वमतसिद्ध होनेतैं स्वसंबद्ध विशेषणता दोनूं संबंध अप्रसिद्ध नहीं औ "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । यातैं भूतलादि-

कनमैं अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्यहै । जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहांही "पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै ॥ औ अद्वैतमतमैं भूतलका ज्ञान नेत्रजन्यहै; घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिजन्यहै नेत्रजन्य नहीं । यातैं अनुव्यवसायज्ञानमैं अपनैं विषय व्यवसायकी विलक्षणता भासी चाहिये ॥ जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वतअंशमैं प्रत्यक्षहै । वह्निअंशमैं अनुमितिहै ताका "पर्वतं पश्यामि । वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । तामैं व्यवसायकी विलक्षणता भासैहै । सो विलक्षणता इहां नेत्रजन्यत्व औ अनुमानजन्यत्वहै । तैसैं अभावज्ञानमैं नेत्रजन्यत्व औ अनुपलब्धिजन्यत्वरूप विलक्षणता होवै तौ अनुव्यवसायमैं भासी चाहिये औ केवल नेत्रजन्यत्वही अनुव्यवसायमैं भासैहै । यातैं अभावका ज्ञानभी इंद्रियजन्यहै पृथक् प्रमाणजन्य नहीं । औ अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्य नहीं मानै तौभी अद्वैतवादी अनुपलब्धिजन्य मानिकै प्रत्यक्षरूप कहैहैं । सोभी असंगतहैः—काहेतैं जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै। या नियमका बाध होवैगा यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्यहै । इसरीतिसैं वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं नैयायिकमतका उज्जीवन सकल अद्वैतग्रंथनसैं विरुद्ध लिखाहैः—सो युक्तिसै विरुद्धहै । काहेतैं ॥

प्रथम जो कह्या अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वकूं इष्टहै । यातैं अप्रसिद्धकल्पना नहीं सो असंगतहै काहेतैं अभाव औ अधिकरणका संबंध तो इष्टहै परंतु विशेषणतासंबंधमैं प्रत्यक्षज्ञानकी कारणता अप्रसिद्ध है । काहेतैं जो अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यता मानै तिसीकै मतमैं विशेषणतासंबंध इंद्रियजन्यज्ञानका कारण मानना होवैहै । अन्यमतमैं विशेषणतासंबंधमैं इंद्रियजन्यज्ञानकी कारणता माननी होवै नहीं । यातैं अप्रसिद्धकल्पनाका परिहार नैयायिकमतमैं होवै नहीं । औ जो अभावज्ञानकूं पृथक् प्रमाणजन्यता माननेमैं दोष कहा "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय नहीं हुआ चाहिये सोभी संभवै नहीं । काहेतैंः—घटा-

भावविशिष्टभूतलके चाक्षुषज्ञानवाला मैं हूं ऐसा अनुव्यवसाय होवै। उक्तवाक्यकाभी यही अर्थहै। या अनुव्यवसायमैं घटाभावविशेषण है, भूतल विशेष्यहै। ता विशेष्यभूतलमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयताहै, घटाभावविशेषणमैं नहींहै तौभी घटाभावविशिष्टभूतलमैं प्रतीत होवैहै। कहूं विशेषणमात्रका धर्म, कहूं विशेष्यमात्रका धर्म, कहूं विशेषणविशेष्य दोनूंका धर्म विशिष्टमैं प्रतीत होवैहै। जैसैं "दंडी पुरुषः" या ज्ञानमैं दंड विशेषणहै औ पुरुष विशेष्यहै। जहां दंड नहींहै, पुरुषहै तहां "दंडी पुरुषो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवैहै। यातैं दंडरूप विशेषणका अभावहै। पुरुषरूप विशेष्यका अभाव नहीं। तथापि विशेषणमात्रवृत्ति अभाव दंडविशिष्टपुरुषमैं प्रतीत होवैहै। जहां दंडहै पुरुष नहींहै तहां विशेष्यमात्रका अभावहै। औ "दंडी पुरुषो नास्ति" इसरीतिसैं दंडविशिष्टपुरुषमैं प्रतीत होवैहै। जहां दंड नहीं औ पुरुषभी नहीं है तहां विशेषण विशेष्य दोनूंका अभाव विशिष्टमैं प्रतीत होवैहै। तैसैं विशेष्यभूतलमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयताहै औ विशेषण जो घटाभाव तामैं नहींहै तौभी घटाभावविशिष्ट भूतलमैं प्रतीत होवैहै। जैसैं "वह्निमन्तं पर्वतं पश्यामि" इसरीतिसैं पर्वतके प्रत्यक्षका अनुव्यवसाय होवैहै। तहां चाक्षुषज्ञानकी विषयता विशेष्य पर्वतमैंहै। औ विशेषण जो वह्नि तामैं नहींहै। तथापि वह्निविशिष्ट पर्वतमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयता प्रतीत होवैहै। औ जो दोष कहा घटाभाव औ भूतलविजातीयज्ञानके विषय होवै तौ "पर्वतं पश्यामि, वह्निमनुमिनोमि" इसरीतिसैं विलक्षण व्यवसायज्ञानकूं विषय करनैंवाला अनुव्यवसाय हुआ चाहिये। यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके शिथिलसंस्कारवालेका है:—काहेतैं अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्यहै इस अर्थकूं जो मानै ताकूं "घटानुपलब्ध्या घटाभावं निश्चिनोमि। नेत्रेण भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय अबाधित होवैहै। तासैं व्यवसायज्ञानकी विषयता घटाभावमैं औ भूतलमैं विलक्षण मानैहैं॥ औ जो दोष कहाहै:—अनुपलब्धिजन्यता मानिकै अद्वैतवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानैहै। औ जो प्रत्य-

क्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै । यातैं उक्तनियमका अनुपलब्धिवादिके मतमैं बाध होवैगा ॥ सोभी सिद्धांतके अज्ञानतैंहै । यातैं असंगतहैः— काहेतैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान सारे प्रत्यक्ष नहींहै । किंतु कोई ज्ञान प्रत्यक्षहै औ वायुमैं रूपाभावका ज्ञान परमाणुमैं महत्त्वाभावका ज्ञान इत्यादिक अनुपलब्धिजन्यहै तथापि परोक्षहैं । अथवा अनुपलब्धिप्रमाणजन्यभी अभावका ज्ञान सारे परोक्षहैं। यह पूर्वप्रतिपादन करिआयेहैं।यातैं अनुपलब्धिवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानैं यह धर्मराजके पुत्रका कथन सिद्धांतके अज्ञानसैंहै । औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं जो कहूं अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहीहै सो प्रौढिवादसैं कहीहै ॥ जो अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिलेवै तौभी वक्ष्यमाणरीतिसैं अभावज्ञानमैं इंद्रियजन्यता सिद्ध होवै नहीं । यह ग्रंथकारनका प्रौढिवादहै । प्रतिवादीकी उक्ति मानिकैभी स्वमतमैं दोषका परिहार करै ताकूं प्रौढिवाद कहैहैं ॥ औ अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिकै इंद्रियजन्यता नहीं मानै तौ प्रत्यक्षज्ञान इंद्रियजन्य होवैहै । या नियमका बाध होवैगा यह कथनभी असंगतहैः—काहेतैं ताकूं यह पूछैहैंः—जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै । इंद्रियजन्यसैं भिन्न प्रत्यक्ष होवै नहीं ऐसा नियमहै । अथवा जो इंद्रियजन्य ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवैहै; प्रत्यक्षसैं भिन्न इंद्रियजन्य होवै नहीं यह नियमहै । तिनमैं प्रथम पक्ष कहै सो असंगत हैः—ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्षहै इंद्रियजन्य नहींहै । न्यायमतमैं नित्यहै औ सिद्धांतमतमैं मायाजन्यहै । ईश्वरकै इंद्रियनका अभावहै यातैं ताका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं । औ "दशमस्त्वमसि" या वाक्यतैं उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्षहै इंद्रियजन्य नहीं । जो ऐसैं कहैः—दशमपुरुषकूं अपनैं शरीरमैं दशमताका ज्ञान होवैहै । सो शरीर नेत्रके योग्यहै । यातैं दशमका ज्ञानभी नेत्रइंद्रियजन्यहै ॥ सो संभवैनहींः—काहेतैं निमीलितनयनकूं भी वाक्य सुनिकै दशमका ज्ञान होवैहै । जो नेत्रजन्य होवै तो नेत्रव्यापारविना नहीं हुआ चाहिये । यातैं दशमका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं । औ जो ऐसैं कहै

दशमका ज्ञान मनोजन्यहै यातैं इंद्रियजन्यहैं। सोभी संभवै नहीं:—काहेतैं देवदत्त यज्ञदत्तादिक नाम आत्माके नहीं किंतु न्यायमतमैं शरीरविशिष्ट आत्माके, वेदांतमतमैं सूक्ष्मविशिष्ट स्थूलशरीरके हैं। तैसैं त्वं अहं यह व्यवहारभी सूक्ष्मविशिष्ट स्थूलशरीरमैं होवैहै। तास्थूलशरीरका ज्ञान मनसैं संभवै नहीं, बाह्यपदार्थके ज्ञानका मनमैं सामर्थ्य नहीं। जो ऐसैं कहैं:—मनका अवधान होवै तौ वाक्यसैं दशमका ज्ञान होवै विक्षिप्तमनवालेकूं होवै नहीं। यातैं अन्वयव्यतिरेकतैं दशमज्ञानका हेतु मन होनेतैं दशमका ज्ञान मानसहै यातैं इंद्रियजन्यहै॥ सोभी संभवै नहीं:—इसरीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं सकलज्ञानोंका हेतु मनहै। विक्षिप्तमनवालेकूं किसी प्रमाणतैं ज्ञान होवै नहीं। सावधानमनवालेकूं सकलज्ञान होवैहैं। यातैं सारे ज्ञान मानस कहे चाहिये। यातैं सर्वज्ञानका साधारणकारण मनहै। इंद्रियअनुमानादिक सकल प्रमाणका सहकारीहै। मनसहित नेत्रतैं जो ज्ञान होवै सो चाक्षुषज्ञान कहियेहै। मनसहित अनुमानप्रमाणतैं होवै सो अनुमितिज्ञान कहियेहै। मनसहित शब्दप्रमाणतैं होवै सो शाब्दज्ञान कहियेहैं। अन्यप्रमाणविना केवल मनतैं जो ज्ञान होवै सो मानसज्ञान कहियेहैं। सो केवल मनतैं आंतरपदार्थ सुखादिकनका ज्ञान होवै। यातैं आंतरपदार्थका ज्ञानही मानस होवैहै। बाह्यपदार्थका इंद्रियानुमानादिकविना केवल मनतैं ज्ञान होवै नहीं। यातैं दशमका ज्ञान मानसहै यह कहना संभवै नहीं। आंतरपदार्थका ज्ञान मानस होवैहैं यहभी नैयायिकरीतिसैं कहाहै। सिद्धांतमैं तो कोई ज्ञान मानस नहीं। काहेतैं शुद्ध आत्मा तो स्वयंप्रकाशहै। ताकै प्रकाशमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं। यातैं आत्माका ज्ञान मानस नहीं। औ सुखादिक साक्षिभास्यहैं। जिसकालमैं इष्टपदार्थके संबंधतैं सुखाकार अंतःकरणका परिणाम होवै औ अनिष्टपदार्थके संबंधतैं दुःखाकार अंतःकरणका परिणाम होवै तिसी समैं सुखदुःखकूं विषय करनैवाला अंतःकरणके सत्त्वगुणका परिणामवृत्ति होवैहै। ता वृत्तिमैं आरूढ़साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशै

है । सुखदुःखकी उत्पत्तिमैं इष्टसंबंध औ अनिष्टसंबंध निमित्तहै । तिसी निमित्तसैं सुख औ दुःखकूं विषय करनैंवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै । ताकी उत्पत्तिमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं । यातैं सुख-दुःख साक्षिभास्यहैं । यद्यपि घटादिकनका प्रकाशभी केवल वृत्तिसैं होवै नहीं किंतु वृत्तिमैं आरूढ़चेतनसैं ही सर्वका प्रकाश होवैहै । यातैं सारे प-दार्थ साक्षिभास्य कहे चाहिये । तथापि घटादिकनका ज्ञानरूप अंतः-करणकी वृत्ति उपजै तामैं इंद्रियअनुमानादिक प्रमाणकी अपेक्षाहै । औ सुखादिकनके ज्ञानरूप वृत्तिकी उत्पत्तिमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं इतना भेदहै । जा वृत्तिमैं आरूढसाक्षी विषयकूं प्रकाशै सो वृत्ति जहां इंद्रियअनुमानादिकप्रमाणसैं होवै तहां विषयकूं साक्षिभास्य नहीं कहैहैं; किंतु प्रमाणजन्यज्ञानका विषय कहैहैं । जहां प्रमाणके व्या-पारविना वृत्तिकी उत्पत्ति होवै ता वृत्तिमैं आरूढसाक्षि जिसकूं प्र-काशै सो साक्षिभास्य कहियेहै । घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्ति इं-द्रियअनुमानादिक प्रमाणतैं होवैहै । ता वृत्तिमैं आरूढसाक्षी प्रकाशैहैं । तथापि घटादिक प्रमाणगोचर कहियेहैं साक्षिभास्य नहीं । औ सुखादिगोचरवृत्ति प्रमाणजन्य नहीं किंतु सुखादिजनकधर्मादि-जन्यहैं । यातैं सुखादिक साक्षिभास्यहैं । इसरीतिसैं सुखादिक औ तिनके ज्ञान समानसामग्रीसैं होवैहैं । यातैं अज्ञातसुखादिक होवैं नहीं किंतु ज्ञातही होवैहैं । औ सुखादिकनके प्रत्यक्षके हेतु सुखादिक नहीं । जो पूर्वकालमैं सुखादिक होवैं तौ स्वज्ञानके हेतु होवैं । सुखादिक औ तिनका ज्ञान समानकालमैं समानसामग्रीतैं होवैहैं । यातैं परस्पर कार्यका-रणभाव तो नहीं । औ घटादिकनके प्रत्यक्षज्ञानमैं घटादिक हेतुहैं । काहेतैं प्रत्यक्षज्ञानतैं प्रथम घटादिक उपजैहैं । यातैं स्वगोचरप्रत्यक्षके घटादि-क हेतुहैं । घटादिकनके जहां अनुमिति आदि ज्ञान होवै तिनके हेतु घटादिक नहीं । अनुमितिज्ञानमैं तैसैं शाब्दज्ञानमैं जो विषयभी कारण होवै तो अतीत अनागत पदार्थके अनुमितिआदिक ज्ञान नहीं हुये

चाहिये । यातैं अनुमितिज्ञान शाब्दज्ञानादिकनमैं विषय कारण नहीं । तैसैं सुखादिकभी स्वगोचरज्ञानके कारण नहीं । पूर्वप्रसंग यहहैः— सुखादिकनका ज्ञान मानस नहीं । किंतु सुखादिक साक्षिभास्यहै । यातैं मनका असाधारण विषय मिलै नहीं । इसकारणतैं सर्वज्ञानोंका उपादानरूप अंतःकरण तो है औ ज्ञानका स्वतंत्रकरणरूप इंद्रिय जो मनकूं नैयायिक कहैहैं सो असंगतहै । यातैं दशमका ज्ञान मानस नहीं किंतु वाक्यजन्यहै औ प्रत्यक्षहै । इसरीतिसैं जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै यह नियम संभवै नहीं ॥ औ जो ऐसैं कहैः—जो इंद्रियजन्य ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवै । इंद्रियजन्यज्ञान कोई अप्रत्यक्ष नहीं होवैहै । या नियमसैं सिद्धांतकी हानि नहीं । काहेतैं इंद्रियजन्य ज्ञानकूं अप्रत्यक्षता हमभी नहीं कहैहैं; इंद्रियजन्यज्ञान तो सारे प्रत्यक्षहै । कहूं शब्दादिकनतैं भी प्रत्यक्ष होवैहै । यह सिद्धांतहै । यातैं उक्त नियमका विरोध नहीं । इसरीतिसैं नैयायिकानुसारी धर्मराजके पुत्रकी उक्ति असंगतहै ॥

यातैं अभावज्ञान इंद्रियजन्य नहीं । किंतु योग्यानुपलब्धिनाम-पृथक्प्रमाणजन्यहै । जहां "प्रतियोगी होता तो ताका उपलंभ होता" इसरीतिसैं प्रतियोगीके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै तहां तो अभावका ज्ञान योग्यानुपलब्धिप्रमाणजन्य है । औ अंधकारमैं घटाभावका ज्ञान अनुमानादिजन्यहै । काहेतैं "अंधकारमैं घट होता तौ ताका उपलंभ होता" इसरीतिसैं घटरूपप्रतियोगीके आरोपतैं घटके उपलंभका आरोप संभवै नहीं । इसरीतिसैं अन्यमतमैं जितने अभावनके ज्ञान इंद्रियजन्यहैं उतनेही ज्ञान वेदांतमतमैं केवल अनुपलब्धिजन्यहैं । नैयायिकमतमैं इंद्रिय करणहैं अनुपलब्धि सहकारी कारणहै । यातैं इंद्रियमैं प्रमाणताहै, अनुपलब्धिमैं प्रमाणता नहींहै । वेदांतमतमैं अनुपलब्धिमैं प्रमाणता अधिक माननी होवैहै । औ अनुपलब्धि स्वरूपसैं दोनूंमतमैं सिद्धहै । तैसैं न्यायमतमैं विशेषणतासंबंधकूं ज्ञानकी करणता अधिक माननी होवैहै

औ विशेषणतासंबंध स्वरूपसैं अधिकरणअभावका दोनूंमतमैं सिद्ध है । इसरीतिसैं वेदांतीकूं अनुपलब्धिमैं प्रमाणता अधिक माननी औ नैयायिककूं विशेषणतासंबंधमैं ज्ञानकी कारणता अधिक माननी । यातैं लाघव गौरव किसीकूं नहीं ।दोनूंकी समान कल्पनाहै । तथापि अभावज्ञानकी कारणता इंद्रिमैं नैयायिक अधिक कहैहैं । यह तिनके मतमैं गौरवहै । औ वायुमैं रूपाभावका ज्ञान नेत्रव्यापारसैं विना होवैहै । औ ताकूं नैयायिक चाक्षुषज्ञान कहैहैं । तैसैं परमाणुमैं महत्वाभावका ज्ञानभी नेत्रव्यापारसैं विना होवैहै । ताकूंभी नैयायिक चाक्षुषज्ञान कहैहैं । इसरीतिसैं अनेकस्थानमैं जिस इंद्रियके व्यापारविना जो अभावका ज्ञान होवै ताकूं तिस इंद्रियजन्य कहैहैं सो अनुभवविरुद्धहै । जिस इंद्रियव्यापारतैं जो ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्य सो ज्ञान होवैहै । जिस इंद्रियके व्यापारविना जो ज्ञान होवै तिसइंद्रियजन्यताज्ञानकूं मानै तौ सकल ज्ञान सकलइंद्रियजन्य हुये चाहिये यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्यहै । यह नैयायिकमत समीचीन नहीं । इसरीतिसैं अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्यहै । परंतु अभावज्ञानकी उत्पत्तिमैं व्यापारहीन असाधारण कारण अनुपलब्धिहै । यातैं अभावज्ञानकी असाधारणकारणता अनुपलब्धिप्रमाणका लक्षणहै ॥

अनुपलब्धिप्रमाणके निरूपणका जिज्ञासूकूं उपयोग ॥ ३६ ॥

अनुपलब्धिनिरूपणका जिज्ञासूकूं यह उपयोगहैः-"नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक श्रुतिप्रपंचका त्रैकालिक अभाव कहैहैं । अनुभवसिद्धप्रपंचका त्रैकालिक निषेध बनै नहीं । यातैं प्रपंचका स्वरूपसैं निषेध नहीं करैहैं किंतु प्रपंच पारमार्थिक नहीं यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका त्रैकालिक अभाव श्रुति कहैहैं । इसरीतिसैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका अभाव श्रुतिसिद्धहै । औ अनुपलब्धिप्रमाणसैंभी सिद्धहै । जो पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंच होता तो जैसैं प्रपंचकी स्वरूपसैं

उपलब्धि होवैहै। तैसैं पारमार्थिक प्रपंचकी भी उपलब्धि होती औ स्वरूपसैं तो प्रपंचकी उपलब्धि होवैहै पारमार्थिकरूपतैं प्रपंचकी उपलब्धि होवै नहीं। यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका अभावहै। इसरीतिसैं प्रपंचाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवैहै। औरभी अनेक अभावनका ज्ञान जिज्ञासूकूं इष्टहै ताका हेतु अनुपलब्धिप्रमाणहै॥

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरेऽनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठः प्रकाशः समाप्तः।

अथ सप्तमप्रकाशप्रारंभः॥

वृत्तिभेद अनिर्वचनीयख्यातिमंडन ख्यातिखंडन औ स्वतःप्रमात्वप्रमाणनिरूपण औ उपादान (समवायि), असमवायि, निमित्तकारण अरु संयोगका लक्षण॥ १॥

ग्रंथके आरंभमैं वृत्ति किसकूं कहैहैं या वचनतैं वृत्तिके लक्षण औ भेदका प्रश्नहै। वृत्तिका कारण कौनहै यह वृत्तिकी सामग्रीका प्रश्नहै। तीसरा प्रश्न वृत्तिके प्रयोजनका है। तिनमैं वृत्तिके प्रयोजनका निरूपण अष्टम प्रकाशमैं करैंगे औ कारणसमुदायकूं सामग्री कहैहै। कारण दो प्रकारका होवैहै। एक उपादानकारण होवैहै द्वितीय निमित्तकारण होवैहै॥ जाके स्वरूपमैं कार्यकी स्थिति होवै तिस कारणकूं उपादान कारण कहैहैं। उपादानकारणकूं ही समवायिकारण कहैहैं। जैसैं घटका उपादानकारण कपालहै॥ औ कार्यसैं तटस्थ हुआ कार्यका जनक होवै सो निमित्तकारण कहियेहै। जैसैं घटके निमित्तकारण कुलालचक्रदंडादिक है। औ न्यायवैशेषिकमतमैं समवायि असमवायि निमित्तभेदसैं कारण तीनि प्रकारका कहैहैं। कार्यके समवायिकारणसैं संबंधी जो कार्यका जनक ताकूं असमवायिकारण कहैहैं। जैसैं घटका असमवायिकारण कपालसंयोगहै। पटका असमवायिकारण तंतुसंयोगहै। घटके समवायिकारण कपालसैं संबंधी औ घटका जनक कपालसंयोगहै तैसैं पटके समवायि कारण तंतुसैं संबंधी औ पटका जनक तंतुसंयोगहै। जो समवायिकारणके संयो-

गकूं कार्यका जनक नहीं मानै तौ वियुक्त कपालनतैं घटकी औ वियुक्ततंतुवांतैं पटकी उत्पत्ति हुई चाहिये । इसरीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं अवयवनका संयोग कारणहै । सो अवयवसंयोगमैं कार्यकी स्थिति नहीं किंतु अवयवनमैं कार्यद्रव्यकी स्थिति होवैहै । यातैं अवयवसंयोगमैं समवायिकारणता संभवै नहीं । औ कार्यसैं तटस्थ रहै नहीं किंतु अवयवसंयोग औ कार्यद्रव्य अवयवमैं समानाधिकरण होवैहै । यातैं निमित्तकारणताभी अवयवसंयोगमैं संभवै नहीं । यातैं समवायिकारण औ निमित्तकारणसैं विलक्षण असमवायिकारण होनेतैं कारण तीनि प्रकारका होवैहै । जैसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं अवयवसंयोग असमवायिकारणहै । तैसैं गुणकी उत्पत्ति मैं कहूं तौ गुण असमवायिकारणहै कहूं क्रिया असमवायिकारणहै ॥ तथाहिः—नीलतंतुसैं नीलपटकी उत्पत्ति होवैहै पीतकी नहीं। यातैं पटके नीलरूपमैं तंतुका नीलरूप कारणहै । तिस पटके नीलरूपका समवायिकारण पटहै तंतुका नीलरूपताका समवायिकारण नहीं । तैसैं तंतुका नीलरूप पटके नीलरूपसैं तटस्थ नहीं किंतु तंतुका नीलरूप तंतुमैं रहैहै औ पटका नीलरूपभी तंतुमैं रहैहै । यातैं दोनूं समानाधिकरण होनेतैं संबंधीहै। औ असंबंधीकूं तटस्थ कहैहै । यद्यपि पटका नीलरूप समवाय संबंधसैं पटमैं रहैहै।तथापि स्वसमवायिसमवायसंबंधसैं पटका नीलरूप तंतुमैं ही रहैहै । स्वकहिये पटका नीलरूपताका समवायि जो पट ताका समवाय तंतुमैंहै । इसरीतिसैं पटके नीलरूपसैं तंतुका नीलरूप समानाधिकरणहै । तंतुका नीलरूप साक्षात्संबंधसैं तंतुमैं है तिसमैं ही पटद्वारा परंपरासंबंधसैं पटका नीलरूपहै । यातैं पटके नीलरूपतैं तंतुका नीलरूप तटस्थ नहीं होनेतैं निमित्तकारण संभवै नहीं किंतु पटके नीलरूपका समवायिकारण जो पट ताका संबंधी तंतुका नीलरूपहै औ पटके नीलरूपका जनक होनेतैं ताका असमवायिकारण तंतुका नीलरूपहै । तंतुका नीलरूप औ पट दोनू तंतुमैं समवायसंबंधसैं रहैहैं । यातैं समानाधिकरणसंबंधसैं तंतुका नीलरूप पटका संबंधीहै । जैसैं कार्यके रूपका असमवायिकारण उपा-

दानका रूपहै। तैसैं रसगंधस्पर्शमैं भी जानना। औ सकलगुणनकी उत्पत्तिमैं जिसरीतिसैं गुणका क्रिया असमवायिकारणहै। सो न्यायवैशेषिकग्रंथनमैं स्पष्टहै। अनुपयोगी जानिकै विस्तारभयतैं लिखा नहीं॥

संयोगका प्रसंग अनेक स्थानमैं आवैहै। यातैं गुणकी उत्पत्तिमैं क्रिया-असमवायिकारणका उदाहरण कहनैकूं संयोगकी उत्पत्ति कहैहैं:—संयोग दो प्रकारका होवैहै। एक कर्मजसंयोगहै द्वितीय संयोगज संयोगहै। जाकी उत्पत्तिमैं क्रिया असमवायिकारण होवै सो कर्मजसंयोग कहियेहै। संयोगरूप असमवायिकारणतैं होवै सो संयोगज संयोग कहियेहैं। कर्मजसंयोगभी अन्यतरकर्मज औ उभयकर्मज भेदतैं दो प्रकारकाहै। संयोगके आश्रय दो होवैहैं। तिनमैं एकही क्रियासैं संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहियेहै। जैसैं पक्षीकी क्रियातैं वृक्ष पक्षीका संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहियेहै। तहां वृक्ष औ पक्षी समवायकारणहै औ संयोगके समवायिकारण पक्षीमैं ताकी क्रिया-का समवायसंबंध होनेतैं पक्षीरूप समवायिकारणकी संबंधिनी औ पक्षी वृक्षके संयोगकी जनक पक्षीकी क्रियाहै। यातैं पक्षिवृक्षके संयोगकी असमवायिकारण पक्षीकी क्रियाहै। यह अन्यतरकर्मजसंयोगका उदाहरणहै॥ मेषद्वयकी क्रियातैं जो मेषद्वयका संयोग होवै सो उभय-कर्मजसंयोगहै। मेषद्वयके संयोगमैं दोनूं मेष समवायिकारणहैं। औ तिनकी क्रिया असमवायिकारणहै। जहां हस्तकी क्रियातैं हस्ततरुका संयोग होवै तहां हस्ततरु परस्पर संयुक्तहै। इस व्यवहारकी नांई कायतरु संयुक्तहैं ऐसा व्यवहारभी होवैहै। संयुक्त कहिये संयोगवालेहैं। तिस स्थानमैं हस्ततरुके संयोगमैं तो हस्तकी क्रिया असमवायिकारणहै औ काय वा तरुमैं क्रिया होवै तौ कायतरुका संयोगभी क्रियाजन्य संभवै। औ तरुकी नांई कायमैंभी क्रियाहै नहीं। काहेतैं सकल अव-यवनमैं क्रिया होवै जहां अवयवीकी क्रिया होवैहै। हस्तसैं इतर सकल अवयव निश्चल होतैं कायमैं क्रियाकथन संभवै नहीं। यातैं काय-

तरुके संयोगमैं क्रिया असमवायिकारणहै यह कथन संभवै नहीं । किंतु अन्यतरकर्मज हस्ततरुसंयोगही कायतरुसंयोगका असमवायिकारणहै । काहेतैं कायतरुसंयोगका समवायिकारण जो काय तामैं स्वसमवायिसमवेतत्वसंबंधसैं संबंधी हस्ततरुसंयोगहै । औ कायतरुसंयोगका जनकहै । यातैं असमवायिकारणहै । स्वकहिये हस्ततरुसंयोग ताका समवायि हस्तहै । तामैं समवेत जो काय तिसकै समवेतत्वधर्मही संबंधहै । इसरीतिके परंपरासंबंधका सामानाधिकरण्यसंबंधमैं पर्यवसान होवैहै । एक अधिकरणमैं वर्त्तनेकूं सामानाधिकरण्य कहैहैं । जिनकी एकअधिकरणमैं वृत्ति होवै तिनकूं समानाधिकरण कहैहैं । इहां हस्ततरुसंयोग समवायसंबंधसैं हस्तमैं रहैहै । औ कायभी समवायसंबंधसैं हस्तमैं रहैहै यातैं दोनूं समानाधिकरणहैं । तिनका सामानाधिकरण्यसंबंधहै । इहां काय औ संयोग हस्तमैं साक्षात्संबंधसैं रहैहै । यातैं समानाधिकरणहैं । तैसैं एक साक्षात्संबंधसैं रहै औ दूजा परंपरासंबंधसैं रहै सोभी समानाधिकरण कहियेहैं । औ तिनका सामानाधिकरण्यसंबंध कहियेहै । यह प्रत्यक्षप्रमाणमैं कह्याहै ॥ हस्ततरुसंयोगकी प्रतीति होयेंही कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवैहै । औ हस्ततरुके संयोगकूं नहीं देखै तिसकूं कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवै नहीं । यातैं कायतरुसंयोगका हस्ततरुसंयोग कारणहै । यह संयोगजसंयोगका उदाहरणहै । इसी संयोगकूं कारणाकारणसंयोगजन्यकार्याकार्यसंयोग कहैहैं । इहां दो संयोगहैं । एक हस्ततरुका संयोगहै सो हेतुसंयोगहै । औ कायतरुका संयोग फलसंयोगहै । या स्थानमैं कारणशब्दसैं फलसंयोगके आश्रयके समवायिकारणका ग्रहणहै । यातैं फलसंयोगके आश्रय कायतरु दो हैं तिनमैं कायका समवायिकारण हस्तहै यातैं कारणशब्दसैं हस्तका ग्रहणहै । अकारणशब्दसैं तरुका ग्रहणहै । काहेतैं कायका वा तरुका समवायिकारण तरु नहीं होनेतैं अकारणहै । तैसैं हेतुसंयोगके आश्रयतैं जन्यका कार्यशब्दसैं ग्रहणहै ।

हेतुसंयोगके आश्रयतैं अजन्यका अकार्यशब्दसैं ग्रहणहै। हेतुसंयोगके आश्रय हस्त औ तरुहैं तिनमैं हस्तजन्य जो काय सो कार्यहै। औ हस्तसैं तथा तरुसैं अजन्य जो तरु सो अकार्यहै। इसरीतिसैं कारण जो हस्त औ अकारण तरु तिनके संयोगतैं कार्य जो काय औ अकार्य तरु तिनका संयोग उपजैहै। यातैं इस संयोगकूं कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग कहैहैं। संयोगजसंयोग इसी प्रकारका होवैहै। अन्यथा कर्मजसंयोगही है। जहां कपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै औ कपालसंयोगतैं कपालाकाशका संयोग होवै तहांभी कर्मजहीसंयोग है। संयोगजसंयोग नहीं। काहेतैं जिस कपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै तिस कपालकर्मतैंही कपालआकाशका संयोग उपजैहै। कपालद्वयका संयोग औ कपालआकाशका संयोग दोनूं एकक्षणमैं होवैहैं। तिनका परस्पर कार्यकारणभाव संभवै नहीं। यातैं कपालद्वयके संयोगकी नांई कपालआकाशसंयोगभी कपालकी क्रियातैंही उपजनैतैं कर्मजही संयोगहै। उक्तप्रकारसैं कारणाकारणसंयोगजन्यकार्याकार्यसंयोग औ अन्यतरकर्मजसंयोग तैसैं उभयकर्मजसंयोग भेदतैं तीनिही प्रकारका संयोगहै। औ कोई ग्रंथकार सहजसंयोगभी मानैहैं। जैसैं सुवर्णमैं पीतरूप औ गुरुत्वके आश्रय पार्थिवभागका औ अग्निसंयोगसैं जाका नाश होवै नहीं ऐसे द्रव्यत्वके आश्रयतैं तैजसभागका सहजसंयोगहै। संयोगीके जन्मके साथ उपजै ताकूं सहजसंयोग कहैहैं। सुवर्णकूं केवल पार्थिव कहै तौ जंतुआदिक पार्थिवके द्रव्यत्वका अग्निसंयोगतैं नाश होनैतैं सुवर्णके द्रव्यत्वका अग्निसंयोगतैं नाश हुआ चाहिये। केवल तैजस मानैं तौ पीतरूप औ गुरुत्वका अभाव चाहिये यातैं सुवर्णमैं तैजस पार्थिवभागसंयुक्त है। औ मीमांसक नित्यसंयोगभी मानैहैं॥

इसरीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं असमवायिकारण अवयवसंयोगहै। औ गुणकी उत्पत्तिमैं कहुं गुण कहुं क्रिया असमवायिकारण है। सम-

वायिकारण औ निमित्तकारणके लक्षणतामैं संभवै नहीं । किंतु समवायकारणमैं संबंधी जो कार्यका जनक सो तीसरा असमवायिकारण होनेतैं समवायि असमवायि निमित्त भेदसैं कारण तीनि प्रकारकाहैं । यह नैयायिकवैशेषिकके अनुसारि ग्रंथनमैं लिखाहै ॥

उभय कारणके अंगीकारपूर्वक तीसरै असमवायिकारणका खंडन ॥ २ ॥

तथापि न्यायवैशेषिकभिन्नमतमैं उपादानकारण निमित्तकारण भेदसैं दो प्रकारकाही कारण मानैहैं । जाकूं नैयायिक असमवायि कारण कहैहैं । ताकूंभी निमित्तकारणही कहैहैं । औ जो पूर्व कहा निमित्तकारणका लक्षण असमवायि कारणमैं नहींहै । ताका यह समाधान है:-- कार्यसैं तटस्थ होवै औ कार्यका जनक होवै यह निमित्तकारणका लक्षण त्रिविधकारणवादीकी रीतिसैं कहाहै ॥ द्विविधकारणवादीकी रीतिसैं तो उपादानकारणतैं भिन्न जो कारण सो निमित्तकारण कहियेहैं । सो निमित्तकारण अनेकविधहै । कोई तौ कार्यके उपादानमैं समवेतहै । जैसैं घटका निमित्तकारण कपालसंयोगहै । सो घटके उपादानकारण कपालमैं समवेतहै । औ कोई निमित्तकारणही कार्यके उपादानमैं समवेतहै । जैसैं पटके रूपका निमित्तकारण तंतुका रूपहै । सो पटरूपका उपादान जो पट ताके उपादान तंतुमैं समवेतहै । तैसैं कोई निमित्तकारण कर्तारूप चेतनहै सो स्वतंत्रहै । जैसैं घटका निमित्तकारण कुलालहै । औ कोई निमित्तकारण जड है । सो कर्ताके व्यापारके अधीनहै । जैसैं घटके कारण दंडादिकहैं । इसरीतिसैं निमित्तकारणके अनेक भेदहैं । किंचित् विलक्षणतासैं असमवायिकारणता पृथक् मानैं तौ घटके कारण कपालसंयोगमैं औ घटरूपके कारण कपालरूपमैंभी कारणताका भेद माना चाहिये । काहेतैं घटका कारण कपालसंयोग तौ कार्यके उपादानमैं समवेतहै । औ घटरूपका कारण

कपालरूप कार्यके उपादानके उपादानमैं समवेतहै । इसरीतिसैं विलक्षण कारणहैं । तौभी इन दोनूंकूं असमवायिकारणही नैयायिक कहैहैं । तिनमैं परस्पर विलक्षणकारणता मानै नहीं । तैसैं चेतन जड भेदसैं विलक्षणता हुयेंभी निमित्तकारणही तिनकूं कहैहैं । परस्पर विलक्षणकारणता तिनमैंभी मानैं नहीं । औरभी निमित्तकारणमैं अनेक विलक्षणताहै । कोई तो कार्य कालवृत्ति होवैहै । औ कोई कार्य कालसैं पूर्वकालवृत्ति होवैहैं । जैसैं जलपात्रके सन्निधानसैं भित्तिमैं सूर्यकी प्रभाका प्रतिबिंब होवैहै । तामैं सन्निहित जलपात्र निमित्तकारणहै । ताके अपसारणतैं प्रतिबिंबका अभाव होनैतैं सन्निहित जलपात्र कार्य कालवृत्ति निमित्तकारणहै । औ प्रत्यक्षज्ञानमैं विषय निमित्तकारण होवैहै । सोभी कार्य कालवृत्ति होवैहै । औ दंडादिक घटके निमित्तकारण हैं । सो कार्य कालसैं पूर्वकालमैं वृत्ति निमित्तकारण हैं । इसरीतिसैं निमित्तकारणमैं औ असमवायिकारणमैं अवांतर अनेक भेद होनेतैंभी समवायिकारणसैं भिन्नमैं द्विविध कारणताही मानी है । कहूं असमवायिकारणताहै । कहूं निमित्तकारणताहै । तैसैं समवायिकारणसैं भिन्न सकलकारणमैं एकविधकारणताही मानी चाहिये । ता समवायिकारणसैं भिन्न कारणकूं असमवायिकारण कहो अथवा निमित्तकारण कहो समवायिकारणसंबंधित्व असंबंधित्व अवांतर भेदसैं पृथक् संज्ञाकरण निष्प्रयोजनहै । यातैं समवायिकारण निमित्तकारण-भेदसैं कारण दो प्रकारकाहै ॥

औ जो ऐसैं कहैः--जैसैं असमवायिकारण निमित्तकारणकी पृथक् संज्ञा निष्प्रयोजन है । तैसैं समवायिकारण औ निमित्तकारणकी परस्पर विलक्षणताज्ञानसैंभी पुरुषार्थप्राप्ति होवै नहीं । औ लोकमैंभी कारणतामात्रही प्रसिद्धहै । समवायिकारणता निमित्तकारणता प्रसिद्ध नहीं । यातैं लोकव्यवहारज्ञानका भी द्विविधकारणतानिरूपणका प्रयोजन नहीं किंतु कार्यकारणभावका व्यवहार लोकमैं होवैहै । यातैं जिसके होनेतैं

कार्यकी उत्पत्ति होवै औ जिसके नहीं होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति नहीं होवै ऐसा जो कार्यके अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति सो कारण कहियेहै । इसरीतिसैं कारणका साधारण लक्षणही कह्या चाहिये । ताके भेदद्वयका निरूपणभी निष्प्रयोजनहै । या शंकाका यह समाधानहैः—यद्यपि कारणके भेदद्वयनिरूपणसैं पुरुषार्थसिद्धि वा लोकव्यवहारसिद्धि प्रयोजन नहींहै । तथापि पुरुषार्थका हेतु अद्वैतज्ञानहै ताका उपयोगी द्विविधकारणनिरूपणहै । तथाहिः—सर्व जगत्का कारण ब्रह्महै । औ कारणसैं अभिन्न कार्य होवैहै । यातैं सकल जगत् ब्रह्महै । तासैं पृथक् नहीं । इसकूं सुनिके जिज्ञासूकै ऐसी शंका होवैहैः—कारणसैं पृथक् कार्य नहीं होवै तौ दंडकुलालादिकनतैंभी घट पृथक् नहीं चाहिये । ताका यह समाधानहैः—उपादान औ निमित्त भेदसैं कारण दो प्रकारका होवैहै । तिनमैं उपादानकारणसैं अभिन्न कार्य होवैहै । जैसैं मृत्पिंडसैं अभिन्न घटहै औ सुवर्णसैं अभिन्न कटककुंडलादिकहैं । लोहसैं अभिन्न नखनिकृंतन क्षुरादिकहैं । औ निमित्तकारणसैं अभिन्न कार्य होवै नहीं किंतु भिन्न होवैहै । तैसैं ब्रह्मभी जगत्का उपादान कारणहै यातैं सकल जगत् ब्रह्महीहै । तासैं भिन्न नहीं । इसरीतिसैं कारणके भेदद्वयका निरूपण अद्वैतज्ञानका उपयोगीहै । अन्यविधकारणकी परस्परविलक्षणतानिरूपण अफलहै । यातैं तत्वज्ञानोपयोगिपदार्थनिरूपणके ग्रंथनमैं कारणका तृतीयभेदनिरूपण असंगतहै ॥

न्यायवैशेषिकअनुसारी ग्रंथनमैं तत्वज्ञानोपयोगिपदार्थनिरूपणकी प्रतिज्ञा करिकै तत्वज्ञानमैं अत्यंत अनुपयोगि पदार्थनका विस्तारसैं निरूपणतैं प्रतिज्ञाभंग होवैहै । जो इसरीतिसैं तार्किकहैः—तत्वज्ञानका हेतु मननहै "आत्मा इतरपदार्थभिन्नः आत्मत्वात् । यो न इतरभिन्नः किंतु इतरः स नात्मा यथा घटः" इस व्यतिरेकिअनुमानतैं आत्मामैं इतर भेदका अनुमितिज्ञान होवै सो मनन कहियेहै । औ इतरपदार्थनके ज्ञानविना आत्मामैं इतर भेदका ज्ञान संभवै नहीं । काहेतैं प्रतियोगिज्ञानविना भेदज्ञान होवै

नहीं। यातैं आत्मामैं इतरभेदकी अनुमितिरूप मननका उपयोगी इतर-पदार्थनका निरूपणभी तत्वज्ञानका उपयोगीहै। सो संभवै नहीं। काहेतैं। श्रुतअर्थके निश्चयके अनुकूल प्रमेयसंदेहनिवर्तकयुक्तिचिंतनकूं मनन कहेहैं। औ भेदज्ञानसैं अनर्थ होवैहै "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि वाक्यनतैं अभेदसैं सकलवेदका तात्पर्य है "द्वितीयाद्वै भयं भवति। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति। य इह नानेव पश्यति" इत्यादि वाक्यनतैं भेदज्ञानकी निंदा करी है। यातैं भेदज्ञानकूं साक्षात् वा तत्वज्ञानद्वारा पुरुषार्थजनकता संभवै नहीं। औ मननपदसैंभी आत्मासैं इतरभेदकी प्रतीति होवै नहीं। मननपदका चिंतनमात्र अर्थहै। वाक्यांतरके अनुरोधसैं अभेदचिंतनमैं मननशब्दका पर्यवसान होवैहै। किसी प्रकारसैं आत्मासैं इतर भेद मनन शब्दका अर्थ संभवै नहीं। किंचः—इतर पदार्थनके ज्ञानसैं ही जो पुरुषार्थसाधन तत्वज्ञानकी प्राप्ति होवै तौ सकल पुरुषनकूं तत्वज्ञानकी प्राप्ति हुयी चाहिये। अथवा किसीकूं तत्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होवैगी। तथाहिः—जो इतर पदार्थनका सामान्य ज्ञान अपेक्षित होवै तौ सामान्यज्ञान सर्वपुरुषनकूंहै। यातैं इतरज्ञानपूर्वक इतरभेदज्ञानतैं सर्वकूं तत्वज्ञान हुआ चाहिये॥ औ सर्वपदार्थनका असाधारणधर्मस्वरूपविशेषरूपतैं इतरज्ञान अपेक्षित होवै तौ सर्वज्ञ ईश्वरविना असाधारणधर्मतैं सकल इतरका किसीकूं ज्ञान संभवै नहीं। यातैं इतरज्ञानके असंभवतैं इतरभेदज्ञानके अभावतैं तत्वज्ञान किसीकूं नहीं होवैगा। यातैं प्रमाणादिकनीरूपणविना बहुत पदार्थनका निरूपण निष्प्रयोजन होनैतैं कारणमैं तृतीयभेदनिरूपण अनपेक्षितहै॥

औ जो तार्किक कहेहैंः—भावकार्यकी उत्पत्ति त्रिविधकारणसैं होवैहै। पंचविध अभावहै। तिनमैं प्रागभाव तो अनादि सांतहै। यातैं ताका नाश तो होवैहै उत्पत्ति होवै नहीं। अन्योन्याभाव अत्यंताभाव अनादि अनंतहै। यातैं तिनकीभी उत्पत्ति होवै नहीं। सामायिकाभाव सादि सांतहै। ताके उत्पत्ति नाश दोनूं होवैहैं। प्रध्वंसाभाव अनंत

सादिहै । यातैं ताका नाश तो होवै नहीं उत्पत्ति होवैहै । इसरीतिसैं दो अभावकी उत्पत्ति होवैहै । यातैं दोनूं कार्यहैं । तिनके समवायिकारण असमवायिकारण तो संभवै नहीं । काहेतैं जामैं समवायसंबंधसैं कार्य उपजै सो समवायिकारण कहियेहै । किसीमैं समवायसंबंधसैं अभाव रहै नहीं । यातैं ताका समवायिकारण संभवै नहीं । औ समवायिकारणमैं संबंधी जो कार्यका जनक सो असमवायिकारण कहियेहै । समवायिकारणके अभावतैं तामैं संबंधी जनकके असंभवतैं असमवायिकारणभी अभावका संभवै नहीं । यातैं केवल निमित्तकारणसैं सामयिकाभाव औ प्रध्वंसाभाव उपजैहैं । भूतलादिदेशमैं घटके सामयिकाभावका भूतलादिदेशतैं घटका अपसारण निमित्त कारणहै । घटके प्रध्वंसाभावका निमित्तकारण घटहै । तैसैं घटसैं मुद्गरादिकनका संयोगभी घटध्वंसका निमित्तकारणहै । इसरीतिसैं अभावकार्य तो निमित्तकारणमात्रजन्यहै । तथापि यावत् भावकार्य त्रिविधकारणजन्यहै यह नियमहै॥ इस तार्किकवचनका सर्गके आदिकालमैं जो ईश्वरकी चिकीर्षासैं परमाणुमैं क्रिया होवै तामैं व्यभिचार है । काहेतैं तिस परमाणुकी क्रियाका परमाणु समवायिकारणहै । औ ईश्वरेच्छादिक निमित्तकारणहैं । परमाणुमैं संबंधी कोई क्रियाका जनक होवै तौ असमवायिकारण होवै सो परमाणुमैं संबंधी तिस क्रियाका जनक कोई है नहीं । यातैं सर्गारंभमैं परमाणुकी क्रिया कारणद्वयजन्यहै । कारणत्रयजन्य नहीं । यातैं तार्किकका उक्तनियम संभवै नहीं औ सिद्धांतमतमैं तौ यावत् भावकार्य उपादाननिमित्तकारणजन्यहै यह नियमहै । ताका कहूंभी व्यभिचार नहीं । जहां कारणत्रयजन्य कार्य कहैहैं तहांभी तार्किकअभिमत असमवायिकारणभी निमित्तकारणहीहै । यातैं सकल भावकार्यकूं द्विविधकारणजन्यताहै । इस रीतिसैं उपादान औ निमित्तभेदतैं कारण दो प्रकारका होवैहै । साधारण असाधारण भेदसैंभी कारणके दो भेद कहैहैं । ईश्वरादिक नव साधारणकारणहैं । तिनसैं भिन्न घटादिकनके कपालादिक असाधार-

णकारणहैं । तिनमैंभी कोई निमित्तकारणहै कोई उपादान कारणहै । उपादानकारण निमित्तकारणसैं भिन्न कारण अलीकहै ॥

वृत्तिज्ञानका उपादाननिमित्तकारण औ सामान्यलक्षण ॥ ३ ॥

अंतःकरणकी ज्ञानरूपवृत्तिका उपादानकारण अंतःकरणहैं । औ प्रत्यक्षादिक प्रमाण तथा इंद्रियसंयोगादिक व्यापार निमित्तकारण हैं । औ ईश्वरके ज्ञानरूपवृत्तिका उपादानकारण मायाहै । अदृष्टादिक निमित्तकारणहैं । भ्रमवृत्तिका उपादानकारण अविद्याहै । निमित्तकारण दोषहै । यह वार्ता ख्यातिनिरूपणमैं स्पष्ट होवैगी । इसरीतिसैं वृत्तिके कारण जाननें ॥

वृत्तिका लक्षण ग्रंथके आरंभमैं कहाहै । विषय प्रकाशका हेतु अंतःकरण औ अविद्याका परिणाम वृत्ति कहियेहै । यह वृत्तिका लक्षण कहाहै । औ कितने ग्रंथनमैं अज्ञाननाशकपरिणाम वृत्ति कहेहैं । औ परोक्षज्ञानसैंभी असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश होवैहै । अथवा विषयचेतनस्थ अज्ञानका नाश तो अपरोक्षज्ञानविना होवै नहीं । प्रमातृचेतनस्थअज्ञानका नाश परोक्षज्ञानसैंभी होवैहै । यातैं परोक्षवृत्तिमैं उक्तलक्षणकी व्याप्ति नहीं । तथापि सुखदुःखके ज्ञानरूपवृत्तिमैं औ मायावृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानमैं तथा शुक्तिरजतादिगोचरभ्रमरूपअविद्यावृत्तिमैं उक्तलक्षणकी व्याप्तिहै । काहेतैं प्रथम अज्ञातसुखादिक उपजैं पाछै तिनका ज्ञान होवै तौ सुखादिज्ञानतैं तिनके अज्ञानका नाश संभवै सो अज्ञातसुखादिकहै नहीं । किंतु सुखादिक औ तिनका ज्ञान एककालमैं उपजैहैं । यातैं अज्ञातसुखादिकनके अभावतैं सुखादिगोचरवृत्तिसैं अज्ञानका नाश संभवै नहीं । तैसैं ईश्वरकूं असाधारणरूपतैं सकल पदार्थ सदा प्रत्यक्ष प्रतीत होवैहैं । यातैं अज्ञानके अभावतैं मायाकी वृतिरूप ज्ञानतैंभी अज्ञानका नाश संभवै नहीं । शुक्तिरजतादिकमिथ्यापदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकीभी एक कालमैं उत्पत्ति होवैहै यातैं भ्रमवृत्तिसैंभी अज्ञानका नाश होवै नहीं । तैसैं धारा-

वाहिकवृत्ति होवै। तहांभी उक्तलक्षणकी द्वितीयादि वृत्तिमैं अव्याप्ति है। काहेतैं ज्ञानधारा होवै तहां प्रथम ज्ञानसैं अज्ञानका नाश हुयें द्वितीयादिक ज्ञानकूं अज्ञानकी नाशकता संभवै नहीं। यातैं प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहैहैं । याका भाव यहहैः— अस्तिव्यवहारका हेतु जो अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम सो वृत्ति कहियेहै । प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहेभी अज्ञातपदार्थगोचरवृत्तिमैंही प्रकाशकताहै । औ अनावृत्तगोचरवृत्तिमैं प्रकाशकता है नहीं । काहेतैं अनावृत्तचेतनके संबंधसैंही विषयप्रकाशके संभवतैं वृत्तिमैं प्रकाशकताकल्पना अयोग्यहै। यातैं वृत्तिमैं अज्ञाननाशकतासैं विना अन्यविधप्रकाशकताके असंभवतैं द्वितीयलक्षणकीभी प्रथमलक्षणकी नांई सुखादिगोचरवृत्तिमैं अव्याप्ति होवैगी यातैं अस्तिव्यवहारका हेतु अविद्या अंतःकरणका परिणाम वृत्ति कहियेहैं । परोक्षवृत्तिमैं भी अस्तिव्यवहारकी हेतुता स्पष्टहै । घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्तिकूं घटादिज्ञान कहैहैं । यद्यपि अद्वैतसिद्धांतमैं वृत्तिअवच्छिन्नचेतनकूं ज्ञान कहैहैं । अबाधितवृत्तिअवच्छिन्नचेतनकूं प्रमाज्ञान कहैहैं। बाधित जो रज्जुसर्पादिक तद्गोचरवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं अप्रमाज्ञान कहैहैं। तथापि चेतनमैं ज्ञानशब्दका प्रयोग तथा प्रमाशब्दका औ अप्रमाशब्दका प्रयोग वृत्तिसंबंधतैं होवैहै यातैं वृत्तीकूं भी बहुतस्थानमैं ज्ञान कहैहैं । इसरीतिसैं प्रमा अप्रमा भेदसैं दोप्रकारकी वृत्ति कही ॥

प्रत्यक्षके लक्षणसहित प्रमा—अप्रमा-
रूपवृत्तिज्ञानका भेद ॥ ४ ॥

अप्रमाभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दोप्रकारकी कही। ईश्वरका ज्ञान सुखादिगोचरज्ञान यथार्थ अप्रमाहै। शुक्तिरजतादिक भ्रम अयथार्थ अप्रमाहै। जो प्रमाणजन्य यथार्थ ज्ञान होवै सो प्रमा होवैहै। ईश्वरज्ञानादिक प्रमाणजन्य नहीं। यातैं प्रमा नहीं । दोषजन्य नहीं यातैं भ्रमभी नहीं। औ बहुत ग्रंथनमैं तौ प्रमाका अन्यही लक्षण कहा है। ताके

अनुसार तो ईश्वर ज्ञानादिकभी यथार्थ ज्ञान प्रमाहैं। परंतु यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति दो प्रकारकीहै। सो दोनूं प्रकारकी प्रमा नहींहैं। तिनके मतमैं प्रमाका यह लक्षणहै॥ अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान सो प्रमा कहियेहै। शुक्तिरजतादिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न हैं। अबाधित अर्थकूं विषय करै नहीं किंतु बाधित अर्थकूं विषय करैहै। यातैं प्रमा नहीं।अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला स्मृतिज्ञानभीहै। औ स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहार है नहीं। यातैं स्मृतिभिन्न जो अबाधित अर्थगोचरज्ञान सो प्रमा कहियेहै। यद्यपि अन्य यथार्थज्ञानकी नांई यथार्थस्मृतिभी संवादि प्रवृत्तिकी जनक होनेतैं स्मृति साधारणही प्रमाका लक्षण चाहिये॥ तथापि संवादि प्रवृत्तिका उपयोगि प्रमात्व स्मृतिमैंभीहै। सो प्रवृत्तिका उपयोगिप्रमात्व तो अबाधित अर्थगोचरत्वरूपहै। प्रमाव्यवहारकी उपयोगिप्रमात्व स्मृतिमैं नहींहै। काहेतैं लौकिकशास्त्रीय भेदसैं व्यवहारके दो भेदहैं। शास्त्रसैं बाह्य जो लोक शब्दप्रयोग करैं सो लौकिकव्यवहार कहियेहै। शास्त्रकी परिभाषासैं जो शब्द प्रयोग सो शास्त्रीयव्यवहार कहियेहैं। शास्त्रसैं बाह्य तो कोई प्रमाव्यवहार करै नहीं। औ कोई पंडित तथा शब्दप्रयोग करैहै तौ शास्त्रकी परिभाषाके संस्कारतैं करैहै। यातैं केवल शास्त्रीय प्रमाव्यवहारहै। औ प्राचीन ग्रंथकारोंनै स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ ज्ञानमैंही प्रमाव्यवहार कियाहै। यातैं स्मृतिसैं व्यावृत्तही प्रमाका लक्षण कह्या चाहिये "यथार्थानुभवः प्रमा" यह प्रमाका लक्षण प्राचीन आचार्योंनैं लिख्याहै। स्मृतिभिन्न ज्ञानकूं अनुभव कहैहैं। यातैं स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं। औ प्रत्यक्षादि ज्ञानोंसैं विलक्षण स्मृति ज्ञानहै। प्रत्यक्षादि सकल ज्ञानोंमैं अनुभवत्वहै। स्मृतिमैं नहींहै। यातैं अनुभवत्वके सत्त्व असत्त्वतैं प्रत्यक्षादिक औ स्मृति परस्पर विजातीयहै। जैसैं प्रत्यक्ष अनुमिति शाब्दादि ज्ञानोंमैं प्रत्यक्षत्व अनुमितित्व शाब्दत्वादिक विलक्षण धर्म होनेतैं प्रत्यक्षादि ज्ञान परस्पर विजातीयहैं। विजातीय प्रमाके करणरूप प्रमाणभी प्रत्यक्ष

अनुमान शब्दादिक भिन्नहैं । तैसैं सकल अनुभवसैं विजातीय स्मृतिहै । ताका कारण अनुभव है । सो किसी प्रमाका करण नहीं । यातैं प्रमाण नहीं । यद्यपि व्याप्तिका प्रत्यक्ष अनुमितिका करण होनेतैं अनुमान प्रमाण है । तैसैं पदका प्रत्यक्ष शब्दप्रमाण । गवयमैं गोसादृश्यका प्रत्यक्ष उपमान प्रमाणहै । औ प्रत्यक्षज्ञानभी अनुभवकाही विशेषहै । यातैं अनुभवप्रमाण नहीं । यह कथन असंगतहैः--तथापि व्याप्तिज्ञानत्वरूपतैं व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु है । अनुभवत्वरूपतैं व्याप्ति ज्ञान अनुमितिका हेतु नहीं । तैसैं पद प्रत्यक्ष औ सादृश्य ज्ञानभी अनुभवत्वरूपतैं शाब्दीप्रमा औ उपमिति प्रमाके हेतु नहीं । स्मृतिज्ञानमैं अनुभवत्वरूपतैं पूर्वानुभव स्मृतिका हेतु है । यातैं प्रमाण नहीं । जो स्मृतिज्ञानकूंभी प्रमा कहैं तौ विजातीय प्रमाका करण पृथक् प्रमाण होवैहै । यातैं न्यायशास्त्रमैं तो अनुभवनाम पंचम प्रमाण कह्या चाहिये । भाट्ट औ वेदांत मतमैं सप्तम प्रमाण कह्या चाहिये । यातैं सकलग्रंथकारनकूं स्मृतिमैं प्रमा व्यवहार इष्ट नहीं औ जो कोई यथार्थज्ञानमात्रमैं प्रमाव्यवहार मानै तौ तिसके अनुसार प्रमाके लक्षणमैं स्मृतिभिन्न ऐसा निवेश नहीं करना अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान प्रमा कहियेहै । भ्रमअनुभवजन्य अयथार्थ स्मृति तो बाधित अर्थकूं विषय करैहै । यातैं तामैं अतिव्याप्ति नहीं । औ यथार्थ अनुभवजन्यस्मृतिमैं लक्षण जावै तहां प्रमाव्यवहार इष्टहै । यातैं अतिव्याप्ति नहीं । अलक्ष्यमैं लक्षणका गमन होवै तौ अतिव्याप्ति होवै । यथार्थस्मृतिभी लक्ष्यहै यातैं अतिव्याप्ति नहीं । या मतके अनुसार यथार्थ अयथार्थ भेदसैं वृत्ति दो प्रकारकीहै । यथार्थकूं प्रमा कहेहै । अयथार्थकूं अप्रमा कहेहैं । यामतमैं प्रमाके सप्तभेदहैंः—प्रत्यक्ष १ अनुमिति २ शाब्दी ३ उपमिति ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ ये षट् भेदहैं । तैसैं यथार्थ स्मृतिभी प्रमाका सप्तम भेदहैं । परंतु सकलग्रंथनकी तो यह मर्यादाहै । स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार नहीं । यातैं प्रत्यक्षादि भेदतैं प्रमारूपवृत्ति षट् प्रकारकीहै बाह्यआंतरभेदसैं प्रत्यक्ष प्रमा दो प्रकारकीहैं । अबाधि-

तबाह्यपदार्थगोचरवृत्ति बाह्यप्रत्यक्षप्रमा कहियेहै। औ श्रोत्रादिपंच-इंद्रियतैं पंचविध बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा होवैहै। कहूं शब्दसैंभी बाह्यगोचर अपरोक्षवृत्ति होवैहै जैसे "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं स्थूल शरीरका अपरोक्ष ज्ञानहै इसरीतिसैं कारणभेदतैं बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके षट्भेद हैं॥ औ कितनैं ग्रंथकार अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभाव गोचरवृत्ति-कूंभी अपरोक्षवृत्ति कहैहैं। तिनके मतमैं श्रोत्रादि पंचइंद्रिय औ शब्द तथा अनुपलब्धि ये सप्त बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके करणहैं यातैं बाह्यप्रत्यक्ष-प्रमा सप्तविधहै। परंतु यह अर्थ पूर्व लिख्याहै। धर्माधर्मकी नांई प्रत्यक्ष योग्यता अभावमैं नहीं। यातैं वृत्तिअवच्छिन्न चेतनसैं अभावावच्छिन्न-चेतनका अभेद हुयेंभी अभावगोचरवृत्ति अपरोक्ष नहींहै किंतु अनुमि-त्यादिकनकी नांई अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावगोचरवृत्ति प्रत्यक्ष-वृत्तिसैं विलक्षणहै। यातैं बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके षट् भेदहैं सप्त नहीं॥ आंतर-प्रत्यक्षप्रमाभी दो प्रकारकीहै। एक आत्मगोचरहै। दूसरी अनात्म-गोचरहै। आत्मगोचरभी दो प्रकारकीहै। एक शुद्धात्मगोचरहै। दूसरी विशिष्टात्मगोचरहै। शुद्धात्मगोचरभी दो प्रकारकीहै। एकतो ब्रह्मा-गोचरहै। दूसरी ब्रह्मगोचरहै। त्वंपदार्थबोधक वेदांतवाक्यसैं "शुद्धः प्रकाशोहम्" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै। ता वृत्तिदेशमैंही अंतःकरण-उपहित शुद्ध चेतनहै। यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतन औ विषयावच्छिन्न-चेतनका अभेद होनेतैं वह वृत्ति अपरोक्षहै। औ ता वृत्तिके विषय शुद्ध-चेतनमैं ब्रह्मताभीहै। परंतु ब्रह्माकारवृत्ति हुई नहीं। काहेतैं अवांतर-वाक्यसैं वृत्ति हुईहै। महावाक्यसैं होती तो ब्रह्माकारभी होती। काहेतैं शब्दजन्यज्ञानका यह स्वभावहैः—सन्निहित पदार्थकूं जिस रूपतैं शब्दबोध न करै तिस रूपकूंही विषय करैहै औ जिसरूपतैं शब्द कहैंनहीं तिस रूपतैं शब्दजन्यज्ञान विषय करै नहीं। जैसैं दशम पुरुषकूं "दश-मोस्ति" इसरीतिसैं कहै तब "दशमोहम्" इसरीतिसैं श्रोताकूं ज्ञान होवै नहीं। जैसैं दशममैं आत्मताहै तथापि आत्मताबोधक शब्दाभावतैं

आत्मताका ज्ञान होवै नहीं तैसैं आत्मामैं ब्रह्मता सदाहै । तौभी ब्रह्मता-बोधक शब्दाभावतैं ज्ञान होवै नहीं । यातैं उक्तवृत्ति ब्रह्मागोचर शुद्धात्मगोचर आंतरप्रत्यक्षप्रमाहै ॥

प्रत्यक्षके संगतैं यह शंका होवैहैः— सिद्धांतमैं इंद्रियजन्यज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै । इसका तो अंगीकार नहीं किंतु वृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं विषयावच्छिन्नचेतनका अभेदही ज्ञानकी प्रत्यक्षताका हेतुहै । जहां इंद्रियसंबंध घटादिक होवै तहां इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाह्य जायकै विषयके आकारके समानाकार होयकै विषयतैं संबंधवती होवैहै । यातैं वृत्तिचेतनकी औ विषयचेतनकी उपाधि एकदेशमैं होनैतैं उपहितचेतनकाभी अभेद होवैहै । तैसैं सुखादिकनका ज्ञान यद्यपि इंद्रियजन्य नहीं औ शुद्धात्मज्ञानभी शब्दजन्यहै इंद्रियजन्य नहीं । तथापि विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका भेद नहीं । काहेतैं सुखाकारवृत्ति अंतःकरणदेशमैं है औ सुखभी अंतःकरणमैंहै यातैं वृत्तिउपहितचेतन विषय उपहितचेतनका अभेदहै । तैसैं आत्माकारवृत्तिका उपादानकारण अंतःकरणहै । औ अंतःकरणउपहित चेतनके अभिमुख हुईहै । यातैं आत्माकारवृत्तिभी अंतःकरणदेशमैं होवैहै । सो अंतःकरणही शुद्ध आत्माकी उपाधिहै । इसरीतिसैं दोनूं उपाधि एक देशमैं होनेतैं वृत्तिचेतन विषयचेतनका अभेद होवैहै । यातैं सुखादिज्ञान शुद्धात्मज्ञान प्रत्यक्ष रूपहैं ॥ इहां यह निष्कर्षहैः—जहां विषयका प्रमातासैं वृत्तिद्वारा अथवा साक्षात्संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष है । सो विषयभी प्रत्यक्ष कहियेहै । जैसैं घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब घट प्रत्यक्षहै ऐसा व्यवहार होवैहै । बाह्य पदार्थनका वृत्तिद्वारा प्रमातासैं संबंध होवैहै । सुखादिकनका प्रमातासैं साक्षात्संबंधहै । अतीत सुखादिकनका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध नहीं । यातैं अतीत सुखादिकनका ज्ञान स्मृति रूपहै प्रत्यक्ष रूप नहीं । अतीत सुखादिकनकाभी प्रमातासैं संबंध तो हुयाहै । तथापि प्रत्यक्ष लक्षणमैं वर्त्तमानका निवेशहै । प्रमातासैं

वर्तमानसंबंधी योग्यविषय प्रत्यक्ष कहियेहै । प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधी योग्यविषयका ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै । योग्य नहीं कहै तौ धर्मादिक सदा प्रमाताके संबंधीहैं। यातैं सदाही प्रत्यक्ष कहे चाहिये औ तिनका शब्दादिकनसैं ज्ञान होवैं सो प्रत्यक्ष ज्ञान कह्या चाहिये। धर्मादिक प्रत्यक्ष योग्यनहीं यातैं लक्षणमैं योग्यपदके निवेशतैं दोष नहीं। योग्यता अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेयहैं । जावस्तुमैं प्रत्यक्षताका अनुभव होवै तामैं योग्यता औ जामैं प्रत्यक्षताका अनुभव नहीं होवै तामैं अयोग्यता यह अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं ज्ञान होवैहै । योग्यता अयोग्यता इसरीतिसैं नैयायिककूं भी मानी चाहिये । तिनके मतमैं सुखादिक औ धर्मादिक आत्माके धर्महैं । तिनमैं मनःसंयुक्तसमवायसंबंध सर्वसैं मनकाहै । तथापि योग्यता होनेतैं सुखादिकनका मानससाक्षात्कार होवैहै । औ योग्यताके अभावतैं धर्मादिकनका साक्षात्कार होवै नहीं । यातैं योग्यता अयोग्यता सर्वमतमैं अंगीकरणीयहै । इसरीतिसैं प्रत्यक्षयोग्यवस्तुका प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंध होवै तहां प्रत्यक्षज्ञान होवैहै ॥

या अर्थमैं यह शंकाहैः—ब्रह्मगोचर ज्ञान परोक्ष नहीं हुआ चाहिये। काहेतैं ब्रह्मका प्रमातासैं असंबंध होवै तौ बाह्यादि ज्ञानकी नांई ब्रह्मज्ञानभी परोक्ष होवैहै। जब अवांतरवाक्यसैं सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनंतस्वरूप ब्रह्म है ऐसी वृत्ति होवै तिस कालमैंभी ब्रह्मका प्रमातासैं संबंधहै । यातैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी प्रत्यक्षही हुआ चाहिये । औ सिद्धांतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं किंतु परोक्षहै सो उक्त रीतिसैं संभवै नहीं ॥

या शंकाका यह समाधानहैः—प्रत्यक्षलक्षणमैं विषयका योग्यताविशेषण कह्याहै तैसैं योग्यप्रमाणजन्यता ज्ञानका विशेषणहै यातैं उक्तदोष नहीं।काहेतैं प्रमातासैं वर्त्तमान संबंधवाला जो योग्य विषय ताका योग्य प्रमाणजन्यज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै। या लक्षणमैं उक्तदोष नहीं । का-

हेतैं वाक्यका यह स्वभावहै:—श्रोताके स्वरूपबोधक पदघटित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै। श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहित वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै । विषयसन्निहित होवै औ प्रत्यक्ष योग्य होवै तौभी स्वरूपबोधक पदरहित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं । जैसैं दशमका बोधक द्विविध वाक्यहै । एकतो " दशमोस्ति " ऐसा वाक्यहै औ दूसरा " दशमस्त्वमसि " ऐसा वाक्यहै । तिनमैं प्रथम वाक्य तौ श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहितहै। औ दूसरा वाक्य श्रोताके स्वरूपका बोधक जो त्वंपद तासैं घटित कहिये युक्तहै। तिनमैं प्रथम वाक्यसैं श्रोताकूं दशमका परोक्षज्ञानही होवैहै। वाक्यजन्यज्ञानका विषय दशम पुरुषहै सो दोनूं स्थानमैं अति सन्निहितहै। जो स्वरूपसैं भिन्न होवै औ संबंधी होवै सो सन्निहितहोवैहै । दशमपुरुष श्रोताके स्वरूपसैं भिन्न नहीं किंतु श्रोताका स्वरूपहै। यातैं अतिसन्निहितहै । औ प्रत्यक्ष योग्यहै । जो प्रत्यक्ष योग्य नहीं होवै तौ द्वितीयवाक्यसैंभी दशमका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं चाहिये । औ द्वितीयवाक्यसैं प्रत्यक्षज्ञान होवैहै । यातैं प्रत्यक्षयोग्यहै । इसरीतिसैं अतिसन्निहित औ वाक्यजन्य प्रत्यक्ष योग्य दशमका जो वाक्यसैं प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं वह वाक्य अयोग्य है । द्वितीयवाक्यसैं तिसी दशमका अपरोक्षज्ञान होवैहै । यातैं द्वितीय वाक्य योग्यहै । वाक्यनकी योग्यता अयोग्यतामैं और तौ कोई हेतु है नहीं । स्वरूपबोधक पदघटितत्व औ स्वरूपबोधक पदराहितत्वही योग्यताका औ अयोग्यताके संपादकहैं । इसरीतिसैं " दशमस्त्वमसि " यह वाक्यतो योग्यप्रमाणहै तिसतैं जन्य " दशमोहम् " यह प्रत्यक्षज्ञान है । तैसैं " दशमोस्ति " यह वाक्य अयोग्यप्रमाणहैं । तिसतैं जन्य कहिये उत्पन्न जो " दशमः कुत्रचिदस्ति " ऐसा दशमका ज्ञान सो परोक्षहै । तैसैं ब्रह्मबोधकवाक्यभी दोप्रकारकेहैं । " सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म " इसरीतिके अवांतर वाक्यहैं " तत्त्वमसि " इसरीतिके महावाक्यहैं । अवांतरवाक्यनमैं श्रोताका स्वरूपबोधक पद नहीं है यातैं प्रत्यक्षज्ञानके जननमैं योग्य

अवांतर वाक्य नहीं औ महावाक्यनमैं श्रोताके स्वरूपके बोधक त्व-मादिपदहैं । यातैं प्रत्यक्षज्ञान जननमैं योग्य महावाक्यहै । इसरीतिसैं योग्यप्रमाण महावाक्यहै तिनसैं उत्पन्नहुया ज्ञान प्रत्यक्षहै । औ अयोग्यप्रमाण " सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म " इत्यादिक वाक्य हैं । तिनसैं उपज्या ब्रह्मका ज्ञान परोक्ष होवैहै। अवांतरवाक्यभी दो प्रकारकेहैं। तत्पदार्थके बोधकहैं । औ त्वंपदार्थके बोधक हैं । तिनमैं तत्पदार्थबो-धक वाक्य तो अयोग्यहैं । औ " य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः " इत्या-दिक त्वंपदार्थबोधक अवांतर वाक्यभी महावाक्यनकी नांई योग्य हैं । अयोग्य नहीं । काहेतैं श्रोताके स्वरूपके बोधक तिनमैं पदहैं । यातैं त्वंपदार्थबोधक अवांतर वाक्यनतैंभी अपरोक्षज्ञान होवैहै । परंतु वह अपरोक्षज्ञान ब्रह्माभेदगोचर नहीं । यातैं परमपुरुषार्थका साधक नहीं । किंतु परमपुरुषार्थका साधन जो अभेदज्ञान तामैं पदार्थशोधनद्वारा उपयोगीहै । इसरीतिसैं प्रमातासैं संबंधीभी ब्रह्म है । औ योग्य है । तथापि अयोग्य जो अवांतरवाक्य तिनसैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवैहै ॥

या कहनैमैं अन्यशंका होवैहै:—प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका योग्य प्रमाणजन्यज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै । या कहनैमैं सुखादिकनके प्रत्यक्षमैं उक्त लक्षणका अभाव है। काहेतैं सुखादिप्रत्यक्षमैं प्रमाणजन्यताके अभावतैं योग्यप्रमाणजन्यता सर्वथा संभवै नहीं। यातैं उक्तलक्षणमैं अव्याप्तिदोष है ॥

या शंकाका यह समाधानहै:—योग्यप्रमाणजन्यताका लक्षणमैं प्रवेश नहीं। किंतु अयोग्यप्रमाणअजन्यताका प्रवेश है । यातैं अव्याप्ति नहीं। काहेतैं प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्यविषय ताका जो अयोग्य प्रमाणसैं अजन्यज्ञान सो प्रत्यक्षज्ञान कहियेहै। इसरीतिसैं कहे अवांतर-वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानकी व्यावृत्ति होवैहै । उक्तरीतिसैं ब्रह्ममात्रके बोधक अवांतरवाक्य अयोग्य प्रमाणहै " ब्रह्मास्ति " यह परोक्षज्ञान तिनतैं जन्य है । अजन्य नहीं । यातैं परोक्षज्ञानमैं लक्षण जावै नहीं । औ

सुखादिगोचर ज्ञानका संग्रह होवैहै । काहेतैं सुखादिगोचरज्ञान किसी प्रमाणतैं जन्य नहीं। यातैं अयोग्य प्रमाणतैं अजन्यहै । औ इंद्रियजन्य घटादि ज्ञान तैसैं महावाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान योग्य प्रमाणजन्य होनेतैं अयोग्य प्रमाणसैं अजन्यहै । यातैं प्रत्यक्षज्ञानका उक्तलक्षणदोषरहित है ॥

पूर्वप्रसंग यह है:—शुद्धात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमा दो प्रकारकीहै । एक ब्रह्मागोचर है। दूसरी ब्रह्मगोचर है । ब्रह्मगोचर कहिआये महावाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इसरीतिसैं ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माकूं जो विषय करै सो ब्रह्मगोचरशुद्धात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाहै ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" या ज्ञानकूं वाचस्पति मनोजन्य कहैहैं । औरनके मतमैं यह ज्ञान वाक्यजन्य है । तामैंभी इतना भेदहै । संक्षेप शारीरकका यह सिद्धांतहै:—महावाक्यतैं ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवैहै। कदीभी परोक्ष ज्ञान महावाक्यतैं होवै नहीं। अन्य ग्रंथकारोंका यह मतहै:—विचारसहित महावाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै विचाररहित केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै । सर्वके मतमैं "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान शुद्धात्मगोचरहै । औ ब्रह्मगोचरहै तैसैं प्रत्यक्ष है। या अर्थमैं किसीका विवाद नहीं । शुद्धात्मगोचर प्रमाके दो भेद कहे । औ विशिष्टात्मगोचर प्रत्यक्षप्रमाके अनंत भेद हैं "अहमज्ञः। अहं कर्त्ता । अहं सुखी । अहं दुःखी । अहं मनुष्यः" इसतैं आदि अनंत भेदहैं । यद्यपि अबाधित अर्थकूं विषय करै सो ज्ञान प्रमा कहियेहै। "अहं कर्ता" इत्यादिक ज्ञानका "अहं न कर्ता" इत्यादिक ज्ञानसैं बाध होवैहै । ताकूं प्रमा कहना संभवै नहीं। तथापि संसारदशामैं अबाधित अर्थकूं विषय करै सो प्रमा कहियेहै । संसारदशामैं उक्तज्ञानोंका बाध होवै नहीं । यातैं प्रमाहै। इसरीतिसैं आत्मगोचर आंतरप्रत्यक्ष प्रमाके भेद कहे ॥ औ "मयि सुखं। मयि दुःखम्" इत्यादिक सुखादिगोचर ज्ञानभी आत्मगोचर प्रत्यक्ष प्रमा है । परंतु "अहं सुखी। अहं दुःखी" इत्यादिक प्रमातैं तो अहंपदका अर्थ आत्मा विशेष्यहै। औ सुखदुःखादिक विशेषण है। "मयि सुखं। मयि दुःखम्"

इत्यादिक प्रमामैं सुखदुःखादिक विशेष्यहैं । आत्माविशेषण है । यातैं "मयि सुखं। मयि दुःखम्" इत्यादिक ज्ञानकूं आत्मागोचर प्रत्यक्ष प्रमा नहीं कहैहैं । किंतु सुखादिक विशेष्य होनैतैं अनात्मगोचर आंतरप्रत्यक्ष प्रमा कहैहैं। वाचस्पतिके मतमैं विशिष्टात्मज्ञान औ सुखादि ज्ञान मनोजन्य है। औ सिद्धांतमैं अंतःकरणविशिष्ट आत्मामैं अंतःकरणभाग साक्षीभास्यहै। औ चेतनभाग स्वयंप्रकाश है। तैसैं सुखादिकभी साक्षीभास्य है । कोई ज्ञान मनोजन्य नहीं। यातैं मन इंद्रिय नहीं। इसरीतिसैं स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ वृत्तिकूं प्रमा कहैहैं । ताके भेद कहे । स्मृतिरूप अंतःकरणकी वृत्तिभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकीहै । तिनमैं यथार्थ स्मृति दो प्रकारकी है । आत्मस्मृतिहै अनात्मस्मृतिहै तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य अनुभवतैं आत्मतत्त्वकी स्मृति यथार्थआत्मस्मृतिहै। व्यावहारिक प्रपंचका मिथ्यात्व अनुभव हुया ताके संस्कारतैं मिथ्यात्वरूपतैं प्रपंचकी स्मृति यथार्थ अनात्मस्मृतिहै । तैसैं अयथार्थस्मृतिभी दो प्रकारकीहै । एक आत्मगोचर अयथार्थ स्मृतिहै। औ अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृतिहै । अहंकारादिकनमैं आत्मत्वभ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं अहंकारादिकनमैं आत्मत्वकी स्मृति आत्मगोचर अयथार्थ स्मृतिहै । तैसैं आत्मामैं कर्तृत्वअनुभवके संस्कारतैं आत्मा कर्त्ताहै यह स्मृतिभी आत्मगोचर अयथार्थ स्मृतिहै । औ प्रपंचमैं सत्यत्वभ्रमके संस्कारतैं प्रपंच सत्यहै यह स्मृति अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृतिहै । यथार्थ अयथार्थ भेदसैं वृत्ति दो प्रकारकी कही । स्मृतिभिन्न यथार्थ वृत्ति प्रमा कही। यथार्थअनुभवजन्य स्मृति यथार्थ कही । औ अयथार्थ अनुभवजन्य स्मृति अयथार्थ कही। अनुभवमैं यथार्थता अबाधित अर्थकृतहै।अबाधित अर्थविषयक अनुभव यथार्थ कहियेहै। प्रमा कहियेहै। यातैं अबाधितअर्थके अधीन अनुभवमैं यथार्थताहै । औ स्मृतिमैं यथार्थता औ अयथार्थता अनुभवके अधीनहै। स्मृतिसैं भिन्न जो

ज्ञान ताकूं अनुभव कहैहैं । सोभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारका है । यथार्थानुभव तो कह्या अयथार्थानुभवका निरूपण करैहैं । अयथार्थ स्मृतिका निरूपण तो पूर्व कह्याहै सोभी अनुभवके अयथार्थता अधीनहै । यातैं अयथार्थानुभवका निरूपण कह्या चाहिये ॥

संशयरूप भ्रमका लक्षण औ भेद ॥ ५ ॥

अयथार्थानुभव दो प्रकारकाहै । एक संशयरूपहै औ दूसरा निश्चय रूपहै । अयथार्थकूंहीं भ्रम कहैहैं । संशयज्ञानभी भ्रमहै । काहेतैं स्वभावाधिकरणमैं अवभासकूं भ्रम कहैहैं । औ संशयज्ञानभी परस्परविरुद्ध उभयविषयक होवैहै । तिनमैं एकका अभाव होवैहै । यातैं संशयमैं भ्रमका लक्षणहै । एक विशेष्यमैं विरुद्ध दो विशेषणका ज्ञान संशय कहियेहै । जैसैं स्थाणुका " स्थाणुर्न वा " ऐसा ज्ञान होवै अथवा " स्थाणुर्वा पुरुषो वा " ऐसा ज्ञान होवै दोनूंकूं संशय कहैहैं । तहां स्थाणु विशेष्यहै । स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभाव विशेषणहै । दोनूं विरुद्धहैं । एक अधिकरणमैं साथि रहैं नहीं । यातैं स्थाणुरूप एक विशेष्यमैं स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभावरूप विरुद्ध उभयविशेषणका ज्ञान होनेतैं प्रथमसंशयमैं लक्षण संभवैहै । तैसैं द्वितीयसंशयमैंभी लक्षण संभवैहै । काहेतैं स्थाणुरूप एक विशेष्यमैं स्थाणुत्व पुरुषत्वरूप विरुद्ध उभय विशेषणका ज्ञानहै । जैसैं स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभावका परस्पर विरोधहै। तैसैं स्थाणुत्व पुरुषत्वकाभी विरोध अनुभवसिद्धहै । यातैं प्रथमसंशय तो विरुद्ध भावाभाव उभयगोचरहै । तैसैं द्वितीयसंशय विरुद्ध उभयभाव गोचरहै । औ न्यायके ग्रंथनमैं तो यह लिख्याहैः—भावाभावगोचरही संशयज्ञान होवैहै । केवल भावगोचर संशय होवै नहीं । जहां " स्थाणुर्वा पुरुषो वा " ऐसा संशय होवै तहांभी स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभाव पुरुषत्व औ पुरुषत्वाभाव ये चारि कोटीहैं । यातैं द्विकोटिक औ चतुष्कोटिक दोप्रकारका संशय होवैहै । " स्थाणुर्न वा " यह द्विकोटिक संशयहै " स्थाणुर्वा पुरुषो वा " यह चतुष्कोटिक संशयहै ॥ एक धर्मी-

मैं प्रतीत धर्मकूं कोटि कहैहैं । यातैं केवल भावगोचर संशय न्यायमतमैं अप्रसिद्धहै । सर्वप्रकारसैं संशयज्ञान भ्रमरूपहै । दो विरुद्ध विशेषण एकमैं होवै नहीं एकका अभावही होवैगा । जैसैं स्थाणुमैं स्थाणुत्व है औ स्थाणुत्वका अभाव नहींहैं । यातैं स्थाणुत्वाभावरहित स्थाणुमैं स्थाणुत्वका अभाव ज्ञान भ्रमरूपहै । परंतु एक अंशमैं संशय ज्ञान भ्रम होवैहै। सकल अंशमैं भ्रम होवै नहीं । जहां स्थाणुमैं "स्थाणुर्न वा" यह संशय होवै तहां अभाव अंशमैं भ्रमहै । औ जहां पुरुषमैं "स्थाणुर्न वा" ऐसा संशय होवै तहां अभावअंश तो पुरुषमैं है । स्थाणुत्वअंश नहीं है। यातैं भावअंशमैं भ्रमहै इसरीतिसैं भावाभावगोचर संशय होवैहै । तिनमैं एक अवश्य रहैगा । यातैं संशयज्ञान एक अंशमैं भ्रम होवैहै। औ विरोधी उभयभावगोचरभी संशय मानैं तौ सकल अंशमैंभी संशयकूं भ्रमत्व संभवैहै। जैसैं "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" या संशयकूं चतुष्कोटिक नहीं मानैं उभयकोटिकही मानैं औ स्थाणु औ पुरुषतैं भिन्न किसी पदार्थमैं "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा संशय होवै तहां संशयके धर्मीमैं स्थाणुत्व पुरुषत्व दोनूं नहींहै । यातैं दोनूंका ज्ञान भ्रमहै। संशयमैं जो विशेष्य होवै सो संशयमैं धर्मी कहिये । औ विशेषणकूं धर्म कहैहैं।यातैं एकधर्मीमैं विरुद्ध नाना धर्मका ज्ञान संशय कहियेहै । या लक्षणतैं उक्त लक्षणका भेद नहीं । परंतु इतना भेदहैः—उक्त लक्षणमैं उभय पद हैं । यातैं चतुष्कोटिक संशयमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्तिहै ।काहेतैं चतुष्कोटिक संशयमैं एकविशेष्यमैं चारि विशेषण प्रतीत होवैहैं उभयविशेषण नहीं । यद्यपि जहां चारि होवै तहां तीनि औ दो तथा एकभी होवैहै । तथापि अधिक संख्यासैं न्यून संख्याका बाध होवैहै । इसीवास्तै जहां पंच ब्राह्मण होतैं कोई च्यारि ब्राह्मण कहै तौ उसकूं मिथ्यावादी कहैहैं यातैं न्यून संख्या यद्यपि अधिकसंख्याके अंतर्भूतहै तथापि न्यूनसंख्याका व्यवहार होवै नहीं । यातैं उभयपदघटित लक्षणकी चतुष्कोटिक संशयमैं अव्याप्तिहोनेतैं नानापद कह्याहै । एकसैं भिन्नकूं नाना कहैहैं । द्विकोटिक संशयकी

नांई चतुष्कोटिक संशय भी चारि धर्मगोचर होनेतैं नानाधर्मगोचरहैं । यातैं अव्याप्ति नहीं । इसरीतिसैं संशय भी भ्रम है ॥

भ्रमके भेदनिरूपणतैं उत्तर निश्चयभ्रमका विस्तारसैं लक्षण कहैंगे । संशय निश्चयरूप भ्रम अनर्थका हेतुहै । यातैं निवर्त्तनीय है । जिज्ञासुकूं निवर्त्तनीय जो भ्रम ताके भेद कहैहैं:—संशयरूप भ्रम दो प्रकारकाहै । एक प्रमाणसंशयहै औ प्रमेयसंशयहै । प्रमाणगोचरसंदेह प्रमाणसंशय कहियेहै । ताहीकूं प्रमाणगत असंभावना कहैहैं । वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मविषै प्रमाण है वा नहींहैं यह प्रमाण संशयहै । ताकी निवृत्ति शारीरकके प्रथमाध्यायके पठनसैं वा श्रवणतैं होवैहै ॥ प्रमेय संशयभी आत्मसंशय औ अनात्मसंशय भेदतैं दोप्रकारकाहै । अनात्मसंशय अनंतविधहै ताके कहनेसैं उपयोग नहीं । आत्मसंशयभी अनेक प्रकारकाहै ॥

आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्नहै अथवा भिन्नहै । अभिन्न होवै तौ भी सर्वदा अभिन्नहै अथवा मोक्षकालमैं ही अभिन्न होवैहै सर्वदा अभिन्न नहीं । सर्वदा भिन्न होवै तौभी आनंदादिक ऐश्वर्यवान्‌है । अथवा आनंदादिकरहित है । आनंदादिक ऐश्वर्यवान् होवै तौभी आनंदादिक गुणहैं अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूपहैं । इसतैं आदिलैके तत्पदार्थ भिन्नत्वपदार्थविषै अनेक प्रकारका संशयहै ॥

तैसैं केवल त्वंपदार्थगोचर संशयभी आत्मगोचर संशयहै आत्मा देहादिकनतैं भिन्नहै वा नहीं । भिन्न कहै तौभी अणुरूप है वा मध्यमपरिमाणहै वा विभु परिमाणहै । जो विभु कहै तौभी कर्ताहै अथवा अकर्त्ता है । अकर्ता कहैं तौभी परस्पर भिन्न अनेकहैं । अथवा एकहैं । इस रीतिके अनेक संशय केवल त्वंपदार्थगोचरहैं ॥

तैसैं केवल तत्पदार्थगोचरभी अनेक प्रकारके संशयहैं वैकुंठादिलोकविशेषवासी ईश्वर परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवसहित शरीरहै अथवा शरीरसहित विभुहै । जो शरीररहित विभु कहैं तौभी परमाणु

आदिक सापेक्ष जगत्का कर्त्ताहै अथवा निरपेक्ष कर्त्ताहै। परमाणुआदिक निरपेक्ष कर्त्ता कहै तौभी केवल कर्ताहै अथवा अभिन्न निमित्तोपादान रूप कर्त्ताहै। जो अभिन्न निमित्तोपादान कहैं तौभी प्राणिकर्म निरपेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषवालाहै। अथवा प्राणिकर्मसापेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषरहितहै। इसतैं आदि अनेकप्रकारके तत्पदार्थगोचर संशय हैं। सो सकल संशय प्रमेयसंशय कहियेहैं। तिनकी निवृत्ति मननसैं होवैहै। शारीरकके द्वितीयाध्यायके अध्ययनसैं वा श्रवणतैं मनन सिद्ध होवैहै। तासे प्रमेय संशयकी निवृत्ति होवैहै॥

ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशयभी प्रमेयसंशयहै। काहेतैं प्रमाके विषयकूं प्रमेय कहैहैं। ज्ञानसाधन मोक्षसाधन भी प्रमाके विषय होनेतैं प्रमेयहैं। यातैं ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशयभी प्रमेय संशयहै। ताकी निवृत्ति शारीरकके तृतीय अध्यायसैं होवैहै॥

तैसैं मोक्षके स्वरूप का संशयभी प्रमेयसंशयहै ताकी निवृत्ति शारीरकके चतुर्थ अध्यायसैं होवैहै॥ यद्यपि शारीरकके चतुर्थ अध्यायमैं प्रथम साधनविचारहीहै॥ उत्तर फलविचारहै मोक्षकूं फल कहैहै। तथापि चतुर्थाध्यायमैं साधनविचार जितनेंमैं है उतने चतुर्थाध्यायसहित तृतीयाध्यायसैं साधनसंशयकी निवृत्ति होवैहै। शिष्ट चतुर्थाध्यायसै फलसंशयकी निवृत्ति होवैहै॥

निश्चयरूप भ्रमज्ञानका लक्षण॥ ६॥

संशयनिश्चयभेदसैं भ्रमज्ञान दो प्रकारकाहै। संशयभ्रमका निरूपण किया निश्चयभ्रम कहैहैं:—संशयसैं भिन्न ज्ञानकूं निश्चय कहैहैं। शुक्तिका शुक्तित्वरूपसैं यथार्थ ज्ञान औ शुक्तिका रजतत्व रूपतैं भ्रमज्ञान दोनूं संशयतैं भिन्नज्ञान होनेतैं निश्चय रूपहैं। बाधित अर्थ विषयक जो संशयसैं भिन्न ज्ञान सो निश्चयहै। शुक्तिमैं रजतविनिश्चयका विषय रजतहै। सो बाधितहै। काहेतैं संसारदशामैंही शुक्तिके ज्ञानतैं रजतका

बाध होवैहै । ब्रह्मज्ञानविना जाका बाध न होवै सो अबाधित कहियेहै । औ ब्रह्मज्ञान विनाही शुक्तिआदिकनके ज्ञानतैं जाका बाध होवै सो बाधित कहियेहै । अथवा प्रमाताके बाधविना जाका बाध नहीं होवै सो अबाधित कहियेहै । प्रमाताके होनेतैं जाका बाध होवै सो बाधित कहियेहै । अबाधित दो प्रकारका होवैहै । एक तो सर्वदा अबाधित होवैहै दूसरा व्यावहारिक अबाधित होवैहै । जिसका सर्वदा बाध नहीं होवै ऐसा चेतनहै । व्यवहारदशामैं बाध नहीं होवै ऐसा अज्ञान औ महाभूत तथा भौतिक प्रपंचहै सुखादिक प्रातिभासिकहैं । तौभी ब्रह्मज्ञानविना सुखादिकनका बाध होवै नहीं । यातैं अबाधितहैं । तिनका ज्ञान भ्रम नहीं । तैसैं बाधित अर्थभी दो प्रकारका होवैहै । एक तो व्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त्तहै । दूसरा प्रातिभासिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त्तहै । शुक्तिमैं रजत व्यावहारिक पदार्थावच्छिन्नचेतनका विवर्त्तहै । काहेतैं शुक्ति रजतका अधिष्ठान शुक्त्यवच्छिन्नचेतनहै शुक्ति व्यावहारिकहै । औ स्वप्नमैं शुक्ति प्रतीत होयकै तामैं रजत भ्रम होवै तिसरजतका स्वप्नमैंही शुक्ति ज्ञानसैं बाध होवै ता रजतका अधिष्ठान स्वप्नशुक्त्यवच्छिन्न चेतनहै । स्वप्नकी शुक्ति प्रातिभासिकहै । इसरीतिसैं बाधितपदार्थ दो प्रकारकेहैं । तिनका निश्चय भ्रमनिश्चय कहियेहैं ॥

अध्यासका लक्षण औ भेद ॥ ७ ॥

भ्रमज्ञानमैं शास्त्रकारनका अनेकधा वादहै । तिनके मतसैं विलक्षण भाष्यकारनैं भ्रमका असाधारण लक्षण कह्याहैः—जैसा भ्रमका स्वरूप अन्यशास्त्रवाले मानेहैं । तिसमैं यह वक्ष्यमाण लक्षण संभवै नहीं । यातैं असाधारणहै । अन्यसैं असाधारण लक्षण कथनतैं भाष्यकारका अन्याभिमत भ्रमके स्वरूपसैं अस्वरसहै ॥ अधिष्ठानसै विषम सत्तावाला अवभास अध्यास कहियेहै । जहां शुक्तिमैं रजत भ्रम होवै तहां शुक्तिदेशमैं रजत उपजैहै । ताका ज्ञान औ तात्कालिक रजत इन दोनूंकूं सिद्धांतमैं अवभास औ अध्यास कहैहैं । अन्य शास्त्रनसैं रजतकी उत्पत्ति मानैं

नहीं यह सर्वसैं विलक्षणताहै । एक सत् ख्यातिवादमैं रजतकी उत्पत्ति मानीहै । ताके मतसैंभी विलक्षणता आगे कहैंगे ॥ व्याकरणकी रीतिसैं अध्यासपदके औ अवभासपदके विषय औ ज्ञान दोनूं वाच्यहैं ॥

यातैं अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यासके भेदतैं अध्यास दो प्रकारकाहै, अर्थाध्यास अनेक प्रकारकाहै । कहूं केवल संबंधमात्रका अध्यासहै । कहूं संबंधविशिष्टसंबंधीका अध्यासहै । कहूं केवल धर्मका अध्यासहै । कहूं धर्मविशिष्टधर्मीका अध्यासहै । कहूं अन्योन्याध्यासहै । कहूं अन्यतराध्यासहै । अन्यतराध्यासभी दो प्रकारकाहै । एक आत्मामैं अनात्मअध्यासहै । दूसरा अनात्ममैं आत्माध्यासहै । इसरीतिसैं अर्थाध्यास अनेकप्रकारकाहै । उक्तलक्षणका सर्वत्र समन्वयहै । तथाहिः— मुख्यसिद्धांतमैं तौ सकल अध्यासका अधिष्ठान चेतनहै । रज्जुमैं सर्प प्रतीत होतैं तहांभी इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं अभिन्न रज्जुअवच्छिन्नचेतनही सर्पका अधिष्ठानहै । रज्जु अधिष्ठान नहीं । यह अर्थ विचारसागरमैं स्पष्टहै । तहां चेतनकी परमार्थसत्ताहै । अथवा ताकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होनेतैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनकी व्यावहारिक सत्ताहै । दोनूं प्रकारसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी प्रातिभासिक सत्ता होनेतैं अधिष्ठानकी सतासैं विषमसत्तावाला अवभास सर्प औ ताका ज्ञानहै । यातैं दोनूंकूं अध्यास औ अवभास कहहैं । ज्ञान औ ज्ञानके विषयकूं अवभास कहैहैं । इसरीतिसैं सर्वत्र अध्यासका अधिष्ठान चेतन कहें तबतो अधिष्ठानकी परमार्थ सत्ता औ अध्यस्तकी प्रातिभासिक सत्ता होनेतैं अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाला अवभास कहिये ज्ञान औ ताका विषय स्पष्टहीहै । औ रजतका अधिष्ठान शुक्तिहै । यह व्यवहार लोकमैं होवैहै । यातैं अवच्छेदकतासंबंधसैं शुक्तिभी रजतका आश्रयहै । काहेतैं चेतनमैं रजतकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक शुक्ति होनेतैं तामैं रजतका अवच्छेदकतासंबंधहै । अवच्छेदकतासंबंधसैं शुक्तिकूं रजतका अधिष्ठान कहैं तौ शुक्तिकी व्यावहारिकसत्ताहै । रजतकी प्रातिभासिकसत्ता है।

यातैंभी अधिष्ठानसैं विषम सत्ताहै। इसरीतिसैं सर्व अध्यासोंमैं आरोपि-तसैं अधिष्टानकी विषम सत्ताहै। जा पदार्थमैं आधारता प्रतीत होवै सो अधिष्ठान कहियेहै। यह आधारता परमार्थसैं होवै अथवा आरोपित होवै औ परमार्थसैं आधार होवै सो अधिष्ठान कहियेहै ऐसा आ-ग्रह या प्रसंगमैं नहींहै। काहेतैं जैसैं आत्मामैं अनात्माका अध्यास है। तैसैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है। औ अनात्मामैं परमार्थसैं आत्मा-की आधारताहै नहीं। किंतु आरोपित आधारता है। यातैं आधारमा-त्रकूं या प्रसंगमैं अधिष्ठान कहेहैं। जहां अनात्मामैं आत्माका अध्यास है तहां अधिष्ठान अनात्मा है। ताकी व्यावहारिकसत्ता है औ आत्माकी पारमार्थिक सत्ताहै। यातैं अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभासहै॥

अन्योन्याध्यासमैं शंकासमाधान॥ ८॥

यद्यपि आत्माका अधिष्ठान अनात्मा है। या कहनैसैं आत्मा आरो-पितहै यह सिद्ध होवैहै। जो आरोपित होवै सो कल्पित होवैहै। यातैं आत्माभी कल्पित होवैगा। यातैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है। यह कहना संभवै नहीं। तथापि भाष्यकारनैं शारीरकके आरंभमैं आत्मा-अनात्माका अन्योन्याध्यास कह्या है। यातैं अनात्मामैं आत्माके अ-ध्यासका निषेध तो बनै नहीं। परस्परअध्यासकूं अन्योन्याध्यास कहेहैं। यातैं अनात्मामैं आत्माध्यास मानिकैं उक्त शंकाका समाधान कह्या चाहिये॥

सो समाधान इसरीतिसैं है:-- अध्यास दो प्रकारका होवैहै। एकतो स्वरूपाध्यास होवैहै॥ दूसरा संसर्गाध्यास होवैहै॥ जा पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजै ताकूं स्वरूपाध्यास कहेहैं। जैसैं शुक्तिमैं रजतका स्वरूपाध्यासहै। औ आत्मामैं अहंकारादिक अना-त्माका स्वरूपाध्यास है। तैसैं जा पदार्थका स्वरूप तो प्रथम सिद्ध होवै, व्यावहारिक होवै अथवा पारमार्थिक होवै। औ अनिर्वचनीय संबंध उपजै सो संसर्गाध्यास कहियेहैं। जैसैं मुखसैं दर्पणका उक्तरीतिसैं कोई

संबंध है नहीं। औ दोनूं पदार्थ व्यावहारिकहैं। तहां दर्पणमैं मुखका संबंध प्रतीत होवैहै। यातैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है। तैसैं रक्तवस्त्रमैं " रक्तः पटः " यह प्रतीति होवैहै। रक्तरूपवाला पटहै। या प्रतीतिसैं रक्तरूपवाले पदार्थका पटमैं तादात्म्यसंबंध भासैहै। औ रक्तरूपवाला कुसुंभ द्रव्य है। यातैं रक्तरूपवत्‌का तादात्म्य कुसुंभद्रव्यमैं है। पटमैं नहीं। इसरीतिसैं रक्तरूपवत्‌ कुसुंभ द्रव्य औ पटतौ व्यावहारिकहै। तिनका तादात्म्यसंबंध अनिर्वचनीय उपजैहै। तैसैं "लोहितः स्फटिकः" या प्रतीतिसैं लोहितका तादात्म्यसंबंध स्फटिकमैं भासैहै। औ लोहितका तादात्म्य पुष्पमैं है। स्फटिकमैं नहीं। रक्तरूपवालेकूं लोहित कहैहैं। रक्तरूपवाला पुष्पहै। स्फटिक नहीं। यातैं स्फटिकमैं अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध लोहितका उपजैहै। इसरीतिसैं अनेक स्थानोंमैं संबंधी तो व्यावहारिकहै। तिनके संबंधनके ज्ञान अनिर्वचनीय उपजैहैं तिनकूं संसर्गाध्यास कहैहै। तैसैं चेतनका अहंकारमैं अध्यास नहीं। किंतु चेतन तो पारमार्थिक है। ताके संबंधका अहंकारमैं अध्यास है। आत्मता चेतनमैं है। औ अहंकारमैं प्रतीत होवैहै। यातैं आत्माका तादात्म्य चेतनमैंहै औ अहंकारमैं प्रतीत होवैहै यातैं आत्मचेतनका तादात्म्यसंबंध अहंकारमैं अनिर्वचनीयहै। अथवा आत्मवृत्तितादात्म्यका अहंकारमैं अनिर्वचनीय संबंधहै। यातैं चेतन कल्पित नहीं। किंतु चेतनका अहंकारमैं तादात्म्यसंबंध कल्पितहै। अथवा आत्मचेतनके तादात्म्यका संबंध कल्पितहै॥ यद्यपि अद्वैतग्रंथनमैं उक्त उदाहरणोंमैं अन्यथाख्याति कहीहै। तथापि ब्रह्मविद्याभरणमैं उक्तरीतिसैं सारै अनिर्वचनीय ख्याति मानिकै निर्वाह करयाहै। अन्यथाख्याति प्रसिद्ध नहीं। औ विचारसागरमैं तथा या ग्रंथमैं भी पूर्व यह लिख्याहै। जहां अधिष्ठानसैं आरोप्यका संबंध होवै तहां अन्यथाख्यातिहै। सो ग्रथांतरकी रीतिसैं लिख्याहै। औ अधिष्ठानसैं आरोप्यका संबंध होवै तहां अन्यथाख्यातिका ही आग्रह होवै तौ अहंकारमैं भी चेतनका तादात्म्य अन्यथाख्यातिसैं

प्रतीत होवैहै या कहनेमैं कोई बाधक नहीं । इसरीतिसैं जहां पारमार्थिक पदार्थका अभाव हुयां तिसकी जहां प्रतीति होवै तहां पारमार्थिक पदार्थका तो व्यावहारिक पदार्थमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजैहै । औ ताका अनिर्वचनीयही ज्ञान उपजैहै।औ व्यावहारिक पदार्थका अभाव हुयां जहां प्रतीति होवै तहां अनिर्वचनीयही और संबंधी उपजैहै औ संबंधीका अनिर्वचनीय ज्ञान उपजैहै । औ कहूं संबंधमात्र औ संबंधका अनिर्वचनीय ज्ञान उपजैहै । सारेही अधिष्ठानसैं अध्यस्तकी विषमसत्ता अनिर्वचनीयसत्ताहै । आत्माका अनात्मामैं अध्यास होवै तहांभी अधिष्ठान अनात्मा व्यावहारिकहै । औ अध्यस्त आत्मा नहीं किन्तु आत्माका संबंध अनात्मामैं अध्यस्तहै । यातैं अनिर्वचनीयहै ॥

अनात्मामें अध्यस्त आत्माकी परमार्थसत्ताविषै तात्पर्य ॥ ९ ॥

औ पूर्व यह कह्याहै । अनात्मामैं आत्मअध्यास होवै तहां अध्यस्तकी परमार्थ सत्ता होनेतैं विषमसत्ताहै । औ ब्रह्मविद्याभरणमैंभी उक्तस्थलमैं अध्यस्तकी परमार्थसत्ताही कहीहै । ताका यह तात्पर्यहैः— शुद्ध पदार्थसैं विशिष्ट भिन्न होवैहै । यातैं अनात्मामैं आत्माके संबंधका अध्यास कह्या । तहां संबंधविशिष्ट आत्माकाही अध्यासहै औ स्वरूपसैं आत्मा सत्यहै । यातैं अध्यस्तकी परमार्थसत्ता स्वरूपदृष्टिसैं कहेहैं । औ अध्यस्त कल्पित होवैहै । यातैं अनात्मसंबंधविशिष्ट कल्पित होवै तौभी शुद्ध कल्पित होवै नहीं । काहेतैं शुद्धसैं विशिष्टकूं भिन्न होनेतैं विशिष्टकी कल्पितता शुद्धमैं होवै नहीं । औ केवल आत्मसंबंधके अध्यास कहनेतैं संबंधविशिष्टआत्माका अध्यास कहना औ अध्यस्तकी परमार्थसत्ता कहनाई श्रेष्ठहै । काहेतैं केवल संबंधका अध्यास कहे तौ अधिष्ठानकी आरोपितसैं विषमसत्ता संभवै नहीं; काहेतैं आत्माका संबंध अंतःकरणमैं अध्यस्तहै । औ स्फुरणरूपचेतनका तादात्म्यसंबंध घटादिकनमैं अध्यस्तहै काहेतैं " घटः स्फुरति " यह व्यवहार घट-

मैं स्फुरणसंबंधसैं प्रतीत होवैहै । चेतनके संबंधके अधिष्ठान अंतःकरण औ घटादिक व्यावहारिकहै । तिनमैं चेतनका संबंधभी व्यावहारिकहै । प्रातिभासिक नहीं । चेतनका संबंध प्रातिभासिक होवै तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध हुआ चाहिये औ बाध होवै नहीं । यातैं आत्मसंबंधकी औ अधिष्ठानअनात्माकी व्यावहारिक सत्ता होनेतैं विषमसत्ता नहीं होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै नहीं । यातैं संबंधविशिष्टआत्माका अनात्मामैं अध्यासहै औ विशेष्यभागकी परमार्थसत्ता होनैतैं विशिष्टकी परमार्थसत्ताहै; अधिष्ठानकी व्यावहारिकसत्ताहै । यातैं दोनूंकी विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवैहै । औ स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीहै ताकी स्वरूपसैं पारमार्थिक सत्ताहै । औ पदार्थनकी प्रातिभासिक सत्ताहै । यातैं अधिष्ठानतैं विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवैहै ॥

यद्यपि सत्तास्वरूप चेतनहै । ताका भेद कहना संभवै नहीं । तथापि चेतनस्वरूपसत्तासैं सत्ता नाम भिन्नपदार्थहैं । तामैं उत्कर्ष अपकर्षहैं । ताके पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक तीनि भेदहैं । प्रातिभासिकमैंभी उत्कर्षापकर्षहैं । स्वप्नमैं कितनें पदार्थ प्रतीत होवैहैं । तिनका स्वप्नमैंही बाध होवैहै । जिनका जाग्रतमैं बाध होवै तिनमैं स्वप्नमैं बाधित पदार्थनकी अपकृष्टसत्ताहै । इसरीतिसैं चेतनस्वरूपसत्तासैं भिन्न सत्ताका स्वरूप श्रुतिमैं लिख्याहै "सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यमिति" औ रजतकी सत्तासैं शुक्तिकी सत्ता उत्कृष्टहै । यह सर्वकूं अनुभव होवैहै । यातैं उत्कर्षअपकर्षवाली सत्ता चेतनसैं भिन्नहै । इसरीतिसैं अध्यासका लक्षण कह्या ॥

अध्यासका अन्यलक्षण ॥ १० ॥

और अध्यासका अन्यलक्षण यहहै । अपने अभावके अधिकरणमैं अवभासकूं अध्यास कहैहैं । श्रुतिमैं रजतका पारमार्थिक औ व्यावहारिक अभावहै औ रजत अनिर्वचनीयहै । यातैं रजताभावका अधिकरण जो शुक्ति तामैं रजतकी प्रतीति औ ताका विषय होनेतैं रजतावभासहै;

यातैं अध्यासहै । इसरीतिसैं कल्पितके अधिकरणमैं कल्पितका अभाव होनेतैं सारे अध्यासमैं यह लक्षण संभवैहै ॥

एकअधिकरणमैं भावअभावके विरोधका शंका औ समाधान ॥ ११ ॥

यद्यपि एक अधिकरणमैं भावाभावका विरोध होवैहै । संयोग औ ताका अभावभी एक अधिकरणमैं मूलादिक देशके भेदसैं रहैहैं । एक देशमैं रहै नहीं । यातैं एक अधिकरणमैं भावाभाव संभवै नहीं । तथापि पदार्थनका विरोध अनुभवके अनुसार कहियेहै ॥ केवल भावाभावका विरोध नहींहै । किंतु घटत्व पटत्व दोनूं भावहैं । एक अधिकरणमैं रहै नहीं तिनका विरोधहै । औ द्रव्यत्व घटत्वका विरोध नहीं । तैसैं घटके अधिकरण भूतलमैं अतीतकालविशिष्टघटका अभावहै । यातैं शुद्धघटाभावतैं घटका विरोधहै । विशिष्टघटाभावतैं घटका विरोध नहीं । तैसैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटाभावहै । तासैं घटका विरोध नहीं । तैसैं समानसत्तावाले प्रतियोगी अभाव एक अधिकरणमैं रहै नहीं । विषमसत्तावाले प्रतियोगीका अभावसैं विरोध नहीं । कल्पितके अभावकी पारमार्थिकसत्ताहै अथवा व्यावहारिक सत्ताहै । कल्पितकी प्रातिभासिक सत्ताहै । यातैं विरोध नहीं । जहां शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां व्यावहारिक रजतहै नहीं । यातैं रजतका व्यावहारिक अभावहै । औ पारमार्थिक रजततो कहूंभी नहीं होनेतैं रजतका पारमार्थिक अभाव केवलान्वयीहै । यातैं शुक्तिमैं रजतका पारमार्थिक अभावभीहै । औ अनिर्वचनीय रजत औ ताका ज्ञान एककालमैं उपजैहै । औ एक कालमैं दोनूंका नाश होवैहै । यातैं रजत प्रातिभासिकहै । प्रतीतिकालमैं जाकी सत्ता होवै, प्रतीतिशून्यकालमैं होवै नहीं । ताकूं प्रातिभासिक कहैहैं । इसरीतिसैं भ्रमज्ञान औ ताके विषय अनिर्वचनीय उपजैहैं । सत्असत्सैं विलक्षणकूं अनिर्वचनीय कहैहैं । औ ताका अभाव व्यावहारिकहै । यातैं प्रतियोगीअभावका परस्पर विरोध

नहीं । व्यावहारिकअभावका व्यावहारिक प्रतियोगीसैं विरोधहै ॥

अध्यासके प्रसंगमैं चारि शंका ॥ १२ ॥

या प्रसंगमैं च्यारि शंका होवैहैं । स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान साक्षीहै । यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं । काहेतैं जिस अधिष्ठानमैं जो आरोपित होवै तिस अधिष्ठानसैं संबद्ध प्रतीत होवैहै; जैसैं शुक्तिमैं आरोपित रजतहै सो "इदं रजतम्" इसरीतिसैं शुक्तिकी इदन्तासैं संबद्ध प्रतीत होवैहै । आत्मामैं कर्तृत्वादिक आरोपितहै सो "अहं कर्ता" इसरीतिसैं संबद्ध प्रतीत होवैहै । तैसैं स्वप्नके गजादिक साक्षीमैं आरोपित होवैं तौ "अहं गजः । मयि गजः" इसरीतिसैं साक्षीसैं संबद्ध गजादिक प्रतीत हुये चाहिये ॥

औ दूसरी शंका यह हैः—शुक्तिमैं रजताभाव व्यावहारिकहै । औ पारमार्थिकहै यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं । काहेतैं अद्वैतवादमैं एक चेतनहीं पारमार्थिक है तासैं भिन्नकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतवादकी हानि होवैगी । पारमार्थिक रजत है नहीं । यातैं पारमार्थिक रजतका अभाव है यह कहना तो संभवैहै । औ पारमार्थिक अभावहै । यह कहना संभवै नहीं ॥

तृतीय शंका यहहैः—शुक्तिमैं अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्तिनाश होवैहैं । यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं । काहेतैं जो रजतके उत्पत्तिनाश होवैं तौ घटके उत्पत्तिनाशकी नांई रजतकी उत्पत्ति नाश प्रतीत हुये चाहिये।जैसैं घटकी उत्पत्ति होवै तब घट उपजैहै । इसरीतिसैं घटकी उत्पत्ति प्रतीत होवैहै औ घटका नाश होवैहै । तब घटका नाश हुया इसरीतिसैं घटका नाश प्रतीत होवैहै । तैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति होवै तब रजतकी उत्पत्ति हुई इसरीतिसैं उत्पत्ति प्रतीत हुई चाहिये औ रजतका ज्ञानसैं नाश होवै तब रजतका शुक्तिदेशमैं नाश हुआ । इसरीतिसैं नाश प्रतीत हुया चाहिये । औ शुक्तिमैं केवल रजत प्रतीत होवैहै । ताके उत्पत्तिनाश प्रतीति होवै नहीं । यातैं शास्त्रांतरकी रीतिसैं अन्यथाख्यातिआदिकही समीचीनहैं अनिर्वचनियख्याति संभवै नहीं ॥

चतुर्थ शंका यहहै:– सत् असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय रजतादिक उपजैहैं। यह पूर्व कह्या सो सर्वथा असंगतहै । सत्सैं विलक्षण असत् होवैहै । औ असत्सैं विलक्षण सत् होवैहै । सत्सैं विलक्षणता है । औ असत् नहीं यह कथन विरुद्धहै । तैसैं असत्सैं विलक्षणहै औ सत् नहीं यह कथनभी विरुद्धहै । ये च्यारि शंकाहैं ॥

उक्त च्यारि शंकाके समाधान ॥ १३ ॥

तिनके क्रमतैं यह समाधानहै:—साक्षीमैं स्वप्नअध्यास होवै तौ "अहं गजः । मयि गजः" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये । या शंकाका यह समाधानहै:—पूर्व अनुभवजनितसंस्कारसैं अध्यास होवैहै । जैसा पूर्व अनुभव होवै तैसाही संस्कार होवैहै । औ संस्कारके समान अध्यास होवैहै । सर्व अध्यासोंका उपादानकारणतो अविद्या समानहै । परंतु निमित्त कारण पूर्वानुभवजन्य संस्कारहै । सो विलक्षणहै । जैसा अनुभवजन्य संस्कार होवै तैसाही अविद्याका परिणाम होवैहै । जिस पदार्थका अहमाकारज्ञानजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका अहमाकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै । जिसका ममताकारअनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका ममताकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै । जिसपदार्थका इदमाकारअनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका इदमाकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै। स्वप्नके गजादिकनका पूर्व अनुभव इदमाकारही हुयाहै । अहमाकारादिकअनुभव हुया नहीं । यातैं अनुभवजन्यसंस्कारभी गजादिगोचर इदमाकारही होवैहै । यातैं " अयं गजः " ऐसी प्रतीति होवैहै " मयि गजः । अहं गजः " ऐसी प्रतीति होवै नहीं । संस्कार अनुमेयहै । कार्यके अनुकूल संस्कार की अनुमिति होवैहै ॥ संस्कारजनक पूर्व अनुभवभी अध्यासरूपहै । ताका जनक संस्कारभी इदमाकारही होवैहै । औ अध्यासप्रवाह अना-

दिहै यातैं प्रथम अनुभवके इदमाकारतामैं कोई हेतु नहीं यह शंका संभवै नहीं:—काहेतैं अनादिपक्षमैं कोई अनुभव प्रथम नहीं । पूर्वपूर्वसैं उत्तर सारे अनुभवहैं ॥

औ अभावकूं पारमार्थिक मानें अद्वैतकी हानि होवैगी । या द्वितीय शंकाका यह समाधानहै:—सकल पदार्थ सिद्धांतमैं कल्पितहैं तिनका अभाव पारमार्थिकहै सो ब्रह्मरूपहै यह भाष्यकारकूं संमतहै । यामैं जुक्ति आगे कहैंगे इसकारणतैं अद्वैतकी हानि नहीं ॥

औ शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति मानैं तौ उत्पत्तिकी प्रतीति हुई चाहिये ॥ याका यह समाधानहै:—शुक्तिमैं तादात्म्यसंबंधसैं रजत अध्यस्तहै । औ शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्तहै । यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसैं रजत प्रतीत होवैहै । जैसैं शुक्तिके इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्तहै । तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्महै । रजतप्रतीतिकालतैं प्रथमसिद्धकूं प्राक्सिद्ध कहैहैं । रजतप्रतीतिकालतैं प्रथमसिद्ध शुक्तिहै । इसरीतिसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्महै । ताके संबंधका अध्यासभी रजतमैं होवैहै । इसीवास्तै "इदानीं रजतम्" यह प्रतीति नहीं होवैहै । "प्राग्जातम् रजतं पश्यामि" यह प्रतीति होवैहै । या प्रतीतिका विषय प्राग्जातत्वहै सो रजतमैं है नहीं । किंतु रजतमैं इदानींजातत्वहै । औ प्राग्जातत्व रजतमैं प्रतीत होवैहै । तहां रजतमैं अनिर्वचनीय प्राग्जातत्वकी उत्पत्ति मानै तौ गौरव होवैहै । शुक्तिके प्राग्जातत्वकी रजतमैं प्रतीति मानै तौ अन्यथाख्याति माननी होवैहै । औ ऐसे स्थानमैं अन्यथाख्यातिकूं मानैंभीहै तथापि शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वधर्मका अनिर्वचनीयसंबंध रजतमैं उपजैहै । यह पक्ष समीचीनहै । इसरीतिसैं शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्तिप्रतीतिका प्रतिबंध होवैहै । काहेतैं प्राक्सिद्धता औ वर्त्तमानउत्पत्ति दोनूं परस्पर विरोधिहैं ॥ जहां प्राक्सिद्धता होवै तहां अतीतउत्पत्ति होवैहै । वर्त्तमानउत्पत्ति होवै तहां प्राक्सिद्धता होवै नहीं । इसरीतिसैं शुक्तिवृत्ति प्राक्सिद्धत्वके संबंध-

की प्रतीतिसैं उत्पत्तिप्रतीतिका प्रतिबंध होनेतैं रजतकी उत्पत्ति हुयेभी उत्पत्तिकी प्रतीति होवै नहीं । औ जो कह्या रजतका नाश होवै तौ ताकी प्रतीति हुई चाहिये । ताका यह समाधानहैः—अधिष्ठानका ज्ञान होवै तब रजतका नाश होवैहै । सो अधिष्ठानज्ञानतैं रजतका बाध निश्चय होवैहै । शुक्तिमैं कालत्रयमैं रजत नहीं इसनिश्चयकूं बाध कहैहैं । ऐसा निश्चय नाशप्रतीतिका विरोधीहैं । काहेतैं नाशमैं प्रतियोगी कारण होवैहै । औ बाधसैं प्रतियोगीका सर्वदा अभाव भासैहै । जाका सर्वदा अभावहै ऐसा ज्ञान होवै ताकी नाशबुद्धि संभवै नहीं किंवा जैसा घटादिकनका मुद्गरादिकनसैं चूर्णीभावरूपनाश होवैहै । तैसा कल्पितका नाश होवै नहीं किंतु अधिष्ठानके ज्ञानतैं अज्ञानरूप उपादानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै । अधिष्ठानमात्रका अवशेषही अज्ञानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै सो अधिष्ठानशक्तिहै । ताका अवशेषरूप रजतका नाश अनुभवसिद्ध है । यातैं रजतके नाशकी प्रतीति होवै नहीं । यह कथन साहसतैंहै ॥

औ सत्असत्सैं विलक्षण कथन विरुद्धहै ॥ या चतुर्थ शंकाका यह समाधानहैः—जो स्वरूपरहितकूं सद्विलक्षण कहैं औ विद्यमानस्वरूपकूं असद्विलक्षणकहैं तो विरोध होवै । काहेतैं एकही पदार्थमैं स्वरूपराहित्य औ स्वरूपसाहित्य संभवै नहीं । यातैं सदसद्विलक्षणका उक्त अर्थ नहीं । किंतु कालत्रयमैं जाका बाध नहीं होवै ताकूं सत् कहैहैं । जाका बाध होवै सो सद्विलक्षण कहियेहै । शशशृंग वंध्यापुत्रकी नांई स्वरूपहीनकूं असत् कहैहैं तासैं विलक्षण स्वरूपवान् होवैहै । इसरीतिसैं बाधकै योग्य स्वरूपवाला सदसद्विलक्षणशब्दका अर्थहै । सद्विलक्षणशब्दका बाध योग्य अर्थहै । स्वरूपवाला इतना अर्थ असद्विलक्षणशब्दकाहै ॥

पूर्वउक्त अध्यासके भेदका अनुवाद औ तामैं उदाहरण ॥ १४ ॥

इसरीतिसैं जहां भ्रमज्ञानहै । तहां सारे अनिर्वचनीय पदार्थकी उत्पत्ति होवैहै । कहूं संबंधीकी उत्पत्ति होवैहै । जैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्तिहै । औ रजतमैं शुक्तिवृत्ति तादात्म्यकै संबंधकी उत्पत्ति होवैहै । शुक्तिवृत्ति-

स्वतादात्म्यकी रजतमैं अन्यथाख्याति नहीं । तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है । ताके अनिर्वचनीयसंबंधकी रजतमैं उत्पत्ति होवैहै । ताकीभी अन्यथाख्याति नहीं । इसरीतिसैं अन्योन्याध्यासकाभी यह उदाहरण है । औ संबंधाध्यासका यह उदाहरण है । संबंधीअध्यासकाभी यह उदाहरण है । औ अनिर्वचनीय वस्तुकी प्रतीतिकूं ज्ञानाध्यास कहैहैं । औ ज्ञानके अनिर्वचनीय विषयकूं अर्थाध्यास कहैहैं । यातैं ज्ञानाध्यास अर्थाध्यासकाभी यह उदाहरण है । औ रजतत्वधर्मविशिष्ट रजतका शुक्तिमैं अध्यास है । यातैं धर्मीअध्यासकाभी यह उदाहरण है । जहां अन्योन्याध्यास होवै तहां दोनूंका परस्पर स्वरूपसैं अध्यास नहीं होवैहै किंतु आरोपितका स्वरूपसैं अध्यास होवैहै । औ सत्यवस्तुका धर्म अथवा संबंध अध्यस्त होवैहै ॥ **संबंधाध्यासभी दो प्रकारका होवैहै** । कहूं धर्मके संबंधका अध्यास होवैहै । जैसैं उक्तउदाहरणमैं शुक्तिवृत्तिइदंतारूपधर्मके संबंधका रजतमैं अध्यास है । औ " रक्तः पटः " या स्थानमैं कुसुंभवृत्तिरक्तरूपधर्मके संबंधका पटमैं अध्यास है । औ दर्पणमैं मुखके संबंधका अध्यास होवैहै । अंतःकरणका आत्मामैं स्वरूपसैं अध्यास है । औ अंतःकरणमैं आत्माका स्वरूपसैं अध्यास नहीं । किंतु आत्मसंबंधका अध्यास होनेतैं आत्माका संसर्गाध्यास है । ज्ञानस्वरूप आत्मा है । अंतःकरण नहीं । औ ज्ञानका संबंध अंतःकरणमैं प्रतीत होवैहै । यातैं आत्माके संबंधका अंतःकरणमैं अध्यास है । तैसैं "घटः स्फुरति, पटः स्फुरति" इसरीतिसैं स्फुरणसंबंध सर्वपदार्थनमैं प्रतीत होवैहै । यातैं आत्मसंबंधका निखिलपदार्थनमैं अध्यास है । आत्मामैं काणत्वादिक इंद्रियधर्म प्रतीत होवैहै । यातैं काणत्वादिकधर्मनका आत्मामैं अध्यास है । औ इंद्रियनका आत्मामैं तादात्म्यअध्यास नहींहै । काहेतैं "अहं काणः" ऐसी प्रतीति होवैहै । औ "अहं नेत्रम्" ऐसी प्रतीति होवै नहीं। यातैं नेत्रधर्मकाणत्वका आत्मामैं अध्यास है । नेत्रका अध्यास नहीं । यह धर्माध्यासका उदाहरण है । यद्यपि नेत्रादिकनिखिलप्रपंचका अ-

ध्यास आत्मामैं है । तथापि ब्रह्मचेतनमैं समग्र प्रपंचका अध्यासहै । त्वं-पदार्थमैं निखिलप्रपंचका अध्यास नहीं । अविद्याका ऐसा अद्भुत महिमा है । एकही पदार्थका एकधर्मविशिष्टका अध्यास होवैहै । अपरधर्मविशिष्टका अध्यास होवै नहीं । जैसैं ब्राह्मणत्वादिधर्मविशिष्टशरीरका आत्मामैं तादात्म्याध्यास होवैहै । शरीरत्वविशिष्टशरीरका अध्यास होवै नहीं। इसीवास्तै विवेकीभी " ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽहम् " ऐसा व्यवहार करैहैं औ "शरीरमहम्" ऐसा व्यवहार विवेकीका होवै नहीं । यातैं अविद्याका अद्भुत महिमा होनेतैं इंद्रियके अध्यास विना आत्मामैं काणत्वादिकधर्मनका अध्यास संभवैहै । यह धर्माध्यासका उदाहरण है । अन्याश्रित होवै स्वतंत्र होवै नहीं ताकूं धर्म कहैहैं । यातैं संबंधभी धर्मही है । ताका अध्यासभी धर्माध्यासही है । परंतु धर्म दो प्रकारका होवैहैः—एकतौ प्रतियोगी अनुयोगीकी प्रतीतिकै अधीन प्रतीतिका विषय होवैहै । औ कोई धर्म अनुयोगीमात्रकी प्रतीतिकै अधीन प्रतीतिका विषय होवैहै । औ कदाचित् अनुयोगीकीप्रतीतिविना केवल धर्मकीभी प्रतीति होवैहै । जैसैं घटत्वादिकनकी प्रतीतिमैं अनुयोगीमात्रकी प्रतीतिकी अपेक्षा है । औ घटत्व नित्य है इत्यादिवाक्यजन्यप्रतीतिमैं अनुयोगीप्रतीतिकीभी अपेक्षा नहीं । इसरीतिसैं दो प्रकारका धर्म होवैहै । अनुयोगीप्रतियोगीकी प्रतीतिविना जाकी प्रतीति होवै नहीं ऐसे धर्मकूं संबंध कहैहैं । औ घटत्वादिकनकूं केवल धर्म कहैहैं । संबंध कहैं नहीं । इसरीतिसैं संबंधाध्यासभी धर्माध्यासही है । उक्तरीतिसैं सकलभ्रममैं दोनूं लक्षण संभवैहैं । अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभास अध्यास कहियेहै । अथवा स्वाभावाधिकरणमैं अभवास अध्यास कहियेहै । भ्रमकालमैं अनिर्वचनीय विषय औ ताका ज्ञान उपजैहै । यातैं दोनूं लक्षण अध्यासके संभवैहैं । परंतु परोक्ष अपरोक्ष भेदसैं भ्रम दो प्रकारका हैः—अपरोक्षभ्रमके उदाहरण तो कहे । औ जहां वह्निशून्यदेशमैं वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो परोक्षभ्रम है । सो इसरीतिसैं होवैहैः—

महानसत्व वह्निका व्याप्य नहीं है। औ महानसमैं वारंवार वह्निदेशके महानसत्वका व्याप्यताभ्रम होय जावै। तहां वह्निशून्यकालमैं ऐसा अनुमान होवै। "इदं महानसं वह्निमत्, महानसत्वात्, पूर्वदृष्टमहानसवत्" इसरीतिसैं महानसमैं वह्निका अनुमितिरूप भ्रमज्ञान होवैहै। औ विप्रलंभकवाक्यसैं वह्निका शब्दभ्रम होवैहै। सो दोनूं परोक्षज्ञानहैं। जहां परोक्षभ्रम होवै तहां अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति मानी नहीं। किंतु तिस देशमैं असत्वह्निकी प्रतीति होवैहै। यातैं अध्यासलक्षणका लक्ष्य तो परोक्षभ्रम नहींहै। औ वह्निके अभावाधिकरणमैं वह्निकी प्रतीति होनेतैं स्वाभावाधिकरणमैं अवभासहै। विषय औ ज्ञानकूं अवभास कहैहैं। वह्निके अभावाधिकरणमैं वह्निका परोक्षज्ञानरूप अवभास होनेतैं उक्तलक्षणकी यद्यपि अतिव्याप्ति होवैहै। तथापि लक्षणमैं अवभासपदसैं अपरोक्षज्ञानका ग्रहणहै। यातैं परोक्षभ्रमविषै अध्यासलक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं। जहां परोक्षभ्रम होवै तिस स्थानमैं तो जिस रीतिसैं नैयायिकादिक अन्यथाख्यात्यादिकनसैं निर्वाह करैहैं। तासैं विलक्षण कहनेमैं अद्वैतवादीका आग्रह नहींहै अपरोक्षभ्रम विषैही प्रातिभासिक अध्यास विलक्षण मानैहैं। काहेतैं कर्तृत्वादिक अनर्थ भ्रम अपरोक्षहै। ताके स्वरूपमैं ज्ञाननिवर्त्यताके अर्थ अध्यासका निरूपणहै। यातैं अपरोक्षभ्रमकूंही दृष्टांतताके अर्थ अध्यासताप्रतिपादनमैं आग्रहहै। परोक्षभ्रमविषै शास्त्रांतरसैं विलक्षणता कहनेमैं प्रयोजन नहीं। औ अपरोक्षभ्रमविषै उक्तरीतिसैं लक्षणका समन्वय होवैहै॥

सिद्धान्तसंमतअनिर्वचनीयख्यातिकी रीति। सांप्रदायिकमत १९॥

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्यातिहै ताकी यह रीतिहै:—जहां रज्जुआदिकनमैं सर्पादिकभ्रम होवै तहां अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतुहै। यातैं रज्जुका इदमाकार सामान्य ज्ञान होवैहै। सो सामान्य ज्ञान दोषसहित नेत्ररूपप्रमाणसैं उपजैहै यातैं प्रमाहै। तिस दोष-

सहित नेत्रजन्य इदमाकारवृत्तिअवच्छिन्नचेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्पज्ञान होवैहै। ताकूं ज्ञानाभास कहेहैं। दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध हुये अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति तो रज्जुदेशमैं गई। यातैं प्रमातृचेतन औ इदमवच्छिन्नचेतनकी उपाधि एकदेशमैं होनेतैं प्रमातृचेतनसैं इदमवच्छिन्नचेतनका भेद रहै नहीं। यातैं रज्जुका सामान्य इदंरूप प्रत्यक्षहै। औ प्रत्यक्षविषयका इदमाकारज्ञानभी प्रत्यक्षहै। जिस विषयका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै सो विषय प्रत्यक्ष कहियेहै। औ प्रत्यक्षविषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहियेहै। अथवा प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेदही ज्ञानके प्रत्यक्षत्वका प्रयोजन कहै। उक्तस्थलमैं प्रमातृचेतनका अभेदभी वृत्तिद्वारा हुयाहै। यातैं वृत्तिरूपप्रमाणचेतनका विषयचेतनसैं अभेदभी अबाधितहै। जैसैं तडागजलका कुलीद्वारा केदारजलसैं अभेद होवै। तहां कुलीजलकाभी केदारजलसैं अभेद होवैहै। इहां तडागजलसमान प्रमातृचेतनहै। कुलीसमानवृत्ति औ कुलीजलसमानवृत्ति चेतनहै। केदारसमानविषय औ केदारस्थजलसमानविषय चेतनहै। यद्यपि उक्त दृष्टांतसैं विषयचेतनका तो प्रमातृचेतनसैं अभेद संभवैहै। परंतु प्रमातृचेतनसैं घटादिकविषयका अभेद संभवै नहीं। जैसैं तडागजलसैं कुलीद्वारा केदारजलका अभेद होवैहै। औ पार्थिवकेदारका तडागजलसैं अभेद होवै नहीं। यातैं घटादिकविषयके प्रत्यक्षमैं प्रमातृचेतनसैं अभेद हेतु कह्या सो संभवै नहीं। तथापि प्रमातृचेतनसैं अभेद विषयके प्रत्यक्षत्वका हेतुहै। या कहनेतैं प्रमातृचेतनकी औ विषयकी एकता विवक्षित नहीं है किंतु प्रमातृचेतनकी सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नहीं होवै। किंतु प्रमातृचेतनकी सत्ताही जा विषयकी सत्ता होवै सो विषय प्रत्यक्ष होवैहै। यह अर्थ विवक्षितहै। घटका अधिष्ठान घटावच्छिन्नचेतनहै; रज्जुका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतनहै। इसरीतिसैं सकल विषयनका अधिष्ठान विषयावच्छिन्नचेतनहै। औ अधिष्ठानकी सत्तासैं पृथक् अध्यस्तकी सत्ता

होवै नहीं। किंतु अधिष्ठानकी सत्ताही अध्यस्तकी सत्ता होवैहै। यातैं विषयावच्छिन्नचेतनकी सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नहींहै। औ अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा प्रमातृचेतनका विषयचेतनसैं अभेद होवै तब प्रमातृचेतनभी विषयचेतनसैं अभिन्न हुवा विषयका अधिष्ठान होवैहै। यातैं अपरोक्षवृत्तिके विषयका अधिष्ठान जो प्रमातृचेतन ताकी सत्तासैं विषयकी भिन्न सत्ताका अभावही प्रमातृचेतनसैं विषयका अभेद कहियेहै। सो उक्तरीतिसैं संभवैहै। इसीवास्तै अपरोक्षस्थलमैं विषयदेशमैं वृत्तिका निर्गमन मान्याहै। जैसैं कुलीके संबंधविना तडागजलकी औ केदारजलकी एकता होवै नहीं। तैसैं वृत्तिसंबंधविना प्रमातृचेतन औ विषयचेतनकी एकता होवै नहीं। यातैं जैसैं परोक्षज्ञानकालमैं प्रमातृचेतन औ विषयचेतनकै भेदतैं प्रमातृचेतनसैं भिन्नसत्तावाला विषय होनेतैं प्रमातृचेतनसैं अभिन्नसत्तावाला विषय नहीं होवै है। तैसैं वृत्तिके निर्गमनविना अपरोक्षज्ञानकालमैं भी भिन्नसत्तावाला विषय होवैगा यातैं विषयदेशमैं वृत्तिका निर्गमन मान्याहै। इसरीतिसैं "अयं सर्पः। इदं रजतम्" इत्यादिक अपरोक्षभ्रमज्ञानकी उत्पत्ति होवै तहां भ्रमसैं अव्यवहित पूर्वकालमैं भ्रमका हेतु अधिष्ठानका सामान्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्षरूप प्रमा होवैहै। तिसतैं सर्पादिकविषय औ तिनका ज्ञान उपजैहै यह सांप्रदायिकमतहै॥

उक्त अनिर्वचनीयख्यातिरूप अर्थमैं शंका औ संक्षेपशारीरकका समाधान॥ १६॥

परंतु अपरोक्षप्रमासैं अज्ञानकी निवृत्ति नियमतैं होवैहै। यह वार्त्ता अष्टमप्रकाशमैं प्रतिपादन करेंगे। यातैं रज्जुशुक्तिआदिकनकी इदमाकार अपरोक्षप्रमासैं भी विषयचेतनके अज्ञानकी निवृत्ति हुयातैं उपादानके अभावतैं सर्पादिक औ तिनके ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं॥

याका समाधान संक्षेपशारीरकानुसारी इसरीतिसैं कहैहैं:—इदमाकारवृत्तिसैं विषयके इदंमंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। औ

रज्जुत्वशुक्तित्वादिक विशेषअंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं । औ रज्जुत्व शुक्तित्वादिक विशेषअंशके ज्ञानतैंही अध्यासकी निवृत्ति होनेतैं विशेषअंशका अज्ञानही अध्यासका हेतुहै । सामान्यअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं ॥ जो सामान्यअंशका अज्ञानभी अध्यासका हेतु होवै तौ इदमाकार सामान्यज्ञानसैं भी अध्यासकी निवृत्ति हुई चाहिये । काहेतैं जिसके अज्ञानसैं भ्रम होवै तिसके ज्ञानसैं नष्ट होवैहै यह नियम है । यातैं इदम्‌अंशके अज्ञानकी अध्यासमैं अपेक्षा नहीं । प्रत्युत इदमाकारनेत्रजप्रमाकी अपरोक्ष अध्यासमैं अपेक्षाहै । काहेतैं रज्जुआदिकनतैं नेत्रका संयोग होवै तौ सर्पादिकनका अपरोक्ष भ्रम होवैहै। नेत्रके संयोगविना होवै नहीं । यातैं नेत्रजन्य अपरोक्षप्रमारूप अधिष्ठानका सामान्य ज्ञानही अध्यासका हेतुहै । तहां अन्यप्रकारसैं तौ सामान्यज्ञानका अध्यासमैं उपयोग संभवै नहीं।अध्यासके उपादान अज्ञानका क्षोभ सामान्यज्ञानसैं होवैहै यह मान्या चाहिये । इसरीतिसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकं अध्यासमैं कारणता होनेतैं इदंताअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं ॥

कवितार्किकचक्रवर्त्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायके मतका अनुवाद औ अनादर ॥ १७ ॥

औ कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायनैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमैं हेतुताका निषेध कर्‌याहै । औ अधिष्ठानसैं नेत्रसंयोग होवै तौ सर्पादिकअध्यास होवै; नेत्रसंयोग नहीं होवै तौ सर्पादिकअध्यास होवै नहीं । इसरीतिसैं इंद्रियअधिष्ठानके संयोगके अन्वयव्यतिरेकतैं जो सामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता पूर्व कहीहै तिस अन्वयव्यतिरेकसैं भी इंद्रियअधिष्ठानके संयोगकूंही अध्यासकी कारणता सिद्ध होवैहै । इंद्रियसंयोगजन्यसामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं अन्वयव्यतिरेकसैं कारणताका निश्चय होवैहै । साक्षात्कारणता संभवै जहां परंपरातैं कारणताकल्पन अयोग्य

है । यातैं इंद्रियसंयोगके अन्वयव्यतिरेकसैं अध्यासमैं इंद्रिय-अधिष्ठानके संयोगकूंही साक्षात्कारणता उचितहै । अधिष्ठानके सामान्य-ज्ञानद्वारा इंद्रियसंयोगकूं कारणता कहना उचित नहीं । जैसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानसैं अविद्यामैं क्षोभ मान्याहै । तैसैं अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैं ही क्षोभ मान्या चाहिये । औ अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमैं हेतु नहीं मानैं तौ अध्यासतैं पूर्व इदमाकारअपरोक्षप्रमा होनेतैं जो अज्ञाननिवृत्तिकी शंका है; औ समाधानहै सोभी निर्मूल होवैहै । यहभी अनुकूल लाघव है । इसरीतिसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकी अध्यासमैं कारणताका निषेध कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायनैं कह्या है । सोभी अद्वैतवादी है । तथापि सांप्रदायिकवचनतैं ताकी उक्ति विरुद्ध है । यातैं ताकी उक्तिका खंडन इसी प्रसंगमैं विस्तारसैं कहैंगे ॥

यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु होनेतैं इदंताअंशके अज्ञानकी अध्यासमैं अपेक्षा नहीं । इसीवास्तै संक्षेपशारीरकमैं अधिष्ठान आधारका भेद कह्याहै । सविलासअज्ञानका विषय अधिष्ठान कहियेहै । कार्यकूं विलास कहैहैं । सर्पादिकविलाससहित अज्ञानका विषय रज्जुआदिकविशेषरूप होनेतैं सर्पादिकनका अधिष्ठान रज्जुआदिकविशेषरूपहै । अध्यस्तमैं अभिन्न होयके जाका स्फुरण होवै सो आधार कहियेहै । "अयं सर्पः । इदं रजतम्" इत्यादिक भ्रमप्रतीतिमैं अध्यस्तसर्परजतादिकनतैं अभिन्न होयकै सामान्य इदमंशका स्फुरण होनेतैं सामान्यअंश आधारहै । यामतमैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एकज्ञानकी विषयता होवैहै । या नियमके स्थानमैं आधार अध्यस्तकूं एकज्ञानकी विषयता होवैहै । यह नियमहै । जो अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता मानै तौ रज्जु शुक्ति आदिक विशेषरूपकूं अधिष्ठानता होनेतैं "रज्जुः सर्पः-शुक्ती रूपम्" ऐसा भ्रम हुआ चाहिये । औ सामान्य इदमंशकूं आधारताहै अधिष्ठानता नहीं । यातैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" ऐसा भ्रम नहीं चाहिये।

यातैं विशेषअंशका अज्ञानही अध्यासका हेतुहै । या मतमैं आधार अध्यस्तकूंही एकज्ञानकी विषयता मानी चाहिये ॥

अध्यासकी कारणतामैं पंचपादिका-विवरणकारका मत ॥ १८ ॥

औ पंचपादिकाविवरणकारके मतकैं अनुसारी तौ यह कहैहैं:—आवरण विक्षेप भेदसैं अज्ञानकी दो शक्तिहैं । आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध होनेतैं नाश होवैहै । विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध नहीं । यातैं ज्ञानसैं ताका नाश होवै नहीं । यह वार्ता अवश्य अंगीकरणीयहै । अन्यथा जलप्रतिबिंबित वृक्षके ऊर्द्ध्वभागमैं अधोदेशस्थत्व भ्रम होवै तहां वृक्षका विशेषरूपतैं ज्ञानहुयेंभी ऊर्द्ध्वभागमैं अधोदेशस्थत्वअध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं । तैसैं जीवन्मुक्त विद्वान्कूं ब्रह्मात्मका विशेषरूपतैं ज्ञान हुयेंभी अंतःकरणादिरूप विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं । तहां उक्तस्थलकी नांई सामान्यरूपसैं ज्ञान औ विशेषरूपसैं अज्ञान तो कहना संभवै नहीं । विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं । आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशकीही ज्ञानसैं निवृत्ति होवैहै । यही समाधानहै । तैसैं रज्जुशुक्तिआदिकनके सामान्यज्ञानतैं इदमंशके आवरणका हेतु अज्ञानांशका नाश होवैहै । औ सर्परजतादिकविक्षेप हेतु अज्ञानांशका नाश होवै नहीं । यातैं इदमाकार सामान्यज्ञान हुयेभी सर्पादिकविक्षेपका हेतु इदमंशका अज्ञानभी संभवैहै । इसरीतिसैं इदमाकार सामान्यज्ञानहुयेंभी सविलासअज्ञानका विषय रज्जुआदिक सामान्य अंश संभवैहै । यातैं अधिष्ठानताका इदमंशमैं संभव होनेतैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एकज्ञानकी विषयता संप्रदायसैं प्राप्तहै ताकाभी विरोध नहीं ॥

पंचपादिका औ संक्षेपशारीरकके मतकी विलक्षणता औ तामैं रहस्य ॥ १९ ॥

संक्षेपशारीरककी रीतिसैं विशेषअंशमैं अधिष्ठानताहै । सामान्य-

अंशमैं अधिष्ठानता नहीं। औ विशेषअंशमैं आधारता नहीं। या मतमैं सामान्यअंशमैं अधिष्ठानताहै। इतना भेदहै। औ विशेषअंशमैं आधारताका अभाव इस मतमैंभी समानहै। काहेतैं अध्यस्तसैं अभिन्न होयके प्रतीत होवै सो आधार कहियेहै " रज्जुः सर्पः " इसरीतिसैं जो प्रतीति होवै। तो अध्यस्तसैं अभिन्न होयकै विशेषअंश प्रतीत होवै। उक्तरीतिसैं प्रतीत होवै नहीं। यातैं विशेषरूपतैं रज्जु आधार नहीं इसरीतिसैं प्रथमपक्षमैं इदंत्वरूपतैं रज्जुमैं औ शुक्तिमैं प्रमाणजन्यज्ञानकी प्रमेयताहै। औ रज्जुत्वरूपतैं तथा शुक्तित्वरूपतैं प्रमेयताके अभावतैं अज्ञातत्व होनेतैं सर्प औ रजतकी अधिष्ठानताहै। औ द्वितीयपक्षमैं आवरणशक्ति विरोधि प्रमाकी विषयतारूपप्रमेयता इदंत्वरूपतैंहै। तथापि विक्षेपशक्तिमदज्ञानकी विषयता ज्ञातमैंभी संभवैहै। यातैं इदंत्वरूपतैंही रजतादिकनकी अधिष्ठानताहै॥

या स्थानमैं यह रहस्य है:—अज्ञानकृत आवरण चेतनमैं होवैहै। औ स्वभावसैं आवृतरूप जन्मांधके समान जडपदार्थनमैं अज्ञानकृत आवरणका अंगीकार नहीं। तैसैं प्रमाणजन्यज्ञानकी विषयतारूप प्रमेयताभी चेतनमैं है। घटादिक जडपदार्थनमैं आवरण होवै तौ ताकी निवृत्तिके अर्थ प्रमेयताका अंगीकार होवै। चेतनमैं अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता होनेतैं चेतनमैंही ज्ञातता औ प्रमेयता है। तैसैं सकल अध्यासका अधिष्ठानभी चेतनहै। जडपदार्थ आप अध्यस्त है:—अन्यके अधिष्ठान संभवै नहीं। यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनमैं अज्ञातता तथा ज्ञातता औ अधिष्ठानता किसी प्रकारसैं संभवै नहीं। तथापि मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तो निरवयवच्छिन्न विभुचेतनमैंहै। परंतु मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तिस तिस विषयावच्छिन्नचेतनमैंहै। यह अर्थ अष्टम प्रकाशमैं कहैंगे। तैसैं ब्रह्मज्ञानकी विषयतारूप ज्ञातता तो निरवयवावच्छिन्न चेतनमैंहैं। औ घटादि ज्ञानकी विषयतारूप ज्ञातता घटादिअवच्छिन्नचेतनमैं है। तैसैं अविद्याकी अधिष्ठानता निरवयवावच्छिन्नचेतनमैं है। औ भूत भौतिक प्रपंचकी अधि-

ष्ठानता अज्ञानावच्छिन्नमैं है । औ प्रातिभासिक सर्परजतादिकनकी अ-धिष्ठानता रज्जुअवच्छिन्न शुक्तिअवच्छिन्नादिक चेतनमैं है । इस रीति-सैं चेतनमैं अज्ञातता ज्ञातता अधिष्ठानतादिकनके अवच्छेदक जडपदार्थ हैं । यातैं अवच्छेदकतासंबंधसैं जडपदार्थनमैंभी अज्ञाततादिकनका संभव होनेतैं रज्जु अज्ञातहै । ज्ञातहैं सर्पका अधिष्ठान । इसरीतिसैंभी व्यवहार संभवैहै । इसरीतिसैं सर्पादि भ्रमका हेतु रज्जु आदिकनतैं इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूप अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै । तिस सामान्य ज्ञानतैं क्षोभवती अविद्याका सर्पादिरूप परिणाम औ सर्पादिकनका ज्ञानरूप परिणाम होवैहै । रज्जुआदिक विषय उपहित चेतनस्थ अविद्यांशका सर्पादिक विषयाकार परिणाम होवैहै । इदमाकार वृत्तिउपहित चेतनस्थ अविद्यांशका ज्ञानाकार परिणाम होवैहै । रज्जुअवच्छिन्न चेतन सर्पका अधिष्ठानहै । औ इदमाकार वृत्त्यवच्छिन्नचेतन सर्पज्ञानका अधिष्ठान है ॥

विषयउपहित औ वृत्तिउपहित चेतनके अभेदमैं शंकासमाधान ॥ २० ॥

यद्यपि इदमाकार प्रत्यक्ष वृत्ति होवै तहां विषयउपहितचेतन औ वृत्तिउपहितचेतनका अभेद होवैहै । यातैं उक्तरीतिसैं विषय औ ज्ञानके उपादानका भेद कथन औ अधिष्ठानका भेद कथन संभवै नहीं । औ सर्पादिक विषयके अधिष्ठानतैं ज्ञानके अधिष्ठानकूं भिन्न मानोंगे तौ सर्पादिकनके अधिष्ठान ज्ञानतैं सर्पादिकनके ज्ञानकी निवृत्ति नहीं होवैगी । काहेतैं अपने अधिष्ठानके ज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवैहै । अन्यके अधिष्ठान ज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवै तौ सर्पके अधिष्ठान रज्जुके ज्ञानतैं अध्यस्तसंसारकी निवृत्ति हुई चाहिये । यातैं एकके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय औ तिनके ज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ दोनूंका अधिष्ठान एकही मानना योग्यहै ॥

या शंकाका यह समाधानहैः—जहां एक वस्तुका उपाधिकृत भेद

होवै तौ उपाधिकी निवृत्तिसैं अभेद होवैहै औ दोनूं उपाधि एक देशमैं होवै तहांभी उपहितका अभेद होवैहै । परंतु उपाधिके एकदेशस्थत्वसैं जहां उपहितका अभेद होवैहै । तहां एकही धर्मीमैं तत्त्व उपहितत्व दो धर्म रहैहैं । जैसैं एक आकाशका घट मठ उपाधिके भेदसैं भेद होवै तहां घटमठके नाशतैं अभेद होवैहै । औ मठदेशमैं घटके स्थापनतैंभी घटाकाश मठाकाशतैं भेद रहै नहीं । तौभी घटाकाशमैं घटोपहितत्व औ मठोपहितत्व दो धर्म रहैहैं । औ धर्मी एक है । तथापि जितनैं घटमठ दोनूं रहैं उतनैं काल घटाकाश मठाकाश यह दोनूं व्यवहार होवैहैं । तैसैं रज्जुआदिक विषय देशमैं वृत्तिके निर्गमनकालमैं वृत्तिउपहित चेतनसैं विषयचेतनका यद्यपि अभेद होवैहै तथापि दोनूं उपाधिके सद्भावतैं वृत्तिउपहितत्व रज्जुउपहितत्व दो धर्म रहैहैं । तिनमैं सर्पादिक विषयकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म रज्जुउपहितत्व है । औ सर्पादिकनके ज्ञानकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म वृत्तिउपहितत्व है । इसरीतिसैं सर्पादिक विषयोपादान अज्ञानांशकी चेतनमैं अधिकरणताका अवच्छेदक रज्जुउपहितत्व है । औ भ्रांतिज्ञानोपादान अज्ञानांशकी चेतनमैं अधिकरणताका अवच्छेदक वृत्त्युपहितत्व है । इसरीतिसैं एक देशमैं उपाधिके होतैं उपहितका अभेद हुयेंभी धर्मनका भेद रहैहैं । यातैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्नचेतननिष्ठ अज्ञानांशमैं भ्रमज्ञानकी उपादानता है । औ रज्जुआदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतननिष्ठ अज्ञानांशमैं भ्रमके विषयकी उपादानताहै । तैसैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्न चेतनमैं भ्रमज्ञानकी अधिष्ठानता है । औ रज्जुआदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतनमैं सर्पादिक विषयकी अधिष्ठानता है । या प्रकारतैं उपाधिके सद्भावकालमैं एकदेशस्थ उपाधिके होनेतैं उपहितका अभेद हुयेंभी उपाधिपुरस्कारतैं भेद व्यवहारभी होवैहै । औ भिन्नदेशमैं उपाधि होवै तब केवल भेदव्यवहार होवैहै । उपाधिकी निवृत्ति होवै तब भेदव्यवहार होवै नहीं । केवल अभेदव्यवहार होवैहै । या प्रकारतैं वृत्ति औ विषय दोनूं एकदेशस्थ होवैं ।

तब चेतनका अभेद हुयेंभी उपाधिपुरस्कारतैं पूर्व उक्त उपादान औ अधिष्ठानका भेदकथन असंगत नहीं। औ स्वरूपसैं उपहितका अभेद है । यातैं एक अधिष्ठानके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय औ तिनके ज्ञानकी निवृत्तिभी संभवैहै ॥

रज्जुआदिकनकी इदमाकार प्रमातैं सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तामैं दो पक्ष ॥ २१ ॥

रज्जुआदिकनकी इदमाकार प्रमातैं सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तहां दो पक्षहैं:—कोई तो कहैहैं "अयं सर्पः । इदं रजतम्" इस रीतिसैं अधिष्ठानगतइदंताकूं औ ताके सर्परजतादिकनमैं संबंधकूं विषय कर्ता हुवा सर्परजतादिगोचरभ्रम होवैहै । अधिष्ठानकी इदंताकूं औ इदंताके संबंधकूं त्यागिकै केवल सर्परजतादि गोचर अपरोक्ष भ्रम होवै नहीं । जो केवल अध्यस्त गोचरही भ्रम होवै तौ "सर्पः रजतम्" ऐसा आकार भ्रमका हुया चाहिये। औ "इमं सर्पं जानामि। इदं रजतं जानामि" ऐसा भ्रमका अनुव्यवसायभी इदंपदार्थसैं तादात्म्यापन्न सर्परजतादि गोचर व्यवसायकूं विषय करैहै। औ कल्पित सर्पादिकनमैं इदंता है नहीं। काहेतैं वर्तमानकाल औ पुरोदेशका संबंध इदंता होवैहै । व्यावहारिक देशकालका प्रातिभासिकसैं व्यावहारिक संबंध संभवै नहीं। औ अधिष्ठानकी इदंताकी कल्पितमैं प्रतीतिसैं व्यवहारिका निर्वाह होतैं कल्पितमैं इदंताका अंगीकार निष्फलहै । औ अन्यथाख्यातिसैं विद्वेष होवै तौ अधिष्ठानकी इदंताका कल्पितमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजैहै कल्पितमैं इदंताका अंगीकार नहीं। तथापि संबंधीकूं त्यागिकै केवल संबंधका ज्ञान होवै नहीं। यातैं अधिष्ठानकी इदंताकूं त्यागिकै केवल अध्यस्तगोचर अपरोक्षभ्रम होवै नहीं । इसरीतिसैं इदं पदार्थकी द्विधा प्रतीति होवैहै । एकतो इंद्रिय अधिष्ठानके संयोगतैं इदमाकार प्रमा अंतःकरणकी वृत्तिरूपप्रतीति होवैहै । औ दूसरी वृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्परजतादिगोचरभ्रमप्रतीति होवैहै । सोभी अध्यस्तमैं इदं-

पदार्थके तादात्म्यकूं विषयकर्तीहुई इदंगोचर होवैहै । इसरीतिसैं सारे अपरोक्षभ्रम इदमाकार हुयें अध्यस्ताकार होवैहै कोई आचार्य ऐसैं मानैहैं ॥

और बहुत ग्रंथकार यह कहैहैं:—अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रमातैं क्षोभवाली अविद्याकी केवल अध्यस्ताकार परिणाम होवैहै । अविद्याका इदमाकार परिणाम होवै नहीं। काहेतैं व्यावहारिक पदार्थाकार अविद्याका परिणाम संभवै नहीं । साक्षात् अविद्याजन्य प्रातिभासिक पदार्थाकारही अविद्याका परिणाम भ्रम ज्ञान होवैहै । यातैं अधिष्ठानकी इदंतामैं भ्रम ज्ञानकी विषयता नहीं । केवल अध्यस्तमैंहीं भ्रमकी विषयताहै ॥

और जो पूर्वमतमैं कह्याहै "अयं सर्पः । इदं रजतम्" ऐसा भ्रमका आकार होवैहै । तैसैं "इदं रजतं जानामि" यह भ्रमका अनुव्यवसाय होवैहै । जो अध्यस्तमात्र गोचरभ्रम होवै तौ "सर्पः रजतम्" ऐसा भ्रमका आकार हुया चाहिये । औ "रजतं जानामि" ऐसाही अनुव्यवसाय हुया चाहिये ॥

ताका यह समाधानहै:—जैसैं सर्परजतादिकनकै अधिष्ठानगतइदंताका अध्यस्तमैं भान होवै अथवा अधिष्ठानगतइदंताका अध्यस्त सर्पादिकनमैं अनिर्वचनीयसंबंध उपजैहै । तैसैं सर्पादिज्ञानाभासका अधिष्ठान इदमाकार प्रमावृत्तिहै । ता प्रमावृत्तिमैं इदंपदार्थविषयकत्वहै। ताकी प्रतीति सर्पादिभ्रममैं होवैहै । अथवा प्रमावृत्तिरूप अधिष्ठानमैं जो इदंपदार्थविषयकत्व ताका अनिर्वचनीय संबंध सर्पादि ज्ञानमैं उपजैहै । यातैं इदमाकारत्व शून्यभ्रम ज्ञानमैं इदमाकारत्वकी प्रतीति होवैहै । यद्वा इदमाकारवृत्तिउपहितचेतनही सर्पादिज्ञानाभासका अधिष्ठानहै । उक्तवृत्तिउपलक्षित जो अधिष्ठान होवै तौ उक्तवृत्तिसैं दोच्यारि घटिकाकै व्यवधान हुयेभी सर्पादिक भ्रम हुया चाहिये । काहेतैं उपलक्षणवालेकूं उपलक्षित कहैहैं । औ उपलक्षणमैं वर्तमानत्वकी अपेक्षा नहीं । यहअर्थ आगे कहैंगे । औ वक्ष्यमाण रीतिसैं उपाधिमैं वर्त्तमानत्वकी अपेक्षाहै ।

इदमाकारवृत्ति जाकी उपाधि होवै सो इदमाकारवृत्त्युपहित कहियेहै । यातैं सर्परजतादिकनका भ्रमज्ञान होवै तिसकालमैं अंतःकरणकी इदमाकारवृत्तिभी रहैहै । यह अवश्य मान्या चाहिये । काहेतैं अधिष्ठानकी सत्ता कालसैं अतिरिक्तकालमैं अध्यस्त होवै नहीं । यातैं भ्रमज्ञानके समयमैं वृत्त्युपहितचेतनकी अधिष्ठानताकी उपयोगिनी इदमाकार अंतःकरणकी वृत्ति रहैहै । औ रजताकार अविद्यावृत्ति होवैहै । इस रीतिसैं " अयं सर्पः । इदं रजतम् " यह दो ज्ञानहैं । इदमाकार प्रमावृत्तिहै । औ सर्परजतादिक आकारवाली भ्रमवृत्तिहै । अवच्छेदकतासंबंधसैं भ्रमवृत्तिका इदमाकार प्रमावृत्ति अधिष्ठानहै । अध्यस्तका अभेद संबंध होवैहै । जैसैं ब्रह्म औ प्रपंचका " सर्वमिदं ब्रह्म " इस प्रतीतिका विषय अभेदहै । यातैं " अयं सर्पः । इदं रजतम् " इसरीतिसैं उभयवृत्तिका अभेद प्रतीत होवैहै । यद्यपि उक्तरीतिसैं वृत्तिद्वय होवै तौ " अधिष्ठान अध्यस्त दोनूं एक ज्ञानके विषय होवैहैं " यह प्राचीन वचन असंगत होवैगा । तथापि एकज्ञानके विषय होवैहैं । याका यह अर्थ नहीं एकवृत्तिकै विषय होवैहैं । किंतु अधिष्ठान औ अध्यस्त एक साक्षीके विषय होवैहैं। यह प्राचीन वचनका अर्थहै । रज्जुशुक्ति आदिकनके देशमैंही सर्प रजतादिक होवैहै । औ इदमाकार वृत्तिभी रज्जुशुक्ति आदिक देशमैं जावैहै । यातैं इदमाकारवृत्तिउपहित साक्षीके अधिष्ठान औ अध्यस्त विषयहै । इसरीतिसैं अधिष्ठान औ अध्यस्त एक ज्ञानके विषय होवैहै । इस प्राचीन वचनमैं ज्ञानपदका साक्षी अर्थहै वृत्ति नहीं । यातैं भ्रमवृत्तिकूं अध्यस्तमात्रगोचरता माननैंमैं बहुत आचार्योंकी संमतिहै ॥

कवितार्किकचक्रवर्तिनृसिंहभट्टोपाध्यायका मत ॥ २२ ॥

औ कवितार्किकचक्रवर्तिनृसिंहभट्टोपाध्याय तो यह कहै हैं:— भ्रांतिज्ञानसैं विना प्रमारूप इदमाकार ज्ञान भ्रमका हेतु होवै नहीं । किंतु " अयं सर्पः । इदं रजतम् " इसरीतिसैं भ्रमरूप एकही ज्ञान होवैहै । काहेतैं भ्रमसैं पूर्व इदं पदार्थाकार प्रमारूप सामान्यज्ञान रज्जुशुक्ति आ-

दिकनका मानैं ताकूं यह पूछैंहैः—अनुभवके अनुसारतैं ज्ञानद्वयका अंगीकारहै । अथवा भ्रमरूप कार्यकी अनुपपत्तिसैं भ्रमभिन्न सामान्यज्ञानका अंगीकारहै जो अनुभवकै अनुसारतैं ज्ञानद्वय कहैं तौ संभवे नहीं। काहेतैं प्रथम मतमैं तौ इदं पदार्थगोचर दो वृत्ति कहीहैं । एकतो प्रमारूप अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति कही । औ दूसरी अविद्याकी भ्रमरूप वृत्ति इदंपदार्थकूं विषय कर्तीहुई रजत गोचर "इदं रजतम्" इसरीतिसैं कही । या मतमैं इदंपदार्थकी द्विधा प्रतीति कही । सो किसीकै अनुभवमैं आरूढ होवै नहीं । सर्परजतादि ज्ञानकी नांई इदंगोचर ज्ञानभी एकही अनुभवसिद्धहै । यातैं प्रथम मत अनुभवानुसारी नहीं । औ द्वितीय मतमैं इदं पदार्थके दो ज्ञान तो नहीं माने परंतु "अयं सर्पः । इदं रजतम्" इत्यादिक दो दो ज्ञान मानैहैं । इदमाकार तौ प्रमा मानीहै । औ सर्परजतादिगोचरभ्रम मान्याहै । सोभी अनुभवसैं विरुद्धहै । काहेतैं रज्जु औ शुक्तिके ज्ञानतैं सर्प रजतके बाधसैं उत्तर कोई पूछैः—तेरैकूं कैसा भ्रम हुया था ताका यह उत्तर कहैहैंः—"अयं सर्पः।इदं रजतम्" ऐसा भ्रम मेरेकूं होता भया औ इदमाकार प्रमा हुई । सर्पाकार रजताकार भ्रम हुया ऐसा उत्तर कोई कहै नहीं। यातैं द्वितीय मतकी रीतिसैंभी ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवविरुद्धहै । यातैं इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप इदमाकारज्ञान प्रमाहै।औ इदमाकारज्ञानजन्य सर्परजतादिगोचर इदंपदार्थविषयक अथवा इदंपदार्थअविषयक अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञानाभासहै । इसरीतिसैं ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवानुसारी नहीं ॥

उपाध्यायके मतमैं सामान्य ज्ञान (धर्मिज्ञान) वादीकी शंका औ समाधान ॥ २३ ॥

औ जो सामान्यज्ञान वादी यह कहैंः—रज्जुआदिकनतैं इंद्रियसंयोग होवै तौ सर्पादिकअध्यास होवैहैं । इंद्रियसंयोग नहीं होवै तौ अध्यास होवै नहीं । इसरीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं इंद्रियका अधिष्ठानसैं

संयोगकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवैहै । औ अधिष्ठान इंद्रियके संयोगकूं अधिष्ठानके ज्ञानद्वाराही कारणता संभवैहै । अन्य प्रकारसैं अन्य अधिष्ठान इंद्रियसंयोगका अध्यासमैं उपयोग संभवै नहीं । जो अध्यासकी कारणता कहैं तौ संभवै नहीं । काहेतैं अधिष्ठानइंद्रियके संयोगविनाभी अहंकारादिक अध्यास होवैहै । यातैं अध्यासमात्रमैं अधिष्ठानज्ञानका सामान्यज्ञान हेतुहै । अहंकारादिक अध्यासका अधिष्ठान प्रत्यक्स्वरूप आत्माहै सो स्वयंप्रकाशहै । सर्पादिक अध्यासके अधिष्ठानका सामान्यज्ञान इंद्रियसंयोगतैं होवैहै । इसरीतिसैं निजप्रकाशशून्य अधिष्ठानके सामान्यज्ञानद्वाराही इंद्रियसंयोगका अध्यासमैं उपयोगहै । साक्षात् उपयोग नहीं । यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका कारणहै । अध्यास कार्यहै । जहां कार्य प्रतीत होवै औ कारण प्रतीत होवै नहीं । तहां कार्यकी अन्यथाअनुपपत्तिसैं कारणकी कल्पना होवैहै । भ्रम स्थलमैं इदमाकार प्रमा यद्यपि अनुभवसिद्ध नहींहै । तथापि भ्रमरूप कार्यकी सामान्यज्ञान रूप कारण विना अनुपपत्ति होनेतैं सामान्यज्ञानकी कल्पना होवैहै ॥

इसरीतिसैं धर्मिज्ञान वादी कहै तौ संभवै नहीं । अध्यासके हेतु सामान्यज्ञानकूं धर्मिज्ञान कहैहैं । या प्रसंगमैं सामान्य ज्ञानकूं अध्यासकारण मानैं सो पूर्वपक्षीहै औ सामान्य ज्ञानका अपलापी उपाध्याय सिद्धांती है । ताकी उक्ति कहैहैंः— सामान्यज्ञानविना कोईभी अध्यास नहीं होवै तौ अध्यासकी कारणता सामान्यज्ञानमैं संभवैहै अधिष्ठानके सामान्य ज्ञानविना घटादिक अध्यास होवैहै । यातैं अध्यास मात्रमैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं कारणता नहीं । धर्मिज्ञानवादी जो घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्यज्ञान कहैं ताकूं यह पूछ्या चाहिये । घटादिक अध्यासका हेतु अधिष्ठानतैं नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी वृत्ति रूप सामान्यज्ञानहै अथवा चेतनस्वरूप प्रकाशही सामान्यज्ञानहै । जो प्रथम पक्ष कहै तौ संभवै नहीं । काहेतैं घटादिक अध्यासका अधिष्ठान अज्ञानावच्छिन्न ब्रह्म नैं

रूपहै । यातैं ब्रह्मगोचर अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं । औ द्वितीयपक्ष कहै तौ स्वरूप प्रकाश आवृतहै । तिस आवृतप्रकाशरूपसामान्यज्ञानकूंभी अध्यासका हेतु मानैं तौ रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोगविनाभी सर्पादिक अध्यास हुया चाहिये । यातैं आवृतप्रकाशरूपसामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं । इसरीतिसैं घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्यज्ञानकै अभावतैं अध्यासमात्रमैं सामान्यज्ञानकी कारणताकै अभावतैं अध्यासरूपकार्यकी अनुपपत्तिसैं सामान्यज्ञानरूप इदमाकार वृत्तिका कल्पन होवै नहीं ॥

और जो धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—सकल अध्यासमैं अनावृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं हेतु कहै तौ घटादिक अध्यासमैं व्यभिचार कथन संभवै । अध्यासमात्रमैं तो आवृत वा अनावृत साधारण प्रकाश हेतुहै । औ प्रातिभासिक अध्यासमैं अनावृतप्रकाश हेतुहै । जैसैं उपाध्यायके मतमैं सर्पादिक अध्यासके हेतु इंद्रियसंयोग मान्याहै । औ घटादिक अध्यासका हेतु इंद्रियसंयोग मान्या नहीं । औ संभवै नहीं । यातैं इंद्रियसंयोगके अभावकालकै सर्पादिक अध्यास होवै नहीं । औ घटादिक अध्यास इंद्रियसंयोगविनाभी होवैहै । यह व्यवस्था संभवैहै तैसैं हमारे मतमैं प्रातिभासिक सर्पादिक अध्यासका हेतु अनावृतप्रकाशहै । यातैं आवरणभंगके अर्थ सर्पादिक अध्यासतैं पूर्व इदमाकार सामान्यज्ञानरूप प्रमाकी अपेक्षाहै । औ घटादिक अध्यासका हेतु साधारण प्रकाशहै । यातैं अनावृतप्रकाशकै सद्भावतैं घटादिक अध्यासमैं वृत्तिकी अपेक्षा नहीं । यातैं सामान्यज्ञानरूप वृत्तिकै अभावकालमैं सर्पादिक अध्यास होवै नहीं औ घटादिक अध्यास वृत्तिविना होवैहै । यह व्यवस्था संभवैहै । धर्मिज्ञानवादीका यह कथन भी असंगतहै । काहेतैं प्रातिभासिक अध्यासतैं पूर्व इंद्रियजन्याभासरूप अंतःकरणकी वृत्ति नियमतैं होवैहै । याकाभी शंखकै पीतिमाध्यासमैं औ कूपजलके नीलताध्यासमैं व्यभिचारहै । काहेतैं ब्रह्मज्ञानविना

जाका बाध होवै सो प्रातिभासिक अध्यास कहियेहै। शंखमैं पीतिमाका औ कूपजलमैं नीलताका बाधभी ब्रह्मज्ञानसैं प्रथमही शंखश्वेतताज्ञान औ जलश्वेतताज्ञानसैं होवैहै। यातैं यहभी प्रातिभासिक अध्यासहै। या स्थानमैं धर्मिज्ञानवादीकी यह प्रक्रियाहैः—प्रातिभासिक अध्यासमैं अनावृतप्रकाशकूं कारणताके नियमतैं शंख औ जलसैं नेत्रके संयोगतैं इदमाकार अंतःकरणकी वृत्तिसैं अभिव्यक्त शंखावच्छिन्नचेतनमैं औ जलावच्छिन्नचेतनमैं पीतरूपका अध्यास होवैहै। औ उपाध्यायके मतमैं तो शंखसैं औ जलसैं नेत्रका संयोग हुयें पीतरूपका औ नीलरूपका अध्यास होवैहै। इदमाकार वृत्तिकी अपेक्षा नहीं। यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं यह प्रष्टव्यहैः—इदमाकार वृत्तिका विषय रूपविना केवल शंखादिक द्रव्यहै अथवा रूपविशिष्ट शंख औ रूपविशिष्ट जल इदमाकार वृत्तिका विषयहै। जो रूपकूं त्यागिकै केवल द्रव्यकूं वृत्ति विषय करैहै। यह कहै तौ संभवै नहीं। काहेतैं नेत्रजन्य वृत्तिका यह स्वभावहै। रूपकूं विषय करैहैं। औ रूपविशिष्ट द्रव्यकूं विषय करैहै। केवल द्रव्यकूं नेत्रजन्यवृत्ति विषय करै नहीं। औ रूपकूं त्यागिकै केवल द्रव्यकूं विषय करै तौ घटकै चाक्षुषज्ञानवालेकूं घटके नीलतादिकनमैं संदेह हुया चाहिये। औ रूपरहित पवनादि द्रव्यकाभी चाक्षुषज्ञान हुया चाहिये॥ यातैं केवल द्रव्यगोचर इदमाकार चाक्षुषवृत्ति शंखादिकनका सामान्यज्ञानरूप संभवै नहीं। औ रूपविशिष्ट शंखगोचर तथा रूपविशिष्ट जलगोचर वृत्ति कहै तौ यह प्रष्टव्यहैः--शुक्लरूपविशिष्ट शंखकूं औ शुक्लरूपविशिष्ट जलकूं वह वृत्ति विषय करैहै अथवा अध्यस्तरूपविशिष्टकूं विषय करैहै जो प्रथम पक्ष कहै तो शुक्लरूपकूं विषयकर्तीहुई इदमाकार वृत्तिसैं उत्तरकालमैं पूर्व वृत्तिका विरोधि पीतभ्रम औ नीलभ्रम नहीं होवैगा। यातै पीतभ्रमतैं औ नीलभ्रमतैं पूर्व शुक्लरूपविशिष्ट शंखजलका इदमाकार ज्ञान संभवै नहीं। तैसैं अध्यस्तरूपविशिष्ट गोचर इदमाकार वृत्तिकूं मानैं तौ शंखमैं अध्यस्त पीतरूपहै औ जलमैं अध्यस्त नीलरूपहै। तद्विशिष्ट ज्ञानही

भ्रम है । ताकूं भ्रमकी हेतुता कथनमैं आत्माश्रय होनेतैं संभवै नहीं । किंच धर्मिज्ञानवादी इदमाकार ज्ञान प्रमारूपही अध्यासका हेतु है । यह मानैंहै । औ अध्यस्तरूपविशिष्टकै ज्ञानकूं भ्रमत्व होनेतैं प्रमारूप धर्मिज्ञान अध्यासका हेतुहै यह धर्मिज्ञानवादीका भंग होवैगा । इसरीतिसैं शंखमैं पीतताभ्रमकै औ जलमैं नीलताभ्रमकै पूर्व अधिष्ठानका सामान्यज्ञान संभवै नहीं । औ अधिष्ठान इंद्रियकै संयोगका संभव है । यातैं सामान्यज्ञानका व्यभिचार औ इंद्रियसंयोगका अव्यभिचार होनेतैं अध्यासका हेतु अधिष्ठानतैं इंद्रियका संयोग है । सामान्यज्ञान हेतु नहीं यह उपाध्यायका मतहै ॥

प्राचीन आचार्य्यधर्मिज्ञानवादीका मत ॥ २४ ॥

औ प्राचीन आचार्य धर्मिज्ञानवादी है । धर्मिज्ञानका जो शंख पीतादिक अध्यासमैं व्यभिचार कह्या ताका समाधान यह कहैहैं:—अध्यासमात्रमैं सामान्यज्ञान हेतु नहीं । किंतु अध्यास विशेषमैं सादृश्यज्ञानत्व रूपतैं सामान्यज्ञानकूं कारणता कहनैंकूं अध्यासके भेद कहैहैं:--प्रातिभासिक अध्यास दो प्रकारका होवैहै । एकतो धर्मीके विशेषज्ञानसैं प्रतिबद्ध्य है । औ दूसरा विशेषज्ञानसैं अप्रतिबद्ध्य है । नीलपृष्ठता त्रिकोणतादिक विशेषधर्मके ज्ञान हुयें रजत अध्यास नहीं होवै । यातैं रजताध्यासतो विशेषज्ञानसैं प्रतिबद्ध्य है । तैसैं सर्पादिक अध्यासभी जानने ॥ श्वेततारूप विशेषधर्मके ज्ञान हुयेंभी शंखमैं पीतताध्यास औ जलमैं नीलताध्यास होवैहै । यातैं उक्त अध्यास विशेषज्ञानसैं अप्रतिबद्ध्य है । तैसैं रूपराहित्य विशेषधर्मके ज्ञान हुयेंभी आकाशमैं नीलताध्यासभी विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य है । सितामैं कटुताअध्यासभी विशेषज्ञानसैं अप्रतिबद्ध्य है । काहेतैं आकाश नीलरूप है । इस निश्चयवालेकूं औ अनेकवार सितामैं मधुरताके निश्चयवालेकूंभी आकाशमैं नीलताध्यास औ पित्तदोषतैं सितामैं कटुताअध्यास होवैहै । इसरीतिसैं द्विविध अध्यास है । तिसमैं अंत्य अध्यास तो अधिष्ठान अध्यस्तके सादृश्य-

ज्ञानविनाही होवैहै। अधिष्ठान अध्यस्तमैं विरोधी धर्महै । तहां सादृश्यका संभव नहीं । औ परस्पर वैधर्म्यज्ञान हुयेंभी उक्त अध्यास होवैहै । यातैं भ्रमरूप सादृश्यज्ञानभी तिस अध्यासका हेतु नहीं । परंतु विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसैं रजत सर्पादिक अध्यासमैं अधिष्ठानका अध्यस्तसैं सादृश्यज्ञान हेतु है। जो विशेषज्ञानसैं प्रतिबद्धय अध्यासकूंभी सादृश्यज्ञानजन्य नहीं मानै औ दुष्टइंद्रियसंयोगजन्यही मानै तौं शुक्तिमैं रजताध्यासकी नांई दुष्ट नेत्रकै संयोगतैं इंगालमैंभी रजताध्यास हुया चाहिये। अग्निदग्ध नीलकाष्ठकूं इंगाल कहैहैं । रज्जुमैं सर्पाध्यासकी नांई दुष्ट नेत्रसंयोगतैं घटमैंभी सर्पाध्यास हुया चाहिये । इसरीतिसैं विशेष ज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै । ऐसे प्रातिभासिक अध्यासमैं सादृश्यज्ञान हेतु है। सादृश्यज्ञानभी सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही है। शुक्तिमैं औ रूप्यमैं चाकचिक्यरूप सादृश्य है। रज्जुमैं औ सर्पमैं भूमिसंबंध दीर्घत्व सादृश्य है। पुरुषमैं औ स्थाणुमैं उच्चैस्त्व सादृश्य है। या प्रकारतैं अधिष्ठान अध्यस्तमैं समानधर्मही सादृश्य पदार्थहै । ताकै ज्ञानकूं सामान्यज्ञान औ धर्मिज्ञान कहना संभवै है। इसरीतिसैं विशेष ज्ञानसैं प्रतिबद्धय जो प्रातिभासिक अध्यास तामैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही हेतु है । दुष्टइंद्रियसंयोगका सादृश्यज्ञानद्वारा उक्त अध्यासमैं उपयोग है ॥

धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उपाध्यायका शंका औ समाधान ॥ २९ ॥

औ जो उपाध्यायका अनुसारी इसरीतिसैं कहैः—प्रमातृदोष प्रमाणदोष प्रमेयदोषसैं धर्मिज्ञान प्रतिबध्य अध्यास होवैहै । सादृश्यज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु कहै तौ प्रमाताका धर्मज्ञान होवैहै। यातैं प्रमातृदोषतैं अध्यासका हेतु होवैहै। औ सादृश्यकूं अध्यासका हेतु कहै तौ विषय दोष हुवा अध्यासका हेतु होवैहै । जैसैं प्रमातृदोषरूप सादृश्यज्ञानकूं अध्यासहेतु कहै। इंगालमैं रूपअध्यासकी आपत्तिका परिहार होवै। तैसैं विषयदोषरूप सादृश्यकूं अध्यासहेतु मानेभी उक्त आपत्तिका परिहार

होवैहै । यातैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता माननी निष्फल है। इसरीतिसैं उपाध्यायानुसारी कहै तौ धर्मिज्ञानवादीका यह समाधान हैः—दूरदेशतैं समुद्रके जलमैं नीलशिलाका भ्रम होवै सोभी विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यास है। काहेतैं जलमैं शुक्लरूप औ जलत्वके ज्ञानसैं नीलशिलाभ्रमका प्रतिबंध होवैहै । औ जलमैं नीलशिलाका सादृश्य नहींहै। किंतु समुद्रजलमैं नीलरूपका भ्रम होयकै नीलशिलाका भ्रम होवैहै । तहां नीलरूपका ज्ञानही भ्रमरूप सादृश्यज्ञानहै । यातैं भ्रमप्रमासाधारण सादृश्यज्ञानही उक्त अध्यासका हेतुहै। स्वरूपतैं सादृश्य हेतु नहीं । और जो उपाध्यायानुसारी इसरीतिसैं कहैः—इंगालादिकनमैं रूप्यादिकअध्यासकी आपत्ति परिहारकै अर्थ-सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं उक्त अध्यासकी कारणता मानैहैं। अधिष्ठान-अध्यस्तमैं समानधर्मरूप जो सादृश्यहै तासैं इंद्रियका स्वसंयुक्त तादात्म्यरूपसंबंधही सादृश्यज्ञानकी सामग्रीहै । समुद्रजलमैं नीलशिलाके अध्यासका हेतु भ्रमस्वरूप सादृश्यज्ञानहै । ताकी सामग्री दोषवत्-इंद्रियका जलमैं संयोगहै । इसरीतिसैं जो सादृश्यज्ञानकी सामग्री सोई उक्त अध्यासकी हेतुहै । सादृश्यज्ञानकूं जो अध्यासका हेतु मानैं तौभी सादृश्यज्ञानमैं इंद्रियसंबंधकूं कारणता अवश्य माननी होवैहै। यातैं सादृश्यज्ञानके कारणकूंही अध्यासमैं कारणता उचितहै। तिन दोनूंके मध्य सादृश्यज्ञानका अंगीकार निष्फलहै। औ शंखपीतादिक अध्यासमैं इंद्रियसंबंधकूंही कारणताहै तिसस्थानमैं सादृश्यज्ञान संभवै नहीं । यातैं जहां सादृश्यज्ञानकी अपेक्षाहै तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्री अध्यासकी कारणहै । सादृश्यज्ञानकूं कारणता नहीं । सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासकी कारणता मानैं सकल अध्यासमैं एक इंद्रियसंयोगकूं कारणता सिद्ध होनेतैं लाघवहै । औ सादृश्यज्ञानकूं कारणता मानें विरूपअध्यासमैं इंद्रियसंयोगकूं हेतुता माननी औ सादृश्य अध्यासमैं सादृश्यज्ञानकूं हेतुता माननेमैं अध्यासके कारणद्वय कल्पनसैं गौरवहै। यातैं जहां सादृश्यज्ञानकूं

हेतु कहे तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्रीरूप इंद्रियसंबंधही अध्यासकाहेतुहै ॥

इसरीतिसैं उपाध्यायकी शंकाका धर्मिज्ञानवादी यह समाधान करैहैः—इंद्रियसंबंधसैं ज्ञानकी उत्पत्तिही देखीहै । यातैं रजतादिकविषयकी उत्पत्ति इंद्रियसंबंधसैं संभवै नहीं । औ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासका हेतु मानें कारणद्वयकल्पन गौरव कह्या सो असंगतहैः—काहेतैं धर्मिज्ञानवादीकूं कारणद्वयके कल्पनमैं जैसैं द्वित्वसंख्याका कल्पनहै तैसैं उपाध्यायके मतमैं सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका कारण कल्पनमैं कारणका अधिक शरीरकल्पनहै । सादृश्यज्ञानसामग्रीके स्वरूपमैं अंतर्भूत सादृश्यज्ञानहै । यातैं उपाध्यायके मतमैं सादृश्यज्ञानसामग्री अधिकशरीरवती अध्यासकी हेतु माननी होवैहै । इसरीतिसैं लाघवगौरव तौ दोनूं मतमैं समहै । औ ज्ञानकी सामग्रीतैं विषयकी उत्पत्तिका असंभवरूप युक्तिका विरोध उपाध्यायके मतमैं अधिक दोषहै । यातैं सादृश्यज्ञानही उक्त अध्यासका हेतुहै । सादृश्यज्ञानकी सामग्री हेतु नहीं ॥

उपाध्यायकरि सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणताका खंडन ॥ २६ ॥

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी सादृश्यज्ञानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानकूं विशेषज्ञानप्रतिबध्य अध्यासमैं कारणता कहै तौ । इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं समाधानहैः—विरूपमैंभी अध्यास होनेतैं सकल अध्यासमैं तो सादृश्यज्ञानकूं कारणता संभवै नहीं । किंतु इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासकै परिहारवास्तै विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासमैंही सादृश्यज्ञानकूं हेतुता मानैंहैं । तहांभी रूप्यादिक अध्यासमैं जैसैं नीलपृष्ठ त्रिकोणतादिक विशेषधर्मका ज्ञान अध्यासका प्रतिबंधकहै । तैसैं विशेषधर्मज्ञानकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधक होनैतैं इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति होवै नहीं । यातैं सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फलहै । तथाहिः—जिस पदार्थका ज्ञान जामैं प्रतिबंधक होवै तिस पदार्थके ज्ञानकी सामग्रीभी तिसका प्रति-

बंधक होवैहै यह नियमहै । जैसैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्निअभावका ज्ञानहै; ताकी सामग्री वह्निअभावव्याप्यका ज्ञानहै । काहेतैं व्याप्यके ज्ञानसैं व्यापकका ज्ञान होवैहै । जैसैं वह्नि-व्याप्य धूमहै । ताके ज्ञानसैं व्यापक वन्हिका ज्ञान होवैहै । तैसैं वन्हि-अभावके व्याप्य जलादिकहै । तिनके ज्ञानतैं वन्हिके अभावका ज्ञान होवैहै । यातैं वन्हिअभावके ज्ञानकी सामग्री वन्हिअभावके व्या-प्यका ज्ञानहै । वन्हिकी अनुमितिका प्रतिबंधक वन्हिअभावका ज्ञान है । तिस वन्हिअभावज्ञानकी सामग्री वन्हिअभावके व्याप्यका ज्ञा-नभी वन्हिअनुमितिका प्रतिबंधकहै । इसरीतिसैं प्रतिबंधकज्ञानकी सा-मग्रीभी प्रतिबंधक होवैहै । यद्यपि प्रतिबंधककी सामग्रीकूं प्रतिबंधक कहै तौ दाहका प्रतिबंधक जो मणि ताकी सामग्रीकूं दाहकी प्रतिबंधक-ताका व्यभिचारहै । तथाहि प्रतिबंधकज्ञानकी सामग्रीकूं प्रतिबंधकता माननैमैं व्यभिचार नहीं । इस रीतिसैं अध्यासका प्रतिबंधक जो विशेष-ज्ञान ताकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधकहै । शुक्तिमैं रूप्यअध्या-सका प्रतिबंधक नीलतारूप विशेषधर्मका ज्ञानहै । ताकी सामग्री नील-भागव्यापि नेत्रसंयोगहै । सोभी रूप्यअध्यासका प्रतिबंधकहै । का-हेतैं नीलभागमैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगहुयां शुक्तिज्ञानही होवैहै, रूप्य-भ्रम होवै नहीं । शुक्तिके नीलतैं भिन्नभाग जो चाकचिक्यदेश-तासैं नेत्रका संयोग हुयें रूप्यभ्रम होवैहै । इसरीतिसैं नीलरूपवत् ध-र्मीका ज्ञान रूप्यअध्यासका प्रतिबंधकहै । औ नीलरूपके आश्रयतैं नेत्रका संयोगसंबंध तैसैं नीलरूपसैं नेत्रका संयुक्त तादात्म्यसंबंध प्रति-बंधकज्ञानकी सामग्रीहै । सो भी रूप्यअध्यासका प्रतिबंधकहै । इंगालतैं नेत्रका संबंध होवै तब नीलरूपविशिष्टसैं ही होवैहै । यातैं इंगालतैं नेत्रका संयोग औ ताके नीलरूपतैं संयुक्त तादात्म्यसंबंधरूपप्रतिबंध-कज्ञानकी सामग्री होतैं इंगालमैं रूप्यअध्यासकी प्राप्तिही नहीं । ताके परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फलहै ॥

धर्मिज्ञानवादीकरि उपाध्यायके मतमैं दोष औ ताका परिहार ॥ २७ ॥

और जो धर्मिज्ञानवादी उपाध्यायके मतमैं यह दोष कहैः—पुंडरीकाकार कर्त्तित पटमैं पुंडरीकभ्रम होवैहै । विस्तृतपटमैं पुंडरीकभ्रम होवै नहीं यातैं सादृश्यज्ञान अध्यासका हेतुहै ॥

ताकाभी अध्यास प्रतिबंधक विशेषज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका प्रतिबंधक माननेतैं समाधान होवैहैः—तथाहि विस्तारविशिष्टपटसैं नेत्रका संबंध पटके विशेषज्ञानकी सामग्रीहै । जहां विस्तृतपटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पुंडरीकअध्यास होवै नहीं । जहां पुंडरीकाकारपटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पटके विशेषज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं पुंडरीकाध्यास होवैहै ॥

यद्यपि जहां समुद्रजलके समुदायमैं नीलशिलातलका अध्यास होवै तहां विशेषज्ञानकी सामग्रीहै । काहेतैं नेत्रसंयुक्ततादात्म्यसंबंध शुक्लगुणस्वरूप विशेषज्ञानका हेतुहै । औ चाक्षुषज्ञानका हेतु जलसैं आलोकसंयोगभीहै । तैसैं जलराशित्वरूपविशेषका व्यंजक तरंगादिकनका प्रत्यक्षभी होवैहै । इसरीतिसैं समुद्रके जलसमुदायके विशेषज्ञानकी सामग्रीमैं तीनि पदार्थहैं । शुक्लरूपसैं नेत्रसंयुक्ततादात्म्य १ आलोकसंयोग २ जलराशित्वका व्यंजक तरंगादि प्रत्यक्ष ३ इन तीनूके हुयेंभी समुद्रके जलसमुदायमैं नीलशिलातलका भ्रम होवैहै । यातैं विशेषदर्शनकी सामाग्रीकूं अध्यासकी प्रतिबंधकताका व्यभिचारहै ॥

तथापि प्रतिबंधकरहित विशेषदर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबंधकहै; प्रतिबंधकसहित विशेषदर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबंधक नहीं । जहां समुद्रके जलसमुदायमैं नीलशिलातलका अध्यास होवै तहां समुद्रजलमैं नीलरूपका भ्रम होयके नील शिलाका अध्यास होवैहै । औ नीलरूपका भ्रमज्ञान होतैं जलमैं शुक्लरूपका ज्ञान होवै नहीं । यातैं जलका विशेषधर्म जो शुक्लरूप ताके ज्ञानका प्रतिबंधक नील

रूपका भ्रमहै। तैसैं दूरत्वदोषसैं जलराशित्वका व्यंजक तरंगादिकका प्रत्यक्ष होवै नहीं। यातैं जलराशित्वरूप विशेषके ज्ञानका प्रतिबंधक दूरत्वदोष है। यातैं प्रतिबंधकसहित विशेषज्ञानकी सामग्री तौ है। परंतु प्रतिबंधकरहित विशेषज्ञानकी सामग्रीही अध्यासकी विरोधिनी होनेतैं समुद्रजलसमुदायमैं नीलशिलातलका अध्यास होवैहै। ताका प्रतिबंध होवै नहीं। बहुत क्या कहैं। सकल कारणसैं स्वकार्यकी उत्पत्ति प्रतिबंधकरहितसैंही होवैहै। प्रतिबंधक होतें किसी कारणतैं कार्य होवै नहीं। यातैं प्रतिबंधकका अभावभी सकलकार्यका साधारण कारण होनेतैं प्रतिबंधक होतैं नेत्रसंयोगादिक सकल असाधारणकारणसद्भावमैंभी विशेषज्ञानकी सामग्री नहीं हैं। काहेतैं सकलकारण सहकारणकूं सामग्री कहैहैं। जहां अनेक कारण होवै एक नहीं होवै तहां सामग्री होवै नहीं। इसरीतिसैं जलमैं नीलताभ्रमकूं शुक्लरूपके ज्ञानमैं औ दूरत्वदोषकूं जलराशित्वज्ञानमैं प्रतिबंधकता है। तिस प्रतिबंधके होतैं प्रतिबंधका भावघटित विशेषज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं नीलशिलातलभ्रम संभवैहै। इहां यह अर्थ ज्ञातव्यहै:— समीपस्थ पुरुषके आलोकवाले देशमैं नेत्रसंयोगहुयेंभी जलसमुदायमैं नीलरूपका भ्रम होवैहै। यातैं जलमैं नीलरूपके भ्रमका विशेषज्ञानसैं वा ताकी सामग्रीसैं प्रतिबंध होवै नहीं। यातैं विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य होनैतैं जलके शुक्लरूपतैं नेत्रका संयुक्ततादात्म्यसंबंध हुयेंभी जलमैं नीलरूपका भ्रम संभवैहै। धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उक्त भ्रमही सामान्यज्ञानत्वरूपतैं समुद्रजलमैं नीलशिलातल अध्यासका हेतुहै। उपाध्यायके मतमैं दोषत्वरूपतैं विशेषज्ञानका प्रतिबंधकहै। वा प्रतिबंधका भावरहित विशेषज्ञानकी सामग्रीके अभावसंपादनद्वारा शिलातल अध्यासका हेतुहै। इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं अध्यासकी कारणता नहींहै। तथापि इंगलादिकनमैं रूप्यअध्यासादिकनका अभाव संभवैहै। यातैं अध्यासमैं धर्मिज्ञानकी कार्यताके अभावतैं कार्यानुपपत्तिसैं धर्मिज्ञानरूप इदमाकार प्रमा-

वृत्तिका कल्पन संभवै नहीं । इसरीतिसैं अनुभवानुसारतैं वा कार्यानुपपत्तिसैं इदमाकार वृत्ति मानैं ताका निषेध किया ॥

उपाध्यायके मतमैं धर्मिज्ञानवादीकी शंका औ समाधान ॥ २८ ॥

तथापि धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—विषयतैं इंद्रियका संबंधही अंतः-करणकी विषयाकारवृत्तिका हेतुहै । शुक्तिआदिक विषयतैं नेत्रका संयोग हुयें इदमाकारवृत्ति किस प्रकारसैं नहीं होवैगी अन्यत्र व्यासंग होवै तौ विषयतैं इंद्रियका संयोग हुयेंभी तिस विषयका ज्ञानरूपवृत्ति होवै नहीं । अन्यत्र व्यासंग रहितकूं विषयतैं इंद्रियसंयोग हुयें तिस विषयाकारवृत्ति अवश्य होवैहै । यातैं अन्यत्र व्यासंगरूप प्रतिबंधकके अभावसहित नेत्रसंयोगतैं रज्जुशुक्तिआदिकनकूं विषय कर्तीहुई अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति होवैहै । सो वृत्ति नेत्रादिप्रमाणजन्य होनेतैं औ शुक्तिआदिकनकी अबाधित इदंता गोचर होनेतैं प्रमारूप होवैहै इसरीतिसैं कारणसद्भावतैं इदमाकार प्रमाका कल्पन मानै तौ ॥

इसरीतिसैं उपाध्यायका समाधानहैः—यद्यपि नेत्रसंयोगादिकनतैं इदमाकारवृत्ति होवैहै । परंतु दोषसहित नेत्रजन्य होवैहै । औ "इदं रजतम्" इसरीतिसैं स्वकालमैं उत्पन्न हुये मिथ्या रजतकूं विषय कर्ती हुई होवैहै । यातैं वह वृत्ति भ्रमरूप होवैहै । प्रमा नहीं होवैहै । उपाध्यायमतका यह निष्कर्षहैः— दोषसहित इंद्रियके संबंधतैं विषयचेतननिष्ठ अविद्यामैं कार्यकी अभिमुखतारूप क्षोभ होयकै सर्परजतादिरूप अविद्याका परिणाम होवैहै । नेत्रसंयोगतैं उत्तरक्षणमैं अविद्यामैं क्षोभ होवैहै तिससैं उत्तरक्षणमैं अविद्याका सर्परजतादिक परिणाम होवैहै । जिस क्षणमैं सर्परजतादिक अविद्याका परिणाम होवैहै । तिसी क्षणमैं तिन सर्परजतादिकनकूं विषय करनैवाला "इदं रजतम्" इसरीतिसैं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञान होवैहै । जिस दुष्ट नेत्रसंयोगतैं अविद्यामैं क्षोभद्वारा

सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति होवैहै तिसी संयोगतैं अंतःकरणके परिणामरूपवृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै ॥

यद्यपि इंद्रियसंयोगतैं अव्यवहित उत्तर क्षणमैं ज्ञानकी उत्पत्ति मानैहैं । औ नेत्रसंयोगतैं एक क्षणके व्यवधानसैं सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति कही । काहेतैं नेत्रसंयोगतैं उत्तरक्षणमैं अविद्याका क्षोभ कह्या तिसतैं उत्तरक्षणमैं सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति कही । यातैं अविद्याके क्षोभकालमैं वृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति संभवैहै । तिसतैं उत्तरक्षणमैं भावि सर्परजतादिकनकी ज्ञानकालमैं उत्पत्तिकथनमैं विरोध प्रतीत होवैहै ॥

तथापि विरोध नहीं । काहेतैं कार्यके अभिमुख अविद्याकी अवस्थाकूं क्षोभ कहैहैं । जैसैं कार्यके अभिमुख होयकै अविद्या स्वकार्य सर्परजतादिकनकूं रचैहै । तैसैं अंतःकरणभी नेत्रसंयोगतैं ज्ञानरूप कार्यके अभिमुख होयकै ज्ञानकूं रचैहै । यातैं अविद्याका औ अंतःकरणका स्वकार्याभिमुख अवस्थाका अव्यवहित उत्तर एक क्षणहै । तिसतैं द्वितीयक्षणमैं अविद्याका सर्परजतादि परिणाम होवैहै । औ तिसी क्षणमैं अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणाम होवैहै । औ नेत्रसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं जो ज्ञानकी उत्पत्ति कहैहैं सो क्षणकाल अति सूक्ष्महै । यातैं कार्याभिमुख अवस्थाका क्षण औ कार्यकी उत्पत्तिका क्षण एकही कालहै । इस अभिप्रायतैं कहैहैं । इसरीतिसैं रज्जु शुक्ति आदिकनतैं दुष्ट इंद्रियके संयोगतैं अंतःकरणका परिणामरूपज्ञान औ विषयावच्छिन्नचेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्परजतादिक एक कालमैं होवैहै । तिनका विषयविषयीभावहै । यातैं अंतःकरणका परिणामरूप वृत्तिज्ञानभी दुष्ट इंद्रियसंयोगजन्य है । औ मिथ्यापदार्थ गोचर है । यातैं भ्रम है । प्रमा नहीं । धर्मिज्ञानवादीके मतमैं अविद्याक्षोभका हेतु सामान्यज्ञान है । यातैं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं इदमाकारवृत्तिसैं उत्तरकालमैं क्षोभवती अविद्याका परिणाम सर्परजतादिक होवैहैं । औ उत्तरकालभावि पदार्थ प्रत्यक्षज्ञानका विषय संभवै नहीं । यातैं इदमाकारवृत्तिका विषय

सर्परजतादिक मिथ्या पदार्थ नहीं । किंतु शुक्तिरजतादिक होनेतैं इद-माकारवृत्ति प्रमा है । सर्परजतादिकनकूं विषय करनैवाली अविद्याका परिणामरूप भ्रमवृत्ति होवैहै । इसकारणतैं धर्मिज्ञानवादीके मतपैं भ्रम-वृत्ति ऐंद्रियक नहीं होवैहै । साक्षात् इंद्रियके संबंधतैं होवै सो ऐंद्रियक कहियेहै । भ्रमवृत्तिका अधिष्ठान जो इदमाकारवृत्ति ताकी उत्पत्तिद्वारा परंपरातैं इंद्रियसंबंधका भ्रमवृत्तिमैं उपयोग है । साक्षात् नहीं । उपाध्या-यके मतमैं सर्परजतादिकनका उपादानभूत अविद्यामैं क्षोभका निमित्त दोषवत् इंद्रियसंयोगहै । यातैं एकही इंद्रियसंयोगतैं अविद्याका परिणा-म सर्परजतादिक औ तिनकूं विषय करनैवाली अंतःकरणका परिणाम इदमाकारवृत्ति एककालमैं होवैहै । इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं इदमा-कारवृत्ति भ्रमरूपतो होवैहै । औ साक्षात् इंद्रियसंबंधतैं उपजैहै । यातैं ऐंद्रियक कहियेहै । इंद्रियसंबंधसैं जो इदमाकारवृत्ति होवै सो स्वका-लमैं उत्पन्न सर्परजतादिकनकूं विषयकर्ती होवैहै । यातैं “ अयं सर्पः । इदं रजतम् ” इसरीतिसैं होवैहै । केवल इदंपदार्थगोचर होवै नहीं ॥

उपाध्यायके मतमैं शंका औ समाधान ॥ २९ ॥

उपाध्यायके मतमैं यह शंका होवैहैः—जिस पदार्थसैं इंद्रियका संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवैहै । यह नियम है । अन्यसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचरवृत्ति होवै तौ घटसैं इंद्रियके संबंधतैं पटगोचरभी वृत्ति हुई चाहिये । बहुत क्या कहैं । एक पदार्थसैं इंद्रियका संबंध हुयें सकल प-दार्थगोचरवृत्तिकी आपत्तिसैं सकल पुरुष अनायासतैं सर्वज्ञ हुयें चाहि-ये । यातैं अन्यपदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति संभवै नहीं । किंतु जासैं इंद्रियका संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवैहै । औ उपाध्याय-मतमैं रज्जुशुक्तिआदिकनसैं नेत्रसंयोगतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सर्परजतादि-गोचर मानी सो संभवै नहीं ॥

या शंकाका यह समाधान हैः—स्वसंबंधतैं औ स्वतादात्म्यवा-लेसैं इंद्रियसंबंधतैं स्वगोचर वृत्ति होवैहै । वृत्तिका विषय स्वपदका अर्थ

है। जिस पदार्थकूं विषय करनैंवाली वृत्ति होवै तिस पदार्थसैं इंद्रियक संबंध अथवा तिस पदार्थके तादात्म्यवालेसैं इंद्रियका संबंध चाहिये। भ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिकहैं। तहां वृत्तिके विषयसैं तो नेत्रका संबंध नहीं हुआ है। परंतु सर्परजतादिकनके तादात्म्यवाले जो रज्जुशुक्ति आदिक तिनसैं नेत्रका संबंध हुया है। काहेतैं अध्यस्तका अधिष्ठानसैं तादात्म्यसंबंध होवैहै। औ सर्परजतादिकनकी अधिष्ठानताके अवच्छेदक होनेंतैं रज्जुशुक्तिआदिकभी सर्परजतादिकनके अधिष्ठान कहिये हैं। यातैं सर्परजतादिकनकी तादात्म्यवाले रज्जुशुक्तिआदिकनके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्तिके सर्परजतादिकभी विषय संभवैहैं। औ घटमैं पटका तादात्म्य नहीं। यातैं घट इंद्रियके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्ति पटगोचर होवै नहीं। इसरीतिसैं एक पदार्थके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सकलपदार्थगोचर होवै नहीं। ब्रह्मसैं भिन्न किसी एक पदार्थमैं सकलका तादात्म्य नहीं! औ ब्रह्ममैं सकलपदार्थका तादात्म्य है। परंतु ब्रह्म असंग है। तासै इंद्रियका संबंध संभवै नहीं। यातैं एकपदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं वृत्ति हुयां सर्वज्ञताकी आपत्ति नहीं। धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिक ज्ञेय औ तिनके ज्ञान दोनूं अविद्याके परिणामहैं। उपाध्यायके मतमैं सर्परजतादिक तो अविद्याके परिणामहैं। औ तिनका ज्ञान उक्तरीतिसैं अंतःकरणका परिणाम है। वह अंतःकरणका परिणाम इंद्रियसंबंधतैं होवैहै। यातैं इंद्रिय कहै। इसरीतिसैं सर्परजतादिकनतैं नेत्रसंयोगके अभाव हुयांभी रज्जुशुक्तिआदिकनतैं दुष्टनेत्रसंयोगजन्य चाक्षुषभ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिक हैं यह उपाध्यायका मत है। "चक्षुषा सर्पं पश्यामि। चक्षुषा रजतं पश्यामि" या अनुव्यवसायतैंभी सर्परजतादिक गोचर भ्रमरूप चाक्षुषवृत्तिही सिद्ध होवैहै। रज्जुशुक्तिआदिक गोचर इदमाकार प्रमा वृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीगोचरता सर्परजतादिकनकूं धर्मिज्ञानवादी मानैहैं। ताके मतमैं उक्त अनुव्यवसायका विरोधहै॥

धर्मिज्ञानवादीकरि अध्यासमैं परंपरासैं नेत्रका उपयोग औ उपाध्यायकरि शंखपीतताध्यासमैं साक्षात् उपयोग ॥ ३० ॥

जो इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहैः—सर्परजतादिकनका प्रकाश तो साक्षीरूपहै । परंतु अभिव्यक्त साक्षीसैंही तिनका प्रकाश होवैहै । यातैं साक्षीकी अभिव्यंजकइदमाकारवृत्ति नेत्रजन्य होनेतैं परंपरातैं सर्परजतादिकनके साक्षीरूप प्रकाशमैंभी नेत्रका उपयोगहै । यातैं सर्परजतादिकनके ज्ञानमैं चाक्षुषत्व व्यवहार होवैहै । यातैं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिकनकूं साक्षिभास्यता मानेंभी उक्त अनुव्यवसायका विरोध नहीं ॥

यह कथनभी असंगतहैः—काहेतैं उक्तस्थलमैं तौ परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व व्यवहारका निर्वाह कह्या । तथापि शंखमैं पीतभ्रम होवै तहां परंपरासैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं । काहेतैं रूपविना केवल शंखमैं तो नेत्रकी योग्यता नहीं । यातैं रूपविशिष्टमैं कहैं तौ शंखके शुक्लरूपका ग्रहण होवै तौ पीतताका अध्यास होवै नहीं । इसकारणतैं अध्यस्त पीतरूपविशिष्टमैं नेत्रकी योग्यता माननी होवैगी । सो धर्मिज्ञानवादीके मतमैं संभवै नहीं । काहेतैं अध्यस्त पदार्थमैं ऐंद्रियकत्व नहीं यह धर्मिज्ञानवादीका मतहै । या प्रकारतैं रूपविना केवल शंखज्ञानमैं वा रूपविशिष्टशंखज्ञानमैं नेत्रका उपयोग संभवै नहीं । औ उपाध्यायके मतमैं शंखसैं नेत्रका संबंधही पीतरूप अध्यासका हेतुहै । सो नेत्रका संबंध रूपरहित केवल शंखसैं भी शुक्लरूप विशिष्टसैं संभवैहै ॥

धर्मिज्ञानवादीकरि शंखपीतताका अनध्यास औ उपाध्यायकरि ताका अनुवाद अरु दोष ॥ ३१ ॥

या स्थानमैंभी धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—जहां शंखमैं पीतरूपका अध्यास होवै तहां सर्परजतादिकनकी नांई पीतिमाका स्वरूपसैं अध्यास नहींहै । किंतु जैसैं स्फटिकमैं जपाकुसुमवृत्तिलौहित्यके संसर्गका अध्यासहै । तैसैं नेत्रवृत्ति पीतसंबंधी पीतिमाके संबंधका शंखमैं अध्यासहै

पीतपित्तके ज्ञानविना ताके संबंधका अध्यास संभवै नहीं । यातैं पीत-पित्तके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं शंखपीतके अध्यासमैंभी परंपरासैं नेत्रका उपयोगहै । यातैं " पीतशंखं चक्षुषा पश्यामि " यह अनुव्यवसाय संभवैहै । औ शंखमैं पीतरूपका संबंध अनिर्वचनीय उपजैहै । यातैं अन्यथाख्यातिवादकी आपत्तिभी नहीं ॥

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहै तौ ताकी उक्तिमैं यह पूछ्या चाहिये । शंखमैं पीतरूपके संसर्गाध्यासका हेतु पित्तपीतताका ज्ञानहै । सो नयन-देशस्थही पित्तके पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवैहै अथवा शंखदेशमैं पीत-द्रव्य प्राप्त होवैहै । ताके पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवैहै । जो प्रथमपक्ष कहै तौ नयनदेशस्थ पित्तद्रव्यसैं नयनस्थ अंजनकी नांई नेत्रसंयोगके असंभवतैं ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष तो होवै नहीं । यातैं नयनस्थ पीतपित्तगो-चर परोक्षवृत्ति होवैगी । तिस परोक्षवृत्तिस्थ साक्षीतैं शंखकी पीतताका अपरोक्ष प्रकाश नहीं होवैगा । औ किसी प्रकारसैं नयनस्थपित्तपीतता गोचरचाक्षुषवृत्ति मानैं तौभी तिस वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं नयनदेशस्थ पित्तपीततामात्रका संबंधहै । शंखसैं औ शंखमैं पीतताके संबंधसैं साक्षी-का संबंध नहीं । यातैं शंखका औ शंखमैं पीतिमाके संबंधका साक्षीसैं असंबंध होनेतैं प्रकाश नहीं हुया चाहिये । तात्पर्य यह हैः—जपाकुसुम संबंधी रक्तताके अनिर्वचनीयसंबंधकी स्फटिकमैं उत्पत्ति होवै तहां तो रक्तता औ स्फटिकता तथा रक्तताका संबंध ये तीनूं पदार्थ पुरोदेशमैं होनेतैं एकवृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीके विषय होवैहैं । औ पीतशंख अध्यासमैं पीतिमा नयनदेशमैंहै । औ पीतिमाके संबंधसहित शंख पुरोदेशमैं है । यातैं एकवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं तीनूंका प्रकाश संभवै नहीं । यातैं नयनदेशस्थ पित्तपीतिमाके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोगहै । यह प्रथमपक्ष संभवै नहीं । यातैं शंखदेशमैं प्राप्तहुयें पित्तद्रव्यकी पीतताका अपरोक्षज्ञान नेत्रसैं होवैहै । तिसतैं अनंतर शंखमैं पीतताके अनिर्वचनीयसंबंधकी उत्पत्ति होवैहै । जैसैं कुसुंभमैं संबंधी पटमैं कुसुंभद्रव्यके रूपकी

प्रतीति होवैहै। तहां एक वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं कुसुंभ और रक्तरूप तथा तत्संबंधी पटका प्रकाश होवैहै। औ स्फटिकमैं लौहित्यभ्रम होवै। तहांभी एक वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैंही निखिलका प्रकाश होवैहै। तैसैं शंखपीतभ्रमविषैभी नयनदेशतैं निःसृतपीतपित्तभी शंखदेशमैं प्राप्त होवैहै। ताके अनिर्वचनीयसंबंधकी शंखमैं उत्पत्ति होवै यह द्वितीय पक्ष मानैं तौ उक्तदोष नहीं। काहेतैं पीतपित्त औ शंख एक-देशस्थ होनेतैं पीतपित्तगोचर चाक्षुषवृत्तिमैं अभिव्यक्ति साक्षीसैं शंख औ शंखमैं पीतताके संसर्गका प्रकाश माननैंमैं कोई बाधक नहीं है। इसरीतिसैं शंखदेशमैं प्राप्त जो पीतपित्त ताकी पीतता अनिर्वचनीय संसर्गकी शंखमें उत्पत्ति होवैहै। शंखदेशस्थ पीतपित्तका प्रत्यक्ष नेत्रजन्य होवैहै। तैसैं शंखमैं संसर्गाध्यास होवैहैं। यातैं परंपरातैं शंखपीत अध्यासमैं भी नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्वप्रतीति संभवैहै। यह धर्मि-ज्ञानवादीकी उक्तिभी संभवै नहीं। काहेतैं शंखदेशमैं पीतरूपवाले पित्तका निर्गमन होवै पीतताकी शंखमैं प्रतीति सकल द्रष्टाकूं हुई चाहिये॥

धर्मिज्ञानवादीकरि उक्तदोषका (दोवार) समा-धान औ उपाध्याय करि (दोवार) दोष॥ ३२॥

जो धर्मिज्ञानवादी इस रीतिसैं कहैः— दोषवाले नेत्रसैं पित्त निकस-तेकूं जो पुरुष देखैहैं। तिसीकूं शंखलिप्त पित्तपीतिमाकी प्रतीति होवै है। जिसके नेत्रमैं पित्तदोष नहीं होवै तिसकूं नेत्रसैं निकसता पित्त दीखै नहीं। यातैं पित्तपीतताकी शंखमैं प्रतीति होवै नहीं। जैसैं भूमिमैं उद्गमन कर्ता पक्षीकी आदि उद्गमन क्रियाकूं देखै औ मध्यक्रियाकूं देखै तिसीकूं अतिऊर्ध्वदेशमैं पक्षीकी प्रतीति होवैहै। अधोदेशमैं उद्गमन-कर्ताकूं देखै नहीं। ताकूं अतिऊर्ध्वदेशगतपक्षीकूं प्रतीति होवै नहीं। तैसै जिसके नेत्रसैं पीतपित्त निकसैं तिसीकूं निकसतेकी प्रतीति होनेतैं शंखदेशमैं ताकी प्रतीति होवैहै। अन्यकूं नहीं। इस दृष्टांतसैं अन्यपुरुषनकूं पीतिमाप्रतीतिकी आपत्तिका परिहार कहै तौ संभ-

वै नहीं। काहेतैं जाकूं ऊर्ध्वदेशगतपक्षी दीखता होवै सो अन्यपुरुषकूं इसरीतिसैं उपदेश करै मेरे नेत्रके समीप करिकै अपनै नेत्रसैं देख औ अंगुलीनिर्देश करै तौ अन्य पुरुषकूं भी ऊर्ध्वदेशगतपक्षीकी प्रतीति होवैहै। औ शंखलिप्तपित्तकी पीतिमाकी प्रतीति किसी प्रकारसैं भी अन्यकूं नहीं होनेतैं दृष्टांत विषमहै यातैं शंखदेशमैं पित्तका निर्गमन संभवै नहीं॥

धर्मिज्ञानवादी इस रीतिसैं कहैः—दोषवत् नेत्रसैं निकसे पीतपित्तके पीतिमाका दोषवत् नेत्रसैं ही अपरोक्ष होवैहै। यातैं अन्यपुरुषनकूं शंखमैं पीतिमाका अध्यास होवै नहीं। इसरीतिसैं शंखदेशस्थ पित्तके पीतिमाका नेत्रइंद्रियसैं अपरोक्षअनुभव होवैहै। औ नेत्रसैं अनुभूत पीतिमाका अनिर्वचनीयसंबंध शंखमैं उपजैहैं ताकूं साक्षी प्रकाशैहै। शंखमैं पीतिमासंबंधकी प्रतीतिमैं परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व व्यवहारभी संभवैहै॥ इसप्रकारसैं धर्मिज्ञानवादीका समाधानभी अनुभूयमानारोपमैंहीं संभवैहै। स्मर्यमाणारोपमैं संभवै नहीं। अन्यत्र अनुभूतकी अन्यत्र प्रतीतिकूं अनुभूयमानारोप कहैहैं जैसैं शंखदेशस्थ नेत्रके पित्तमैं अनुभूत जो पीतिमाका संबंध ताकी शंखमैं प्रतीति होवैहै। यह अनुभूयमानका आरोपहै। इसरीतिसैं सन्निहित पदार्थके धर्मकी अन्यमैं प्रतीति होवै तहां सारै अनुभूयमानारोपहै। प्रत्यक्षअनुभवके विषयका आरोप होवै सो अनुभूयमानारोप कहिये सन्निहित उपाधिमैंही प्रत्यक्षअनुभवकी विषयता होवैहै। जलमैं नीलताका अध्यास होवै सो स्मर्यमाणारोपहै। स्मृतिके विषयकूं स्मर्यमाण कहैहैं। जलाधार भूमि नील होवै। अथवा नीलमृत्तिकामिश्रित जल होवै तहां तो जलमैं नीलताअध्यास अनुभूयमानारोप संभवैहै। परंतु धवलभूमिस्थ निर्मल जलमैं औ आकाशमैं नीलताका स्मर्यमाणारोपहै। तिसस्थानमैं नीलरूपसंसर्गी अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्तिका अंगीकार नहीं होनेतैं परंपरातैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं। यातैं उक्त अध्यासमैं चाक्षुषत्वप्रतीति धर्मिज्ञानवादीके मतमैं संभवै नहीं। काहेतैं अध्यस्त पदार्थकूं

धर्मिज्ञानवादीके मतमैं साक्षीभास्य मानैहै। औ उपाध्यायके मतमैं अध्यस्त-पदार्थकी ऐंद्रियकवृत्ति होवैहै । यातैं उक्त अध्यासमैं भी चाक्षुषत्व प्रतीति संभवैहै । औ स्तनके मधुरदुग्धमैं जहां बालककूं तिक्तरसका भ्रम होवै तिस स्थानमैं मधुरदुग्ध अधिष्ठानहै । द्रव्यग्रहणमैं रसनइंद्रियकी योग्यताके अभावसैं मधुरदुग्धके ज्ञानमैं तौ रसनइंद्रियका उपयोग संभवै नहीं । औ धर्मिज्ञानवादमैं अध्यस्तगोचर ऐंद्रियकवृत्ति होवै नहीं । यातैं मधुरदुग्धमैं तिक्तता भ्रमकूं रासनत्व नहीं कह्या चाहिये । औ उपाध्यायके मतमैं तो तिक्ततागोचर रासनवृत्ति होवैहै । यातैं तिक्ताभ्रमविषै रासनत्व व्यवहार संभवैहै ॥

मधुरदुग्धमैं तिक्तरसाध्यासकी रसनागोचरता पूर्वक उपाध्यायके मतका निष्कर्ष ॥ ३३ ॥

परंतु इतना भेदहैः—सर्परजतादिक अध्यासमैं अधिष्ठानसैं नेत्रके संबंधतैं अधिष्ठानगोचर चाक्षुष वृत्ति होवैहै। तिस वृत्तिके समकाल उपजे सर्परजतादिकभी ताकेही विषय होवैहैं । मधुरदुग्धमैं तिक्तरसका अध्यास होवै तहां दुग्धाकार रासनवृत्ति संभवै नहीं । किंतु शरीरव्यापि त्वक्है । यातैं त्वाच वृत्ति मधुर दुग्धाकार होवै । तासैं मधुर दुग्ध प्रकाशक होवैहै। जिस कालमैं मधुरदुग्धसैं संयोग होवै तिसी कालमैं दोषदूषित रसनाका दुग्धसैं संयोग होवैहै । रसनसंयोगतैं दुग्धअवच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभ होयकै तिक्तरसाकार परिणाम अविद्याका औ तिक्तरसगोचर रासन वृत्ति एककालमैं होवैहै। इसरीतिसैं मधुरदुग्धमैं तिक्तरसाध्यास होवै तहां मधुर द्रव्यका प्रकाश तो त्वाचवृत्तिअवच्छिन्नचेतनसैं होवैहै औ तिक्तरसाकार रासनवृत्ति होवैहै । यातैं रासनवृत्तिअवच्छिन्नचेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश होवैहै। त्वाचवृत्ति औ रासनवृत्ति दुग्धदेशमैं जावैहैं। यातैं एकदेशस्थ होनेतै उभयवृत्तिउपहितचेतनका भेद नहीं । यातैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एकज्ञानकी विषयताभी संभवैहै। तिक्तरसगोचर रासनवृत्ति नहीं मानैं किंतु त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैंही तिक्तरस-

का प्रकाश माने तौ तिक्तरसके ज्ञानमैं रासनत्वप्रतीति नहीं होवैगी। धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिक अध्यासमैं तो अध्यासकारण अधिष्ठानके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं परंपरातैं अध्यस्तज्ञानकूंभी नेत्रजन्यताहै। औ तिक्तरसके अध्यासमैं तो अधिष्ठान मधुरदुग्धहै। सो द्रव्यरूप होनेतैं ताके ज्ञानमैंभी रसनइंद्रियके उपयोगके अभावतैं परंपरातैं तिक्तरसज्ञानकूं रसनजन्यता संभवै नहीं। यातैं तिक्तरसाध्यासमैं रासनत्वप्रतीतिके निर्वाहवास्तै धर्मिज्ञानवादीकूंभी रासनवृत्ति अवश्य मानी चाहिये। तैसैं सर्परजतादिक अध्यासमैंभी अध्यस्तगोचर ऐंद्रियकवृत्तिही होवैहै। तासैं भिन्न अध्यस्तगोचर अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय वृत्तिकल्पन निष्फलहै। या मतमैं अविद्याका परिणाम केवल विषयाकारही होवैहै। तिस अनिर्वचनीय विषयका ज्ञानरूप वृत्ति अंतःकरणकी होवैहै। दुष्ट इंद्रियके संयोगतैं वह वृत्ति होवैहै। यातैं भ्रमरूप होवैहै। औ अधिष्ठानतैं दुष्ट इंद्रियका संबंधही अविद्यामैं क्षोभद्वारा अध्यासका हेतुहै। अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं॥

आचार्योक्ति औ युक्तिसैं उपाध्यायमतकी विरुद्धता औ धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उक्तदोषका समाधान॥ ३४॥

यह कवितार्किकचक्रवर्तिनृसिंहभट्टोपाध्यायका मतहै। सो सकल प्राचीनआचार्यनकी उक्तिसैं विरुद्धहै। तथाहिः— अधिष्ठानका सामान्यज्ञानदोष पूर्वानुभवजन्यसंस्कारसैं अध्यास होवैहै यह प्राचीन मतहै। औ उपाध्यायके मतमैं अधिष्ठानसैं इंद्रियका संयोग अध्यासका हेतु मान्याहै। अधिष्ठानका सामान्यज्ञान नहीं मान्या। यातैं प्राचीनवचनतैं विरुद्धहै। औ अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास भेदसैं दो प्रकारका अध्यासहै। यह सकल अद्वैतवादी मानैहैं। उपाध्यायके मतमैं ज्ञानाध्यास अप्रसिद्धहै। काहेतैं अनिर्वचनीय सर्परजतादिगोचर अविद्याके परिणामकूं ज्ञानाध्यास कहैहैं। उपाध्यायके मतमैं ऐंद्रियकभ्रमवृत्ति कूं मानिकै तिसका लोपहै। इसरीतिसैं प्राचीनवचनसैं विरुद्धहै

तैसैं वक्ष्यमाण रीतिसैं युक्तिविरुद्धहैः— अधिष्ठान इंद्रियके संबंधकूं सकल अध्यासमैं कारण मानैं तौ अहंकारादिक अध्यासकी अनुपपत्ति होवैगी । काहेतैं अहंकारादिकनका अधिष्ठान ब्रह्महै अथवा साक्षी चेतनहै । सो नीरूपहै । तासैं ज्ञानहेतु इंद्रियसंबंधका संभव नहीं । औ प्रातिभासिक अध्यासमैंही इंद्रियसंबंधकूं कारणता मानै तौभी अहंकारादिकनका अध्यासभी प्रातिभासिकहै । या मतमैं इंद्रियसंबंधके अभावतैं अहंकारादिक अध्यासकी अनुपपत्तिही होवैगी । अहंकारादिकअध्यास व्यावहारिक होनेतैं प्रातिभासिकसैं विलक्षणहै । या मतमैंभी स्वप्नाध्यासकी अनुपपत्ति होवैगी । काहेतैं सर्वमतमैं स्वप्नाध्यास प्रातिभासिकहै । औ ताका अधिष्ठान साक्षीचेतनहै । तासैं इंद्रियसंबंधके असंभवतैं प्रातिभासिक अध्यासमैंभी अधिष्ठानसैं इंद्रियसंबंधकूं कारणता संभवै नहीं । इसरीतिसैं उपाध्यायमत समीचीन नहीं । औ धर्मिज्ञानवादमैं जो उपाध्यायनैं दोष कह्याहैः--अधिष्ठानज्ञानमैं जो इंद्रियसंबंधका उपयोग मानैं तौ शंखमैं पीतिमाध्यास होवै तहां रूपविना केवल शंखका चाक्षुष मानै तौ नीरूपवायुका प्रत्यक्ष हुया चाहिये । औ शुक्लरूपविशिष्ट शंखका चाक्षुष मानें तौ पीतरूपज्ञानका विरोधि शुक्लरूपज्ञानके होतें पीतरूपका अध्यास नहीं होवैगा । यह कथनभी उपाध्यायका अविवेकसैंहैः--काहेतैं रूपवाले द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै । यह नियम है कहूं दोषबलतैं रूपभागकूं त्यागिकै केवल आश्रयका चाक्षुष होवैहै । औ निर्दोषनयनतैं रूपविशिष्टका चाक्षुष होवैहै । परंतु नीरूपका चाक्षुष होवै नहीं । यातैं नीरूपवायुक चाक्षुषज्ञानकी आपत्ति नहीं । औ रूपवाले शंखका रूपभागकूं त्यागिकै दुष्टनेत्रसैं चाक्षुष होवैहै । अथवा शुक्लरूपविशिष्ट शंखका चाक्षुष होवैहै । तथापि शुक्लरूपमैं शुक्लत्वज्ञानका प्रतिबंधक नयनमैं दोष है । यातैं पीतरूपका अध्यासभी संभवैहै । काहेतैं शुक्लत्वविशिष्ट शुक्लरूपका ज्ञानही पीतरूपके ज्ञानका विरोधी है । केवल शुक्लरूपव्यक्तिका ज्ञान रूपांतरज्ञानका विरोधी नहीं । यह वार्ता प्रतिबध्यप्रतिबंधकभावनिर्णायक-

ग्रंथनमैं प्रसिद्ध है । इसरीतिसैं शंखमैं पीतता अध्यासका हेतु शंखरूप अधिष्ठानका इदमाकारचाक्षुषज्ञान संभवैहै । सो केवल शंखगोचर होवैहै । अथवा दोषबलतैं शुक्लत्वकूं त्यागिके शुक्लरूपविशिष्ट शंखगोचर होवैहै । औ परंपरातैं पीतताज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं पीतता अध्यासमैं चाक्षुषत्वप्रतीतिका निर्वाहभी धर्मिज्ञानवादमैं होवैहै । औ मधुरदुग्धमैं तिक्तरस अध्यास होवै तहां धर्मिज्ञानवादमैंभी रासनवृत्तिकूं आवश्यता कही । काहेतैं तिक्तरसका अधिष्ठान जो मधुरदुग्ध तिसका सामान्यज्ञानरूपवृत्ति रासन तौ संभवै नहीं । किंतु त्वाच वृत्तिही अधिष्ठानगोचर होवै तिस त्वाच वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानैं तौ तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्वव्यवहार संभवै नहीं । यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं तिक्तरसकी भ्रमरूपभी प्रतीति रासनजन्यही माननी होवैहै । तैसैं रजतादिकभ्रमज्ञानभी इंद्रियजन्य है । इसरीतिसैं उपाध्यायका वचन मधुरदुग्धकूं अधिष्ठानता माने संगत होवै। सो मधुररसवाला दुग्धरूपद्रव्य अधिष्ठान नहीं है । किंतु तिक्तरस अध्यासका अधिष्ठान दुग्धका मधुररस है । ताके ज्ञानमैं रसनका उपयोग होनेतैं तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्वकी प्रतीति औ व्यवहार संभवैहै । यद्यपि मधुररसका ज्ञान हुयां तिसतैं विरोधी तिक्तरसका अध्यास संभवै नहीं । तथापि मधुरत्वधर्मविशिष्ट मधुररसका ज्ञानही तिक्तरसज्ञानका विरोधी है । मधुरत्वधर्मकूं छोडिकै केवल मधुररसव्यक्तिका सामान्यज्ञान तिक्तरस अध्यासका विरोधी नहीं । जैसैं शुक्तित्वरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजतअध्यासका विरोधी है । तौभी शुक्तिका सामान्यज्ञान रजतअध्यासका विरोधी नहीं । उलटा शुक्तिका सामान्यज्ञान रजत अध्यासका हेतु है । तैसैं मधुररसका सामान्यज्ञानभी तिक्तरस अध्यासका हेतु है । इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादमैंभी तिक्तरसका अधिष्ठान जो मधुररस ताका रसनतैं सामान्यज्ञान हुयां तिक्तरसका अध्यास होनेतैं पर-

परातैं रसनइंद्रियका तिक्तरसाध्यासमैं उपयोग है । यातैं तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्वव्यवहार संभवैहै ॥

तिक्तरसाध्यासमैं कोईकी अन्यउक्ति औ खंडन ॥ ३५ ॥

औ मधुरदुग्धकूंही तिक्तरसका अधिष्ठान मानैं तौभी तिक्तरसाध्यासमैं रसनकी अपेक्षा नहीं । किंतु दुग्धगोचर त्वाचवृत्ति होवैहै । सो त्वाचवृत्ति तिक्तरसाकार यद्यपि नहीं है । तथापि त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षी निरावृत है । ताके संबंधसैं तिक्तरसका प्रकाश होवैहै । औ तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रसनका व्यापार भासै नहीं । यातैं तिक्तरसाध्यासमैं रासनत्वव्यवहार अप्रामाणिक है । या पक्षमैं तिक्तरसाध्यास केवल अर्थाध्यास है तिक्तरसाकार अविद्याकी वृत्ति निष्फलतासैं मानी नहीं । इसरीतिसैं कोई ग्रंथकार मधुर दुग्धकूं तिक्त रसाध्यासका अधिष्ठान मानिकै मधुरदुग्धगोचर त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानैहैं । औ तिक्तरसगोचर वृत्तिका अभाव मानैहैं ॥

यह लेख असंगत है:—काहेतैं स्वाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं विषयका प्रकाश होवैहै । अन्याकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं स्वसंबंधी विषयका प्रकाश मानैं तौ रूपवत् घटाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं घटगतपरिमाण संख्यादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये । औ "रूपवान् घटः" ऐसा ज्ञान हुयेभी घटके स्थूलतादिकनका प्रकाश होवै नहीं । मधुरदुग्धाकार त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश संभवै नहीं । परंतु दोषका अद्भुत महिमा अंगीकृत है । यातैं दोषदुष्टइंद्रियजन्यवृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीसैं वृत्तिके अगोचरकाभी कहूं चेतनसंबंधीका प्रकाश मानैं तौ यथाकथंचित् उक्त लेखभी संभवैहै । औ रूपवत् घटाकारवृत्ति दोषजन्य नहीं । यातैं तिस वृत्तिकै अगोचर परिमाणादिकनका तिस वृत्तिमैं अभिव्यक्ति चेतनसैं प्रकाश होवै नहीं ॥

मुख्यसिद्धान्तका कथन ॥ ३६ ॥

औ मुख्यसिद्धांत तो यह है:—जैसैं स्वप्नअवस्थामैं सारे पदार्थ साक्षी-

भास्यहैं तिनमैं चाक्षुषत्वरासनत्वादिक प्रतीति होवैहै। तिस रीतिसैं सर्परजतादिक अनिर्वचनीय पदार्थ साक्षीभास्यहैं। तिनमैं चाक्षुषत्वादिकप्रतीति भ्रमहै। केवल सर्परजतादिकही साक्षीभास्य नहींहै। किंतु सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्यहैं स्वप्नकीनांई घटादिक प्रमेय औ नेत्रादिक प्रमाणसैं नेत्रादिकनका घटादिकनसैं संबंध एक कालमैं उपजैहै। यातैं तिनका परस्पर प्रमाणप्रमेयभाव संभवै नहीं। औ प्रतीत होवैहै। यातैं अनिर्वचनीयहै। यह सिद्धांतहै। व्यावहारिक प्रपंचकूं मिथ्यात्वसिद्धिका उपयोगि साक्षीभास्यताके साधक मिथ्या सर्परजतादिक दृष्टांतहैं। तिनकूं ऐंद्रियिकत्व मानें सिद्धांतका साधक दृष्टांतप्रतिकूल होवैहै। यातैं उपाध्यायका मत सिद्धांतविरोधीहै॥

अध्यस्त पदार्थकूं ऐंद्रियिकत्व नहीं मानै तौ आकाशमैं नीलताध्यासकी अनुपपत्तिहै। धर्मिज्ञानवादमैं यह दोष निराकरणीयहै। काहेतैं आकाश नीरूपहै यातैं आकाशका नेत्रसैं सामान्यज्ञान संभवै नहीं। जो सामान्यज्ञान संभवै तौ नीलताध्यास होवै औ उपाध्यायमतमैं तौ आकाशतैं नेत्रका संयोग हुये आकाशावच्छिन्नचेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभद्वारा नीलरूपकी उत्पत्ति औ नीलरूपविशिष्ट आकाशगोचरनेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति एककालमैं होवैहै। यातैं आकाशमैं नीलताध्यासका संभवहै॥

धर्मिज्ञानवादमैं आकाशमैं नीलताध्यासका असंभवदोष औ ताका परिहार॥ ३७॥

तथापि धर्मिज्ञानवादमैंभी इस अध्यासकी अनुपपत्ति नहीं। काहेतैं यद्यपि आकाश नीरूपहै तथापि आलोक द्रव्यरूपवत्‌है। यातैं आलोकसैं दुष्टनेत्रका संयोग हुयां औ आलोकगोचर आलोकव्यापि आकाशाकार प्रमारूप सामान्यज्ञान होवैहै। तिसतैं अनंतर आकाशावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभद्वारा नीलरूपाकार अविद्याका परिणाम होवैहै। तैसैं इदमाकारवृत्तिअवच्छिन्नचेतनस्थ अविद्याका नीलरूपगोचर

ज्ञानाकार परिणाम होवैहै । आकाशगोचर प्रमावृत्ति औ नीलरूपगोचर अविद्यावृत्ति एकदेशमैं होनेतैं उभयवृत्तिउपहितसाक्षी एकहै । यातैं अधिष्ठान अध्यस्तका एकसाक्षीसैं प्रकाश होवैहै । यद्यपि विशेषरूपतैं अधिष्ठानका ज्ञान हुयां अध्यास संभवै नहीं । औ आकाशाकार प्रमावृत्तिसैं अनंतर अध्यास कह्या तहां आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञान अध्यास-का हेतु कहनेसैं विशेषरूपका ज्ञान अध्यासहेतु प्रतीत होवैहै । सो असं-गतहै । तथापि आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञानहै । विशेषज्ञान नहीं " नीरूपमाकाशम् " इसरीतिसैं नीरूपत्वविशिष्ट आका-शका ज्ञानही विशेषज्ञानहै । काहेतैं अध्यासकालमैं अप्रतीत अंशकूं विशेषअंश कहैहै ताहीकूं अधिष्ठान कहैहै । औ अध्यासकालमैं प्रतीत अंशकूं सामान्यअंश कहैहै ताकूं आधार कहैहैं " आकाशं नीलम् " इस रीतिसैं भ्रांतिकालमैं आकाशत्वरूपतैं आकाशकी प्रतीति होवैहै औ " नीरूपमाकाशम् " इसरीतिसैं नीरूपत्वधर्मतैं आकाशकी प्रतीति भ्रांति-कालमैं होवै नहीं । यातैं आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्य-ज्ञान होनेतैं तिसतैं अनंतर नीलरूपका अध्यास संभवै नहीं ॥

सर्पादिभ्रमस्थलमैं चारि मत औ चतुर्थमतमैं दोष ॥ ३८ ॥

इसरीतिसैं सर्परजतादिक भ्रम होवै तहां तीनि मत कहैः—एक तो उपा-ध्यायका मत कह्या । ताके मतमैं एकही ज्ञान दुष्टइंद्रियविषयके संबंधतैं अंतःकरणका परिणामरूप होवैहै । यह ज्ञान अधिष्ठानके सामान्य अं-शकूं औ अध्यस्तकूं विषयकर्ता भ्रमरूपहै तासैं पृथक् अधिष्ठानके सा-मान्यअंशमात्रगोचर प्रमाज्ञानका तिसके मतमैं अंगीकार नहीं । औ धर्मिज्ञानवादमैं दो मत कहै एक मतमैं तोः— इदमाकारसामान्यज्ञान प्रमारूपतैं अनंतर "अयं सर्पः । इदं रजतम्" इसरीतिसैं भ्रमज्ञान होवैहै । सो अविद्याका परिणामरूप होवैहै । औ अधिष्ठानके सामान्यअंशकूं विषय कर्ताहुवा अध्यस्तकूं विषय करैहै। यातैं इदमाकार औ अध्यस्ताकार होवैहै । औ धर्मिज्ञानवादमैं दूसरा मत यहहैः— इदमाकारसामान्यज्ञान

अध्यासहेतु प्रमारूप होवैहै । तासैं उत्तरक्षणमैं सर्परजतादिगोचर अविद्याका परिणाम ज्ञान होवैहै सो भ्रमरूप होवैहै । यातैं अधिष्ठानगोचर होवै नहीं । किंतु केवल अध्यस्तगोचर होवैहै । तिस भ्रमज्ञानमैं इदंपदार्थविषयकत्व नहींहै । तथापि तिसके अधिष्ठानज्ञानमैं इदंपदार्थविषयकत्व है । ताका अनिर्वचनीयसंबंध भ्रमज्ञानमैं उपजैहै । इसरीतिसैं केवल अध्यस्तपदार्थाकार भ्रमज्ञान होवैहै । यह मतही समीचीनहै ॥

औ धर्मिज्ञानवादमैं ही कोई ग्रंथकार तीसरा पक्ष मानैहैं । तथाहिः— अध्यासका हेतु अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान होवैहै । तासैं भिन्न सर्परजतादिगोचर अविद्याकी वृत्ति निष्फलहै । काहेतैं अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति जो अध्यासकी हेतु मानीहै तिस वृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं ही सर्परजतादिकनका प्रकाश होवैहै यातैं सर्परजतादिक ज्ञेय रूप तो अविद्याका परिणाम होवैहै । औ ज्ञानरूप परिणाम अविद्याका होवै नहीं । या मतमैं भी उपाध्यायके मतकी नांई शुक्तिरजतादिकनमैं केवल अर्थाध्यास है ॥ ज्ञानाध्यासका अंगीकार नहीं । यह मतभी उपाध्यायके मतकी नांई सकलआर्यवचनतैं औ युक्तिसैं विरुद्धहै । काहेतैं या मतमैं भ्रमज्ञानका लोप होवैहै । इदमाकार जो ज्ञान होवै सो अधिष्ठानसैं इंद्रियके संयोगतैं अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवैहै औ अधिष्ठानगोचर होवैहै । यातैं प्रमा होवैहै तासैं भिन्नज्ञान मानै नहीं । यातैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध होवैगा ॥ जो ऐसैं कहैः—अधिष्ठानगोचर इदमाकारज्ञानही सर्परजतादिकनकूं विषय करैहै यातैं बाधितपदार्थगोचर होनेतैं भ्रम कहियेहै । तथापि या मतमैं तिसी ज्ञानकूं अबाधितअधिष्ठानगोचरता होनेतैं प्रमात्वभी हुया चाहिये यातैं एकज्ञानमैं भ्रमत्वप्रमात्वका संकर होवैगा ॥ यद्यपि सत्यरजतगोचर औ शुक्तिरजतगोचर एक ज्ञान होवै तहां भ्रमत्वप्रमात्वका संकर प्रसिद्धहै । यातैं अवच्छेदकभेदतैं जैसैं एकपदार्थमैं संयोग औ संयोगका अभाव विरोधी पदार्थ रहैहै तैसैं एकज्ञानमैं भी अवच्छेदकभेदतैं भ्रमत्वप्रमात्व विरोधी धर्म संभवैहै । दृष्टांतमैं वृक्षवृत्तिसंयो-

गाभावका अवच्छेदक मूलदेशहै औ संयोगका अवच्छेदक शाखादेश है। तैसें ज्ञानमैं भी बाधितविषयकत्व तो भ्रमत्वका अवच्छेदक धर्म है । औ अबाधितविषयकत्वप्रमात्वका अवच्छेदक धर्महै । यातैं एकही ज्ञानमैं बाधितविषयकत्वावच्छिन्न भ्रमत्वहै । औ अबाधितविषयकत्वावच्छिन्नप्रमात्व होनेतैं भ्रमत्वप्रमात्वका संकरदोष नहीं तथापि भ्रमत्वप्रमात्वकी नांई बाधितविषयकत्व अबाधितविषयकत्वभी परस्पर भावाभावरूप होनेतैं विरोधीहैं तिनका भी अवच्छेदकभेदविना एकज्ञानमैं समावेश संभवै नहीं । औ तिनके अन्य अवच्छेदक उपलब्ध होवै नहीं । औ किसी अन्यकी कल्पनाकी कल्पनाकरै तौ परस्पर विरोधी ही कोई अवच्छेदक माननें होवैंगे । यातैं तिनके अन्य अवच्छेदक माननेमैं अनवस्थादोष होवैगा । इसरीतिसैं एक ज्ञानमैं भ्रमत्वप्रमात्वका संशय संभवै नहीं । औ सत्यरजतगोचर शुक्तिरजतगोचर एकज्ञानमैं भ्रमत्वप्रमात्वका संकर करचा सो भी सिद्धांतके अज्ञानसैं कह्याहै काहेतैं सत्यरजतगोचर अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै । शुक्तिरजतगोचर अविद्याकी वृत्ति होवैहै । यातैं सत्यरजतगोचर औ शुक्तिरजतगोचर दो ज्ञान होवैहै । दोनूं ज्ञान समानकालमैं होवैहै । औ सजातीयगोचर होवैहै । यातैं तिनका परस्पर भेद प्रतीत होवै नहीं । किंतु तिनमैं एकत्व भ्रम होवैहै । यातैं भ्रमत्वप्रमात्वका संकर अदृष्टगोचर होनेतैं इदमाकारप्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीसैं अध्यस्तका प्रकाश संभवै नहीं । औ अधिष्ठानगोचरवृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीसैं ही अध्यस्तका प्रकाश मानिकै अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति नहीं मानैंतौ अध्यस्तपदार्थकी स्मृति नहीं हुई चाहिये । काहेतैं अनुभवके नाशतैं संस्कार होवैहै । अन्यगोचरअनुभवतैं अन्यगोचर संस्कारस्मृति होवै तौ पटगोचरअनुभवतैं घटगोचर संस्कारस्मृति हुई चाहिये । यातैं समानगोचरअनुभवतैं संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति होवैहै । यह नियम होनेतैं अधिष्ठानगोचरवृत्तिरूप अनुभवतैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा

स्मृतिकी उत्पत्ति संभवैनहीं । औ अध्यस्तगोचर साक्षीरूप अनुभवतैं संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति कहै तौ सर्वथा असंगत है । काहेतैं अनुभवके नाशतैं संस्कार होवैहै । औ साक्षी नित्यहै । ताकूं संस्कारजनकता संभवै नहीं । जो ऐसैं कहैः—जा वृत्तिसैं चेतनकी अभिव्यक्तिद्वारा जिस पदार्थका प्रकाश होवै ता वृत्तिसैं तिसपदार्थगोचर संस्कारद्वारा स्मृति होवै है । पटगोचरवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं घटका प्रकाश होवै नहीं । यातैं पटगोचर अनुभवतैं घटगोचरसंस्कारद्वारा स्मृतिकी आपत्ति नहीं औ अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी इदमाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं अध्यस्तका प्रकाश होवैहै । यातैं अधिष्ठानगोचर इदमाकारप्रमासैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिका संभव होनेतैं अध्यस्तगोचर अविद्यावृत्तिका अंगीकार निष्फलहै । यह कथनभी असंगतहैः--काहेतैं अधिष्ठानगोचर इदमाकारज्ञानसैं जो अध्यस्तका प्रकाश मानै ताकूं यह पूछया चाहियेः--इदमाकार ज्ञान होवै सो अध्यस्ताकारभी होवै है अथवा नहीं होवैहै । जो ऐसैं कहै, अध्यस्ताकारभी होवैहै सो संभवै नहीं। काहेतैंः—प्रत्यक्षज्ञानमैं आकारसमर्पणका हेतु विषय होवैहै । इदमाकारज्ञानसैं उत्तरक्षणमैं अध्यस्तपदार्थकी उत्पत्ति होनेतैं भाविविषयसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं स्वाकारका समर्पण संभवै नहीं । यातैं इदमाकारज्ञानकूं अध्यस्ताकारता नहीं होवैहै। यह द्वितीय पक्ष कहैं तौभी संभवै नहीं।काहेतैंः—अन्याकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीसैं अन्यविषयका प्रकाश होवै नहीं । यह पूर्व कहाहै । जो इदमाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीके संबंधसैं आकारसमर्पणअकर्त्ताकाभी प्रकाश मानैं तौ इदमाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीका संबंधी जो अधिष्ठानका विशेष अंश ताकाभी प्रकाश हुया चाहिये । यातैं इदमाकारसामान्यज्ञानसैं भिन्न अविद्याका परिणामरूप अध्यस्ताकारवृत्तिरूप ज्ञान अवश्य अंगीकरणीयहै । तिसमैंभी दो पक्ष कहैहैंः-तिनमैं अधिष्ठानगोचर औ अध्यस्तगोचर अनिर्वचनीय ज्ञान होवैहै। यह प्रथमपक्ष तो समीचीन नहीं यह पूर्व कहाहै । जो अनिर्वचनीय

मिथ्याज्ञानकूं उभयगोचर मानैं तौ प्रमात्वभ्रमत्वका संकरदोष होवैगा । यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं केवल अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति होवैहै । जैसैं सर्परजतादिक मिथ्याहैं तैसैं तिनका ज्ञानभी मिथ्याहैं । इसीवास्तै सर्परजतादिकनके बाधकी नांई तिनके ज्ञानकाभी बाध होवैहै । इदमाकारप्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीसैंही अध्यस्तका प्रकाश मानैं तो साक्षी तौ सदाही अबाध्यहै । औ इदमाकारवृत्तिभी अंतःकरणका परिणाम होनेतैं घटादिज्ञानकी नांई व्यवहारकालमैं अबाध्यहै।यातैं ब्रह्मज्ञानविना अध्यस्तके ज्ञानका बाध नहीं हुया चाहिये ॥

अनिर्वचनीयख्यातिमैं उक्त चारि अनुवाद औ ताकी समाप्तिका दोहा ॥ ३९ ॥

इसरीतिसैं सर्परजतादिगोचर भ्रम होवै तहां सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति कहीहै । तामैं च्यारि पक्षहैं । एकतो कवितार्किक नृसिंहभट्टोपाध्यायका मतहै । तामैं अधिष्ठानसैं इंद्रियका संबंधही अध्यासका हेतु है अधिष्ठानका सामान्यज्ञान हेतु नहीं । अन्य आचार्यनके मतमैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतुहै । सामान्यज्ञानकूं धर्मिज्ञान कहैहैं । उपाध्यायमतसैं भिन्न तीनूं मतमैं सामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता मानीहै । यातैं तीनूं मत धर्मिज्ञानवादीहैं । तिनमैंभी अध्यस्तपदार्थाकारही अविद्याकी वृत्तिरूप भ्रमज्ञान होवैहै । यह पक्षही समीचीनहै । औ अधिष्ठानगोचर इदमाकार तथा अध्यस्ताकार अविद्याकी वृत्ति होवैहै । यह पक्ष औ इदमाकारवृत्तिरूप सामान्यज्ञान जो अध्यासका हेतु तासैंही निर्वाह होवैहै। अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्तिका अनंगीकारपक्ष समीचीन नहीं । तैसैं अध्यासका हेतु सामान्यज्ञानका अनंगीकारपक्ष उपाध्यायकाभी समीचीन नहीं। इसरीतिसैं प्राचीनग्रंथकारोंनैं जो लिख्याहै तिसके अनुसारही हमनैं दूषण भूषण लिखेहैं । औ अपनें बुद्धिके बलसैं विचार करैं तौ इन च्यारू मतनमैं दूषण भूषण समानहैं औ प्रपंचके मिथ्यात्वसाधनमैं अद्वैतवाद-

का अभिनिवेशहै। अवांतरमतभेदके प्रतिपादनमैं वा खंडनमैं अभिनिवेश नहीं । यातैं किसी जिज्ञासुकूं खंडितपक्षही बुद्धिमैं आरूढ होवै तौ कछु हानि नहीं । औ एकही मतके अनकूल हमनैं युक्ति लिखीहै सो प्राचीन आचार्यनके मार्गसैं उत्पथगमनके निरोधअर्थ लिखीहैं ॥

दोहा—निश्चलविन किन हुन लिखी, भाषामैं यह रीति ।
ख्याति अनिर्वचनीयकी पेषहु सुजनसप्रीति ॥ १ ॥

शास्त्रान्तरमैं उक्त पांच ख्यातिके नाम ॥ ४० ॥

और शास्त्रांतरमैं जो भ्रमका लक्षणस्वरूप कहाहै । तासैं विलक्षणही भ्रमका लक्षण और स्वरूपहै इस अर्थके जणावनैकूं शास्त्रांतरके भ्रमके स्वरूप भाष्यमैं कहेहैं तिनका निरूपण और खंडन करैहैं । शुक्तिमैं रजतादि भ्रम होवै तहां सिद्धांतपक्षसैं विना पांच मतहैः—सत्‌ख्याति १ असत्‌ख्याति २ आत्मख्याति ३ अन्यथाख्याति ४ आख्याति ५ भ्रमके ये नाम कहेहैं । सर्वके मतमैं पंचनाममैं अन्यतम भ्रमका नाम प्रसिद्धहै ।

सत्‌ख्यातिकी रीति ॥ ४१ ॥

तिनमैं सत्‌ख्यातिवादीका यह सिद्धांतहैः—शुक्तिके अवयवके साथि रजतके अवयव सदा रहेहैं । जैसैं शुक्तिके अवयव सत्यहैं। तैसैंही रजतके अवयवहैं, मिथ्या नहीं । जैसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं सिद्धांतमैं अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय रजत उपजैहै । तैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं रजतावयवनसैं सत्यरजत उपजैहै । अधिष्ठानज्ञानतैं जैसैं अनिर्वचनीयरजतकी निवृत्ति सिद्धांतमैं होवैहै । तैसैं शुक्तिज्ञानतैं सत्यरजतका अपनै अवयवनमैं ध्वंस होवैहै ॥

सत्‌ख्यातिवादका खंडन ॥ ४२ ॥

यह सत्‌ख्यातिवादीका मतहै सो निराकरणीयहै। काहेतैं शुक्तिरजतदृष्टांतसैं प्रपंचकूं मिथ्यात्वकी अनुमिति होवैहै । सत्‌ख्यातिवादमैं शुक्तिमैं रजत सत्यहै । तिसकूं दृष्टांत धरिकै प्रपंचमैं मिथ्यात्वसिद्धि होवै नहीं । यातैं यह पक्ष निराकरणीयहै ॥ या पक्षमैं यह दोषहैः—शुक्ति-

ज्ञानसैं अनंतर " कालत्रयेऽपि शुक्तौ रजतं नास्ति " इसरीतिसैं शुक्तिमैं त्रैकालिकरजताभाव प्रतीत होवैहै । सिद्धांतमैं तो अनिर्वचनीय रजत तो मध्यकालमैं होवैहै औ व्यावहारिक रजताभाव त्रैकालिकहै । सत्ख्यातिवादीके मतमैं व्यावहारिक रजत होवै तिसकालमैं व्यावहारिक रजताभाव संभवै नहीं । यातैं त्रैकालिकरजताभावकी प्रतीतिसैं व्यावहारिकरजतकथन विरुद्ध है । औ अनिर्वचनीयरजतकी उत्पत्तिमैं तो प्रसिद्धरजतकी सामग्री चाहिये नहीं । दोषसहित अविद्यासैं ताकी उत्पत्ति संभवैहै औ व्यावहारिकरजतकी उत्पत्ति तो रजतकी प्रसिद्ध सामग्रीविना संभवै नहीं । औ शुक्तिदेशमैं रजतकी प्रसिद्धसामग्री है नहीं । यातैं सत्यरजतकी उत्पत्ति शुक्तिदेशमैं संभवै नहीं ॥

सीपीमैं सत्यरजतकी सामग्रीका अंगीकार औ खंडन ॥ ४३ ॥

औ जो ऐसैं कहैः—शुक्तिदेशमैं रजतके अवयवहैं । सोई सत्यरजतकी सामग्री है । ताकूं यह पूछैहैः—रजतावयवनका उद्भूत रूप है अथवा अनुद्भूत रूप है? उद्भूत रूप कहै तौ रजतावयवनकाभी रजतकी उत्पत्तिसैं प्रथम प्रत्यक्ष हुया चाहिये । जो अनुद्भूत रूप कहै तौ अनुद्भूतरूपवाले अवयवनतैं रजतभी अनुद्भूतरूपवाला होवैगा । यातैं रजतका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा । औ उद्भूतरूपवत् त्र्यणुकारंभक द्व्यणुकमैं तो अनुद्भूतरूप नहीं । किंतु उद्भूतरूप है । द्व्यणुकमैं महत्त्व नहीं यातैं उद्भूतरूप होतैंभी द्व्यणुकका प्रत्यक्ष होवै नहीं । औ द्व्यणुकहीमैं उद्भूतरूप नहीं है । किंतु परमाणुमैंभी नैयायिक उद्भूत रूप अंगीकार करैहैं ॥

औ जो ऐसैं कहै द्व्यणुककी नांई रजतावयवभी उद्भूतरूपवालेहैं । परंतु महत्त्वशून्यहैं । यातैं रजतावयवका प्रत्यक्ष होवै नहीं । सो संभवै नहींः—काहेतैं महत्परिमाणके चारि भेदहैंः—आकाशादिकनमैं परममहत्परिमाण हैं । परममहत्परिमाणवालेकूंही नैयायिक विभु कहैहैं । विभुसैं भिन्न पटादिकनमैं अपकृष्टमहत्परिमाण है । औ सर्षपआदिकनमैं अपकृष्टतरमहत्परिमाण है । त्र्यणुकमैं अपकृष्टतरमहत्परिमाण

है। जो रजतके अवयवभी महत्परिमाणशून्य होवै तौ द्व्यणुकसैं आ-रब्ध त्र्यणुककी नांई महत्त्वशून्यअवयवनतैं आरब्ध रजतादिकभी अप-कृष्टतममहत्परिमाणवालेही हुये चाहिये। यातैं रजतावयव महत्त्वशून्य है। यह कहना संभवै नहीं । औ रजतावयवमैं तो महत्त्वका अभाव कहै तो किसी रीतिसैं संभवैभी परंतु जहां वल्मीकमैं घटका भ्रम होवैं तहांभी घटावयव कपाल माननें होवैंगे। औ जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै तहां स्थाणुमैं पुरुषके अवयव हस्तपादादिक माननें होवैंगे। कपाल औ हस्तपा-दादिक तौ महत्त्वशून्य संभवै नहीं। रजतत्वजाति तो अणुसाधारण है। यातैं सूक्ष्मअवयवनमैंभी रजतव्यवहार संभवैहै। औ घटत्व कपाल-त्व हस्तपादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान्अवयवीमात्रवृत्तिहै तिनके सूक्ष्मअवयवनमैं कपालत्वादिक जाति संभवै नहीं। यातैं भ्रमके अधिष्ठानदे-शमैं आरोपितके व्यावहारिक अवयव होवै तौ तिनकी प्रतीति हुई चाहिये। यातैं व्यावहारिक अवयवनसैं रजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगतहै ॥

सत्ख्यातिवादीकरि उक्तदोषका परिहार औ ताका खंडन॥४४॥

औ जो सत्ख्यातिवादी ऐसैं कहैः—शुक्तिदेशमैं रजतके साक्षात् अवयव नहींहै। किंतु अवयवनके अवयव परममूल द्व्यणुक अथवा पर-माणु रहैहैं। तैसैं वल्मीकदेशमैं घटके औ स्थाणुदेशमैं पुरुषके साक्षात् अवयवनके अवयव परममूल द्व्यणुक अथवा परमाणु रहैहैं । दोषसहित नेत्रके संबंधतैं झटिति अवयविधारा उपजिकै रजत घट पुरुषकी उत्पत्ति होवैहै।दोषके अद्भुतमाहात्म्यतैं ऐसे वेगसैं त्र्यणुकादिकनकी धारा उपजैहै। यातैं मध्यके अवयवी कपाल हस्तपादादिक प्रतीत होवै नहीं । अंत्यअव-यवी घटादिकी उत्पत्ति हुयां तो कपालादिक कहूंभी प्रतीति होवै नहीं। यातैं भ्रमके अधिष्ठानमैं आरोपितके अवयव प्रतीत होवै नहीं। औ व्यावहारिक अवयव रजतादिकनके हैं । अथवा शुक्तिदेशमैं रजतके महद् अवयवहैं औ वल्मीकदेशमैं घटके अवयव कपाल हैं । स्थाणुदेशमैं पुरुषके अवयव हस्तपादादिक हैं। इसरीतिसैं भ्रमके अधिष्ठानमैं आरोपितके सारे अवयव

है । तौभी अधिष्ठानकी विशेषरूपतैं प्रतीति तिन अवयवनकी प्रतीतिकी प्रतिबंधकहै । यातैं विद्यमान महत् अवयवनका प्रत्यक्ष होवै नहीं । इसरीतिसैं सत्ख्यातिवादीका समाधानभी समीचीन नहीं । काहेतैं शुक्तिदेशमैं व्यावहारिक रजतकी उत्पत्ति मानैं तौभी अनुभवानुरोधसैं रजतकी निवृत्ति शुक्तिज्ञानसैं ही मानी चाहिये ॥

रजतज्ञानकी निवृत्तिसे प्रातिभासिक औ व्यावहारिक रजतकी निवृत्ति औ ताका खंडन ॥ ४९ ॥

औ सत्ख्यातिवादी ऐसें कहैः—रजतकी निवृत्तिमैं शुक्तिज्ञानकी अपेक्षा नहीं । किंतु रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति होवैहै । जितनैं काल रजतका ज्ञान रहै उतनैं काल रजत रहैहै । रजतज्ञानका अभाव होवै तब रजतकी निवृत्ति होवैहै । शुक्तिका ज्ञान कहूं रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतुहै । कहूं शुक्तिज्ञानविना अन्यपदार्थके ज्ञानतैं रजतज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । ता रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणमैं रजतकी निवृत्ति होवैहै । अथवा रजतज्ञानकी निवृत्ति जासैं होवै तासैंही रजतज्ञानकी निवृत्तिक्षणमैं रजतकी निवृत्ति होवैहै । इसरीतिसैं ज्ञानकालमैं ही रजतकी स्थिति होनेतैं यद्यपि प्रातिभासिकही रजतादिकहैं तथापि अनिर्वचनीय नहीं किंतु व्यावहारिक सत्यहै।जैसैं सिद्धांतमैं सुखादिक प्रातिभासिक हैं तौभी स्वप्नसुखादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिक मानेहैं । औ न्यायमतमैं द्वित्वादिक प्रातिभासिक मानिकै व्यावहारिक सत्य मानेहैं । तैसैं रजतादिक प्रातिभासिक हैं तौभी व्यावहारिक सत्य हैं । इसरीतिसैं रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणमैं रजतादिकनकी निवृत्ति होवैहै । अथवा रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु जो शुक्तिकाज्ञान अथवा पदार्थांतरका ज्ञान तासैंही रजतज्ञानके निवृत्तिक्षणमैं रजतकी निवृत्ति होवैहै । शुक्तिज्ञानसैंही रजतकी निवृत्ति होवै यह नियम नहींहै ॥

ऐसा कहैं तौ लोकानुभवसैं विरोध होवैगा । सकलशास्त्रनसैं विरोध होवैगा । सिद्धांतका त्याग होवैगा । युक्तिविरोध होवैगा । काहेतैं शुक्ति-

ज्ञानसैं रजतभ्रमकी निवृत्ति होवैहै यह सर्व लोकमैं प्रसिद्धहै। औ सकलशास्त्रमैं प्रसिद्धहै। औ सत्ख्यातिवादीकाभी यही सिद्धांतहै। औ सत्ख्यातिवादीके मतमैं विशेषरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजतावयवके ज्ञानका प्रतिबंधकहै। यातैं रजतावयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है। रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजतज्ञानका विरोधी माननेमैं क्लृप्त कल्पनाहै। निर्णीतकूं क्लृप्त कहैहैं। शुक्तिज्ञानसैं विना अन्यसैं रजतज्ञानकी निवृत्ति मानै तौ अक्लृप्त कल्पना होवैगी। इसरीतिसैं क्लृप्त कल्पना योग्यहै। या युक्तिसैंभी विरोध होवैगा। यातैं शुक्ति ज्ञान सैं ही रजतकी औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी योग्यहै॥

सत्ख्याति वादमैं प्रबल दोष॥ ४६॥

औ जो पूर्वउक्त रीतिसैं रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति मानैं औ रजतज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानैं तौभी वक्ष्यमाण दोषसैं सत्ख्यातिवादीका उद्धार होवै नहीं। सो दोष यहहैः— जहां शुक्तिमैं जाक्षणमैं रजतभ्रम होवै तिसी क्षणमैं शुक्तिसैं अग्निका संयोग होयके उत्तरक्षणमैं शुक्तिका ध्वंस औ भस्मकी उत्पत्ति होवै तहां रजतज्ञानकी निवृत्तिका साधन कोई हुया नहीं। यातैं शुक्तिध्वंस औ भस्मकी उत्पत्तिसैं प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनेतैं भस्मदेशमैं रजतका लाभ हुया चाहिये। काहेतैं रजतद्रव्य तैजसहै। ताका गंधकादिसंबंधविना ध्वंस होवै नहीं। यातैं भ्रमस्थानमैं व्यावहारिक रजतरूप सत्पदार्थकी ख्याति होवैहै। यह सत्ख्यातिवाद असंगतहै। औ जहां एकरज्जुमैं दशपुरुषनकूं भिन्न भिन्न पदार्थनका भ्रम होवै; किसीकूं दंडका, किसीकूं मालाका, किसीकूं सर्पका, तथा जलधाराका इत्यादिक पदार्थनके अवयव स्वल्परज्जुदेशमैं संभवै नहीं। काहेतैं मूर्तद्रव्य स्थानका निरोध करैहैं। यातैं स्वल्पदेशमैं इतने पदार्थनके अवयव संभवै नहीं। औ भ्रम कालमैं दंडादिक अवयवी सर्वथा स्वल्पदेशमैं संभवै नहीं। औ सिद्धांतमैं तो अनिर्वचनीय दंडादिकहैं। व्यावहारिकदेशका निरोध करै नहीं। औ जो सत्-

ख्यातिवादीभी तिन दंडादिकनमैं स्थाननिरोधादिक फल नहीं मानैं तौ दंडादिकनकूं सत् कहना विरुद्धहै औ निष्फल है । दंडादिकनकी प्रतीतिमात्र होवैहै अन्य कार्य तिनतैं होवै नहीं । ऐसा कहें अनिर्वचनीयवादही सिद्ध होवैहै ॥

औ भ्रमस्थलमैं सत्पदार्थकी उत्पत्ति मानैं तौ अंगारसहित ऊषर भूमिमैं जलभ्रम होवै तहां जलसैं अंगार शांत हुये चाहिये । औ तूलके उपरि धरे गुंजापुंजमैं अग्निभ्रम होवै तहां तूलका दाह हुया चाहिये । औ जो ऐसा कहैः--दोषसहित कारणतैं उपजे पदार्थकी अन्यकूं प्रतीति होवै नहीं । जाके दोषतैं उपजैहै ताहीकूं प्रतीति होवैहै । औ दोषके कार्य जल अग्निसैं आर्द्रीभाव दाह होवै नहीं तौ तिनकूं सत्यता कहना केवल हास्यका हेतु है । काहेतैं अवयव तो स्थाननिरोधादिकके हेतु नहीं । अवयवीसैं कोई कार्य होवै नहीं । ऐसे पदार्थकूं सत् कहना शुक्तिकै बुद्धिमानोंकूं हास्य होवैहै । यातैं सत्ख्यातिवादकी उक्तिसंभवभी नहीं । सर्वथा यह पक्ष निर्युक्तिकहै ॥ इसीवास्तैं विचारसागरमैं सत्ख्याति नहीं । जा पक्षका किसीप्रकारसैं उपपादन होवै फेरि तर्कादिबलतैं खंडन होवै सो पक्ष लिखाचाहिये सत्ख्यातिवादका उपपादन नहीं संभवै नही । यातैं इस ग्रंथनमैंभी लेखनीय नहीं । तथापि सर्वथा लिखे विना अध्येताकूं ऐसा भ्रम होय जावै ग्रंथकर्ताकूं सत्ख्यातिवादका ज्ञान नहीं था तिसभ्रमकी निवृत्तिवास्तै इहां लिख्या है ।

त्रिविध असत्ख्यातिकी रीति शून्यवादीकी रीतिसैं असत्ख्यातिवादका खंडन ॥ ४७ ॥

तैसैं असत्ख्यातिवादभी सर्वथा युक्तिअनुभवशून्य है । निराकरण विनाभी किसीकी बुद्धिमैं आरूढ होवै नहीं । यातैं निराकरणीय नहीं । तथापि असत्ख्यातिवादी वेदमार्गका प्रतिद्वंद्वी प्रसिद्ध है । और सूत्रनसैं ताके मतका खंडन कह्या है । यातैं खंडनीय है ॥ असत्ख्यातिवादी दो हैंः—एकतौ शून्यवादी नास्तिक असत्ख्याति मानैहैं । तिसके मतमैं

तौ सारे पदार्थ असत्रूप हैं । यातैं शुक्तिमैं रजतभी असत्हैं । शून्यवादीके मतमैं तो असत्अधिष्ठानमैं रजत असत् है । यातैं निरधिष्ठान भ्रम है । तैसैं ज्ञाता ज्ञानभी असत् हैं । या मतका खंडन शारीरकके द्वितीयाध्यायके तर्कपादमैं विस्तारसैं कऱ्या है । औ अनुभवविरुद्ध है । काहेतैं शून्यवादमैं सर्वस्थानमैं शून्य है । यातैं किसीका व्यवहार सिद्ध नहीं हुया चाहिये । औ शून्यसैं व्यवहार होवै तो जलका प्रयोजन अग्निसैं, अग्निका प्रयोजन जलसैं हुया चाहिये । अग्नि जल तो सत्य वा मिथ्या कहूं हैं नहीं, केवल शून्य तत्व है । सो सारे एकरस हैं । तामैं कोई विशेष नहीं । जो शून्यमैं विशेष मानै तो शून्यवादीकी हानि होवैगी । काहेतैं वह विशेषही शून्यसैं भिन्न है । औ जो ऐसैं कहै शून्यमैं विशेष है । जाकूं विलक्षणता कहैहैं । तासैं व्यवहारभेद होवैहै । औ वह विशेष औ व्यवहार तथा व्यवहारका कर्ताभी परमार्थसैं शून्य है । यातैं शून्यताकी हानि नहीं सोभी संभवै नहीं । काहेतैं शून्यमैं विशेष है यह कथन विरुद्ध है । विशेषवाला कहैं तो शून्यताकी हानि होवैहै । औ शून्य कहैं तौ विशेषवत्ताकी हानितैं व्यवहारभेदका असंभव है । इसरीतिसैं शून्यवाद संभवै नहीं ॥

कोई तांत्रिककी रीतिसैं असत्ख्यातिवाद ॥ ४८ ॥

औ कोई तांत्रिक असत्ख्यातिवादीहै । ताकै मतमैं शुक्तिआदिक व्यावहारिक पदार्थ तो असत् नहीं । किंतु भ्रमज्ञानके विषय जो अनिर्वचनीय रजतादिक सिद्धांतमैं मानें हैं । वह असत् हैं । यातैं व्यावहारिक रजतादिक अपने देशमैं है । तिनका शुक्तिमैं संबंध नहीं औ अन्यथाख्यातिवादीकी नांई शुक्तिमैं रजतत्वकी प्रतीतिभी होवै नहीं । अनिर्वचनीय रजत उपजै नहीं । औ अख्यातिवादीकी नांई दो ज्ञान होवै नहीं । शून्यवादीकी नांई शुक्ति असत् नहीं । ज्ञाता ज्ञानभी असत् नहीं । किंतु शुक्तिज्ञान ज्ञाता सत् हैं । दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संबंध होवै तब शुक्तिका ज्ञान होवै नहीं । किंतु शुक्तिदेशमैं असत् रजतकी प्रतीति हो-

वैहै । यद्यपि अन्यथाख्यातिवादमैं शुक्तिदेशमैं रजत असत् है । औ कांतांकरमैं तथा हट्टमैं सत् रजत दोनूं मतमैं हैं । तथापि अन्यथाख्यातिवादमैं ता देशांतरस्थ सत्यरजतवृत्ति रजतत्वका शुक्तिमैं भान होवैहै । औ असत्ख्यातिवादमैं देशांतरमैं रजत तौ हैं । तिसके धर्म रजतत्वका शुक्तिमैं भान होवै नहीं । किंतु असत्गोचर रजतज्ञान है । शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवैहै । ताका विषय शुक्ति नहीं । जो रजतभ्रमका विषय शुक्ति होवै तौ "इयं शुक्तिः"ऐसा ज्ञान हुया चाहिये । जो शुक्तित्वरूप विशेषधर्मका दोषबलतैं भान नहीं होवै तौ सामान्यअंशका "इयम्" इतनाही ज्ञान हुया चाहिये । यातैं भ्रमका विषय शुक्ति नहीं । तैसैं भ्रमका विषय रजतभी नहीं । काहेतैं पुरोवर्तिदेशमैं तौ रजत है नहीं । औ देशांतरमैं रजत है । तासैं नेत्रका संबंध नहीं । इसरीतिसैं रजतभ्रमका विषय कोई नहीं । और शुक्तिज्ञानसैं उत्तरकालमैं "इह कालत्रयेऽपि रजतं नास्ति"ऐसी प्रतीति होवैहै । यातैं रजतभ्रम निर्विषयक होनेतैं असत्गोचर कहियेहै। असत्गोचरज्ञानकूंही असत्ख्याति कहैहैं॥

न्यायवाचस्पत्यकारकी रीतिसैं असत्ख्यातिवाद ॥ ४९ ॥

और कोई असत्ख्याति इसरीतिसैं कहैहैं:—शुक्तिसैं नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवैहै । यातैं रजतभ्रमका विषय शुक्तिहै । परंतु शुक्तिमैं शुक्तित्व औ शुक्तित्वका समवाय दोनूं दोषतैं भासै नहीं । किंतु शुक्तिमैं रजतत्वका समवाय भासै है । जो रजतत्वका समवाय शुक्तिमैं है नहीं । यातैं असत्ख्यातिहै । रजतत्वप्रतियोगिक शुक्तिअनुयोगिक समवाय असत्है । ताकी ख्याति कहिये प्रतीति असत्ख्याति कहियेहै । रजतत्वप्रतियोगिक समवाय रजतमैं रजतत्वका प्रसिद्धहै । और शुक्त्यनुयोगिक समवाय शुक्तिमैं शुक्तित्वका प्रसिद्धहै । परंतु रजतत्वप्रतियोगिक और समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्धहै । शुक्त्यनुयोगिक नहीं । और जो शुक्त्यनुयोगिक समवाय प्रसिद्धहै सो शुक्तित्वप्रतियोगिक है, रजतत्वप्रतियोगिक नहीं । इसरीतिसैं रजतत्वप्रतियोगिक शुक्तिअनुयोगिक

समवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असत्‌है। ताकी प्रतीतिकूं असत्‌ख्याति कहैहैं। शुक्ति जाका अनुयोगी कहिये धर्मी होवै सो शुक्त्यनुयोगिक कहियेहै। रजतत्व जिसका प्रतियोगी होवै सो रजतत्वप्रतियोगिक कहियेहै। भाव यहहैः—केवल समवाय प्रसिद्धहै। और रजतत्वप्रतियोगिक समवायभी रजतसैं प्रसिद्धहै। और शुक्त्यनुयोगी समवायभी शुक्तिधर्मनका शुक्तिमैं प्रसिद्धहैं। प्रसिद्धसमवायमैं समवायत्वधर्महै रजतत्वप्रतियोगित्वभी समवायमैंभी प्रसिद्धहै। तैसैं शुक्त्यनुयोगिकत्वभी समवायमैं प्रसिद्धहैं। परंतु रजतत्वप्रतियोगिकत्व शुक्त्यनुयोगिकत्व ये दोनूं धर्म एक स्थानमैं समवायमैं अप्रसिद्ध होनेतैं शुक्त्यनुयोगिकत्वविशिष्ट रजतत्वप्रतियोगिकत्वविशिष्ट समवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असत्‌है। ताकी ख्याति असत्‌ख्याति कहियेहै। यह न्यायवाचस्पत्यकारका मतहै। इसरीतिसैं अधिष्ठानकूं मानिकै असत्‌ख्याति दो प्रकारकी मानैहैं। एक तो शुक्तिअधिष्ठानमैं असत्‌रजतकी प्रतीतिरूपहै और दूसरी शुक्तिमैं असत्‌रजतत्वसमवायकी प्रतीतिरूपहै ॥

द्विविध असत्‌ख्यातिवादका खंडन ॥ ६० ॥

सो दोनूं असंगतहैंः—काहेतैं जो असत्‌ख्याति मानैं ताकूं यह पूछैहैं। असत्‌ख्याति या वाक्यमैं अबाध्यविलक्षण असत्‌शब्दका अर्थहै। अथवा असत्‌शब्दका अर्थ निःस्वरूपहै ॥ जो ऐसैं कहैः—असत्‌शब्दका अर्थ निःस्वरूपहै। तौ "मुखे मे जिह्वा नास्ति" इस वाक्यकी नांई असत्‌ख्यातिवादका अंगीकार निर्लज्जकाहै। काहेतैं सत्तास्फूर्तिरहितकूं निःस्वरूप कहैहैं। यातैं सत्तास्फूर्तिशून्यभी प्रतीत होवैहै। यह असत्‌ख्यातिवाद कहै तैसैं सिद्ध होवैहै। सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति कहना विरुद्धहै। यातैं अबाध्यविलक्षण असत्‌शब्दका अर्थ कहै तौ अबाध्यविलक्षण बाध्य होवैहै। बाधके योग्यकूं बाधा कहैहैं। इसरीतिसैं बाधके योग्यकी प्रतीति असत्‌ख्याति कहियेहैं। यह सिद्ध हुया सोई सिद्धांतीमतहै। काहेतैं अनिर्वचनीयख्याति सिद्धांतमैंहै। और बाधयोग्यही

अनिर्वचनीय होवैहै। इसरीतिसैं सिद्धांतसैं विलक्षण असत्ख्यातिवादहैं। यह कहना संभवै नहीं। तैसैं ॥

आत्मख्यातिकी रीति औ खंडन आंतरपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय ॥ ९१ ॥

आत्मख्यातिवादभी असंगतहै:--काहेतैं विज्ञानवादीकै मतमैं आत्मख्यातिहै। क्षणिकविज्ञानकूं विज्ञानवादी आत्मा कहैहैं। तिसके मतमैं बाह्य रजत नहींहै। किंतु अंतर विज्ञानरूप आत्माहै। ताका धर्म रजतहै। दोषबलतैं बाह्य प्रतीत होवैहै। शून्यवादीके मतविना आंतरपदार्थकी सत्तामैं किसी सुगतशिष्यका विवाद नहीं। बाह्यपदार्थ तो कोई मानैहै। कोई नहीं मानैहै। यातैं बाह्य पदार्थकी सत्तामैं तो तिनका विवादहै। आंतरविज्ञानका निषेध शून्यवादीविना कोई नास्तिक करै नहीं। यातैं आंतररजतका विज्ञानरूप आत्मा अधिष्ठानहै। ताका धर्म रजत आंतरहै। दोषबलतैं बाह्यकी नांई प्रतीत होवैहै। ज्ञानतैं रजतका स्वरूपसैं बाध नहीं होवैहै। किंतु रजतकी बाह्यताका बाध होवैहै। अनिर्वचनीय ख्यातिवादमैं रजतधर्मीका बाध और इदंतारूप बाह्यवृत्तिताका बाध मानना होवैहै। और आत्मख्यातिमतमैं रजतका तो बाध मानना होवै नहीं। काहेतैं शून्यवादीसैं भिन्न सकल सौगतके मतमैं पदार्थनकी आंतरसत्तामैं विवाद नहीं। यातैं स्वरूपसैं रजतका बाध मानना होवै नहीं। केवल बाह्यतारूप इदंताका बाध मानना होवैहै। यातैं अनिर्वचनीयवाद मानै तो धर्म और धर्मीका बाधकल्पन गौरवहै। आत्मख्याति मानै धर्मीके बाधविना इदंतारूप धर्ममात्रके बाधकल्पनमैं लाघवहै। यह आत्मख्यातिवादीका अभिप्रायहै। या मतमैं रजत आंतर सत्यहै। ताकी बाह्यदेशमैं प्रतीति भ्रमहै। यातैं रजतज्ञानमैं रजतगोचरत्व अंश भ्रम नहीं। किंतु रजतका बाह्यदेशस्थत्वप्रतीतिअंशमैं भ्रमहै ॥

आंतरपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन ॥ ९२ ॥

यह मतभी समीचीन नहीं:—रजत आंतरहै। ऐसा अनुभव किसीकूं

होवै नहीं। भ्रमस्थलमैं वा यथार्थस्थलमैं रजतादिकनकी आंतरता किसी प्रमाणसैं सिद्ध होवै नहीं । सुखादिक आंतरहैं । औ रजतादिक बाह्यहैं । यह अनुभव सर्वकूं होवैहै । रजतकूं आंतर माने अनुभवसैं विरोध होवैहै । और आंतरताका साधक प्रमाणयुक्तिहै नहीं, यातैं आंतररजतकी बाह्यप्रतीति मानना असंगतहै ॥

सौगतनके दो भेदनमैं बाह्यपदार्थवादीकी आत्मख्यातिका अनुवाद ॥ ९३ ॥

यद्यपि सौगतनमैं दो भेदहैः— एक तो विज्ञानवादहै । औ दूजा बाह्यवादहै । बाह्यवादमैंभी दो भेदहैं; एक तो बाह्य पदार्थ अनुमेयहैं । प्रत्यक्ष नहीं; ज्ञानका प्रत्यक्ष होवैहै । ज्ञानसैं ज्ञेयकी अनुमिति होवैहै । इसरीतिसैं बाह्यपदार्थनका परोक्षवादहै ॥ औ बाह्य पदार्थभी प्रत्यक्षज्ञानके विषयहैं । इसरीतिसैं बाह्य पदार्थनका अपरोक्षवादहै । इनमैं विज्ञानवादीके मतमैं तौ व्यावहारिक रजतभी बाह्य नहींहै औ बाह्यपदार्थवादीके मतमैं यथार्थज्ञानका विषय रजत तो बाह्यहै । यातैं उक्तअनुभवका विरोध नहीं । औ भ्रमस्थलमैं बाह्य रजत माननैंका प्रयोजन नहीं । काहेतैं कटकादिसिद्धि तो तिस रजतसैं होवै नहीं । केवल प्रतीतिमात्र होवैहै । औ विषयविना प्रतीति होवै नहीं । यातैं भ्रमप्रतीतिकी सविषयतासिद्धिही तिस रजतका फलहै । सो आंतरही मानै तौभी भ्रमप्रतीति विषय होय जावैहै । बाह्य मानिकै प्रतीतिकी सविषयता सिद्ध करै ताके मतमैं उक्तरीतिसैं धर्मधर्मीका बाध माननेतैं गौरवहै । आंतर रजतकी दोषबलतैं बाह्य प्रतीति मानै तो केवल इदंताके बाध माननेतैं लाघव होवैहै । औ यथार्थज्ञानका विषय रजत पुरोवर्तिदेशमैं होवैहै । भ्रमज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्ति देशमैं होवै तौ यथार्थ ज्ञान औ भ्रमज्ञानकी विलक्षणता नहीं होवैगी । औ आत्मख्यातिमतमैं तो यथार्थज्ञानका विषय रजत पुरोवर्तिदेशमैंहै । औ भ्रमज्ञानका विषय रजत आंतरहै ।

यातैं बाह्यत्व आंतरत्वरूप विषयकी विलक्षणतासैं यथार्थत्व अयथार्थत्व भेदज्ञानके होवैहैं । औ बाह्यदेशमैं जो भ्रमके विषयकी उत्पत्ति मानैं तौ शुक्तिदेशमैं उपजे रजतकी सर्वकूं प्रतीति हुई चाहिये । औ एक-अधिष्ठानमैं दश पुरुषनकूं भिन्नभिन्न पदार्थनका भ्रम होवै तहां एक एक पुरुषकूं सकल पदार्थनकी प्रतीति हुईचाहिये । औ आत्मख्यातिमतमैं तो जिसके आंतर जो पदार्थ उपजैहै तिसीकूं पुरोवर्तिदेशमैं वह पदार्थ प्रतीत होवैहै । यातैं अन्य पुरुषकूं ताकी प्रतीतिकी शंकाही होवै नहीं । भ्रमके विषयकी बाह्य उत्पत्ति मानें तिसके मतमैं अन्य पुरुषनकूं अप्रतीतिमैं समाधानका अन्वेषणरूप क्लेशही फलहै । इसरीतिसैं बाह्यपदार्थवादी सौगतमतमैं आत्मख्यातिकी उक्ति संभवैहै । व्यावहारिक पदार्थ ही तिसके मतमैं बाह्यहै प्रातिभासिक रजतादिक बाह्य नहीं केवल आंतरहीहै ॥

बाह्यपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन ॥ ९४ ॥

तथापि आत्मख्यातिवाद असंगतहीहैः—काहेतैं रजतादिक पदार्थ स्वप्नविना जागरणमैं आंतर अप्रसिद्धहैं । बाह्य स्वभावकूं भ्रमस्थलमैं आंतर कल्पना अप्रसिद्धकल्पना दोषहै । औ आंतर होवैं तो " मयि रजतम्' अहं रजतम्" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये "इदं रजतम्" इसरीतिसैं रजतकी बाह्यप्रतीति हुई चाहिये ॥

और जो ऐसैं कहैः—यद्यपि रजत आंतरहै बाह्य देशमें है नहीं तथापि दोषमाहात्म्यतैं आंतरपदार्थकी बाह्यप्रतीति होवैहै । बाह्यतारूप इदंता शुक्तिमैंहै । दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिकी इदंता रजतमैं भासैहै । जा दोषतैं आंतर रजत उपजैहै ता दोषतैंही आंतर उपजे रजतमैं शुक्तिकी इदंता प्रतीत होवैहै । जो रजतकी बाह्य देशमैं उत्पत्ति मानैं तौ बाह्य देशमैं सत्य रजत तो संभवै नहीं । अनिर्वचनीय मानना होवैगा सो अनिर्वचनीय वस्तु लोकमैं अप्रसिद्धहै । यातैं अप्रसिद्धकल्पनादोष होवैगा । औ आंतर तो सत्यरजत उपजैहै । आंतर होनेतैं ताके हान उपादान अशक्यहैं । यातैं सत्य मानैंभी कटकादिसिद्धिरूप फलका अभाव संभवैहै ।

यातैं अनिर्वचनीय वस्तुकी कल्पना होवै नहीं । अनिर्वचनीय ख्यातिसैं आत्मख्यातितैं यह लाघवहै ॥

सोभी असंगतहैः—शुक्तिकी इदंता रजतमैं प्रतीत होवैहै या कहनैसैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैहै । जो इदंताप्रतीतिमैं अन्यथाख्याति मानी तौ शुक्तिमैं रजतत्वधर्मिकी प्रतीतिभी अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये । आंतर रजतकी उत्पत्ति माननी निष्फलहै । जैसैं रजतपदार्थ शुक्तिसैं व्यवहितहै । ताके धर्मकी शुक्तिमैं प्रतीतिका असंभव कहै तो तेरे मतमैंभी शुक्तिसैं व्यवहित अंतरदेशमैं रजतहै। तामैं शुक्तिधर्म इदंताकी प्रतीतिका असंभव तुल्यहै ॥

आत्मख्यातिवादतैं विलक्षण अद्वैतवादका सिद्धांत ॥ ९८ ॥

औ सिद्धांतमतमैं तो शुक्ति वृत्तितादात्म्यका अनिर्वचनीयसंबंध रजतमैं उपजैहै। ताकूं संसर्गाध्यास कहैहै । अधिष्ठानका संबंध आरोपितमैं जहां प्रतीत होवै तहां सारे अधिष्ठानका संसर्गाध्यास होवैहै । संसर्गाध्यासविना अन्यधर्मकी अन्यमैं प्रतीति होवै नहीं । इसरीतिसैं अध्यासविना शुक्तिवृत्तिइदंताका आंतर रजतमैं प्रतीतिके असंभवतैं आत्मख्यातिवाद असंगतहै । और अनिर्वचनीयवस्तुकी अप्रसिद्धकल्पनादोष कह्या सो भी अज्ञानसैं कह्याहै । काहेतैं ॥

अद्वैतवादका यह मुख्य सिद्धांतहैः-चेतन सत्यहैः—तासैं भिन्न सकल मिथ्याहै । अनिर्वचनीयकूं मिथ्या कहैहैं । यातैं चेतनसै भिन्न पदार्थकूं सत्यकथनमैंही अप्रसिद्धकल्पना है । चेतनसैं भिन्न पदार्थनमैं अनिर्वचनीयता तो अतिप्रसिद्धहै । युक्तिसै विचार करैं तब किसी अनात्मपदार्थनका स्वरूप सिद्ध होवै नहीं । और प्रतीत होवैहैं । यातैं सकल अनात्म पदार्थ अनिर्वचनीयहैं । सिद्धांतमैं अनात्मपदार्थ कोई सत्य नहीं ॥ गंधर्वनगरकी नांई सारा प्रपंच दृष्टनष्टस्वभावहै । स्वप्नसैं जागृत पदार्थनमैं किंचिद्विलक्षणता नहीं । औ शुक्तिरजत प्रातिभासिकहै । कांताकरादिकनमैं रजत व्यावहारिक है । इसरीतिसैं अनात्मपदार्थनमैं मिथ्यात्वसत्यत्वविलक्षणता परस्पर कहीहै । सो स्थूल-

१९

बुद्धिवालेका अद्वैतबोधमैं प्रवेशवास्तै अरुंधतीन्यायसैं कहियेहै । स्थूल-बुद्धि पुरुषकूं प्रथमही मुख्य सिद्धांतकी रीति कहै तौ अद्भुत अर्थकूं सुनिकै अनात्मसत्यत्वभावनावाला पुरुष शास्त्रसैं विमुख होयकै पुरुषार्थसैं भ्रष्ट होयजावै इसवास्तै अनात्मपदार्थनकी व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं द्विविध सत्ता कही । औ चेतनकी पारमार्थिकसत्ता कही चेतनसैं न्यूनसत्ता प्रपंचकी बुद्धिमैं आरूढ हुयें सकल अनात्मपदार्थनकूं स्वप्नादिदृष्टांतसैं प्रातिभासिकता जानिकै निषेधवाक्यनतैं सर्व अनात्मकूं सत्तास्फूर्तिशून्य जानि लेवै इसवास्तै सत्ताभेद कह्याहै । औ अनात्मपदार्थनका परस्पर-सत्ता भेदमैं अद्वैतशास्त्रका तात्पर्य नहीं । यातैं अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीय पदार्थ अप्रसिद्धहै । यह कथन विरुद्धहै । औ प्रकारांतरका असंभव है । यातैं लाघवगौरवकथन सर्वथा असंभवहै । जो अनिर्वचनीयख्यातिविना अन्यप्रकारभी संभवै तौ गौरवदोष देखिकै या पक्षका त्याग संभवै । औ उक्तवक्ष्यमाण रीतिसैं सत्ख्यातिसैं आदिलेकै कोई पक्ष संभवै नहीं । यातैं गौरवलाघवविचारही निष्फलहै ॥

सिद्धान्तउक्तगौरवदोषके परिहारपूर्वक द्विविधविज्ञानवादका असंभव ॥ ९६ ॥

और जो आत्मख्यातिनिरूपणके आरंभमैं कह्याः—बाह्यरजतकी उत्पत्ति मानैं तो रजतधर्मी औ इदंताधर्म इन दोका बाध माननेमैं गौरव है औ आत्मख्याति मानें इदंतामात्रके बाध होनै तैं धर्मीका बाध नहीं माननेमैं लाघवहै ॥

यह कथनभी अकिंचित्करहैः—काहेतैं शुक्तिका ज्ञान हुयें मिथ्या रजत मेरेकूं प्रतीत हुया । इसरीतिसैं रजतका बाध सर्वके अनुभवसिद्धहै। औ आत्मख्यातिकी रीतिसैं रजतमैं मिथ्या बाह्यताप्रतीत हुई ऐसा बाध हुया चाहिये । यातैं धर्मीके बाधका लाघवबलसैं लोप करै तौ पाकादि-फलसाधक व्यापारसमूहमैं एकव्यापार करिकै लाघवबलतैं अधिक व्यापारका त्याग कर्या चाहिये । औ भ्रमवाले पुरुषकूं आप्तउपदेश

करै तब " नेदं रजतम् " किंतु " शुक्तिरियम् " इसरीतिसैं रजतका स्वरूप सैं निषेधकरैहै। औ आत्मख्यातिकी रीतिसैं " नात्र रजतम् " किंतु " ते आत्मनि रजतम्" इसरीतिसैं रजतके देशमात्रका निषेध कऱ्या चाहिये। यातैं आत्मामैं उपजेकी बाह्यदेशमैं ख्यातिहै। इस अर्थमैं तात्पर्यतैं बाह्यपदार्थवादी सौगतका आत्मख्यातिवाद असंगतहै। औ विज्ञानसैं भिन्न कोई बाह्य औ आंतरपदार्थ नहीं। किंतु विज्ञानरूप आत्माके आकार सर्वपदार्थहैं। इसरीतिसैं विज्ञानवादीका विज्ञानरूप आत्माकी रजतरूपसैं ख्यातिहै। इस तात्पर्यतैंभी आत्मख्यातिवाद असंगतहै॥ विज्ञानसैं भिन्न रजतहै सो ज्ञानका विषयहै। ताकूं विज्ञानरूप आत्मासैं अभिन्नकथन संभवै नहीं। औ विज्ञानवादीके मतमैं सारे पदार्थ क्षणिक विज्ञानरूपहैं॥ तामैं प्रत्यभिज्ञासंभवादिक अनंत दूषणहैं। यातैं आत्मख्याति संभवै नहीं॥

अन्यथाख्यातिकी रीति औ खंडन, अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य्य॥ ८७॥

तैसैं अन्यथाख्यातिवादभी असंगतहै। यह अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य है:– जा पुरुषकूं सत्यपदार्थके अनुभवजन्यसंस्कार होवै ताके दोषसहित नेत्रका पूर्वदृष्टसदृशपदार्थसैं संबंध होवै तहां पुरोवर्ति सदृशपदार्थके सामान्यज्ञानतैं पूर्वदृष्टकी स्मृति होवैहै। अथवा स्मृति नहीं होवै। सदृशके ज्ञानतैं संस्कार उद्भूत होवैहैं। जा पदार्थकी स्मृति होवै अथवा जाके उद्भूतसंस्कार होवै तिस पदार्थका धर्म पुरोवर्तिपदार्थमैं प्रतीत होवैहै। जैसैं सत्य रजतके अनुभवजन्यसंस्कारसहित पुरुषका रजतसदृश शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रका संबंध हुयें रजतकी स्मृति होवैहै। ताके स्मरण करे रजतका रजतत्वधर्म शुक्तिमैं भासैहै। अथवा नेत्रका संबंध हुयें रजतभ्रममैं विलंब होवै नहीं। यातैं नेत्रसंबंध औ रजतके प्रत्यक्षभ्रमके अंतरालमैं रजतकी स्मृति नहीं होवैहै। किंतु रजतानुभवके संस्कार उद्भूत होयके स्मृतिके व्यवधानविना शीघ्र-

ही शुक्तिमैं रजतत्वधर्मका प्रत्यक्ष होवैहै । स्मृतिस्थलमैं जैसैं पूर्वदृष्टसदृशके ज्ञानतैं संस्कारका उद्बोध होवैहै । तैसैं भ्रमस्थलमैं पूर्व दृष्टके सदृशपदार्थसैं इंद्रियका संबंध होतैंही संस्कारका उद्बोध होयकै संस्कारगोचरधर्मका पुरोवर्तिमैं भान होवैहै । याकूं अन्यथाख्याति कहैहैं । अन्यरूपतैं प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैहैं । शुक्तिपदार्थमैं शुक्तित्वधर्म है रजतत्व नहीं है । औ शुक्तिकी रजतत्वरूपतैं प्रतीति होवैहै । यातैं अन्यरूपतैं प्रतीति है ॥

विचारसागरउक्तद्विविधख्यातिवादमैं प्रथम प्राचीन मतका प्रकार औ खंडन ॥ ५८ ॥

औ विचारसागरमैं अन्यथाख्यातिके दो भेद लिखेहैं । दूसरीका प्रकार यह हैः—रजतभ्रम होवै तहां कांताकरादिकनमैं स्थित रजतसैं नेत्रका संबंध होयकै ताका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं कांताकरमैं वा हट्टमैं स्थित रजतकी पुरोवर्तिदेशमैं प्रतीति अन्यथाख्याति है । या मतमैं धर्मधर्मीअंशमैं तो रजतका ज्ञान यथार्थ है । परंतु देशअंशमैं अन्यथा ज्ञान है । यद्यपि हट्टादिकनका रजत व्यवहित है । तासैं नेत्रका संबंध संभवै नहीं ॥ तथापि दोषसहित नेत्रका व्यवहित रजतसैं संबंध होयकै ज्ञान होवैहै । यह दोषका माहात्म्य है । इसरीतिकी अन्यथाख्यातिका वर्तमान न्यायादिग्रंथनमैं उपलंभ नहीं । तथापि इसप्रकारका अन्यथाख्यातिका खंडन अनेक ग्रंथनमैं है ॥

यामैं यह दोष हैः—जो देशांतरमैं स्थितरजतसैं नेत्रका संबंध होवै । तौ हट्टमैं रजतके सन्निहित धरे अन्य पदार्थनका प्रत्यक्षभी हुया चाहिये ॥ कांताकरस्थरजतका प्रत्यक्ष होवै तब कांताके करकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये । और जो ऐसैं कहैः—अन्यथाख्यातिकी केवल इंद्रियसैं उत्पत्ति नहीं होवैहै किंतु पूर्वानुभवजनितसंस्कारसहित सदोषनेत्रसैं अन्यथाख्यातिज्ञान उपजैहै यातैं उद्भूतसंस्कार नेत्रका सहकारी है । रजतगोचर उद्भूतसंस्कारसहित नेत्रसैं रजतकाही ज्ञान होवैहै । अन्यपदार्थगोचर संस्कार

तौ है। परंतु उद्बुद्ध नहीं । यातैं अन्यवस्तुका ज्ञान होवै नहीं । संस्कारनकी उद्बुद्धता औ अनुद्बुद्धता कार्यसैं अनुमेय हैः—यातैं दोष नहीं । तथापि जहां शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिके समान आरोपित रजतका परिमाण प्रतीत होवैहै । लघुशुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां आरोपितरजतमैं भी लघुता भासैहै । महती शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां महत्परिमाणवाला रजत भासैहै । इसरीतिसैं आरोपितपदार्थमैं अधिष्ठानपरिमाणका नियम होनेतैं शुक्त्यादिकनमैं रजतत्वादिक धर्मकी प्रतीति होवैहै । अन्यदेशस्थरजतकी प्रतीति होवै तौ आरोपितमैं अधिष्ठानपरिमाणका नियम नहीं चाहिये । औ लघु तथा महत्परिमाण शुक्तिका भासैहैं । यातैं देशांतरके रजतकी प्रतीति नहीं । औ रजतसंस्कारवालेकूं अन्यपदार्थकी प्रतीति यद्यपि नहीं संभवै तथापि सारे देशके अनंत रजतनकी प्रतीति हुई चाहिये । इसरीतिसैं अनंतदूषणग्रस्त यह पक्ष है । इसीवास्तै वर्तमानग्रंथनमैं या पक्षका उपलंभ होवै नहीं ॥

पूर्वोक्त अन्यथाख्यातिवादका खंडन ॥ ९९ ॥

औ शुक्तिमैं रजतत्वधर्मकी प्रतीति होवैहै । यह अन्यथाख्यातिवाद अनेक ग्रंथकार नैयायिकोंनैं यद्यपि लिख्या है तथापि तिनका लेखभी श्रुतिस्मृतिविरुद्ध है यातैं श्रद्धायोग्य नहींः--स्वप्नज्ञानकूं नैयायिक मानस विपर्यय कहैहैं। औ अन्यथाख्यातिकूं विपर्यय कहैहैं। औ श्रुतिमैं स्वप्नपदार्थनकी उत्पत्ति कहीहै " न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते"यह श्रुति है। तानैं व्यावहारिक रथ अश्व मार्गनका स्वप्नमैं निषेधकरिकै अनिर्वचनीय रथ अश्व मार्गकी उत्पत्ति कही है। तैसैं "संध्येसृष्टिराहहि" यह व्याससूत्र है । तानैंभी स्वप्नमैं अनिर्वचनीयपदार्थनकी सृष्टि कही है। व्यासकृतसूत्र स्मृतिरूपहै । इसरीतिसैं नैय्यायिकनका अन्यथाख्यातिवाद श्रुतिस्मृतिविरुद्ध है । औ नेत्रसैं व्यवहित रजतत्वका शुक्तिमैं ज्ञान संभवै नहीं । जो शुक्तिकै समीप रजत होवै तो दोनूंसैं नेत्रका संयोग होयके रजतवृत्ति रजतत्वकी शुक्तिमैं नेत्रजन्य भ्रमप्रती-

ति संभवै । औ जहां शुक्तिके समीप रजत नहीं तहां शुक्तिमैं रजतत्वभ्रम नेत्रजन्य संभवै नहीं । काहेतैं विशेषणविशेष्यतैं इंद्रियका संबंध हुयें इंद्रियजन्य विशिष्टज्ञान होवैहै । जहां सत्य रजतहै तहां विशेषण रजतत्वहै । विशेष्य रजतव्यक्तिहै । रजतव्यक्तिसैं नेत्रका संयोगसंबंध होवैहै । और रजतत्वसैं नेत्रका संयुक्तसमवायसंबंध होवैहै । यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसैं रजतत्वविशिष्टका नेत्रजन्यज्ञान होवैहै । औ जहां शुक्तिमैं रजतत्वविशिष्टभ्रम होवै । तहां विशेष्य शुक्तिसैं तो नेत्रका संयोगसंबंधहै । रजतत्वविशेषणसैं संयुक्तसमवाय हैनहीं जो रजतव्यक्तिसैं संयोग होवै तौ रजतत्वसैं संयुक्तसमवाय होवै । रजतव्यक्तिसैं संयोगके अभावतैं रजतत्वसैं संयुक्तसमवायका अभावहै यातैं रजतत्वविशिष्टशुक्तिका ज्ञान संभवै नहीं ॥

प्रत्यक्षज्ञानके हेतु षड्विधलौकिक अरु त्रिविध अलौकिक ये दो संबंध ॥ ६० ॥

औ जो नैयायिक कहैः—प्रत्यक्षज्ञानका हेतु विषयइंद्रियका संबंध दो प्रकारकाहै । एक लौकिक संबंधहै औ अलौकिक संबंधहै । संयोग आदिक षट् प्रकारका संबंध लौकिक कहियेहै । औ सामान्यलक्षण ज्ञानलक्षण योगजन्यधर्मलक्षण यह तीनि प्रकारका अलौकिक संबंधहै । लौकिकसंबंधके उदाहरण औ स्वरूप प्रत्यक्षनिरूपणमैं कहेहैं ॥

अलौकिक संबंधके इस भांति उदाहरण स्वरूपहैः— जहां एक घटसैं नेत्रका संयोग होवै तहां एकही घटका नेत्रसैं साक्षात्कार नहीं होवैहै । किंतु घटत्वाश्रय सकल घटनका नेत्रसैं साक्षात्कार होवैहै । परंतु नवीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका औ देशांतरवृत्ति घटनका एकही क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै । औ प्राचीनमतमैं नेत्रसंयुक्त घटका प्रथमक्षणमैं साक्षात्कार होवैहै । परंतु नवीनमतमैं नेत्रसंयुक्त घटका औ देशांतरवृत्तिघटका द्वितीयक्षणमैं साक्षात्कार होवैहै । दोनूं साक्षात्कार नेत्रजन्यहैं परंतु संबंध भिन्नहै । ये दो मतहैं । तिनमैं प्राचीनरीति सुगमहै । यातैं

प्राचीन रीतिही कहैहैं:—पुरोवर्ति घटसैं नेत्रका संयोग होयकै "अयं घटः" इसरीतिसैं एक घटका साक्षात्कार होवैहै । या साक्षात्कारका हेतु संयोगसंबंधहै। यातैं यह साक्षात्कार लौकिकसंबंधजन्यहै । या साक्षात्कारका विषय घट औ घटत्वहै । तिनमैंभी व्यक्ति विशेष्यहै घटत्वप्रकारहै। विशेषणकूं प्रकार कहैहैं। या ज्ञानमैं प्रकार जो घटत्व सो यावत् घटमैं रहैहै । यातैं पुरोवर्तिघटके ज्ञानकालमैं नेत्रइंद्रियका स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्तासंबंध सकल घटनमैं है । या संबंधसैं नेत्रइंद्रियजन्य सकल घटनका साक्षात्कार द्वितीयक्षणमैं होवैहै या साक्षात्कारका विषय पुरोवर्ति घटभीहै। काहेतैं घटत्ववत्ता जैसैं अन्यघटनमैंहै । तैसैं पुरोवर्ति घटमैंभीहै। यातैं पुरोवर्त्तिघटगोचर दो ज्ञान होवैहैं। प्रथमक्षणमैं लौकिकज्ञान होवैहै । द्वितीयक्षणमैं अलौकिक ज्ञान होवैहै। यह उक्त संबंध अलौकिकहै । अलौकिकसंबंधजन्यज्ञानभी अलौकिकहै । इंद्रियका सकल घटनतैं स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्तासंबंधहै। जहां नेत्रजन्य साक्षात्कार एकघटका होवै तहां स्वशब्द नेत्रका बोधकहै। औ जहां त्वक्सैं एकघटका ज्ञान होवै तहां स्वशब्द त्वक्का बोधकहै। इसरीतिसैं जा इंद्रियतैं एक व्यक्तिका ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यही सकल घटनका अलौकिक साक्षात्कार होवैहै। नेत्रइंद्रियजन्य एकघटका लौकिकसाक्षात्कार हुये त्वक्इंद्रियजन्य सकल घटनका अलौकिकसाक्षात्कार होवै नहीं। नेत्रजन्य एकघटका ज्ञान हुये स्व कहिये नेत्र तिसतैंजन्य "अयं घटः" यह ज्ञानहै। तामैं प्रकारीभूत कहिये विशेषण जो घटत्व तद्वत्ता कहिये ताकी आधारता सकल घटनमैंहै। इसरीतिसैं सकल घटनके ज्ञानका हेतु उक्तसंबंधहै । सो एकघटका ज्ञान होवै तब नेत्रजन्यज्ञानमैं घटत्व प्रकार होवैहै । औ पुरोवर्ति घटके लौकिकज्ञानसैं प्रथम उक्तसंबंध संभवै नहीं। यातैं लौकिक ज्ञान प्रथमक्षणमैं होवैहै । अलौकिक उत्तरक्षणमैं होवैहै। यह प्राचीनरीतिहै, नवीन रीतिसैं एकही ज्ञान सकल घटगोचर होवैहै। पुरोवर्ति घट अंशमैं लौ-

किक होवैहै । देशांतरस्थ घटांशमैं अलौकिक होवैहै । प्रसंगप्राप्त एक रीति कही विस्तारभयतैं नवीनरीति कही नहीं । यह सामान्यलक्षण-संबंधहै। जातिकूं सामान्य कहैहैं। सामान्य कहिये जाति लक्षण कहिये स्वरूप यातैं जातिस्वरूपसंबंधहै । यह सिद्ध हुयाः—नेत्रज-न्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता कहनैसैं घटत्वही सिद्ध होवैहै । यातैं उक्तसंबंध सामान्यस्वरूपहै । अथवा घटत्वाधिकरणताकूं घटत्ववत्ता कहै तौभी सामान्यलक्षणही संबंधहै । काहेतैं अनेक अधिकरणनमैं अधिकरणताधर्म सामान्यहै । या स्थानमैं अनेकमैं जो समानधर्म होवै सो सामान्यशब्दका अर्थहै । केवल जातिही सामान्यशब्दका अर्थ नहीं । यातैं अनेक घटनमैं घटत्वकी अधिकरणताभी समान धर्म होनेतैं सामान्य कहियेहै । इसरीतिसैं एक व्यक्तिसैं इंद्रियका संबंधहुयें इंद्रिय-संबंधी व्यक्तिके समान धर्मवाली इंद्रियसंबंधी सकलव्यक्तिसैं सामान्य-लक्षण अलौकिकसंबंध इंद्रियका होनेतैं व्यवहित अव्यवहित वस्तुका इंद्रियजन्य अलौकिक साक्षात्कार होवैहै ॥

औ ज्ञानलक्षणसंबंधका यह उदाहरणसहित स्वरूपहैः—जहां इंद्रिय-योग्यपदार्थसैं इंद्रियका संबंध होवै औ इंद्रियसंबंधकालमैं तिसइंद्रियके अयोग्यपदार्थका स्मृतिज्ञान होवै तहां इंद्रियसंबंधी पदार्थका औ स्मृतिगोचर पदार्थका एकज्ञान होवैहै । तहां जिस पदार्थकी स्मृति होवै तिस अंशमैं वह ज्ञान अलौकिकहै । जिस अंशका इंद्रियसंबंध जन्यहै तिस अंशमैं लौकिकहै । जैसैं चंदनसैं नेत्रइंद्रियका संयोग होवै तिसकालमैं सुगंधधर्मकी स्मृति होवै तब नेत्र इंद्रियजन्य "सुगंधि चंदनम्" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै । तहां चंदनत्वविशिष्ट चंदन तो नेत्रकै योग्यहै । औ चंदनका धर्म यद्यपि सुगंधहै । तासैं नेत्रसंयुक्त समवाय-संबंधभीहै । तथापि नेत्रके योग्य सुगंध नहीं घ्राणके योग्य सुगंधहै । यातैं नेत्रसंयुक्तसमवायसंबंधसैं सुगंधधर्मका चाक्षुषसाक्षात्कार होवै नहीं । किंतु नेत्रसंयोगतैं चंदनव्यक्तिका औ नेत्रसंयुक्तसमवायतैं चंदन-

त्वका चाक्षुषज्ञान होवैहै। चंदनके सुगंध गुणतैं नेत्रका संयुक्तसमवाय-संबंध विद्यमानभी अकिंचित्करहै। तथापि नेत्रके संयोग होतैंही "सुगंधि चंदनम्" इसरीतिका चंदनगोचर चाक्षुषज्ञान अनुभवसिद्धहै। यातैं चंदनवृत्ति सुगंधगुणसैं नेत्रका संबंध कोई साक्षात्कारका हेतु मान्या-चाहिये। तहां और तो कोई संबंधनेत्रका सुगंधगुणसैं है नहीं। नेत्र-संयुक्त समवायहै। सो गंधज्ञानका जनक नहीं। औ जाकूं चंदनकी सुगंधता घ्राणसैं अनुभूत होवै ताकूंही चंदनका नेत्रसैं "सुगंधि चंदनम्" ऐसा ज्ञान होवैहै। जाकूं चंदनकी सुगंधवत्ता घ्राणसैं अनुभूत नहीं होवै। ताकूं चंदनसैं नेत्रका संयोगहुये "सुगंधि चंदनम्" ऐसा ज्ञान होवै नहीं। इसरीतिसैं पूर्वअनुभवजन्य सुगंधके संस्कारका "सुगंधि चंदनम्" या प्रत्यक्षतैं अन्वयव्यतिरेकहै। यातैं "सुगंधि चंदनम्" या चाक्षुषज्ञानका सुगंधानुभवजन्यसंस्कार वा सुगंधस्मृति हेतुहै। जो सुगंधसंस्कारकूं अथवा स्मृतिकूं सुगंधप्रत्यक्षकी स्वतंत्र कारणता कहैं तौ सुगंधअंशमैं वह ज्ञान चाक्षुष नहीं होवैगा। औ "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान सुगंध-अंशमैंभी चंदनचंदनत्वकी नांई चाक्षुषही अनुभवसिद्धहै। यातैं ताज्ञानके हेतु संस्कारकूं वा स्मृतिकूं नेत्रका संबंध मान्या चाहिये। जो नेत्रका संबंध मानें तो सुगंधज्ञानभी संस्कार वा स्मृतिरूप नेत्रके संबंधजन्यहै। यातैं चाक्षुषहै। परंतु संस्कार वा स्मृति नेत्रनिरूपित होवै तौ नेत्रका संबंध होवै जैसैं घटनिरूपित संयोग घटका संबंध कहियेहै। पटनिरूपित संयोग पटका संबंध कहियेहै। इसरीतिसैं सुगंधगोचर स्मृति औ संस्कारभी नेत्रनिरूपित होवै तौ नेत्रका संबंध संभवै अन्यथा नेत्रका संबंध सुगंधकी स्मृतिकूं वा सुगंधके संस्कारकूं कहना संभवै नहीं। यातैं इसरीतिसैं नेत्र-निरूपितहैं॥ जब चंदनका साक्षात्कार होवै तब मन आत्माका संबंध होयकै मन औ नेत्रका संबंध होवैहै। आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त नेत्रका चंदनसैं संयोग होवैहै। इसरीतिसैं मन आत्माका संयोग औ मन नेत्रका संयोग चंदनसाक्षात्कारका हेतुहै। जिस कालमैं आत्मसंयुक्त मनका

नेत्रसैं संयोग होवै तिसकालमैं सुगंधकी स्मृति अथवा सुगंधके संस्कार आत्मामैं समवायसंबंधसैं हैं । तिनका विषय सुगंधहै । यातैं स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञान अथवा स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतसंस्कार चंदनके सुगंधमैं हैं । काहेतैं स्वशब्दसैं नेत्रका ग्रहणहै तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला मनहै । तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्माहै । तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधसैं वृत्तिके सुगंधकी स्मृतिहै । औ सुगंधका संस्कारभी समवायसंबंधसैं आत्मवृत्तिहै । यातैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतस्मृतिज्ञान औ नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतसंस्कार ये दोनूं नेत्रनिरूपितहैं । नेत्रघटित स्वरूप यह परंपराहै । यातैं नेत्रका संबंधहै । इस परंपरासंबंधका प्रतियोगी नेत्रहै । औ अनुयोगी सुगंधहै । जामैं संबंध रहै सो संबंधका अनुयोगी कहियेहै । स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप जो उक्तपरंपरासैं नेत्रका संबंध ताका विषय सुगंधहै । यातैं उक्तसंबंधका सुगंध अनुयोगीहै । ज्ञानकी अधिकरणता विषयमैं अनुभवसिद्धहै । यातैं आत्माकीनांई विषयभी ज्ञानका अधिकरण औ अनुयोगी कहियेहै । जैसैं " घटे ज्ञानम् " यह व्यवहार होवैहै तहां " घटवृत्ति ज्ञानम् " यह उक्तवाक्यका अर्थहै । इस रीतिसैं विषयभी अत्माकीनांई ज्ञानका आधार होनेतैं अनुयोगीहै ॥ परंतु समवायसंबंधसैं ज्ञानका आधार आत्माहै । औ विषयतासंबंधसैं ज्ञानका आधार सुगंधादिक विषयहै । जो ज्ञानका आधार होवै सोई संस्कारका आधार होवैहै । काहेतैं पूर्व अनुभवतैं संस्कार उपजैहै । औ अनुभवके समान विषयवाले उत्तरस्मृति आदिकनकूं उपजावैहै । यातैं पूर्वअनुभव संस्कार स्मृति इन तीनकूं आश्रय विषय समानहोवैहै । यातैं सुगंधगोचरसंस्कारभी विषयतासंबंधसैं सुगंधमैं रहैहै । यातैं नेत्रप्रतियोगिकसंस्कारका अनुयोगी सुगंध है । इसरीतिसैं स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप संबंध नेत्रका सुगंधसैं है । औ संयोगसंबंध चंदनव्यक्तिसैं है । संयु-

क्समवाय चंदनत्वसैंहै । यातैं तीनूंकूं विषय करनैंवाला " सुगंधि चंदनम् " यह चाक्षुषसाक्षात्कार होवैहै । सुगंधवाला चंदनहै यह वाक्यका अर्थहै । नेत्रसैं सुगंध चंदनत्व चंदनका साक्षात्कार होवै तहां चंदनत्वसैं तो लौकिक संबंधहै। सयांगादिक षट् संबंधनकूं लौकिक संबंध कहैहैं। औ स्मृति औ संस्कार लौकिकसंबंधसैं भिन्न होनैंतैं अलौकिकहैं । जहां चंदनसैं नेत्रके संबंधकालमैं सुगंधस्मृति अनुभवसिद्ध होवै तहां स्मृतिरूप संबंधहै । औ स्मृतिका अनुभव नहीं होवै तौ संस्कारही संबंधहै । इस अलौकिक संबंधकूं ज्ञानलक्षणसंबंध कहैहै । स्मृतिमैं तौ ज्ञानशब्दका प्रयोग प्रसिद्धहीहै । औ संस्कारभी ज्ञानजन्य होवैहै । उत्तर ज्ञानका जनक होवैहै । यातैं ज्ञानका संबंधी होनैंतैं ज्ञान कहैहै ॥

तैसैं योगीकूं इंद्रियसंबंधीके साक्षात्कारकीनांई इंद्रियसैं व्यवहितकाभी साक्षात्कार होवैहै । तहां योगाभ्यासतैं इंद्रियमैं विलक्षण सामर्थ्यहोवैहै । यातैं योगज धर्महीं इंद्रियका संबंध कहियेहै । परंतु यामैं मतभेदहै ॥

जगदीशभट्टाचार्यका तो यह मतहैः--जिस इंद्रियके योग्य जो पदार्थ होवैहै । तिसी इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कार होवैहै । योगीकूं व्यवहितका औ भूत भावीकाभी इंद्रियजन्यसाक्षात्कार होवैहै । योगीसैं इतरकूं वर्तमान इंद्रियसंबंधीकाही साक्षात्कार होवैहै । औ जाइंद्रियके जो पदार्थ योग्य नहीं तिस इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कारयोगीकूंभी होवैनहीं । जैसैं रूपका ज्ञान नेत्रसैं ही होवैहै रसनादिकनतैं होवै नहीं ॥

और कितने ग्रंथकारनका यह मतहैः—योगकी अद्भुतमहिमाहै । अभ्यासके उत्कर्ष अपकर्षतैं योगजधर्म विलक्षण होवैहै । किसीमैं तो अभ्यासके उत्कर्षतैं ऐसा धर्म होवैहै। एकइंद्रियतैं योग्य अयोग्य सकलका ज्ञान होवैहै । किसीमैं अभ्यासके अपकर्षतैं योग्य विषयके ज्ञानकीही सामर्थ्य होवैहै । सर्वप्रकारसैं योगजधर्मसैं व्यवहितका ज्ञान होवैहै । यातैं योगज धर्मभी अलौकिक संबंधहै ॥

न्यायमतमैं अलौकिकसंबंधसै देशान्तरस्थ रजतत्व-का शुक्तिमैं प्रत्यक्षभान औ ताभानसैं सुगन्धि-चंदनके भानतैं विलक्षणता ॥ ६१ ॥

इसरीतिसैं इंद्रियके संयोगादिक संबंधविना अलौकिकसंबंधतैंभी इंद्रियजन्यसाक्षात्कार होनेतैं देशांतरस्थरजतवृत्ति रजतत्वकाभी शुक्तिमैं अलौकिकसंबंधसैं चाक्षुषसाक्षात्कार संभवैहै । जैसैं सुगंधस्मृति औ चंदनसैं नेत्रसंयोग हुयां "सुगंधि चंदनम्" इसरीतिसैं योग्य अयोग्यानुभवगोचरचाक्षुषज्ञान होवैहै । इसरीतिसैं दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संयोग होवैहै । शुक्तिव्यक्ति तो नेत्रके योग्यहै । औ रजतत्वजाति यद्यपि प्रत्यक्ष योग्य है । तथापि जातिका आश्रय व्यक्ति जहां प्रत्यक्षगोचर होवै तहां जाति योग्यहै । औ जहां जातिका आश्रय प्रत्यक्षयोग्य नहीं तहां जाति अयोग्यहै । या प्रसंगमैं रजतत्वका आश्रय रजतव्यक्ति नेत्रसैं व्यवहितहै । यातैं नेत्रयोग्य नहीं । जैसैं सुगंधअंशमैं चंदनज्ञान अलौकिकहै । तैसैं "इदं रजतम्" यह ज्ञानभी रजतत्वअंशमैं अलौकिकहै । परंतु इतना भेदहैः— "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानसैं तो चंदनवृत्तिसुगंध चंदनमैं भासैहै । औ "इदं रजतम्" या ज्ञानसैं इदं पदार्थमैं आवृत्ति रजतत्व इदंपदार्थमैं भासैहै । तैसैं औरभी विलक्षणताहैः— "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानसैं नेत्रके अयोग्य सुगंध भासैहै । औ चंदनकी सकलसामान्यविशेषता भासैहै । औ " इदं रजतम् " या ज्ञानसैं व्यवहित होनेतैं नेत्रके अयोग्य रजतत्वका भास तो सुगंध भासके समान है परंतु चंदनके विशेषरूप चंदनत्वके भासकीनांई शुक्तिका विशेषरूप शुक्तित्वका भास होवै नहीं । औ मलयाचलोद्भूतकाष्ठविशेषरूपचंदनके अवयव भासैहैं । औ शुक्तिके त्रिकोणतादिविशिष्ट अवयव भासै नहीं । इसरीतिसैं दोनूं ज्ञानूंका भेदहै । उक्त भेदकृतही क्रमतैं यथार्थत्व अयथार्थत्वहै । यद्यपि इंद्रियसंयोग औ अयोग्यधर्मकी स्मृतिरूपसामग्री दोनूं ज्ञानूंमैं सामान्यहै । औ सामग्री भेदविना उक्तप्रकारकी विलक्षणता संभवै नहीं । तथापि सामग्रीमैं दोषराहित्य औ दोषसाहित्य विलक्षणताहै ।

यातैं उक्तविलक्षणता संभवैहै जैसैं "सुरभि चंदनम्" या स्थानमैं ज्ञानलक्षणसंबंधकी निरूपकता नेत्रकूंहै तैसैं "इदं रजतम्" या स्थानमैंभी नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञानसंबंधहै । ताका निरूपक नेत्रहै । औ विषय रजतत्वहै । सो स्मृतिज्ञानका अनुयोगीहै । जा विषयका ज्ञान होवै सो विषय तासंबंधसैं ज्ञानका अनुयोगी होवैहै । नेत्रसैं संयोगवाला होनेतैं नेत्रसंयुक्त मनहै । तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं समवेतज्ञान रजतत्वकी स्मृतिहै सो विषयतासंबंधसैं रजतत्वमैंहै । इसरीतिसैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञानरूपनेत्रका संबंध रजतत्वमैं होनेतैं नेत्रसंबद्ध रजत्वका भ्रमज्ञान प्रत्यक्षहै ॥

अथवा ज्ञानरूप संबंध नहीं किंतु ज्ञानकी विषयतासंबंधहै यातैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञानविषयतासंबंध अलौकिकसंबंधहै "सुगंधि चंदनम्" या स्थानमैं संबंधरूप उक्तविषयता सुगंधमैंहै । औ "इदं रजतम्" या स्थानमैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञान रजतत्व स्मृतिहै । ताकी विषयता रजतत्वमैंहै। इसरीतिसैं विषयता अंशसंबंधमैं मिलावणेतैं संबंधके अनुयोगी सुगंधरजतत्व स्पष्टहीहै । यातैं अन्यथाख्यातिवाद संभवैहै । नेत्रके संबंधविना रजतत्वका ज्ञान संभवै नहीं ।यह दोष अन्यथाख्यातिवादमैं नहीं । इसरीतिसैं रजतत्वरूप विशेषणतैं नेत्रका अलौकिकसंबंध औ शुक्तिरूप विशेष्यतैं लौकिकसंबंध मानिकै अन्यथाख्यातिका संभव कहैहैं ॥

अनिर्वचनीयख्यातिमें न्यायउक्तदोष ॥ ६२ ॥

औ अनिर्वचनीयख्यातिमैं यह दोष कहैहैंः—अन्यथाख्यातिवादीकूं भ्रमज्ञानकी कारणता दोषमैं माननी होवैहै । औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं रजतादिक अनिर्वचनीयविषयकी कारणता औ तिसके ज्ञानकी कारणता माननी होवैहै । यातैं अन्यथाख्यातिवादमैं लाघवहै । औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथा ख्यातिविना निर्वाह होवै नहीं । कहूं अन्यथाख्याति मानैहैं । कहूं अनिर्वचनीयख्याति मानैहैं । यातैं सारे

अन्यथाख्यातिही माननी योग्यहै । औ सारे अनिर्वचनीयख्याति मानैं तौ अद्वैतवादीकूं स्वमतके ग्रंथनसैं विरोध होवैगा । औ केवल अनिर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं । जहां अनिर्वचनीयख्याति नहीं संभवै तहां अद्वैतमतके ग्रंथनमैं अन्यथाख्यातिही लिखीहै । जैसैं अनात्मपदार्थनमैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्वप्रतीत होवैहै तहां अनिर्वचनीय अबाध्यत्वकी अनात्मपदार्थनमैं उत्पत्ति कहै तौ अजन्मका जन्म हुया नित्यका ध्वंस हुया इन वाक्यनतैं समान यह कथन विरुद्धहै॥ यातैं आत्मसत्यताकी अनात्ममैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्यातिही संभवैहै । औ ऐसैं स्थानमैं अन्यथाख्यातिही अद्वैतग्रंथनमैं लिखी है। औ परोक्ष भ्रम स्थलमैंभी अद्वैतग्रंथनमैं अन्यथा ख्यातिही कही है ॥ यह तिनका तात्पर्य है:—प्रत्यक्षज्ञानतो नियमतैं वर्तमानगोचर होवैहै। औ जा विषयका प्रमातासैं संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है। व्यवहित रजतके रजतत्वका प्रमातासैं संबंध संभवै नहीं ॥ यातैं पुरोवर्तिदेशमैं रजतकी सत्ता अवश्य चाहिये । औ परोक्षज्ञानतो अतीतका औ भविष्यत्‌काभी होवैहै । यातैं परोक्षज्ञानके विषयका प्रमातासैं संबंध अपेक्षित नहीं । औ संभवैभी नहीं । काहेतैं जहां अनुमानप्रमाणतैं वा शब्दप्रमाणतैं देशांतरस्थ कालान्तरस्थका यथार्थ ज्ञान होवै तहांभी भिन्नदेशस्थ भिन्नकालस्थ प्रमातासैं संबंध होवै नहीं । भ्रमरूपपरोक्षज्ञानमैं तो प्रमातासैं विषयका संबंध सर्वथा असंभावितहै। यातैं परोक्षभ्रमस्थलमैं अनिर्वचनीयख्याति नहीं । किंतु विषयशून्यदेशमैं विषयकी प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति है । इसरीतिसैं बहुतस्थलमैं अन्यथाख्याति मानिकै अपरोक्षभ्रममैं जहां व्यवहित आरोपित होवै तिसी स्थानमैं अनिर्वचनीयख्याति मानीहै । औ जहां पुरोवर्तिदेशमैं अधिष्ठानसंबंधी आरोपित होवै तहांभी अन्यथाख्यातिहीहै । काहेतैं अधिष्ठानगोचरवृत्ति होवै तब आरोपित वस्तुका प्रमातासैं संबंध अन्यथाख्याति मानैंभी संभवैहै । अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति निष्प्रयोजनहै । इसरीतिसैं अद्वैतवादीके मतमैं एक अनिर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवैं

नहीं । औ अन्यथाख्याति माने अनिर्वचनीयख्यातिका मानना होवै नहीं । जहां व्यवहित आरोपित होवै औ प्रत्यक्षभ्रम होवै तिसस्थानमैं अद्वैतवादीनै अन्यथाख्यातिका असंभव कहाहै । तहांभी उक्तरीतिसैं नेत्रका ज्ञानलक्षणसंबंध संभवैहै । यातैं प्रत्यक्षभ्रमका संभव होनेतैं अ-निर्वचनीय ख्यातिका अंगीकार प्रयोजनशून्य गौरवदूषितहै ॥

सामान्यज्ञानलक्षणादिअलौकिकसंबंधकूं प्रत्यक्ष-ज्ञानहेतुताका असंभवकरिके भ्रमज्ञानका इंद्रियअजन्यता ॥ ६३ ॥

इत्यादिक अनंत निरर्थक प्रलाप नैयायिक विवेकके अभावतैं करैहैं। काहेतैं जो सामान्यलक्षणादिक संबंध प्रत्यक्ष ज्ञानके हेतु कहे सो सकलकै अनुभवसैं विरुद्धहै । जाकूं एक घटका नेत्रजन्यज्ञान होवै ताकूं पूछैः— कितने घटनका चाक्षुषसाक्षात्कार तेरेकूं हुयाहै । तब प्रश्नकर्ताकूं द्रष्टा यह कहैहैः--मेरे नेत्रके अभिमुख एक घटहै । कितने घटनका साक्षात्कार हुया यह तेरा प्रश्न अविवेकसैंहै । इसरीतिसैं घटका द्रष्टा प्रश्नका उपालंभ करैहै । नैय्यायिकरीतिसैं लौकिक अलौकिक भेदसैं सकलघटकै प्रत्यक्ष-की सामग्री होनेतैं उपालंभ संभवै नहीं । ऐसा उत्तर कह्या चाहिये । एक घटका लौकिक चाक्षुष हुयाहै । अलौकिक चाक्षुषसाक्षात्कार सर्वका हुयाहै । औ व्यवहितघटका साक्षात्कार सुनि सर्वके हृदयमैं विस्मय हो-वैहै । यातैं सामान्यलक्षणसंबंधसैं साक्षात्कार सर्वलोकविरुद्धहै । औ सर्वतंत्रविरुद्धहै । परंतु एक घटका साक्षात्कार होवै तब घटांतरकी सजातीयतासैं स्मृत्यादिक संभवैहै । तैसैं " सुरभि चंदनम् " इसरीतिसैं चंदनमैं सुगंधधर्मावगाही चाक्षुषसाक्षात्कार ज्ञानरूपसंबंधतैं नेत्रजन्य होवैहै । यह कथनभी नैय्यायिकका विरुद्धहै । काहेतैं जा पुरुषकूं चंदन-का साक्षात्कार होवै ताकूं यह पूछैः- "किं दृष्टम्" तब द्रष्टा यद्यपि ऐसैं कहैहै "सुगंधि चंदनं दृष्टम्"तथापि फेरि विवेचनसैं पूछैः--इसचंदनमैं सुगंधहै यह ज्ञान तेरेकूं किसरीतिसैं हुया तब द्रष्टा यह कहैहैः--श्वेतचंदनहै यातैं

सुगंध यामैं अवश्य होवैगा । रक्तचंदनमैं सुगंध नहीं होवैहै । इसरीतिके श्वेतमैं गंध होवैहै । इसरीतिसैं सुगंधज्ञानमैं अनुमानजन्यताके सूचक वचन कहैहै । औ नेत्रसैं सुगंधका साक्षात्कार मेरेकूं हुयाहै ऐसा उत्तर कहे नहीं । यातैं सुगंधका ज्ञान नेत्रजन्य प्रत्यक्षरूप नहीं । किंतु सुगंधअंशमैं वह ज्ञान अनुमितिहै चंदनअंशमैं प्रत्यक्षहै ॥ औ " सुगंधि चंदनम् " इसवाक्य प्रयोगवाले चंदनद्रष्टाकूं पूछैः—या चंदनमैं अल्पगंधहै अथवा उत्कट गंधहै । तब ऐसा उत्तर कहैहैः—नेत्रसैं श्वेतचंदन प्रतीत होवैहै । यातैं गंधसामान्यकी अनुमिति होवैहै । गंधका प्रत्यक्ष होवै तो गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै । यातैं गंधके उत्कर्ष अपकर्ष तो नासिकासैं आघ्रातकरैं तब ज्ञान होवै । नेत्रसैं तौ श्वेतचंदनका ज्ञान होवैहै । तासैं गंधसामान्यका ज्ञान होवैहै ऐसा उत्तर कहनेसैंभी सुगंधके ज्ञानकी अनुमिति होवैहै । प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ जा इंद्रियसैं रूप रस गंध स्पर्श शब्दका ज्ञान होवै ता इंद्रियसैं रूपादिकनके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवैहै । जो नेत्रइंद्रियसैं गंधका ज्ञान होवै तौ गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान हुया चाहिये । यातैं चंदनमैं सुगंधका ज्ञान अनुमितिरूपहै । प्रत्यक्ष नहीं । अनुमितिज्ञानसैं तो उत्कर्ष अपकर्षकी अप्रतीति अनुभवसिद्धहै । धूमसैं वह्निका ज्ञान होवै तहां वह्निके अल्पत्व महत्त्वका ज्ञान होवै नहीं । औ जो नैय्यायिक ऐसैं कहै लौकिकसंबंधजन्यप्रत्यक्षसैं विषयके उत्कर्ष अपकर्ष भासैहैं । अलौकिकसैं विषयका सामान्य धर्म भासैहै विशेष धर्म भासै नहीं । सोभी असंगतहैः—काहेतैं सामान्यधर्मसैं तौ परोक्षज्ञानसैंभी विषयका प्रकाश संभवैहै अप्रसिद्धसंबंधसैं अप्रसिद्ध प्रत्यक्षकल्पना निष्प्रयोजनहै । औ विशेषरूपतैं सुगंधका प्रकाश होवै नहीं।सामान्यरूपतैं सुगंधका प्रकाशहै।ऐसा सुगंधका ज्ञान नेत्रसैं होवैहै । इस नैय्यायिकवचनतैं यह सिद्ध होवैहैः—नेत्रसैं श्वेतचंदनका साक्षात्कार होतेंही सुगंधका सामान्यज्ञान अनुमितिरूप होवैहै । ता अनुमितिका प्रयोजक चंदनकी श्वेतताज्ञानद्वारा नेत्र है । इस रीतिसैं सुगंधका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं । अनुमिति है । औ जो नैयायिक ऐसैं

कहैः—यद्यपि नेत्रजन्य सुगंधका ज्ञान उत्कर्ष अपकर्षकूं प्रकासैं नहीं। यातैं अनुमितिके समान है। तथापि अनुमितिरूप संभवै नहीं। काहेतैं "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान एक है। दो नहीं। एकही ज्ञानकूं सुगंध अंशमैं अनुमितिता चंदनअंशमैं प्रत्यक्षता कहैं तौ अनुमितित्व प्रत्यक्षत्वविरोधी धर्मका समावेश होवैगा। यातैं सर्वअंशमैं प्रत्यक्ष है यह कथनभी संभवै नहीं। काहेतैं तेरे मतमैं एक ज्ञानमैं जैसैं लौकिकत्व अलौकिकत्व विरोधी धर्मका समावेश है। तैसैं अनुमितित्व प्रत्यक्षत्वकाभी एक ज्ञानमैं समावेश संभवैहै। औ प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वका विरोध तौ न्यायशास्त्रके संस्कारवालेकूं प्रतीत होवैहै। औ लौकिकत्व अलौकित्व तो परस्पराभाव रूपहै। यातैं तिनका विरोध सर्वकूं भासै है। प्रतियोगिअभावका परस्पर विरोध है। यह सकललोकमैं प्रसिद्ध है। यातैं लोकप्रसिद्ध विरोधवाले धर्मनका समावेश नैय्यायिक मानैहैं। यातैं विरोधी पदार्थनका समावेश नहीं। यह वाक्य निर्लज्जतामूलक है॥

औ वेदांतमतमैं तौ अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञान सांश होनेतैं एक वृत्तिमैं अंशभेदतैं विरोधि धर्मनका समावेश संभवै है। न्यायमतमैं ज्ञानजन्यता है। परंतु द्रव्य नहीं। यातैं सांश नहीं। निरंश ज्ञानमैं विरोधी धर्मनका समावेश बाधित है। यातैं "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान सुगंधअंशमैं अनुमितिरूप है। औ चंदनअंशमैं प्रत्यक्ष है। अथवा ज्ञानका उपादान अंतःकरण सांश है। यातैं अंतःकरणके परिणाम दो ज्ञानहैं "सुगंधि" यह ज्ञान अनुमितिरूप है। "चंदनम्" यह ज्ञान प्रत्यक्ष है। दोनूं परिणाम एककालमैं होवैहै। यातैं तिनका द्वित्व कदीभी भासै नहीं। इसरीतिसैं "सुरभि चंदनम्" यह ज्ञान सुगंधअंशमैं चाक्षुष नहीं। औ या ज्ञानकूं किसीरीतिसैं अलौकिकसंबंधजन्यता कहै भी॥

तथापि "इदं रजतम्" इत्यादिक भ्रम तो उक्तरीतिसैं संभवै नहीं। काहेतैं शुक्तिसैं नेत्रका संबंध औ रजतत्वस्मृतिकूं "इदं रजतम्" या ज्ञानकी कारणता मानै ताकूं यह पूछैहैंः—शुक्तिसैं नेत्रका संबंध होयकै

शुक्तिरजतसाधारणधर्म चाकचक्यविशिष्ट शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्य ज्ञान होयके रजतकी स्मृति होवैहै । तिसतैं उत्तर भ्रम होवैहै । अथवा शुक्तिके सामान्यज्ञानतैं पूर्वही शुक्तिसैं नेत्रका संबंध होवै । तिसी कालमैं रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति होयकै "इदं रजतम्" यह भ्रम होवैहै । जो प्रथम पक्ष कहै तौ संभवै नहीं । काहेतैं प्रथम तो शुक्तिका सामान्यज्ञान तिसतैं उत्तर रजतत्वविशिष्टरजतकी स्मृति तिसतैं उत्तर रजतभ्रम इसरीतिसैं तीनि ज्ञानोंकी धारा अनुभवसैं बाधित हैं । "इदं रजतम्" यह एकही ज्ञान सर्वकूं प्रतीत होवैहै ॥

औ जो ऐसे कहैः—प्रथम सामान्यज्ञान शुक्तिका हुये विना शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमैं रजतकी स्मृति होयके "इदं रजतम्" यह भ्रम होवैहै ॥ सोभी संभवै नहीं । काहेतैं सकल ज्ञान चेतनरूप स्वप्रकाशहै । वृत्तिरूप ज्ञान साक्षिभास्यहै । कोई ज्ञान किसी कालमैं अज्ञात होवै नहीं । यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे । यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमैं रजतकी स्मृति होवै । तौ स्मृतिका प्रकाश हुया चाहिये । स्मृतिमैं चेतनभाग तौ स्वयंप्रकाश है । औ वृत्तिभागका साक्षी अधीन सदाप्रकाश होवैहै । यातैं स्मृतिका अनुभव हुया चाहिये । औ नैयायिककूं शपथपूर्वक यह पूछै शुक्तिमैं "इदं रजतम्" या भ्रमतैं पूर्वकालमैं रजतस्मृतिका अनुभव तेरैकूं होवैहै ॥ तब यथार्थवक्ता होवै तौ स्मृतिके अनुभवका अभावही कहै हैं। यातैं शुक्तिसैं नेत्रसंयोगकालमैं भ्रमके पूर्व रजतकी स्मृति संभवै नहीं ॥

औ जो ऐसैं कहैः—रजतानुभवजन्य रजतगोचरसंस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं रजतभ्रम होवैहै । संस्कारगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं । किंतु अनुमेय है । यातैं उक्तदोष नहीं । तथापि ताकूं यह पूछैहैंः—उद्बुद्धसंस्कार भ्रमके जनकहै । अथवा उद्बुद्ध औ अनुद्बुद्ध दोनूं संस्कार भ्रमके जनकहैं । जो दोनूंकूं जनकता कहै तौ संभवै नहीं । काहेतैं अनुद्बुद्धसंस्कारनसैं स्मृत्यादिक ज्ञान कदाभी होवै नहीं । जो अनुद्बुद्धसैंभी स्मृति होवै तौ अनुद्बुद्धसंस्कारसैं सर्वदा स्मृति हुई चाहिये ॥ यातैं उद्बुद्धसंस्कारसैं

स्मृति होवैहै । तैसैं भ्रमज्ञानभी उद्बुद्धसंस्कारसैंही संभवैहै । यातैं उद्बुद्ध-संस्कार भ्रमके जनकहैं । यह कहै सोभी संभवै नहीं:—काहेतैं संस्कारके उद्बोधकसदृश दर्शनादिक हैं । यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगतैं चाकचक्यविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुये पाछे रजतगोचरसंस्कारका उद्बोध संभवैहै । नेत्र शुक्तिके संयोगकालमैं रजतगोचरसंस्कारका उद्बोध संभवै नहीं । यातैं यह मानना होवैगा:—प्रथमक्षणमैं नेत्रसंयोग, द्वितीयक्षणमैं चाकचक्यधर्मविशिष्टशुक्तिका ज्ञान, तिसतैं उत्तर क्षणमैं संस्कारका उद्बोध, तिसतैं उत्तर क्षणमैं रजतभ्रम संभवैहै । इसरीतिसैं नेत्रसंयोगतैं चतुर्थक्षणमैं भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई सो अनुभवसैं बाधितहै । नेत्रसंयोगसैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं चाक्षुषज्ञान होवैहै । तैसाही अनुभव होवैहै । यातैं उक्तरीति असंगतहै ॥

औ उक्तरीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञान सिद्ध होवैहै । एक तौ संस्कारका उद्बोधक सामान्यज्ञान औ दूसरा संस्कारजन्य भ्रमज्ञान, इसरीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञानभी अनुभवविरुद्धहै । नेत्रसंयोग होतेही "इदं रजतम्" यह एकही ज्ञान अनुभवसिद्धहै । यातैं रजतानुभवजन्यसंस्कारसहित नेत्रसंयुक्त संयोगतैं "इदं रजतम्" यह भ्रम होवैहै यह कहनाभी संभवै नहीं ॥

औ "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानकूं अलौकिकप्रत्यक्ष मानैं तौभी "इदं रजतम्" यह ज्ञान तौ ज्ञानलक्षणअलौकिकसंबंधजन्य संभवै नहीं । काहेतैं "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान हुये सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका संदेह होवैहै । यातैं सुगंधके उत्कर्षअपकर्षका निश्चयरूप प्राकट्य अलौकिकज्ञानतैं होवै नहीं । यह मान्या चाहिये । जो अलौकिक ज्ञानतैंभी विषयका प्राकट्य होवै तौ सुगंधके अपकर्षादिकनका संदेह संभवै नहीं । औ "इदं रजतम्" या भ्रमतैं औ सत्यरजतमैं "इदं रजतम्" या प्रमातैं रजतकी प्रकटता सम होवैहै । जो भ्रमस्थलमैं रजतकी प्रकट न होवै तौ रजतके परिमाणादिकनका संदेह हुया चाहिये । औ परिमाणादिकनका संदेह होवैहै नहीं । यातैं भ्रमज्ञानतैं रजतकी प्रकटता होवैहै ।

औ ज्ञानलक्षणसंबंधजन्यज्ञानतैं विषयकी प्रकटता होवै नहीं । यातैं " इदं रजतम् " या भ्रमज्ञानका हेतु ज्ञानलक्षणसंबंध नहीं । औ विचार करैं तौ ज्ञानरूपसंबंध कहूंभी संभवै नहीं । काहेतैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं अलौकिकप्रत्यक्ष होवैहै । या पक्षका यह निष्कर्षहैः—जहां एक पदार्थकी अनुभवजन्य स्मृति होवै । अथवा अनुभवजन्य संस्कार होवै । औ परपदार्थसैं इंद्रियका संबंध होवै । तहां इंद्रियसंबंधीमैं स्मृतिगोचरपदार्थकी अथवा संस्कारगोचरपदार्थकी प्रतीति होवैहै । इंद्रियसंबंधी पदार्थ तौ विशेष्यरूपतैं प्रतीत होवैहै । औ स्मृतिगोचरपदार्थ विशेषणरूपतैं प्रतीत होवैहै । जैसैं " सुगंधि चंदनम् " या ज्ञानमैं नेत्ररूपइंद्रियसंबंधी चंदन विशेष्यहै । औ स्मृतिगोचर सुगंध विशेषणहै । तैसैं " इदं रजतम् " या भ्रमज्ञानमैंभी इंद्रियसंबंधी शुक्ति विशेष्यहै । औ स्मृतिका गोचर अथवा संस्कारका गोचर रजतत्व विशेषणहै । विशेषण विशेष्य दोनूंका ज्ञान प्रत्यक्षहै । या पक्षका अंगीकार होवै तौ अनुमानप्रमाणका उच्छेद होवैगा । काहेतैं " पर्वतो वह्निमान् " ऐसा अनुमितिज्ञान अनुमानप्रमाणतैं होवैहै । हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिके स्मरणतैं अथवा साध्यकी व्याप्तिके उद्बुद्धसंस्कारनतैं अनुमितिज्ञान होवैहै । यह अर्थ अनुमाननिरूपणमैं निर्णीतहै । साध्यकी व्याप्तिकी स्मृति होवैं । तब व्याप्तिनिरूपकसाध्यकीभी स्मृति होवैहै । यातैं पर्वतसैं नेत्रका संयोग औ वह्निकी स्मृतिसैं " पर्वतो वह्निमान् " ऐसैं प्रत्यक्षज्ञानका संभव होतैं पक्षमैं साध्यनिश्चयरूप अनुमितिज्ञानका जनक अनुमानप्रमाणका अंगीकार निष्फलहै । औ गौतमकणादकपिलादिक सर्वज्ञकृत सूत्रनमैं अनुमानप्रमाणसैं भिन्न कहाहै । जो अनुमानप्रमाण निष्प्रयोजन होता तौ सूत्रनमैं नहीं कहते । यातैं अनुमानका प्रयोजनसाधकज्ञानरूप संबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्ष अलीकहै । औ जो अन्यथाख्यातिवादी ऐसैं कहैः—प्रत्यक्षज्ञानकी विषयतासैं अनुमितिज्ञानकी विषयता विलक्षणहै । इसीवास्ते प्रत्यक्षके विषयमैं परिमाणादिकनका संदेह नहीं होवैहै । औ

अनुमितिके विषयमैं परिमाणादिकनका संदेह होवैहै। इसरीतिसैं परोक्षता-अपरोक्षतारूप विषयताका भेद अनुमितिज्ञान औ प्रत्यक्षज्ञानके भेदसैं होवैहै। यातैं परोक्षतारूप विषयताका संपादक प्रत्यक्षज्ञान नहीं। किंतु अनुमितिज्ञानहै। ताका हेतु अनुमानप्रमाणहै। यह कथनभी संभवै नहीं:—काहेतैं लौकिकप्रत्यक्षकी विषयता तौ अनुमितिसैं विलक्षणहै परंतु "सुगंधि चंदनम्" इत्यादिक ज्ञान सुगंधादिकअंशमैं अलौकिकहै। तहां सुगंधका ज्ञान अनुमितिके समानहै। जैसैं अनुमितिज्ञानके विषयमैं उत्कर्षादिक अनिर्णीत होवैहै। तैसैं सुगंधके उत्कर्षादिकभी अनिर्णीतहै। यातैं अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयताका अनुमितिकी विषयतासैं भेद नहीं। औ भ्रमरूप अलौकिकप्रत्यक्षकी विषयता रजतादिकनमैं है। ताका तौ यद्यपि अनुमितिकी विषयतासैं भेद अनुभवसिद्धहै। इसीवास्तै रजतकी अल्पतादिकनका संदेह होवै नहीं। तथापि ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य अलौकिक-प्रत्यक्षप्रमाकी विषयतासैं भेद नहीं। जैसैं अनुमितिके विषयमैं अप्राकट्यहै। तैसैं अलौकिकप्रत्यक्षप्रमाके विषयगंधमैं अप्राकट्य है। यातैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं पर्वतमैं वह्निका अलौकिकप्रत्यक्षसैं प्रकाश संभवै है। अनुमितिज्ञान-वास्तै अनुमानप्रमाण व्यर्थ होवैगा। औ अनुमानप्रमाण सर्वज्ञवचनसिद्ध है। यातैं अनुमानकी व्यर्थतासंपादक अलौकिकप्रत्यक्ष असिद्धहै॥

औ जो यह कह्या:—विलक्षणविषयताका संपादक अनुमितिज्ञान है। ताका हेतु अनुमानप्रमाण व्यर्थ नहीं। यह कथनही असंगतहै। काहेतैं जहां अनुमानप्रमाणतैं अनुमिति होवै तहां सारै अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्रीहै। जैसैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिसैं पूर्व धूमदर्शनव्याप्तिज्ञान तौ अनुमितिकी सामग्रीहै। औ पर्वतसैं नेत्रका संबंध औ वह्निकी स्मृति यह अलौकिकप्रत्यक्षकी सामग्रीहै। दोनूं ज्ञानोंकी दो सामग्री होतैं पर्वतमैं वह्निका प्रत्यक्षरूपही ज्ञान होवैगा। अनुमितिज्ञान होवै नहीं। यातैं अनुमानप्रमाण व्यर्थही होवैहै। काहेतैं यह न्यायशास्त्रका निर्णीत अर्थहै। जहां एकगोचरअनुमितिसामग्रीका औ अपर-

गोचरप्रत्यक्षसामग्रीका समावेश होवै तहां अनुमितिसामग्री प्रबलहै। जैसैं पर्वतसैं नेत्रसंयोग तौ पर्वतके प्रत्यक्षकी सामग्रीका औ वह्निकी अनुमितिकी सामग्रीका समावेश हुयां वह्निकी अनुमिति होवैहै पर्वतका प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै। जहां धूमसैं औ वह्निसैं नेत्रका संयोग होवै औ धूममैं वह्निकी व्याप्तिका ज्ञान होवै तहां वह्निकी अनुमितिकी सामग्रीहै। औ वह्निके प्रत्यक्षकी सामग्रीहै। यातैं समानगोचर उभयज्ञानकी सामग्रीहै। तहां प्रत्यक्षसामग्री प्रबलहै। यातैं वह्निका प्रत्यक्षहीं ज्ञान होवैहै। वह्निकी अनुमिति होवै नहीं। औ पुरुषमैं "पुरुषो न वा" ऐसा संदेह होयकै "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा प्रत्यक्षरूप परामर्शज्ञान औ पुरुषतैं नेत्रका संयोग होवै। तहां परामर्श तौ पुरुषकी अनुमितिकी सामग्रीहै। औ पुरुषके नेत्रसंयोग पुरुषके प्रत्यक्षकी सामग्रीहै। तहां पुरुषका प्रत्यक्षज्ञान ही होवैहै। पुरुषकी अनुमिति होवै नहीं। यातैं एकविषयके दोनूं ज्ञानोंकी सामग्री होवै तिनमैं प्रत्यक्षसामग्री प्रबलहै। यातैं वह्निकी अनुमितिसामग्री होतैं भी अलौकिकसंबंधरूप सामग्रीतैं वह्निका प्रत्यक्षज्ञानही होवैगा। इसरीतिसैं ज्ञानलक्षणअलौकिकसंबंधतैं प्रत्यक्षज्ञानकी उत्पत्ति मानें अनुमानप्रमाण व्यर्थहै॥

जो नैयायिक ऐसैं कहैः—यद्यपि भिन्नविषय होवैं तहां प्रत्यक्षसामग्रीसैं अनुमितिसामग्री प्रबलहै। औ समान विषय होवै तहां अनुमितिसामग्रीसैं प्रत्यक्षसामग्री प्रबल है। तथापि समानविषय होतेभी लौकिकप्रत्यक्षकी सामग्री अनुमितिसामग्रीसैं प्रबलहै। अलौकिकप्रत्यक्षकी सामग्री तो अनुमितिकी सामग्री सारैं दुर्बलहै। यातैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिसामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्ष सामग्रीका बाध होनेतैं अनुमानप्रमाण निष्फल नहीं। यह कहनाभी समीचीन नहींः—काहेतैं जहां स्थाणुमैं "स्थाणुर्न वा" ऐसा संदेह होयकै "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा भ्रम होयकै "पुरुष एवायम्" ऐसा भ्रमरूप प्रत्यक्ष होवैहै। तहां नैयायिकवचनकी रीतिसैं अनुमिति हुई चाहिये। प्रत्यक्ष नहीं हुया चाहिये। काहेतैं

उक्तस्थलमैं स्थाणुमैं पुरुषत्वका प्रत्यक्ष होनेतैं भ्रम प्रत्यक्षहै। औ भ्रमप्रत्यक्षकी तेरे मतमैं अलौकिकसामग्रीहै यातैं अनुमितिसामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्रीकूं दुर्बल मानें उक्तस्थलमैं अनुमिति हुई चाहिये। औ जो उक्तस्थलमैं पुरुषका भ्रम अनुमितिरूप मानें तौ उत्तरकालमैं "पुरुषं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै। सो नहीं होवैगा "पुरुषमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय हुया चाहिये। यातैं दोनूं समानविषय होवै तहां लौकिकप्रत्यक्षसामग्रीकी नांई अलौकिकप्रत्यक्षसामग्रीभी प्रबलहै। अनुमितिसामग्री दुर्बलहै। यातैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं प्रत्यक्षकी उत्पत्ति मानै तौ अनुमितिज्ञानकूं बाधिकै पर्वतादिकनमैं वन्हिआदिकनका प्रत्यक्षज्ञानही होवैगा। यातैं अनुमानप्रमाण निष्फल होवैगा। इस कारणतैं जो अनुमानप्रमाण मानैं ताके मतमैं स्मृतिज्ञानसहित इंद्रियसंयोगतैं वा संस्कारसहित इंद्रियसंयोगतैं व्यवहितवस्तुका प्रत्यक्षज्ञान संभवै नहीं। यातैं शुक्तिका रजतत्वरूपतैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं॥

अनिर्वचनीयवादमैं न्यायउक्तदोषका उद्धार॥ ६४॥

औ अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं जो दोष कह्याहैः—अनिर्वचनीयख्यातिके मतमैं विषयकी औ ज्ञानकी कारणता दोषमैं मानैहैं। अन्यथाख्यातिवादमैं ज्ञानकी कारणता मानैहैं। विषयकी नहीं। यातैं अन्यथाख्यातिवादमैं लाघवहै। औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्यातिभी माननी होवैहै। अन्यथाख्यातिवादीकूं अनिर्वचनीयख्याति माननी होवै नहीं। यातैंभी लाघवहै। यह कथनभी अविवेकमूलकहै। काहेतैं अन्यथाख्यातिवादीकूं श्रुतिस्मृतिकी आज्ञातैं स्वप्नमैं तौ अनिर्वचनीयख्याति अवश्य मानी चाहिये। वेदउक्तअर्थका पुरुषमतिकल्पितयुक्तिसमुदायसैं अन्यथाभावकल्पन आस्तिककूं योग्य नहीं। औ शुक्तिरजतका तादात्म्य प्रतीत होवैहै। तैसैं इदंपदार्थमैं रजतत्वका समवाय प्रतीत होवैहै। तैसैं इदंपदार्थका औ रजतका तादात्म्य प्रतीत

होवैहै । इदंपदार्थ शुक्तिहै । शुक्तिरजतका तादात्म्य अन्यस्थानमैं प्रसिद्ध नहीं । यातैं पुरोवर्त्तिदेशमैं शुक्तिरजतका तादात्म्य अनिर्वचनीय उपजैहै । जो अनिर्वचनीयतादात्म्यकी उत्पत्ति नहीं मानैं तौ अप्रसिद्धकी अपरोक्ष प्रतीति नहीं होवैगी । औ तादात्म्यकी अपरोक्षप्रतीति होवैहै । औ जो नैयायिक आग्रहतैं यह कहैः—शुक्तिमैं रजतत्वका समवायही भासैहै । याकाभी यह अर्थहैः—समवायसंबंधतैं रजतत्व भासैहै औ शुक्तिरजतका तादात्म्य भासै नहीं । ऐसा कहैं तौ शुक्तिज्ञानतैं उत्तरकालमैं "नेदं रजतम्" ऐसा बाध होवैहै । ताका बाध्य इदंपदार्थमैं रजतका तादात्म्यहै । जो भ्रमकालमैं इदंपदार्थमैं रजतका तादात्म्य नहीं भासै तौ बाध निर्विषय होवैगा । जो केवल रजतत्वका समवायही शुक्तिमैं भासै तौ "नात्र रजतत्वम्" ऐसा बाध हुया चाहिये । यातैं शुक्तिमैं रजतका तादात्म्य भासैहै । सो शुक्तिरजतका तादात्म्य उभयसापेक्षहै । कहूं प्रसिद्ध नहीं । यातैं अनिर्वचनीयतादात्म्यकी उत्पत्ति अन्यथाख्यातिवादमैं आवश्यकहै । केवल अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं ॥

औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्याति माननी होवैहै । औ अद्वैतग्रंथकारोंने मानीहै । यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके अभिप्रायके अज्ञानतैंहै । काहेतैं अद्वैतवादमैं कहूंभी अन्यथाख्याति नहीं । सारे अनिर्वचनीयख्यातिहै । बहुत वाक्यकहैंः—जहां प्रमाज्ञान कहैहैं । तहांभी अद्वैतसिद्धांतमैं विषय औ ज्ञान अनिर्वचनीयहै । औ कितनें स्थानोंमैं अन्यथाख्याति लिखीहै । ताका यह तात्पर्यहैः—जहां अधिष्ठानआरोप्यका संबंध होवै औ परोक्ष भ्रम होवै । तहां अन्यथाख्यातिभी संभवैहै । परंतु सारे अन्यथाख्याति संभवै नहीं । जहां आरोप्य व्यवहित हुयां अपरोक्ष भ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयख्याति आवश्यकहै । यातैं आवश्यक अनिर्वचनीयख्यातिही सारे मानी चाहिये । इसरीतिसैं अन्यथाख्यातिका कथन संभवाभिप्रायतैंहै । अंगीकरणीयत्वाभिप्रायतै नहीं ॥

जहां आत्मसत्ताभी अनात्ममैं अन्यथाख्याति कही तहांभी आत्मसत्ता-

का अनिर्वचनीयसंबंध उपजैहै । इसरीतिसैं जहां अनिर्वचनीयसंबंधीकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्वचनीयसंबंधका अंगीकारहै। तैसैं परोक्षभ्रम होवै तहांभी अनिर्वचनीयविषयकी उत्पत्ति ब्रह्मविद्याभरणमैं लिखीहै। परंतु परोक्षभ्रम होवै तहां अन्यथाख्याति मानैं तौभी दोष नहीं है। इसवास्तै सरलबुद्धितैं परोक्षभ्रम अन्यथाख्यातिरूप कहाहै ॥

औ जो ऐसैं कहैः—"तदेवेदं रजतम्" इसरीतिसैं शुक्तिमैं रजतका प्रत्यभिज्ञाभ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयरजतकी पुरोवर्तिदेशमैं उत्पत्ति मानैं तौ सन्निहितरजतमैं तौ तत्ता संभवै नहीं । यातैं देशांतरस्थरजतवृत्ति रजतत्वकी औ तत्ताकी शुक्तिपदार्थमैं प्रतीति होवैहै । अथवा तादात्म्यसंबंधसैं देशांतरस्थरजतकी प्रतीति होवैहै । यातैं उक्तस्थलमैं अन्यथाख्याति आवश्यकहै ॥

यह कथनभी असंगतहैः—काहेतैं उक्तप्रत्यभिज्ञामैंभी अनिर्वचनीय रजतही विषयहै। देशांतरस्थ नहीं। काहेतैं प्रमातासैं संबंधविना अपरोक्षअवभास संभवै नहीं। औ देशांतरस्थरजतका प्रमातासैं संबंध बाधितहै। यातैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति नहीं । औ जहां यथार्थ प्रत्यभिज्ञा होवै तहांभी तत्ताअंशमैं स्मृतिहै यह सिद्धांतहै । यातैं "तदेवेदं रजतम्" यह भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञाभी तत्ताअंशमैं स्मृतिहै । औ "इदं रजतम्" इतनै अंशमैं अनिर्वचनीय प्रत्यक्षहै । यातैं कहूंभी अन्यथाख्याति आवश्यक नहीं । जहां अनिर्वचनीयविषयकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्वचनीयसंबंधकी उत्पत्ति होवैहै । जैसैं आत्मअनात्मका अन्योन्याध्यास होवै। तहां अनात्मामैं आत्मा औ आत्मधर्मअनिर्वचनीय उपजै है। यह कहना संभवै नहीं । यातैं आत्माका औ आत्मधर्मनका अनात्मामैं अनिर्वचनीयसंबंध उपजैहै । इसरीतिसैं सारे अनिर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवैहै। कहूंभी अन्यथाख्याति माननी होवै नहीं ।

औ जो अन्यथाख्यातिवादीनैं अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं यह गौरव कह्या दोषकूं अनिर्वचनीयरजतादिक औ तिनके ज्ञानकी कारणता मानने-

तैं केवल ज्ञानकी कारणता माननेंमैं लाघव है । अन्यथा यातिवादमैं रजत तौ देशांतरमैं प्रसिद्ध है । ताके रजतत्वधर्मका शुक्तिमैं ज्ञान होवैहै। अथवा तादात्म्यसंबंधसैं रजतका शुक्तिमैं ज्ञान होवैहै । इसरीतिसैं केवल ज्ञानही दोषजन्य है । औ अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं विषय औ ज्ञान दोनूं दोषजन्य कहैहैं। यातैं गौरव है ॥

यह कथनभी असंगत हैः—काहेतैं लाघवबलतैं अनुभवसिद्धपदार्थका लोप करै तौ यथार्थज्ञानके विषयभी नहीं मानैं औ विज्ञानवादकी रीतिसैं केवल विज्ञानही मानैं तौ अतिलाघव है। जैसैं अनुभवसिद्धघटादिक मानिकै लाघवसहकृतविज्ञानवादका त्याग है। तैसैं अपरोक्षप्रतीतिसिद्ध अनिर्वचनीयरजतादिक मानिकै अन्यथाख्यातिवादभी त्याज्य है।

औ विचार करैं गौरवभी अन्यथाख्यातिवादमैं है । काहेतैं देशांतरस्थरजतका ज्ञान मानैं ताकै मतमैं यह गौरव है । रजतनेत्रसंयोगकी रजतसाक्षात्कारमैं कारणता निर्णीत है । तिस निर्णीतका त्याग होवैहै। औ रजतआलोकसंगसैं रजतका साक्षात्कार निर्णीत है । अन्यथाख्यातिवादमैं शुक्तिआलोकसंयोगसैं रजतका भ्रमसाक्षात्कार होवैहै । सो अनिर्णीत है। यातैं अनिर्णीतका अंगीकार होवैहै । तैसैं ज्ञानलक्षणसंबंध अप्रसिद्ध है। यातैं अप्रसिद्धका अंगीकार होवैहै । औ जो ज्ञानलक्षणसंबंधकूं मानै तौभी जा पदार्थका अलौकिकसंबंधसैं प्रत्यक्ष होवैहै ताकी प्रकटता होवै नहीं ।

इसीवास्तै "सुगंधि चंदनम्" इसरीतिसैं सुगंधका अलौकिक प्रत्यक्ष हुयेभी "सुगंधं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै नहीं । औ अलौकिकसंबंधजन्य रजतभ्रम हुयें रजतकी प्रकटता होवैहै । इसीवास्तैं भ्रमतैं उत्तरकालमैं " रजतं साक्षात्करोमि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । इसरीतिसैं ज्ञानलक्षणसंबंधजन्ययथार्थज्ञानमैं प्राकट्यजनकता नहीं है । भ्रमस्थलमैं अलौकिकज्ञानकूं प्राकट्यजनकता मानी सोभी अप्रसिद्ध कल्पना है । इसरीतिसैं अनेकप्रकारकी अप्रसिद्ध कल्पना अन्यथाख्याति-

वादमैं होनेतैं या पक्षविषैही गौरव है । औ दोषकूं अनिर्वचनीयविषयकी जनकता तौ श्रुतिस्मृतिबलतैं स्वप्नमैं है । अप्रसिद्धकल्पना नहीं। ब्रह्मानंदकृतअनिर्वचनीयवादमैं अन्यथाख्यातिका खंडन विशेष कन्या है सो प्रकार कठिन है । यातैं ब्रह्मविद्याभरणकी सुगमरीतिसैं अन्यथाख्यातिवादकी हेयता प्रतिपादन करी । यातैं अन्यथाख्याति असंगत है । तैसैं:—

अख्यातिवादकी रीति औ खंडन अख्या तिवादीका तात्पर्य॥८९॥

अख्यातिवादभी असंगत है । प्रभाकरका अख्यातिवाद है । यह ताका तात्पर्य है:—अन्यशास्त्रनमैं यथार्थअयथार्थभेदसैं दो प्रकारका ज्ञान मान्या है । यथार्थज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति सफल होवैहै । अयथार्थ ज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति निष्फल होवैहै । यह सकलशास्त्रनका लेख असंगत है । काहेतैं अयथार्थज्ञान अप्रसिद्ध है । सारे ज्ञान यथार्थही होवैहै । जो अयथार्थज्ञानभी होवै तौ पुरुषकूं ज्ञान होतेही ज्ञानत्वसामान्यधर्म देखिकै उत्पन्न हुयें ज्ञानमैं अयथार्थका संदेह होयकै प्रवृत्तिनिवृत्तिका अभाव होवैगा । काहेतैं ज्ञानमैं यथार्थत्वनिश्चय औ अयथार्थतासंदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्तिनिवृत्तिके हेतु हैं । औ अयथार्थताके संदेह होतें दोनूं संभवै नहीं। औ अयथार्थज्ञानकूं नहीं मानैं तब उत्पन्न हुये ज्ञानमैं उक्तसंदेह होवै नहीं । काहेतैं कोई ज्ञान अयथार्थ होवै तौ तिसकी ज्ञानत्वधर्मतैं सजातीयता अपनैं ज्ञानमैं देखिकै अयथार्थत्वसंदेह होवै सो अयथार्थज्ञान है नहीं । सारे ज्ञान यथार्थहीहै । यातैं ज्ञानमैं अयथार्थतासंदेह होवै नहीं । इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है। जहां शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवैहै । औ भयहेतुकरज्जुसैं निवृत्ति होवैहै । तहांभी रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान औ सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है । जो रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान औ सर्पका प्रत्यक्षज्ञान उक्तस्थलमैं होवै तौ यथार्थ तो संभवै नहीं । यातैं अयथार्थ होवै सो अयथार्थ ज्ञान अलीकहै । यातैं उक्तस्थलमैं रजतका औ सर्पका प्रत्यक्ष

ज्ञान नहीं। किंतु रजतका स्मृतिज्ञान है। औ शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान प्रत्यक्ष है। तैसैं पूर्वानुभूतसर्पका स्मृतिज्ञान है। औ सामान्य इदंरूपतैं रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञानहै। शुक्तिसैं तथा रज्जुसैं दोषसहित नेत्रका संबंध होवैहै। यातैं शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भासै नहीं किंतु सामान्यरूप इदंता भासैहै। औ शुक्तिसैं नेत्रके संबंधजन्य ज्ञान हुयें रजतके संस्कार उद्बुद्ध होयके शुक्तिके सामान्य ज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं रजतकी स्मृति होवैहै। तैसैं रज्जुके सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं सर्पकी स्मृति होवैहै। यद्यपि सकल स्मृतिज्ञानमैं पदार्थकी तत्ताभी भासैहै। तथापि दोषसहितनेत्रके संबंधतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै। तहां दोषके माहात्म्यतै तत्ताअंशका प्रमोष होवैहै। यातैं प्रमुष्टतत्ताका स्मृति होवैहै। प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुईहै तत्ता जिसकी सो प्रमुष्टतत्ताकशब्दका अर्थहै। इसरीतिसैं "इदं रजतम्" "अयं सर्पः" इत्यादिकस्थलमैं दो ज्ञानहैं। तहां शुक्तिका औ रज्जुका सामान्य इदंरूपका प्रत्यक्षज्ञान यथार्थ है औ रजतका तथा सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थहै यद्यपि विशेष शुक्तिरज्जुभागकूं त्यागिकै प्रत्यक्ष ज्ञान हुया है। औ तत्ताभागरहित स्मृतिज्ञान हुयाहै। तथापि एकभाग त्यागनैंसैं ज्ञान अयथार्थ होवै नहीं। किंतु अन्यरूपतैं ज्ञानकूं अयथार्थ कहैहैं। यातैं उक्तज्ञान यथार्थ है। अयथार्थ नहीं। इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्धहै॥

अख्यातिवादीकरि अन्यकृतशंकाका उद्धार॥ ६६॥

औ जो शास्त्रांतरवाले ऐसैं कहैं:—जापदार्थमैं इष्टसाधनताज्ञान होवै तामैं प्रवृत्ति होवैहै। औ जामैं अनिष्टसाधनताज्ञान होवै तासैं निवृत्ति होवैहै। अख्यातिवादीके मतमैं शुक्तिमैं इष्टसाधनताज्ञान कहै तौ भ्रमका अंगीकार होवै। यातैं इष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये। तैसैं रज्जुमैं अनिष्टसाधनत्व है नहीं। ताका ज्ञान मानैं तौ भ्रमका अंगीकार होवै यातैं अनिष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं निवृत्ति नहीं हुई चाहिये। यातैं भ्रमज्ञान आवश्यकहै। ताका इसरीतिसैं अख्यातिवादी समाधान करैहै:—जा पदार्थमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवै ता

पदार्थका सामान्यरूपतैं प्रत्यक्ष ज्ञान औ इष्टपदार्थकी स्मृति औ स्मृतिके विषयतैं पुरोवर्तिपदार्थका भेदज्ञानाभाव तैसैं स्मृतिज्ञानका पुरोवर्त्तिके ज्ञानतैं भेदज्ञानाभाव इतनी सामग्री प्रवृत्तिकी हेतुहै । यातैं भ्रमज्ञानविना प्रवृत्ति संभवैहै । जो विषयका औ ज्ञानका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिमैं हेतु कहैं तौ उदासीनदशामैं प्रवृत्ति हुई चाहिये । औ विषयका सामान्यज्ञानसहित इष्टकी स्मृतिही प्रवृत्तिका कारण कहैं तौ " देशांतरे तद्रजतं किंचिदिदम् " इसरीतिसैं देशांतरसंबंधीरूपतैं रजतकी स्मृति होवै औ शुक्तिका किंचिद्रूपतैं ज्ञान होवै तहांभी रजतार्थीकी प्रवृत्ति हुई चाहिये । यातैं इष्टपदार्थतैं विषयका भेदज्ञानाभावभी प्रवृत्तिका हेतुहै । उक्तस्थलमैं इष्टरजतका शुक्तिसैं भेदज्ञानहै । ताका अभावनहीं । यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं । जो इष्टपदार्थका पुरोवर्त्तिसैं भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिकी सामग्रीमैं मिलावै औ दोनूंके ज्ञानका भेदज्ञानाभाव नहीं कहै तौ " इदं रजतम् " इसरीतिसैं दो ज्ञान होयकै इदंपदार्थका मेरेकूं प्रत्यक्षज्ञान हुयाहै । औ रजतका स्मृतिज्ञान हुयाहै । इसरीतिसैं दोनूं ज्ञानूंके भेदका ज्ञान होवै अथवा इदंपदार्थका ज्ञान औ रजतपदार्थका ज्ञान मेरेकूं परस्पर भिन्न हुयेहै । इसरीतिसैं भेदज्ञान होवैहै तहांभी विषयका भेदज्ञान नहीं । यातैं प्रवृत्ति हुई चाहिये । यातैं ज्ञानका भेदज्ञानाभावभी प्रवृत्तिसामग्रीमैं कह्या चाहिये । उक्तस्थलमैं पुरोवर्त्तिका सामान्य ज्ञान औ इष्टरजतकी स्मृतिहै तैसै पुरोवर्तिसैं इष्टरजतका भेदज्ञानका अभावभीहै । परंतु दोनूं ज्ञानूंका भेदज्ञानहै ताका अभाव नहीं । इसरीतिसैं उभयविधभेदज्ञानाभावसहित इष्टस्मृतिसहित पुरोवर्तिका सामान्य ज्ञान प्रवृत्तिका हेतुहै । सो पुरोवर्तिशुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान यथार्थ है । यातैं भ्रमका अंगीकार निष्फल है । जहां शुक्तिमैं रजतका भेदज्ञान होवै । तहां रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै नहीं । औ शुक्तिज्ञानमैं रजतज्ञानका भेदग्रह होवै तहांभी प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं भेदज्ञान प्रवृत्तिका प्रतिबंधक है । प्रतिबंधका अभाव कारण होवैहै । यातैं

भेदज्ञानाभावमैं प्रवृत्तिकी कारणता माननैमैं अप्रसिद्धकी कल्पना नहीं। औ जहां रज्जुदेशतैं भयहेतुसैं पलायन होवैहै । तहांभी सर्पभ्रम नहीं होवैहै । किंतु द्वेषगोचरसर्पकी स्मृति औ रज्जुका सामान्यज्ञान तैसैं ज्ञान औ तिनके विषयका भेदज्ञानाभाव पलायनके हेतु है । पलायनभी प्रवृत्तिविशेष है । परंतु वह प्रवृत्तिविषयके अभिमुख नहीं । किंतु विमुखप्रवृत्ति है । विमुखप्रवृत्तिमैं द्वेषगोचरकी स्मृति हेतु है । सन्मुखप्रवृत्तिमैं इच्छागोचरकी स्मृति हेतु है । इसरीतिसैं भयजन्यपलायनादि क्रिया होवै ताकूं प्रवृत्ति कहो अथवा निवृत्ति कहो ताका हेतु द्वेषगोचरपदार्थकी स्मृतिहै । औ जहां शुक्तिज्ञानसैं रजतार्थीकी प्रवृत्तिका अभावरूप निवृत्ति होवै ताका हेतु तौ शुक्तिज्ञानहै । सोभी भ्रम नहीं। औ जहां सत्यरजतमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै तहां तौ रजतत्वविशिष्ट रजतका ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतुहै । पुरोवर्तिसत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु नहीं । यातैं विशिष्टज्ञानमैं प्रवृत्तिजनकताका सर्वथा लोप नहीं । काहेतैं जहां सत्यरजतहै तहां पुरोवर्तिरजतमैं रजतका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिका हेतुकहै तौ संभवै नहीं । जो प्रतियोगी प्रसिद्ध होवै ताका अभाव व्यवहारगोचर होवैहै । अप्रसिद्धप्रतियोगीका अभाव व्यवहारयोग्य नहीं । जैसैं शशशृंगाभावका प्रतियोगी अप्रसिद्धहै । यातैं शशशृंगाभावभी अलीकहै । अलीकपदार्थसैं कोई व्यवहार होवै नहीं । केवल शब्दप्रयोग औ विकल्परूप ज्ञान तौ अलीकपदार्थका होवैहै । औ अलीकपदार्थमैं कारणता कार्यता नित्यता अनित्यतादिक व्यवहार होवै नहीं ॥ यातैं प्रसिद्धपदार्थका अभावही व्यवहारयोग्य होवैहै । अप्रसिद्धका अभाव किसी व्यवहारके योग्य नहीं । यातैं अलीकहै । सत्यरजतमैं रजतका भेद है नहीं यातैं सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै नहीं। जो भ्रमज्ञानकूं मानैं तौ सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै । अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्धहै ॥ यातैं सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै नहीं इसरीतिसैं सत्य-

रजतमैं रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानरूप प्रतियोगीके असंभवतैं सत्यरजतमैं रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानका अभाव अलीकहैं । तामैं प्रवृत्तिकी जनकता संभवै नहीं । यातैं सत्यरजतस्थलमैं पुरोवर्तिदेशमैं रजतत्वविशिष्ट रजतहै । ऐसा विशिष्टज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतुहै। औ अख्यातिवादमैं भ्रमज्ञान तो है नहीं,सारे ज्ञान यथार्थ हैं। तथापि कहूं प्रवृत्ति सफल होवैहै, कहूं निष्फल होवैहै । इसका हेतु कह्या चाहिये । तामैं यह हेतुहै । विशिष्टज्ञानजन्यप्रवृत्ति सफल होवैहै । भेदज्ञानाभावजन्यप्रवृत्ति निष्फल होवैहै । रजतदेशमैंभी भेदज्ञानाभावजन्य प्रवृत्ति कहैं तौ सारे समप्रवृत्ति हुई चाहिये । यातैं सफलप्रवृत्तिका जनक विशिष्टज्ञान मान्या चाहिये । औ जहां सत्यरजतमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं होवै, तहां प्रवृत्त्यभावरूप निवृत्तिहै । ताका हेतु रजतत्वविशिष्टरजतज्ञानाभावहै । तहांभी भ्रमरूपरजताभावज्ञान नहीं । काहेतैं प्रवृत्ति निवृत्ति परस्पर प्रतियोगीअभावरूपहै । प्रवृत्तिरूप प्रतियोगीका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानहै । औ प्रवृत्तिअभावरूप निवृत्तिका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानका अभावहै । इसरीतिसैं अख्यातिवादमैं विषय नहीं होवै औ विषयार्थीकी प्रवृत्ति होवै ताके हेतु इष्टस्मृत्यादिकहैं । विशिष्टज्ञान नहीं । जहां शुक्तिदेशमैं " इदं रजतम् " ऐसा ज्ञान होवै सो एक ज्ञान नहींहै । शुक्तिका इदमाकार सामान्यज्ञानहै । रजतकी प्रमुष्टतत्ताक स्मृतिहै । इन दो ज्ञानोंसैं प्रवृत्ति होवैहै । परंतु भेदज्ञानाभाव होवै तब प्रवृत्ति होवैहै । भेदज्ञान हुयां प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं उक्तज्ञानद्वयसहित भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतुहै ॥

औ बहुतग्रंथनमैं असंबंधग्रहाभावसैं प्रवृत्ति कहीहै । ताका यह अर्थहैः—शुक्तिमैं रजतत्वका असंबंधहै । तैसैं रजतकाभी इदंपदार्थमैं तादात्म्यसंबंध नहीं । ऐसा जाकूं ज्ञान होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं असंबंधग्रहका अभाव प्रवृत्तिका हेतुहै । यातैं भेदग्रहाभावके समान अर्थही सिद्ध होवैहै । परंतु इसरीतिसैं प्रवृत्ति होवै सो निष्फल

होवैहै । औ विषयदेशमैं विषयार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु विशिष्टज्ञानहै । विशिष्टज्ञानसैं जहां प्रवृत्ति होवै तहां सफल होवैहै । भ्रमज्ञान अप्रसिद्धहै । सर्वज्ञान यथार्थहै । जहां ज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै तहां ज्ञानद्वयकूंही भ्रम कहैहै । यह प्रभाकरका अख्यातिवाद है । ज्ञानद्वयका विवेकाभाव औ उभयविषयका विवेकाभाव अख्यातिपदका पारिभाषिक अर्थ है ॥

अख्यातिवादका खण्डन ॥ ६७ ॥

यह मतभी समीचीन नहीं:—काहेतैं शुक्तिमैं रजतभ्रमतैं प्रवृत्त हुये पुरुषकूं रजतका लाभ नहीं होवै तब पुरुष यह कहैहै:—रजतशून्यदेशमैं रजतज्ञानसैं मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई । इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अनुभवसिद्ध है । ताका लोप संभवै नहीं । औ मरुभूमिमैं जलका बाध होवै तब यह कहैहै:—मरुभूमिमैं मिथ्याजलकी प्रतीति मेरेकूं हुई या बाधतैंभी मिथ्याजल औ ताकी प्रतीति होवैहै । अख्यातिवादीकी रीतिसैं तौ रजतकी स्मृति औ शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहतैं मेरी शुक्तिमैं प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध हुया चाहिये । और मरुभूमिके प्रत्यक्षसैं औ जलकी स्मृतिसैं मेरी प्रवृत्ति हुई । ऐसा बाध हुया चाहिये । औ विषय तथा भ्रमज्ञान दोनूं त्यागिकै अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पना अख्यातिवादमैं है । तथाहि:—नेत्रसंयोगहुयें दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिका विशेषरूपतैं ज्ञान होवै नहीं । यह कल्पना विरुद्धहै । तैसैं तत्तांशके प्रमोषतैं स्मृतिकल्पना विरुद्धहै । औ विषयनका भेदहै । औ भासैं नहीं । तैसैं ज्ञानोंका भेदहै कदीभी भासै नहीं । यह कल्पनाभी विरुद्धहै । औ रजतकी प्रतीतिकालमैं अभिमुखदेशमैं रजतप्रतीति होवैहै । यातैं अख्यातिवाद अनुभवविरुद्धहै । औ अख्यातिवादीके मतमैं रजतका भेदग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबोधक होनेतैं रजतके भेदग्रहाका अभाव जैसैं रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु मान्याहै तैसैं सत्यरजतस्थलमैं रजतका अभेदग्रह निवृत्तिका प्रतिबंधक अनुभवसिद्धहै । यातैं रजतके अभेदग्रहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवैगा । इसरीतिसैं रजतके

भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतुहै। औ रजतके अभेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतुहै। शुक्तिदेशमैं "इदं रजतम्" ऐसैं दो ज्ञान होवै। तहां अख्यातिवादीके मतमैं दोनूंहै। काहेतैं शुक्तिमैं रजतका भेद तो है। परंतु दोषबलतैं रजतके भेदका शुक्तिमैं ज्ञान होवै नहीं। यातैं प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेदज्ञानका अभावहै। औ शुक्तिमैं रजतका अभेदहै नहीं। औ अख्यातिवादमैं भ्रमका अंगीकार नहीं। यातैं शुक्तिमैं रजतके अभेदका ज्ञान संभवै नहीं। इसरीतिसैं शुक्तिसैं रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु रजतके अभेदज्ञानका अभावहै। रजतार्थीकी प्रवृत्तिकी सामग्री औ निवृत्तिसामग्री दोनूंहैं। औ प्रवृत्ति निवृत्ति दोनूं परस्पर विरोधीहैं। एककालमैं दोनूं संभवै नहीं। औ दोनूंके असंभवतैं दोनूंका त्याग करै सोभी संभवै नहीं। काहेतैं प्रवृत्तिका अभावही इस स्थानमैं निवृत्तिपदार्थहै। यातैं प्रवृत्तिका त्यागकरें निवृत्तिप्राय होवैहै। निवृत्तिका त्यागकरें प्रवृत्तिप्राय होवैहै। इसरीतिसैं उभयके त्यागमैं औ उभयके अनुष्ठानमैं अशक्त हुवा अख्यातिवादी व्याकुल होयकै लज्जातैं प्राणत्याग करैगा। यातैं अख्यातिवाद मरणका हेतुहै। या अर्थमैं अनेक कोटिहैं क्लिष्ट जानिकै लिखी नहीं॥

औ अख्यातिवादीके मतमैंभी इच्छाविना भ्रमज्ञानकी सामग्री बलतैं सिद्ध होवैहै। जहां धूमरहित वह्निसहित पर्वतमैं धूलिपटल देखिकै "वह्निव्याप्यधूमवान्" ऐसा परामर्श होवैहै। तहां वह्निकी प्रमारूप अनुमिति होवैहै। काहेतैं अनुमितिका विषय वह्नि पर्वतमैं विद्यमानहै यातैं प्रमाहै ताका हेतु "वह्निव्याप्यधूमवान्पर्वतः" इसरीतिसैं पर्वतमैं वह्निव्याप्यधूमके संबंधका ज्ञान तो अख्यातिवादीके मतमैं संभवै नहीं। काहेतैं पर्वतमैं धूमका संबंध है नहीं। औ भ्रमज्ञानका अंगीकार होवै तो धूमसंबंधरहित पर्वतमैं धूमसंबंधका ज्ञान होवै भ्रमज्ञानका अंगीकार नहीं। यातैं धूमरहितमैं धूमसंबंधका ज्ञान संभवै नहीं। यातैं पर्वतमैं धूमके असंबंधज्ञानका अभावरूप परामर्शही उक्तअनुमितिका कारण होनेतैं सारे पक्षमैं

हेतुका असंबंधज्ञानाभावही अनुमितिका कारण मान्या चाहिये । जहां पक्षमैं हेतुका संबंधहै तहां पक्षमैं हेतुके असंबंधज्ञानका अभावहै । औ पक्षमैं हेतुका संबंधज्ञानभीहै परंतु जहां उक्तपर्वतमैं धूम नहींहै । औ अनुमिति होवैहै तहां पक्षमैं हेतुका संबंधज्ञान संभवै नहीं । औ हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव सारे संभवैहै । यातैं पक्षमैं हेतुके असंबंध-ज्ञानका अभावही अनुमितिका कारण अख्यातिवादमैं सिद्ध होवैहै । यातैं वक्ष्यमाणरीतिसैं गलग्रहन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमैं अनुमिति-रूप भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवैहै । तथाहिः—जैसैं वह्निका व्याप्य धूमहै । तैसैं इष्टसाधनत्वका व्याप्य रजतत्व होवैहै । " यत्र यत्र रजतत्वं तत्र इष्टसाध-नत्वम् " इसरीतिसैं रजतत्वमैं इष्टसाधनताकी व्याप्तिहै । जामैं जाकी व्याप्ति होवै सो ताका व्याप्य होवैहै । जाकी व्याप्ति होवै सो व्यापक होवैहै । इसरीतिसैं इष्टसाधनत्व व्यापकहै रजतत्व व्याप्यहै व्याप्य हेतु होवैहै । व्यापक साध्य होवैहै । यह प्रकार अनुमानमैं लिख्याहै । यातैं रजतत्व हेतुसैं इष्टसाधनत्वरूपसाध्यकी अनुमिति होवैहै । यह अर्थ तो सर्वके मतमैं निर्विवादहै । अन्यमतमैं तो पक्षमैं व्याप्य हेतुके संबंध ज्ञानतैं व्यापक साध्यकी अनुमिति होवैहै । औ अख्यातिवादमैं पक्षमैं व्याप्य हेतुके असंबंध ज्ञानाभावतैं साध्यकी अनुमिति होवैहै । यह अर्थ प्रतिपादन कर्‌याहै । यातैं " इदं रजतम् " इसरीतिसैं जहां शुक्तिदशामैं ज्ञान होवै तहां इदं पदार्थ शुक्तिमैं रजतत्वका ज्ञान तो नहींहै । तथापि रजतत्वके असंबंधका ज्ञान नहीं । यातैं रजतत्वके असंबंधका ज्ञानाभाव होनेतैं इदंपदार्थरूप पक्षमैं रजतत्वरूप हेतुके असंबंध ज्ञानाभावतैं इष्ट साधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति इच्छाविना सामग्रीबलतैं सिद्ध होवैहै । सो इदंपदार्थमैं इष्टसाधनत्वकी अनुमिति भ्रमरूपहै । काहेतैं इदंपदार्थ शुक्ति है तामैं इष्टसाधनत्व हैनहीं इष्टसाधनत्वरहितमैं इष्टसाधनत्वका अनुमितिज्ञान भ्रमरूपहै । इसरीतिसैं गलग्रहन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवैहै । धूलीपटलसहित पर्वतमैं जो धूमका परा-

मर्श कहा तहां धूमका संबंधज्ञान पर्वतमैं मानै तौ धूमका संबंधज्ञानही भ्रमरूप मानना होवैहै । औ तिस पर्वतमैं धूमका असंबंधज्ञानाभाव अनुमितिका हेतु कहै तौ तिस स्थानमैं तो भ्रमज्ञानके अनंगीकारसैंभी निर्वाह हुया परंतु सकल अनुमितिमैं हेतुके असंबंधज्ञानाभावकूं कारण मानिकै शुक्तिमैं रजतत्वके असंबंधज्ञानाभावतैं इष्टसाधनत्वकी भ्रमरूप अनुमिति सिद्धहुई । इसरीतितैं उभयतःपाशारज्जुन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमैं भ्रम सिद्धहोवैहै ॥

औरभी अख्यातिवादमैं दोषहैः—जहां रंग रजत धरे होवै तिनका " इमे रजते " ऐसा ज्ञान होवै । यह ज्ञान अन्यमतनकी रीतिसैं तौ रंगअंशमैं भ्रमहै । औ रजतअंशमैं प्रमाहै । औ रंगमैं तथा रजतमैं तथा रजतत्व धर्मकूं विषय करैहै । यातैं रंगअंशमैंभी रजतत्वविशिष्टज्ञानहै । औ अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तो हैनहीं । उक्त ज्ञानभी सर्वअंशमैं यथार्थहै । परंतु रजतअंशमैं तो रजतत्वसंसर्गग्रह है । औ रंगअंशका इदंरूपतैं ज्ञानहै । तामैं रजतत्वके असंबंधका अग्रहहै । इस रीतिसैं भेदकल्पन अनुभवविरुद्धहै । काहेतैं रंग औ रजतका " इमे रजते " इसरीतिसैं एकरूप उल्लेख होवैहै । तामैं उक्तभेदकथनकी रीतिसैं विलक्षण उल्लेख हुया चाहिये । औ रंगअंशमैं रजतत्वका संबंध ग्रह तौ भ्रमके अनंगीकारतैं संभवे नहीं । रजतअंशमैंभी रजतत्वके असंबंधका अग्रह मानैं तौ संभवैहै ॥ काहेतैं रजतमैं रजतत्वके असंबंधका ग्रह नहींहै । किंतु सबंधका ग्रहहै । यातैं एकरूप उल्लेखभी संभवैहै परंतु जहां प्रवृत्तिका विषय अभिमुख होवै । तहां संसर्गविशिष्टज्ञानसैं प्रवृत्ति होवैहै यह पूर्व नियम कहाहै ताका त्याग होवैगा । औ जो ऐसैं कहै जहां प्रवृत्तिका विषय इष्टपदार्थही अभिमुख होवै अनिष्टपदार्थ अभिमुख होवै नहीं । तहां संसर्गविशिष्टका ज्ञान होवैहै । जैसे केवल रजतका " इदं रजतम् " यह ज्ञान रजतत्वविशिष्टका ज्ञानहै । औ जहां इष्टरजत अनिष्टरंग दोनूं अभिमुख होवै । औ अनिष्टपदार्थकाभी इष्टकी नांई इद-

माकार ज्ञान होवै । तहां इष्टपदार्थमैंभी रजतत्वविशिष्टज्ञान होवै नहीं किंतु रजतत्वके असंबंधज्ञानका अभाव होवैहै । यह माननेंमैं " इमे रजते " इसरीतिसैं समान उल्लेख संभवैहै । रजत औ रंगका इदमाकार सामान्यज्ञानहै । तैसैं रंगमैं रजतत्वका असंबंध तौ है । परंतु असंबंधका दोषतैं ज्ञान नहीं । यातैं रंगमैं रजतत्वके असंबंधज्ञानका अभावहै । औ रजतमैं रजतत्वका असंबंध नहीं । यातैं असंबंधज्ञानका अभावहै । यातैं एकरस उल्लेख संभवैहै । परंतु उक्तरीतिसैं रजतअंशमैंभी निष्फल-प्रवृत्ति हुई चाहिये । यातैं उक्तस्थलमैं रजतअंशमैं रजतत्वविशिष्टका ज्ञानहै । काहेतैं अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ हैनहीं । जासैं नि-ष्फलप्रवृत्ति होवै । किंतु इष्टपदार्थके भेदके ज्ञानतैं जो प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवैहै औ विशिष्टज्ञानतैं सफलवृत्ति होवैहै । यातैं रंगरजत पुरोवर्ति होवै औ " इमे रजते " ऐसा ज्ञान होवै तहां रजतरंगका इदं रूपसैं तो ज्ञान समहै । परंतु रजतका इदमंशमैं रजतत्वविशिष्टज्ञानहै । औ रंगके इदमंशमैं रजतत्वके संबंधका अग्रहहै । अथवा रजतका भेदा-ग्रहहै । जहां रजतत्वका असंबंधहै तहां रजतका भेदहै । यातैं रजत-त्वके असंबंधका अग्रह औ रजतभेदका अग्रह कहनैमैं अर्थभेद नहीं । इस-रीतिसैं अख्यातिवादमैं " इमे रजते " या स्थानमैं समान उल्लेख संभवै नहीं । यातैं अख्यातिवाद असंगतहै ॥

भ्रमज्ञानवादीके मतमैं उक्तदोषका असंभव ॥ ६८ ॥

औ जो भ्रमज्ञानकूं मानै तिनके मतमैं दोष कहाः—जो भ्रमज्ञानभी प्रसिद्ध होवै तौ सर्वज्ञानोंमैं भ्रमत्वसंदेहतैं निष्कंपप्रवृत्ति नहीं होवैगी । सोभी संभवै नहीं । काहेतैं अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ नहीं है । सारे ज्ञान यथार्थहैं । परंतु ज्ञानसैं प्रवृत्ति तौ कहूं सफल होवैहै । कहूं नि-ष्फल होवैहै । यातैं प्रवृत्तिमैं सफलता निष्फलताकी संपादक तौ ज्ञानोंमैं विलक्षणता अख्यातिवादीनैंभी मानीहै । जहां संसर्गविशिष्टज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै सो सफल होवैहै । यातैं सफलप्रवृत्तिका जनक संसर्गविशिष्ट

ज्ञान प्रमाहै अगृहीतभेदज्ञानद्वयसैं निष्फलप्रवृत्ति होवैहै। निष्फल प्रवृत्तिके जनक दो ज्ञान होवैहैं। सो अप्रमा है। यद्यपि विषयके भावाभावतैं ज्ञानोंमैं प्रमात्व अप्रमात्व नहीं है। तथापि प्रवृत्तिकी विलक्षणताके हेतु प्रमात्व अप्रमात्व तो अख्यातिवादीकूंभी इष्टहै। औ अप्रमात्व संज्ञासैंभी अख्यातिवादीका विद्वेष होवै तौभी अगृहीत भेदज्ञानद्वयमैं सफल वृत्तिजनकज्ञानतैं विलक्षणता तो अनुभवसिद्धहैं। औ अख्यातिवादीनैं मानी है। यातैं व्यवहारभेदवास्तै संज्ञांतर करणीय है। यातैं प्रसिद्ध संज्ञासैंही व्यवहार करना योग्य है। इसरीतिसैं भ्रमज्ञानके अनंगीकारमैंभी भ्रमके स्थानमैं निष्फल प्रवृत्तिके जनक जो अगृहीत भेद यथार्थज्ञान होवै। औ सफल प्रवृत्तिका जनक रजतमैं रजतत्वविशिष्टज्ञान होवै तिनमैं ज्ञानत्वरूप समानधर्मदेखिकै यह संदेह संभवैहै। जैसैं शुक्तिमैं अगृहीत भेद दो ज्ञान हैं। तिनका भेद प्रतीत नहीं होवैहै। तैसैं यह ज्ञानभी अगृहीतभेदज्ञानद्वयरूप है। अथवा भेदरहित एक है। जो अगृहीत भेदज्ञानद्वयरूप होवैगा। तौ रजतका लाभ प्रवृत्तिसैं नहीं होवैगा। या संदेहतैं अख्यातिवादमैंभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवै नहीं। यातैं निष्कंपप्रवृत्तिका असंभव दोनूं मतमैं समान है।इसरीतिसैं अख्यातिवादभी असंगतहै॥

प्रमात्व अप्रमात्वके स्वरूप उत्पत्ति और ज्ञानका प्रकार प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप ॥ ६९ ॥

अनिर्वचनीय ख्यातिही निर्दोष हैः—सत्ख्यातिआदिक पंचविधवादका विस्तारसैं खंडन विवरणआदिक ग्रंथनमैं है। इहां रीतिमात्र जनाई है। अख्यातिवादीनैं सिद्धांतमतमैं निष्कंपप्रवृत्तिका असंभवदोष कह्या तिस दोषका अख्यातिवादमैंभी संभव कह्या औ स्वमतमैं उद्धार नहीं करचा ताका यह उद्धार हैः—जिस पदार्थका जो ज्ञान होवै ता ज्ञानमैं अप्रमात्व निश्चय होवै तौ प्रवृत्ति होवै नहीं। अप्रमात्वका संदेह होवै तौ सकंपप्रवृत्ति होवै है। प्रमात्वका निश्चय होवै तौ निष्कंपप्रवृत्ति होवैहै। इसवास्तै प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप औ तिनकी उत्पत्ति औ तिनके ज्ञान-

का प्रकार कहैहै । यद्यपि प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप पूर्व कह्या है । स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधित अर्थगोचरज्ञान सो प्रमा है । तासैं भिन्नज्ञान अप्रमा है । या कहनैतैं यह जानी जावै हैः—स्मृतिभिन्न अबाधित अर्थगोचर ज्ञानका धर्म प्रमात्व है । तासैं अन्यज्ञानका धर्म अप्रमात्व है । तथापि पूर्व-उक्त पारिभाषिक प्रमात्व स्मृतिमैं नहीं है । औ प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैंभी मान्या चाहिये । काहेतैं स्मृतिज्ञानसैंभी पुरुषकी प्रवृत्ति होवैहै । जिस स्थानमैं स्थित इष्टपदार्थकी स्मृति होवै तिस स्थानमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवैहै । स्मृतिज्ञानमैं प्रमात्वका निश्चय होवै तौ निष्कंपप्रवृत्ति होवैहै । यातैं प्रवृत्तिका उपयोगीप्रमात्व स्मृतिमैंभी है । यातैं उक्तस्वरूप प्रमात्वसैं अन्यविधप्रमात्वका स्वरूप कह्या चाहिये । सकलशास्त्रनमैं स्मृतिसैं भिन्न ज्ञानमैं अनुभवव्यवहार करैहैं । संस्कारजन्यज्ञानमैं स्मृतिव्यवहार करै है । यथार्थअनुभवमैं प्रमा व्यवहार करैहै । औ तासैं भिन्नमैं अप्रमा व्यवहार करैहैं । इसरीतिसैं ज्ञानत्व धर्म तौ सकल ज्ञानमैं होनैतैं व्यापक हैं । औ अनुभवत्व स्मृतित्व ज्ञानत्वके व्याप्यहैं । परस्पर विरोधीहैं । तैसैं प्रमात्व धर्मभी अनुभवत्वका व्याप्य है । काहेतैं अनुभवत्व तौ यथार्थाऽनुभव औ अयथार्थअनुभवमैं रहैहै । औ प्रमात्वधर्म यथार्थ अनुभवमैंही रहैहै । यातैं अनुभवत्वका व्याप्य प्रमात्व है । तैसैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है । काहेतैं यथार्थत्व तौ सत्यपदार्थकी स्मृतिमैंभी रहैहै । औ स्मृतिमैं प्रमात्व रहै नहीं । यातैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है । यह शास्त्रकारनकी परिभाषा है । याके अनुसार प्रमाका स्मृतिसैं-भिन्न अबाधित अर्थगोचरज्ञान प्रमा कहियेहै । यह लक्षण कह्या है । जिस प्रमात्वके ज्ञानतैं पुरुषकी निष्कंपप्रवृत्ति होवै । ऐसा प्रमात्व स्मृतिसैंभी मान्या चाहिये । यातैं इस प्रसंगमैं यथार्थत्वका व्याप्य प्रमात्व नहीं । किंतु यथार्थत्वका नामही प्रमात्व है । पूर्वउक्त पारिभाषिक प्रमात्व तौ स्मृतिमैं नहीं है । यथार्थत्व है । यातैं पूर्वउक्तप्रमात्व यथार्थत्वरूप नहीं । किंतु तासैं भिन्न है । औ तासैं न्यूनदेशवृत्ति होनैतैं यथार्थत्वका

व्याप्य है। औ प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व विचारणीय है। सो स्मृति साधारण है। यातैं यथार्थत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति नहीं। किंतु यथार्थत्वरूपही प्रमात्व विचारणीय है। औ जो स्मृति ज्ञानमैं प्रमा व्यवहारसैं सर्वथा विद्वेष होवै तौ प्रमात्वज्ञानसैं निष्कंप प्रवृत्ति होवैहै। इस वाक्यकूं त्यागिके यथार्थत्वज्ञानसैं निष्कंप प्रवृत्ति होवैहै। ऐसा वाक्य कहै। इसरीतिसैं या प्रसंगमैं प्रमात्वका एकही अर्थ है। यातैं या प्रसंगमैं यथार्थत्वधर्मका प्रमात्व शब्दसैं व्यवहारहै॥

न्यायवैशेषिकमतमै ज्ञानकी उत्पादकसामग्रीतैं बाह्यसामग्रीतैं प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति (परतः प्रामाण्यवाद औ परतः अप्रामाण्यवाद)॥ ७०॥

न्यायशास्त्रके मतमैं ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं। औ ज्ञानकी ज्ञापक सामग्रीसैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं। याकूं परतः प्रामाण्यवाद कहैहैं। या प्रसंगमैं प्रमात्वका नाम प्रामाण्यहै। परतः कहिये अन्यतैं प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवैहै। अन्यतैंही प्रामाण्यका ज्ञान होवैहै। ज्ञानकी सामग्रीतैं भिन्न सामग्री परशब्दका अर्थहै। यातैं यह निष्कर्ष हुया ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी सामग्री भिन्नहै। ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्री तौ इंद्रियअनुमानादिक पूर्व कहीहै। तासैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै तौ सकलज्ञान प्रमा हुये चाहिये। अप्रमाज्ञानका लोप होवैगा। यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीसैं अधिक सामग्रीसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै। जहां अधिक सामग्री नहींहै। तहां ज्ञानमैं प्रमात्वधर्म होवै नहीं। यातैं भ्रमज्ञानका लोप नहीं सो अधिक सामग्री गुणहै। जहां गुणसहित इंद्रियअनुमानादिकनतैं ज्ञान होवै तहां प्रमा होवैहै। गुणरहित इंद्रियानुमानादिकनतैं ज्ञान होवै सो प्रमा नहीं। प्रत्यक्षप्रमाकी उत्पत्तिमैं विषयके अधिकदेशमैं इंद्रियका संयोगगुणहै। औ साध्यके व्याप्यहेतुका साध्यवत्पक्षमैं ज्ञान अनुमितिप्रमाकी उत्पत्तिमैं गुणहै। जहां व्यभिचारी हेतुका पक्षमैं ज्ञान होवै। तहां अनुमितिज्ञानकी सामग्री पक्षमैं

हेतुका ज्ञान तौ है । परंतु व्याप्यहेतुका ज्ञानरूप गुण नहीं । यातैं अनुमितिप्रमा होवै नहीं । इसरीतिसैं ज्ञानवृत्ति प्रमात्वधर्मकी उत्पत्तिमैं ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं अन्यगुणकी अपेक्षा होनेतैं परतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवैहै ॥

प्रमात्वकी नांई ज्ञानवृत्ति अप्रमात्वकी भी परतः उत्पत्ति होवैहै । काहेतैं भ्रमज्ञान दोषजन्य होवैहै । यह वार्ता प्रसिद्धहै । औ प्रमाज्ञानमैं दोष हेतु नहीं । यातैं ज्ञानकी सामग्रीतैं दोषबाह्यहै । सो दोष अनंतप्रकारका है । इसरीतिसैं ज्ञानसामग्रीतैं दोष परहै भिन्नकूं पर कहैहैं । तासैं अप्रमाकी उत्पत्ति होनेतैं परतः अप्रामाण्यकी उत्पत्ति होवैहै । अप्रमात्वकूं अप्रामाण्य कहेहैं । इसरीतिसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति औ अप्रमात्वकी उत्पत्ति परतः होवैहै ॥

ज्ञान औ ज्ञानत्वकी सामग्रीतैं अन्य कारणतैं प्रमात्वके ज्ञानकी उत्पत्ति (परतःप्रामाण्यग्रहवाद) ॥ ७१ ॥

तैसैं ज्ञानके ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं । किंतु ज्ञानका औ ज्ञानत्वका जा सामग्रीतैं ज्ञान होवै तासैं अन्य कारणतैं प्रमात्वका ज्ञान होवैहै । जैसैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणतैं घटादिकनका ज्ञान होवै तैसैं मनःसंयुक्तसमवायसंबंधतैं घटादिज्ञानका ज्ञान होवैहै । नेत्रादिप्रमाणतैं घटका ज्ञान होवै ताका " अयं घटः " ऐसा आकारहै । औ मनोरूप प्रमाणतैं घटज्ञानका प्रत्यक्ष होवै ताका " घटमहं जानामि " ऐसा आकारहै " घटमहं जानामि " या मानसज्ञानका विषय घट ज्ञानहै औ घटभी विषयहै काहेतैं ज्ञानका ज्ञान अनुव्यवसाय कहियेहै । घटादिकनका ज्ञान व्यवसाय कहियेहैः—अनुव्यवसाय ज्ञानका यह स्वभाव हैः—व्यवसायके विषयकूं त्यागै नहीं किंतु विषयसहित व्यवसायकूं प्रकासैहै । इसीवास्तै ज्ञानके ज्ञानकी अनुव्यवसाय संज्ञाहै । व्यवसायके अनुसारीकूं अनुव्यवसाय कहैहै जैसैं व्यवसायके घटादिक विषयहैं।तैसैं अनुव्यवसायकेभी घटादिक विषयहैं । यातैं व्यवसायकें अनुसार अनुव्यवसायहै । औ अनुव्यवसायज्ञानका आत्माभी विषयहै । काहेतैं यह नियमहै । ज्ञान इच्छा कृति सुख

दुःख द्वेष ये आत्माके विशेष गुणहैं। इनमैं किसी एक गुणकी प्रतीति होवै तौ आत्माकी प्रतीति होवै। किसीकी प्रतीति नहीं होवै तौ आत्माकी प्रतीति होवै नहीं। यातैं सकल विशेषगुणनकूं त्यागिकै आत्माकी प्रतीति होवै नहीं। तैसैं आत्माकूं त्यागिकै केवल ज्ञानादिकनकी प्रतीति होवै नहीं। यातैं घटके ज्ञानका ज्ञान होवै तब आत्माकाभी ज्ञान होवैहै। यातैं व्यवसायज्ञानकूं औ ताके विषय घटकूं तैसैं व्यवसायके आश्रय आत्माकूं "घटमहं जानामि" यह ज्ञान प्रकासैहै। इसीवास्तै त्रिपुटीगोचर ज्ञानकूं अनुव्यवसाय कहैहैं। अनुव्यवसायज्ञानका करण मनहै। यातैं सकल-विषयनतैं मनका संबंध कह्या चाहिये॥ जैसे घटज्ञान आत्मविषयहै तैसैं घटत्व ज्ञानत्व आत्मत्वभी घटज्ञानके ज्ञानके विषयहैं। घटज्ञानसैं तौ मनका स्वसंयुक्तसमवायसंबंधहै। औ ज्ञानत्वसैं स्वसंयुक्तसमवेतसमवाय-संबंधहै। आत्मासैं स्वसंयोगसंबंधहै। आत्मत्वसैं स्वसंयुक्तसमवाय-संबंधहै। औ घटसैं तौ मनका संबंध प्रत्यक्षका हेतु संभवै नहीं। काहेतैं बाह्यपदार्थका ज्ञान स्वतंत्र मनसैं होवै नहीं। यातैं घटसैं मनका अलौकिकसंबंध कह्या चाहिये। लौकिक संबंधसैं बाह्यपदार्थका ज्ञान मनसैं होवै नहीं। अलौकिकसंबंधसैं बाह्यपदार्थकाभी मनसैं ज्ञान होवैहै। सो अलौकिकसंबंधज्ञानलक्षणहै। अनुव्यवसायज्ञानका विषय जो व्यवसायज्ञान सोई मनका घटसैं संबंधहै। ताका यह स्वरूपहैः— स्वसंयुक्त समवेतज्ञान अथवा स्वसंयुक्त समवेतज्ञानविषयता घटसैं मनका संबंधहै। ज्ञानलक्षणवाक्यमैं लक्षणशब्दका स्वरूप अर्थ करैं तब तौ आद्यसंबंधहै। लक्षणशब्दका ज्ञापक अर्थ करैं तब द्वितीय संबंधहै। स्वशब्दका अर्थ मनहै तासैं संयुक्त आत्मा तामैं समवेतव्यवसायज्ञानहै सो घटमैं रहैहै। यातैं उक्तज्ञानही मनका घटमैं संबंध होनेतैं घटका मानसज्ञान होवैहै। औ द्वितीयपक्षमैं उक्तज्ञानकी विषयतारूपसंबंध घटमैं है। व्यवसायज्ञानके विषय घट घटत्व दोनूंहैं। यातैं व्यवसायरूप-संबंधसैं अनुव्यवसायज्ञानके दोनूं विषयहैं। इसरीतिसैं घटज्ञानादिक

अनुव्यवसायज्ञानके विषयहैं । यातैं ज्ञानका ज्ञान अनुव्यवसायहै । ताकी सामग्री मनःसंयोगादिरूपहै । तासैं ज्ञानका औ ज्ञानत्वका ज्ञान होवैहै । प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं । किंतु ज्ञान होयकै पुरुषकी सफल प्रवृत्ति होवै तासैं उत्तरकालमैं प्रवृत्तिजनक ज्ञानमैं प्रमात्वका अनुमिति ज्ञान होवैहै । जैसैं तड़ागमैं जलके प्रत्यक्षज्ञानतैं जलार्थीकी प्रवृत्ति हुये जलका लाभ होवै तब पुरुषकूं ऐसा अनुमान होवैहैः—"इदं जलज्ञानम् प्रमा सफलप्रवृत्तिजनकत्वात् । यत्रयत्र सफलप्रवृत्तिजनकत्वम् तत्र प्रमात्वं यथानिर्णीतप्रमायाम्" इहां वर्तमान जलज्ञान पक्षहै । यद्यपि अनुमान-कालमैं जलज्ञान अतीतहै । तथापि वर्तमानकै समीप भूत भविष्यत्‌भी वर्तमानही कहियेहैं । यातैं वर्तमान जलज्ञानही पक्ष कह्या अतीत नहीं कह्या । प्रमात्व साध्यहै । आगै हेतुदृष्टांत स्पष्टहै । व्यतिरेकदृष्टांत कहना होवै तौ "यत्रयत्र सफलवृत्तिजनकत्वम् नास्ति तत्र प्रमात्वम् नास्ति यथा शुक्तौ रजतम् ज्ञाने" इसरीतिसैं वाक्य कहै । या अनु-मानतैं जलज्ञानमैं प्रमात्वका निश्चय होवैहै । इसरीतिसैं सकल ज्ञानोंमैं सफलप्रवृत्तिसैं प्रमात्वकी अनुमिति होवैहै । जलज्ञानग्राहक सामग्री "जलमहम् जानामि" या अनुव्यवसायकी सामग्रीहै । प्रमात्वग्राहक सामग्री उक्त अनुमानहै । सो अनुव्यवसायकी सामग्रीतैं भिन्न होनेतैं परहै । यातैं परतःप्रमात्वग्रह होवैहै । यद्यपि न्यायमतमैं अनुमितिका विषयपक्षभी होवैहै । औ उक्त अनुमितिमैं जलज्ञान पक्षहै यातैं प्रमा-त्वका अनुमानभी ज्ञानग्राहक सामग्रीहै । तैसैं अनुव्यवसायभी दो प्रकारका होवैहैः—एकतो "जलमहम् जानामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । जहां प्रमात्व निश्चयतैं उत्तर अनुव्यवसाय होवै तहां "जलं प्रमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै । यातैं उक्त अनुमानरूपज्ञान ग्राह-कसामग्रीतैं प्रमात्वका निश्चय हुआ । औ द्वितीय अनुव्यवसायकी साम-ग्रीभी ज्ञानग्राहकहै । तासैं प्रमात्वका निश्चय हुआ । इसरीतिसैं सिद्धांत-कोटि स्वतःप्रामाण्यग्रहकी प्राप्ति हुई ॥ तथापि जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री

सो सारी प्रमात्वकी ग्राहकहै यह सिद्धांतकोटिहै । ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीमैं " जलमहम् जानामि " या अनुव्यवसायकी सामग्रीभी अंतर्भूतहै । यातैं प्रमात्वका ग्रह होवै नहीं । यातैं सिद्धांतकोटिका अंगीकार नहीं ॥

इसरीतिसैं घटादिकनके ज्ञानतैं घटादिकनका प्रकाश होवैहै । घटादिकनके प्रकाश हुयेभी घटादिकनके ज्ञानका औ ज्ञानके आश्रय आत्माका प्रकाश होवै नहीं । जिसकालमैं अनुव्यवसायज्ञान होवै तब घटादिक विषयसहित औ आत्मसहित घटादिज्ञानका प्रकाश होवैहै । परंतु अनुव्यवसायज्ञानतैं व्यवसायकी त्रिपुटीका प्रकाश होवैहै । अनुव्यवसायका प्रकाश होवै नहीं । जब अनुव्यवसायगोचर अनुव्यवसाय होवै तब प्रथम अनुव्यवसायका प्रकाश होवैहै । द्वितीय अनुव्यवसाय अप्रकाशितही रहैहै । प्रथम अनुव्यवसाय तौ व्यवसायगोचरहै । अनुव्यवसायगोचर द्वितीय अनुव्यवसायहै । " घटज्ञानमहम् जानामि " यह द्वितीय अनुव्यवसायका स्वरूपहै । द्वितीय अनुव्यवसायका व्यवहार इष्ट होवै तौ " घटज्ञानस्य ज्ञानमहम् जानामि " ऐसा तृतीय अनुव्यवसाय होवैहै । परंतु न्यायमतमैं घटज्ञानसैं घटका प्रकाश होयकै घटका व्यवहार सिद्ध होवैहै । घटव्यवहारमैं घटज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं । घटज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तब अनुव्यवसायतैं घटज्ञानका प्रकाश होयकै घटज्ञानका व्यवहार होवैहै । अनुव्यवसायके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं । इसरीतिसैं जाका व्यवहार इष्ट होवै ताके ज्ञानकी अपेक्षाहै । विषयका प्रकाशक जो ज्ञान सो प्रकाशित होवै अथवा अप्रकाशित होवै ताके प्रकाशसैं उपयोग नहीं ॥ जो प्रकाशितज्ञानसैंही विषयका प्रकाश होवै तौ न्यायमतमैं अनवस्थादोष होवै । काहेतैं जा ज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै । सो ज्ञान स्वप्रकाश तौ हैनहीं । ताका प्रकाशक ज्ञानांतर होवै । तब ज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै तिस प्रथम ज्ञानका प्रकाशक ज्ञानांतर का अन्यज्ञान चाहिये । तृतीयका प्रकाशक चतुर्थ ज्ञान चाहिये । इसरीतिसैं अनवस्थादोष होवै । परस्पर सापेक्षप्रकाश मानैं तौ अन्योन्या-

अथ चक्रिका दोष होवैं । यातैं विषयके प्रकाशमैं अपनैं प्रकाशकी ज्ञान अपेक्षा करै नहीं । किंतु स्वव्यवहारमैं प्रकाशकी अपेक्षाहै । जहां घटादिक विषयका व्यवहार इष्ट होवै तहां घटज्ञानकी घटके प्रकाशवास्तै अपेक्षाहै । अप्रकाशितज्ञानसैंही घटका व्यवहार होवैहै । जैसैं जब घटका ज्ञान नहीं होवैहै तिसकालमैंभी जलधारणादि प्रयोजनकी सिद्धि घट करैहै । स्वकार्यमैं प्रकाशकी अपेक्षा घट करै नहीं । तैसैं ज्ञानका कार्य विषयका प्रकाशहै । ता विषयप्रकाशरूपकार्यमैं अपनैं प्रकाशकी अपेक्षा ज्ञान करै नहीं । घटकी नांई स्वव्यवहारमैं प्रकाशवास्तै ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञान करैहै । जा ज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तिस ज्ञानका ज्ञान होवैहै । ज्ञान ज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं इच्छाके विषयकूं इष्ट कहैहैं । यातैं न्यायमतमैं अनवस्थादोष कहैहैं । सो तिनका अविवेकमूलक प्रलापहै ॥

इसरीतिसैं न्यायमतमैं कोई ज्ञान स्वप्रकाश नहीं । यातैं ज्ञानके ज्ञानकी जासैं उत्पत्ति होवै सो ज्ञानग्राहकसामग्री कहियेहै । अनुव्यवसाय ज्ञानकी सामग्री मनःसंयोगादिक औ ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधहै । सो अनुव्यवसायभेदसैं नानाहै । तैसैं " जलज्ञानम् प्रमा " यह अनुमितिभी ज्ञानका ज्ञानहै । ताका जनक अनुमानहै । सोभी ज्ञानग्राहक सामग्रीहै । औ तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञानभी होवैहै औ " जलं प्रमिनोमि " इस अनुव्यवसायकी सामग्रीभी ज्ञानग्राहक सामग्रीहै । औ तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवैहै । परंतु " जलमहम् जानामि " यह अनुव्यवसायभी जलज्ञानका ज्ञानहै ॥ औ जलज्ञानके प्रमात्वकूं प्रकाशै नहीं । यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री उक्त अनुव्यवसायसामग्रीसैं जलज्ञानके प्रमात्वका अग्रहण होनेतैं जलज्ञान ग्राहक सकलसामग्रीतैं जलज्ञानके प्रमात्वका ग्रहण नहीं होनेतैं स्वतःप्रामाण्यग्रह होवै नहीं । किंतु परतःप्रामाण्यग्रह होवैहै । जोजो ज्ञानग्राहक सामग्री तिन सर्वतैं प्रमात्वग्रह होवै याकूं स्वतःप्रामाण्यग्रह कहैहैं । या पक्षमैं प्रमाकूं धर्मत्व त्यागिकै किसी ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं । प्रमात्व ज्ञानत्व ये उभय

धर्मविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवैहै । केवल ज्ञानत्वधर्मविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं ॥ औ परतःप्रामाण्यग्रहवादमैं प्रथम अनुव्यवसायतैं प्रमात्वकूं त्यागिकै ज्ञानत्वविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवैहै । फेरि अन्य अनुव्यवसायतैं वा उक्त प्रकारके अनुमानतैं प्रमात्वका ज्ञान होवैहै ॥

मीमांसक औ सिद्धांतसंमत स्वतःप्रामाण्य-वादमैं दोष ॥ ७२ ॥

मीमांसकमतमैं औ सिद्धांतमतमैं स्वतःप्रामाण्यग्रहका अंगीकार है । न्यायवैशेषिकमतमैं परतःप्रामाण्यग्रहका अंगीकारहै । औ स्वतःप्रमाण्यग्रहमैं यह दोष कह्याहैः—जहां एक पदार्थका अनेकवार ज्ञान होयकै प्रवृत्ति हुई होवै तहां तौ ज्ञानके प्रमात्वमैं कहूं संदेह होवै नहीं । काहेतैं अनेकवार सफलप्रवृत्ति होयकै प्रमात्वनिश्चय होय जावैहै । सो प्रमात्वनिश्चय प्रमात्वसंशयका विरोधीहै । परंतु जा पदार्थका अपूर्वज्ञान होवै ताके ज्ञानमैं प्रमात्वका संदेह होवैहै । सो नहीं हुआ चाहिये । काहेतैं अद्वैतमतमैं औ प्रभाकरके मतमैं तो ज्ञान स्वप्रकाशहै । यातैं ज्ञान कदेभी अगृहीत होवै नहीं । गृहीतही होवैहै । यातैं प्रमात्वभी साथही गृहीत होवै तो निर्णीत पदार्थका संदेह होवै नहीं । यातैं प्रमात्वका संदह संभवै नहीं । सिद्धांतपक्षमैं तो प्रकाशरूप ज्ञानहै । प्रकाश पदार्थका ज्ञान पदार्थसैं भेद नहीं ॥

प्रभाकरके मतमैं सारे ज्ञानतैं त्रिपुटीका प्रकाश ॥ ७३ ॥

औ प्रभाकरके मतमैं ज्ञानके विषयमैं प्रकाश होवैहै । प्रकाशका हेतु ज्ञानहै । जैसैं घटका ज्ञान होवै तब घटज्ञानतैं घटका प्रकाश होवै । तैसैं घटका ज्ञान अपनैं स्वरूपका प्रकाश करैहैं । औ अपना आश्रय जो आत्मा ताका प्रकाश करैहै । सारे ज्ञान त्रिपुटीकूं प्रकाश करे है । ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयका समुदाय त्रिपुटी कहियेहै । इसरीतिसैं प्रभाकरके मतमैं अपनें स्वरूपकूं भी ज्ञानविषय करैहै । औ अपनै प्रमात्वकूं विषय करैहै ॥

मुरारिमिश्रका मत ॥ ७४ ॥

औ मुरारि मिश्रके मतमैं ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसायतैं होवैहै। औ तिस ज्ञानका प्रकाशक अनुमितिही प्रमात्वका प्रकाश मान्यां है। यातैं अनुव्यवसायसैं उत्तर प्रमात्वका संदेह नहीं हुआ चाहिये ॥

भट्टका सिद्धांत ॥ ७५ ॥

तैसैं भट्टका यह सिद्धांत हैः—घटादिकनके ज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै नहीं। काहेतैं ज्ञानगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं। यातैं ज्ञानका ज्ञान अनुमिति रूप होवैहै। मानसप्रत्यक्षरूप नहीं। सो अनुमितिज्ञान इसरीतिसैं होवैहै। इंद्रियविषयके संयोगतैं प्रत्यक्षज्ञान होवै। अथवा अनुमितिज्ञान होवै। सकलज्ञानतैं घटादिक विषयमैं ज्ञातता नाम धर्म उपजै है। इसीवास्तै ज्ञान हुए पाछै "ज्ञातो घटः" ऐसा व्यवहार होवैहै। ज्ञानसैं प्रथम जो घटइंद्रियका संयोग होवै तासैं "अयं घटः" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै। सो प्रत्यक्षज्ञान समवायसंबंधसैं ज्ञातामैं रहैहै। विषयतासंबंधसैं घटमैं रहैहै। जहां विषयतासंबंधसैं ज्ञान होवै तहां समवायसंबंधसैं ज्ञातता उपजैहै। इसरीतिसैं घटके ज्ञानतैं घटमैं ज्ञातता उपजैहै। तिस ज्ञातताका उपादान कारण घटहै। निमित्तकारण ज्ञानहै। असमवायिकारणपरिभाषा भट्टके मतमैं हैनहीं। उपादानकारणसैं भिन्नकूं निमित्तकारणही कहैहैं। इसरीतिसैं ज्ञानजन्य ज्ञातताधर्म घटमैं होवैहै। प्रथम तौ "अयं घटः" इसरीतिसैं घटका प्रकाशक प्रत्यक्ष हुआ है। ता प्रत्यक्षसैं घटमैं ज्ञातता धर्म उपजा तब इंद्रियसंयोगतैं तिसी घटका "ज्ञातो घटः" इसरीतिसैं प्रत्यक्ष होवैहै। इसरीतिसैं ज्ञानजन्य ज्ञातताका बाह्य इंद्रियमैं प्रत्यक्ष होवैहै। औ बाह्यपदार्थके ज्ञानका बाह्यइंद्रियसैं तौ किसीके मतमैं प्रत्यक्ष होवै नहीं। न्यायादिकनके मतमैं ज्ञानका मानसप्रत्यक्ष होवैहै। भट्टके मतमैं घटादिकनके ज्ञानका मानसप्रत्यक्षभी होवै नहीं। परंतु घटादिज्ञानका अनुमानजन्य अनुमितिज्ञान होवैहै। अनुमानका यह आकार है "अयं घटः विषयतासं-

बंधेन ज्ञानवान् समवायेन ज्ञातताववत्त्वात्। यत्र यत्र समवायेन ज्ञातता तत्र विषयतासंबंधेन ज्ञानम्" या स्थानमैं पुरोवर्ति घट पक्ष है। विषयतासंबंधसैं ज्ञान साध्यहै। आगे हेतु दृष्टांतहै। अन्यग्रंथनमैं प्रकारांतरसैं अनुमान लिखा है। सो कठिनहै। औ भट्टके मतमैं अनुमानसैं ज्ञान जानियेहैं। यह सुगमरीति दिखाईहै। इसरीतिसैं ज्ञानग्राहकसामग्री भट्टके मतमैं अनुमानहै॥

न्यायवैशेषिक मतका निष्कर्ष॥ ७६॥

या अनुमानतैंही घटज्ञानके प्रमात्वकाभी ज्ञान होवैहै। यातैं ज्ञानकी अनुमिति हुये पाछे प्रमात्वका संदेह भट्टमतमैं नहीं हुआ चाहिये। यातैं ज्ञानके सकलज्ञानतैं प्रमात्वका निश्चय होवै नहीं। किंतु सफल प्रवृत्ति हुये पाछे ज्ञानके प्रमात्वका निश्चय होवैहै। यह न्यायका औ वैशेषिकका मत है। याकूं परतःप्रामाण्यवाद कहैहैं। ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं। अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै। तैसैं आधिक सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवैहै। प्रमात्वकी नांई अप्रमात्वकी परतः उत्पत्ति होवैहै। औ परतः ज्ञान होवै जो ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं ज्ञानके अप्रमात्वधर्मकी उत्पत्ति होवै तौ सकलज्ञान अप्रमा हुये चाहिये। यातैं ज्ञानकी जनकसामग्रीसैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं। ज्ञानके जनक इंद्रिय अनुमानादिक हैं॥ तिनमैं दोषका सहकार होवै तौ अप्रमात्व सहित ज्ञानकी उत्पत्ति होवै। दोष नानाविध हैं॥

प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां तौ नेत्रादिगत प्रमाण दोषकी नांई विषयगत सादृश्य दोषभी हेतु है। कहूं प्रत्यक्षभ्रममैं विषयगतसादृश्य दोषका व्यभिचारभी है। परंतु सादृश्यमैंही बहुत भ्रम होवैहै। यातैं बहुतस्थानमैं तौ सादृश्यदोष भ्रमका हेतु है। जहां विसदृशमैं भ्रम अनुभवसिद्ध होवै तहां सादृश्यदोष भ्रमका कारण नहीं। एक रूपसैं दोष हेतु नहीं। किंतु जिसके हुए जो भ्रम होवै तिस दोषकूं तिस भ्रमकी कारणताहै॥ परोक्षभ्रमज्ञानमैं सादृश्यकी अपेक्षा नहीं यह अनुभवसिद्धहै। यातैं परोक्षज्ञानमैं विषयगत दोष हेतु नहीं। किंतु अनुमितिभ्रमविषै अनुमानदोष हेतुहै।

व्याप्य हेतुका ज्ञान अनुमान है। हेतुमैं व्यभिचारादिक दोष न्यायग्रंथनमैं प्रसिद्धहैं ॥ औ शाब्दभ्रम होवै । तहां श्रोतामैं वाक्यतात्पर्यका अनवधारण दोषहै । वक्तामैं विप्रलंभकतादिक दोषहैं । शब्दमैं अन्यथाबोधकत्वादिक दोष हैं। इसरीतिसैं अप्रमात्वके हेतु दोष अनुभवानुसारतैं जाणे चाहिये ॥

या प्रसंगमैं प्रमात्वकी उत्पत्ति औ अप्रमात्वकी उत्पत्ति कही सो विरुद्ध प्रतीत होवैहै भूत भविष्यत् वर्त्तमान सकलप्रमामैं प्रमात्वधर्म एकहै । तैसैं सकल अप्रमामैं अप्रमात्वभी एकहै । तिनकी उत्पत्ति कहना संभवै नहीं। तथापि अपनें कारणतैं ज्ञान उपजै तब कोई ज्ञानप्रमा होवैहै । कोई अप्रमा होवैहै। प्रमात्वविशिष्टप्रमा होवैहै । अप्रमात्वविशिष्ट अप्रमा होवै है। इसरीतिसैं ज्ञानमैं प्रमात्व औ अप्रमात्वधर्मकी विलक्षणता ज्ञानकी जनक सामग्रीकै अधीनहै। कहूं ज्ञानकी ऐसी सामग्रीहै। जातैं प्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै। औ कहूं ऐसी सामग्रीहैं। जातैं अप्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै । यातैं ऐसा मान्या चाहियेः—प्रमात्व धर्म तो एकहै। सकल प्रमामैं ताका संबंधहै । परंतु प्रमात्वका संबंध सामग्रीकै अधीनहै। इसरीतिसैं ज्ञानमैं प्रमात्वकी प्रयोजक सामग्री होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति कहीहै। तैसैं अप्रमात्वका प्रयोजक दोषहै। यातैं दोषजन्य अप्रमात्व कहियेहै। दोषजन्य कहनेका दोष प्रयोज्यमैं तात्पर्यहै। औ तिनकै ज्ञानकी तो मुख्य उत्पत्तिही संभवैहै ॥

यद्यपि सिद्धांतमैं साक्षीभाष्य प्रमात्वहै। यातैं प्रमात्वके ज्ञानकी भी उत्पत्ति कहें साक्षीकी उत्पत्ति सिद्ध होवैहै। सो बनैं नहीं । तथापि वृत्तिमैं आरूढ़साक्षी प्रमात्वादिकनकूं प्रकाशैहै । यातैं वृत्तिभी ज्ञान कहियेहै। ताकी उत्पत्ति संभवैहै । यह वार्त्ता पूर्व कहीहै। तथापि उक्त अर्थके कथनतैं श्रोता अध्येताकूं बोध दृढ़ होवैहै । शास्त्रीयअर्थके मंदसंस्कारवाले पुरुषकूं बारंबार कहनेतैं अनायासतैं बोध होवैहै । यातैं इस प्रकरणमैं अनेक अर्थ वारंवार कहेहैं । पुनरुक्तिदोष नहीं। इस रीति-

सैं न्यायमतमैं परतःप्रामाण्यवाद मानाहै । औ स्वतःप्रामाण्यवादमैं संशयकी अनुपपत्तिदोष कहाहै ॥

न्यायवैशेषिकमतका खंडन ॥ ७७ ॥

सो सकल असंगतहैः— प्रमात्वका ज्ञान तो पाछै कहैंगे प्रथम तो अनुव्यवसायज्ञानतैं ज्ञानका प्रकाश होवैहै । यह कथन असंगतहैः—काहेतैं जो अप्रकाशस्वभाव ज्ञान होवै तौ ताके संबंधतै घटादिकनका प्रकाश नहीं होवैगा । औ जो पूर्व कहा घटादिकनके प्रकाशमैं ज्ञान अपनैं प्रकाशकी अपेक्षा करै नहीं । जैसैं घटादिक अज्ञातभी स्वकार्य करैहै । तैसैं ज्ञानभी अज्ञात हुआ विषयका प्रकाशरूप स्वकार्य करैहैः—सो संभवै नहींः—काहेतैं सारे भौतिक ज्योति आप प्रकाशरूप हुये अन्यकूं प्रकाशैहै । प्रकाशहीन ज्योतिसैं किसीका प्रकाश देखा नहीं । जो प्रकाशहीनभी स्वभावबलतैं स्वसंबंधीका प्रकाश करै तौ सुवर्णस्थज्योतिर्भागतैं भी सुवर्णसंबंधी घटादिकनका प्रकाश हुआ चाहिये । स्वरूपप्रकाशतैं प्रकाशमान भौतिकज्योतिसैं घटादिकनका प्रकाश देखाहै । औ स्वरूपप्रकाशतैं अप्रकाशमान सुवर्णरजतादिरूप ज्योतिसैं किसीका प्रकाश देखा नहीं । यातैं स्वरूपप्रकाशतैं प्रकाशमान ज्ञानके संबंधसैं घटादिकनका प्रकाश होवै यह मान्या चाहिये । यातैं प्रकाशस्वभाव ज्ञानहै । केवल दृष्टांतबलसैं ज्ञानकूं स्वप्रकाशता नहीं मानैहै । किंतु अनुभवसैंभी स्वप्रकाशता सिद्ध होवैहै । जहां दुर्बोध अज्ञातपदार्थका पुरुषकूं ज्ञान होयकै " ज्ञातत्वम् ज्ञातम् नावशिष्यते ज्ञातुम् " ऐसा वाक्य हर्षसैं कहै ताकूं अन्यपुरुष कहैः—"एतदज्ञानम् ज्ञातुमवशिष्यते " इस वाक्यकूं सुनिकै हास्य करैहै । यातैं ज्ञानका प्रकाशताके अनुभवसिद्धहै । ज्ञानकै प्रकाशकी अवशेषता सुनिकै हंसैहै । औ " घटज्ञानम् ज्ञातं न वा " इस वाक्यके वक्ताकूं निर्बुद्धी कहैहै । यातैं कदाचित्भी ज्ञानमैं अज्ञातता नहीं । अज्ञातताके अभावतैं ज्ञानगोचर अनुव्यवसाय होवैहै । यह कथन असंगतहै । औ किसी पुरुषकूं ऐसा संदेह होवै नहीं । मेरेकूं घटका

ज्ञान हुआहै अथवा नहीं हुआ । जो घटका ज्ञान अज्ञात होवै तौ कदाचित् संदेहभी हुआ चाहिये । यातैं ज्ञान अज्ञात होवै नहीं । ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसाय होवैहै । यह कथन असंगतहै । औ जो ऐसैं कहैः—ज्ञानगोचर ज्ञान नहीं होवै तो " अयं घटः । घटमहं जानामि " इसरीतिसैं ज्ञानमैं विलक्षणताप्रतीति नहीं हुई चाहिये । काहेतैं न्यायमतमैं तो प्रथम ज्ञानका विषय घटहै, द्वितीयज्ञानका विषय घटज्ञानहै; यातैं विषयभेदतैं ज्ञानोंकी विलक्षणता संभवैहै । और स्वप्रकाश ज्ञानवादीके मतमैं ज्ञानका विषय ज्ञान होवै नहीं । दोनूं ज्ञानोंका विषय घट होनैतैं विषयभेदके अभावतैं विलक्षणप्रतीति नहीं हुई चाहिये । यह शंकाभी संभवै नहीं । जैसैं एकही घटका कदाचित् " अयं घटः " ऐसा ज्ञान होवैहै । कदाचित् " अनित्यो घटः " ऐसा ज्ञान होवैहै । तहां विषयके भेदविना विलक्षणज्ञान होवैहै । परंतु प्रथमज्ञानमैं घटकी अनित्यता भासै नहीं । औ द्वितीयज्ञानमैं घटकी अनित्यता भासैहै । तैसैं " अयं घटः " या ज्ञानमैं घटकी ज्ञातता भासै नहीं । औ " घटमहं जानामि " या ज्ञानमैं घटकी ज्ञातता भासैहै । ज्ञानजन्यप्रकटताकूं ज्ञातता कहैहैं । द्वितीयज्ञानका विषय घटवृत्ति ज्ञाततहै, घटका ज्ञान नहीं । इसीवास्तैं घटज्ञानसैं उत्तरकालमैं कदाचित् " घटमहं जानामि " ऐसा ज्ञान होवैहै; कदाचित् " ज्ञातो घटः " ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै । " ज्ञातो घटः " या प्रत्यक्षका विषय घटकी ज्ञातताहै । यह अर्थ भट्टकूं संमतहै औ अनुभवानुसारीहै । काहेतैंः—जैसैं " अनित्यो घटः " या कहनैतैं अनित्यपदार्थमैं विशेषण अनित्यत्वकी प्रतीति घटमैं सर्वकूं संमतहै । तैसैं " ज्ञातो घटः " या कहनैतैं ज्ञातपदार्थमैं विशेषणज्ञातत्वकी घटमैं प्रतीति सर्वानुभवसिद्धहै । " ज्ञातो घटः " इस ज्ञानके अवसरमैं " घटमहं जानामि " यह ज्ञान होवैहै । यातैं " घटमहं जानामि " यह ज्ञानभी घटकी ज्ञातताकूं विषय करैहै । इसरीतिसैं ज्ञानगोचर ज्ञान नहीं मानैं तौभी "अयं घटः, घटमहं जानामि" इसरीतिसैं वि-

लक्षण ज्ञान संभवैहै। यातैं अनुव्यवसायज्ञानका विषय ज्ञानहै। यह नैयायिकमत असंगतहै॥

मुरारिमिश्रके मतका खंडन ॥७८॥

तैसैं मुरारिमिश्रका मतभी या प्रसंगमैं नैयायिकमततुल्यहै यातैं असंगतहै। यद्यपि मुरारिमिश्रके मतमैं ज्ञानप्रकाशकअनुव्यवसायतैंही प्रमात्वका प्रकाश होवैहै। इतना न्यायमतसैं विशेषहै। तथापि यह विशेष अकिंचित्करहैः—काहेतैं अप्रकाशस्वभावज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवैहै। या अंशसैं न्यायके तुल्य होनेतैं असंगतहैः—

भट्टमतखंडन॥ ७९ ॥

तैसैं भट्टके मतहैं अनुमितिसैं ज्ञानका परोक्ष प्रकाश होवैहै। यह न्यायसैंभी असंगतहैः—काहेतैं तिसके मतमैंभी ज्ञानका प्रकाशक जो अनुमिति तासैं प्रमात्वका प्रकाश होवैहै। इतना अंश तौ न्यायसैं विलक्षण है सिद्धान्त अनुकूलहै। तथापि घटादिकविषयकूं अपरोक्षता करनैंवाले प्रत्यक्षज्ञानका अनुमितिरूप परोक्ष प्रकाश होवैहै। यह कथन हास्यका आस्पदहै॥

प्रभाकरमतका खंडन ॥ ८० ॥

तैसैं प्रभाकरकै मतमैंभी घटज्ञानादिक अपने प्रकाशमैं अनुव्यवसायकी अपेक्षा करै नहीं। इतनें अंशमैं सिद्धांतके अनुकूलहै औ प्रमात्वग्रहमैं ज्ञानग्राहकसामग्रीतैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं। इस अंशमैंभी सिद्धांतके अनुकूलहै। तथापि प्रभाकरमतभी श्रद्धायोग्य नहींः—काहेतैं सकलज्ञान स्वप्रकाशहैं औ त्रिपुटीविषयकहैं। केवल विषयगोचर कोई ज्ञान होवै नहीं। सारे ज्ञान "घटमहं जानामि" इसरीतिसैं त्रिपुटीगोचर होवैहै। "अयं घटः" इसरीतिसैं केवल विषयगोचर ज्ञान अप्रसिद्धहै। घटसैं इंद्रियका संबंध हुये घटका ज्ञान होवै सो घटकूं औ अपनैं स्वरूपकूं तथा अपनैं आश्रय आत्माकूं विषय करैहै। तैसैं घटका ज्ञानहीं अपनैं धर्मप्रमात्वकूं विषय करैहै। इसरीतिसैं घटका ज्ञान अपनैं प्रकाशमैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं। इतना अंश तो समीचीनहै। परंतु अपना प्रकाश

आप करैहै यह विरुद्धहै । एकक्रियाका जो कर्त्ता होवै सो कर्म होवै नहीं । यातैं प्रकाशका कर्त्ता आप औ प्रकाशका कर्मभी आपही यह कथनभी विरुद्धहै । औ सिद्धांतमैं तौ ज्ञान प्रकाशरूपहै यातैं उक्त-विरोध नहीं। इसरीतिसैं प्रकाशरूप ज्ञानकूं नहीं मानैं सो मत सकल अशुद्धहै। यातैं ज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवैहै यह नैयायिक-वचन असंगतहै ॥

स्वतःप्रामाण्यवादका अंगीकार । सिद्धांतमतमैं उक्तसंशय अनुपपत्तिरूपदोषका उद्धार ॥ ८१ ॥

औ ज्ञानग्रहकालमैं प्रमात्वका ग्रह होवै तौ संशयानुपपत्ति होवैहै । याका यह समाधानहैः—ज्ञानकी ग्राहकसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवैहै । परंतु दोषाभावसहित ज्ञानसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवैहै । यह आगे कहैंगे ॥ जहां संशय होवै तहां दोषाभाव नहीं । जो दोष नहीं होवै तौ संशय संभवै नहीं । काहेतैं संशयज्ञानभी भ्रमहै औ भ्रमकी उत्पत्तिमैं दोष हेतुहै । यातैं संशयस्थलमैं दोषाभाव संभवै नहीं । औ प्रमात्वज्ञानमैं दोषा-भाव हेतुहै । यातैं जहां संशय होवैहै तहां प्रमात्वका ज्ञान नहीं होवैहै । यातैं संशय संभवैहै । सिद्धांतमैं वृत्तिरूपज्ञानका साक्षीसैं प्रकाश होवैहै । यातैं ज्ञानग्राहकसामग्री साक्षीहै । तासैंही वृत्तिज्ञानके प्रमात्वका ग्रह हो-वैहै । परंतु किसी स्थानमैं ज्ञान तो प्रमा होवैहै । ऐसा विलक्षण दोष होवै जासैं अनिर्वचनीय भ्रमकी तो उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं ज्ञान तो प्रमा-हुया ताके प्रमात्वका प्रकाश साक्षी करै तिसमैं प्रतिबंधक होय जावै।यातैं ज्ञानग्राहक साक्षी तो है।प्रमात्वका ग्रहण होवै नहीं । इसकारणतैं उक्तलक्ष-णकी अव्याप्ति होवैहै। ज्ञानग्राहक सकलसामग्रीतैं प्रमात्वके ग्रहकूं स्वतो-ग्रह कहैहैं । उक्तस्थलमैं ज्ञानग्राहकसामग्रीतैं प्रमात्वग्रह हुया नहीं । यातैं अव्याप्तिहै । तथापि दोषाभावसहितज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्व-का ग्रह होवै ताकूं स्वतःप्रामाण्यग्रह कहैहैं। उक्त स्थलमैंदोषाभाव-सहित सामग्री नहीं । किंतु दोषसहित सामग्रीहै । यातैं उक्तस्थलमैं

लक्ष्य नहीं । या कारणतैं अव्याप्ति नहीं ॥ इसरीतिसैं ज्ञानके प्रमात्वका प्रकाशक तो दोषाभावसहित साक्षीहै । औ अप्रमात्वका ग्रह तो साक्षीसैं होवै नहीं। काहेतैं भ्रमका लक्षण दोषजन्यत्वहै। अथवा निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वहै। अथवा अधिष्ठानसैं विषमसत्तावालेका अवभासहै इसरीतिसैं दोषघटित निष्फलप्रवृत्तिघटित विषमसत्ताघटित भ्रमके लक्षणहैं। सो दोषादिकसाक्षीके विषय नहीं। यातैं दोषादिघटित अप्रमात्वभी साक्षीका विषय नहीं। यातैं अप्रमात्वका ज्ञान तो नैयायिककी नांई निष्फलप्रवृत्ति देखिकै होवैहै । तैंसैं अप्रमात्वकी उत्पत्तिभी ज्ञानकी सामान्यसामग्रीतैं होवै तो सकल ज्ञान अप्रमा हुये चाहिये । यातैं दोषसहित ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै । याका अर्थ यहहैः—दोषसहित नेत्रानुमानादिकनतैं अप्रमाज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै । अप्रमात्वविशिष्टभ्रमज्ञानकी उत्पत्तिही या प्रकरणमैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति कहियेहै । औ प्रमात्वकी उत्पत्ति तो ज्ञानकी सामान्यसामग्रीतैंही होवैहै ॥

न्यायमत (परतःप्रमाण्यवाद) मैं दोष ॥ ८२ ॥

औ जो प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं गुणकारण कहा सो संभवै नहीं । काहेतैं प्रत्यक्षस्थलमैं अधिक अवयवनतैं । इंद्रियका संयोग गुण कहा सो निरवयवरूपादिके प्रत्यक्षमैं संभवै नहीं औ अनुमितिमैं व्याप्यहेतुका पक्षमैं ज्ञान गुण कहा सोभी संभवै नहीं । काहेतैं जहां वन्हिसहित पर्वतमैं धूलिपटलमैं धूमभ्रम होयकै वन्हिका ज्ञान होवै तहां उक्त गुण तो नहीं है औ वह्निकी अनुमितिप्रमा होवैहै । यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं गुणकूं जनकता कहना संभवै नहीं । किंतु ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै ॥

औ जो ऐसैं कहैः— ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति मानैं तौ भ्रमस्थलमैंभी ज्ञानसामान्यसामग्री होनेतैं प्रमाज्ञान हुआ चाहिये । ताका यह साधनहैः—दोष होवै तहां प्रमाज्ञान होवै नहीं । यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं दोष प्रतिबंधकहै ॥ औ सकलकार्यकी उत्प-

त्तिमैं प्रतिबंधकाभाव हेतुहै । यातैं दोषाभावसहितज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै । इहां प्रमात्वकी उत्पत्ति कहनैसैं प्रमात्ववि-शिष्ट ज्ञानकी उत्पत्तिमैं तात्पर्यहै । यातैं प्रमात्वधर्मकी उत्पत्तिकथन असंगत नहीं । इसरीतिसैं दोषाभावसहित जो ज्ञानकी उत्पादक नेत्रादिरूपसामग्री तासैं प्रमाज्ञानकी उत्पत्ति होनैतैं प्रमात्वकी उत्प-त्ति स्वतः होवैहै ॥

यद्यपि ज्ञानसामान्यकी सामग्री इंद्रियअनुमानादिकहै । सामान्य-ज्ञानका कारण दोषाभाव नहीं औ प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं दोषाभावभी कारण कहा यातैं सामान्यसामग्रीतैं अधिककारणजन्य होनैतैं परतः-प्रामाण्यका अंगीकार हुआ ॥ तथापि ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं अधिकभावकी अपेक्षा होवै तौ परतःप्रामाण्य होवैहै । अभावरूप दोषाभावकी अपेक्षातैं परतःप्रामाण्य होवै नहीं । तैसैं ज्ञानकी ग्राहक सामग्री साक्षीहै । दोषाभावसहित साक्षीसैं ज्ञानप्रमात्वका ज्ञान होवैहै ॥ औ दोषसहित इंद्रियअनुमानादिरूपज्ञानकी उत्पादकसामग्रीतैं अ-प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै । ज्ञानसामान्यकी सामग्री इंद्रियअनुमानादि-कहैं तिनतैं दोषपरहै । यातैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति परतैं होवैहै । औ भ्रम होयकै प्रवृत्ति हुयें फलका लाभ नहीं होवै तब अप्रमात्वअनु-मितिज्ञान होवै सो अनुमानसैं होवैहै । औ ज्ञानग्राहकसामग्री साक्षी-सैं अनुमान भिन्नहै यातैं अप्रामाण्यग्रहभी परतैं होवैहै ॥ अनुमानका आकार यहहैः— " इदं जलज्ञानम्, अप्रमानिष्फलप्रवृत्तिजनकत्वात् । यत्र यत्र निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वं तत्र अप्रमात्वं यथा भ्रमान्तरे " इसरी-तिसैं ज्ञानकी उत्पत्तिकालमैंही साक्षीसैं ज्ञानके स्वरूपका प्रकाश होवैहै ॥ औ ज्ञानवृत्तिप्रमात्वका प्रकाश होवैहै ॥

अख्यातिवादीके वचनका परिहार ॥ ८३ ॥

निश्चयज्ञानका संशयज्ञानसैं विरोधहै । यातैं प्रमात्वका निश्चय हुआ प्रमात्वका संदेह होवै नहीं । यातैं भ्रमत्वसंदेहसैं निष्कंपप्रवृत्ति-

का अभाव होवैगा । यह अख्यातिवादीका वचन असंगतहै:—यद्यपि प्रमात्वसंशयका विरोधी प्रमात्वनिश्चयहै। भ्रमत्वसंशयका विरोधी प्रमात्वनिश्चय नहीं । काहेतैं समानविषयमैं संशय निश्चय विरोधि होवैहै। प्रमात्वनिश्चय औ भ्रमत्वसंशयके विषय प्रमात्व औ भ्रमत्व भिन्नहै यातैं अख्यातिवादीकथित वचन संगतहैं । तथापि जिस ज्ञानमैं प्रमात्वनिश्चय होवै तिस ज्ञानमैं भ्रमत्वका निश्चय औ भ्रमत्वका संदेह होवै नहीं। यह अनुभवसिद्धहै। यातैं भ्रमत्वसंदेहकाभी विरोधीहै। औ विचार करैं प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं । एकही पदार्थहै। काहेतैं "एतदज्ञानं प्रमा न वा" यह प्रमात्वसंशयका आकार है। यामैं विधिकोटि प्रमात्वहै। औ निषेधकोटि भ्रमत्वहै। काहेतैं ज्ञानमैं प्रमात्वका निषेध करैं भ्रमत्वही शेष रहैहैं। तैसैं "एतदज्ञानं भ्रमो न वा" यह भ्रमत्वसंशयका आकार है। यामैं विधिकोटि भ्रमत्वहै, निषेधकोटि प्रमात्वहै। ज्ञानमैं भ्रमत्वका निषेध करें प्रमात्वकाही शेष रहैहै । इसरीतिसैं दोनूं संशयमैं भ्रमत्व प्रमात्व दो कोटि समान हैं। यातैं प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशका भेद नहीं। तथापि जामैं विधिकोटि प्रमात्वहै सो प्रमात्वसंशय कहियेहै। जामैं विधिकोटि भ्रमत्वहै सो भ्रमत्वसंशय कहियेहै । या प्रकारतैं प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशयका विषय समान होनेतैं प्रमात्वनिश्चय हुआ। जैसैं प्रमात्वसंशय होवै नहीं। तैसैं भ्रमत्वसंशयभी होवै नहीं। यातैं सिद्धांतमतमैं भ्रमज्ञानकूं मानेंभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवैहै । अनिर्वचनीयका निश्चय भ्रमनिश्चयहै ॥

भ्रांतिज्ञानकी त्रिविधता औ वृत्तिभेदका उद्धार ॥ ८४ ॥

इसरीतिसैं संशय निश्चय भेदसैं भ्रमज्ञान दो प्रकारकाहै। तर्कज्ञानकी भ्रमनिश्चयके अंतर्भूतहै । काहेतैं व्याप्यके आरोपतैं व्यापकका आरोप तर्कहै। जैसैं "यदि वह्निर्न स्यात्तदा धूमोऽपि नस्यात्" ऐसा ज्ञान धूमवह्निसहितदेशमैं होवै सो तर्कहै । तहां वह्निका अभाव व्याप्य है। धूमका अ-

भाव व्यापकहै। वन्हिअभावके आरोपतैं धूमाभावका आरोप होवैहै। वन्हिधूमके होतें वन्हयभावका औ धूमाभावका ज्ञानहै। यातैं भ्रमहै बाध होतें भ्रम होवै ताकूं आरोप कहैहैं। इहां धूमवन्हिका सद्भावहै। यातैं तिनके अभावका बाधहै। ताकें होतेंभी पुरुषकी इच्छातैं वन्हिके अभावका औ धूमाभावका भ्रमज्ञान होवैहै। यातैं आरोप है ॥ इसरीतिसैं आरोपस्वरूप तर्कभी भ्रमके अंतर्भूतहै पृथक् नहीं। वृत्तिके प्रसिद्ध भेद कहे औ अवांतरभेद अनंतहैं ॥ ॥ इति श्रीमन्निश्चलदाससंज्ञकसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे वृत्तिभेदनिरूपणप्रसङ्गप्राप्तसत्ख्यात्यादिनिराकरणागताख्यातिनिराकरणप्रयोजकस्वतःप्रमात्वनिरूपणं नाम सप्तमः प्रकाशः ॥

अथ जीवेश्वरस्वरूपवृत्तिप्रयोजनसहितकल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नाम अष्टमप्रकाशः प्रारभ्यते ॥

अज्ञानविषै विचार। वृत्तिके प्रयोजन कहनेकी प्रतिज्ञा ॥ १ ॥

सप्तमप्रकाशमैं वृत्तिका स्वरूप कहा। वृत्तिका प्रयोजन कहनेकूं अष्टमप्रकाशका आरंभहै ॥ अज्ञानकी निवृत्ति मुख्य प्रयोजन वृत्तिका है। घटादिकअनात्माकारवृत्तिसैं घटादिकअवच्छिन्नचेतनस्थअज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। अखंडब्रह्माकारवृत्तिसैं निरवच्छिन्नचेतनस्थअज्ञानकी निवृत्ति होवैहै ॥

अज्ञानका आश्रय औ विषय ॥ २ ॥

वाचस्पतिके मतमैं वृत्तिसैं नाश्य अज्ञानका आश्रय जीवहै औ विषय ब्रह्महै। विवरणकारादिकनके मतमैं अज्ञानका आश्रय औ विषय शुद्धचेतनहै। जैसैं ज्ञानकृतघटादिकनका प्रकाश ज्ञानकी विषयता कहियेहै। तैसैं अज्ञानकृतस्वरूपका आच्छादनही अज्ञानकी विषयताहै। जीवभाव ईशभाव अज्ञानाधीनहैं। यातैं अज्ञानकृत जीव अज्ञानका आश्रय संभवै नहीं। इस अर्थके ज्ञानमैं उपयोगि प्रथम जीवईश्वरका स्वरूपनिरूपण करैंगे तिस ॥

अज्ञानका निरूपण ॥ ३ ॥

जीव ईश्वरके निरूपणमैं उपयोगि अज्ञानका निरूपण करैहैं । अज्ञान अविद्या, प्रकृति, माया, शक्ति, ये नाम एकही पदार्थके हैं । माया अविद्याका भेदवाद एकदेशीकाहै । नैयायिकादिक ज्ञानाभावकूंही अज्ञान कहैहैं । सिद्धांतमतमैं आवरणविक्षेपशक्तिवाला अनादिभावरूप अज्ञानपदार्थहै । विद्यासैं नाश्य होनेतैं अविद्या कहैहैं । प्रपंचका उपादान होनेतैं प्रकृति कहैहैं । दुर्घटकूंभी संपादन करै, यातैं माया कहैहै । स्वतंत्रताके अभावतैं शक्ति कहैहैं ॥

अज्ञानकी अनादिभावरूपतामैं शंका ॥ ४ ॥

यद्यपि अज्ञानकूं अनादिभावरूपताकथन संभवै नहीं । काहेतैं यह अद्वैतग्रंथनका लेखहै:—चेतनसैं भिन्न वा अभिन्न अज्ञानहै यह दोनूं पक्ष संभवै नहीं । काहेतैं " नेह नानास्ति किंचन " इत्यादिक श्रुतिवचनतैं चेतनसैं भिन्नका निषेधहै । औ जडचेतनका अभेद संभवै नहीं । औ भिन्नत्व अभिन्नत्वका परस्पर विरोध होनेतैं चेतनसैं भिन्नाभिन्न अज्ञानहै यह कथनभी संभवै नहीं । तैसैं अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिविरोधसैं अज्ञानकूं सत्स्वरूपता संभवै नहीं । प्रपंचकारणताके असंभवतैं तुच्छतास्वरूप असत्स्वरूपता संभवै नहीं । परस्परविरोधी धर्म एकमैं संभवै नहीं । यातैं सत् असत् उभयरूप कहना संभवै नहीं । तैसैं अज्ञानकूं सावयव मानैं तो न्यायमतमैं तो द्रव्यआरंभक उपादानकूं अवयव कहैहैं । सांख्यादिकमतमैं द्रव्यरूपपरिणामवाले उपादानकूं अवयव कहैहै । उपादानकूंही अवयव कहैं तो शब्दका उपादान आकाशभी शब्दका अवयव होवैगा । तैसैं अपनें गुणक्रियाके उपादानकारण घटादिकभी रूपादिक गुणनके औ चलनरूप क्रियाके अवयव होवैंगे । यातैं द्रव्यके उपादानकारणकूं अवयव कहैहैं । अन्यके उपादानकूं अवयव कहैं नहीं । अवयवजन्यकूं सावयव कहैहैं । जो अविद्या द्रव्य होवै तौ सावयवता संभवै। अविद्यामैं द्रव्यद्रव्यत्व संभवै नहीं । काहेतैं नित्य अनित्य भेदसैं द्रव्य

दो प्रकारका होवैहै । जो अविद्याकूं नित्यद्रव्यरूप मानै तौ सावयवत्व कथन असंगतहै:—तैसैं ज्ञानसैं अविद्याका नाश नहीं हुआ चाहिये । औ अनित्यद्रव्यरूप मानैं तौ ताके अवयवभी आत्मासैं भिन्न होनेतैं अनित्यही होवैंगे । औ अवयवके अवयवभी अनित्य होनेतैं अनवस्था होवैगी । औ अंत्यअवयवकूं परमाणुकी नांई औ प्रधानकी नांई नित्य मानैं तो अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिवचनका विरोध होवैगा । न्यायमतमैं नित्यपरमाणुका औ सांख्यमतमैं नित्यप्रधानका अंगीकार श्रुतिविरुद्धहै । इसरीतिसैं द्रव्यत्वके अभावतैं अज्ञानमैं सावयवत्व संभवै नहीं । तैसैं उपादानताके असंभवतैं निरवयव अज्ञानहै, यह कथनभी संभवै नहीं । सावयवही उपादानकारण होवैहै । औ न्यायमतमैं शब्दका उपादानकारण आकाश निरवयव मानाहै । सोभी " तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः " इस श्रुतिसैं विरुद्धहै । तैसैं द्व्यणुकका उपादानकारण परमाणु निरवयव मानाहै । सोभी निरवयव परमाणुके संयोगअसंभवादिदोषतैं सूत्रकारनैं शारीरकशास्त्रके द्वितीयाध्यायस्थ द्वितीयपादमैं निषेधकराहै यातैं प्रपंचके उपादानअज्ञानकूं निरवयवता संभवै नहीं । औ अज्ञानकूं प्रपंचकी उपादानता " मायां तु प्रकृतिं विद्यात् " इस श्रुतिमैं प्रसिद्धहै । माया अज्ञानका भेद नहीं । इसरीतिसैं अज्ञानमैं सावयवता अथवा निरवयवता संभवै नहीं । तैसैं परस्परविरुद्ध उभयरूपताभी संभवै नहीं । इसरीतिसैं ॥

किसी धर्मसैं अज्ञानका निरूपण अशक्य होनेतैं ताकूं अनिर्वचनीय कहैहैं । इसप्रकारका लेख बहुत ग्रंथनमैं है । यातैं अनिर्वचनीय अज्ञानकूं अनादिभावरूपताकथन संभवै नहीं । भावरूपता कहनेते सद्रूपता सिद्ध होवैहै । औ सद्रूपताका निषेध कियाहै ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ ९ ॥

तथापि जैसैं सत्‌विलक्षण अज्ञानहै । तैसैं असत्‌विलक्षणभीहै । यातैं अबाध्यत्वरूप सत्त्व तो अज्ञानमैं नहींहै, परंतु तुच्छरूपअसत्‌सैं विलक्-

णतारूप सत्वका अज्ञानमैं अंगीकारहै । इसीवास्तै सत्असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय अज्ञानहै । सर्वथा वचनके अगोचरकूं अनिर्वचनीय नहीं कहेहैं । किंतु पारमार्थिक सत्स्वरूप ब्रह्मसैं विलक्षण औ सर्वथा सत्तास्फूर्तिशून्यशशशृंगादिक असत्सैं विलक्षणही अनिर्वचनीयशब्दका पारिभाषिक अर्थहै । यातैं अनादिभावरूपताकथन संभवैहै । औ नैयायिकादिकनके मतमैं जैसैं निषेधमुखप्रतीतिका विषय ज्ञानाभावरूप अज्ञान है । तैसा अद्वैतग्रंथनमैं अज्ञानशब्दका अर्थ नहीं है । किंतु ज्ञानबाध्य रज्जुसर्पादिक जैसैं विधिमुखप्रतीतिके विषयहैं । तैसैं ज्ञानसैं निवर्तनीय विधिमुखप्रतीतिका गोचर अज्ञानहै । अज्ञानशब्दमैं अकारका विरोधी अर्थहै । यह पूर्व कहाहै । यातैं अज्ञानमैं भावरूपता कथन संभवै है ॥ औ प्राचीन आचार्य विवरणकारादिकोंनैं अत्यंत उद्घोषतैं प्रकाशविरोधी अंधकारकूं भावरूपता प्रतिपादन करिकै ज्ञानविरोधी अज्ञानकूं भावरूपताही प्रतिपादन करीहै । यातैं अज्ञानकूं भावरूपता श्रवण करें उत्कर्ण होवैतैं अल्पश्रुतहैं । इसरीतिसैं भावरूप अज्ञान है । औ उत्पत्तिरहित होनेतैं अनादिहैं । औ घटकी नांई अवयवसमवेतरूप सावयव नहींहै । तथापि अंधकारकी नांई सांशहै ॥

जीव औ ईश्वर विषै विचार । माया अविद्यापूर्वक जीव-ईश्वरके रूपमैं चारी पक्ष ॥ ६ ॥

शुद्धचेतनके आश्रित मूलप्रकृतिमैं चेतनका प्रतिबिंब ईश्वरहै।आवरणशक्तिविशिष्ट मूलप्रकृतिके अंशनकूं अविद्या कहेहैं । अविद्यारूप अनंतअंशनमैं चेतनके अनंतप्रतिबिंब जीव कहियेहैं । औ तत्वविवेकग्रंथनमैं इसरीतिसैं जीवईश्वरका निरूपणहैः—जगत्का मूलभूतप्रकृतिके दो रूप कल्पितहैं । इसीवास्तैं मूलप्रकृतिके प्रसंगमैं "माया चाविद्या च स्वयमेव भवति" यह श्रुति है । "स्वयमेव" कहिये जगत्का मूलप्रकृति आपही मायारूप अविद्यारूप होवैहै । शुद्धसत्वप्रधान मायाहै । मलिनसत्ववाली अविद्याहै । रजोगुण तमोगुणसैं अभिभूत सत्वकूं मलिनसत्व कहेहैं । जासैं

रजोगुण तमोगुण अभिभूत होवै, ताकूं शुद्धसत्व कहैहैं। तिरस्कृतकूं अभिभूत कहैहैं। उक्त रूपमायामैं प्रतिबिंब ईश्वरहै, औ अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवहै । ईश्वरकी उपाधि मायाका सत्व शुद्ध होनेतैं ईश्वर सर्वज्ञहै । जीवकी उपाधि अविद्याका सत्व मलिनहै, यातैं जीव अल्पज्ञहै। कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैंः—उक्तश्रुतिमैं दो रूपवाली प्रकृति कहीहै । तामैं यह हेतुहैः—विक्षेपशक्तिकी प्रधानतासैं माया कहैहैं । आवरणशक्तिकी प्रधानतासैं अविद्या कहैहैं । ईश्वरकी उपाधि मायामैं आवरणशक्ति नहीं। यातैं मायामैं प्रतिबिंब ईश्वरकूं अज्ञता नहीं । औ आवरणशक्तिमती अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवकूं अज्ञताहै ॥ औ संक्षेपशारीरकमैं यह कहा हैः—जीवकी उपाधि कार्यहै । औ ईश्वरकी उपाधि कारणहै । इस प्रकारसैं श्रुति कहाहै । यातैं मायामैं प्रतिबिंब ईश्वरहै । अंतःकरणमैं प्रतिबिंब जीवहै । या प्रसंगमैं प्रतिबिंबकूं जीव कहैं ॥ अथवा ईश्वर कहैं । तहां केवल प्रतिबिंबकूं जीवता अथवा ईश्वरता इष्ट नहींहै । किंतु प्रतिबिंबत्वविशिष्ट चेतनकूं जीवता औ ईश्वरता जाननी । काहेतैं केवल प्रतिबिंबकूं जीवता ईश्वरता होवै तौ जीववाचक पद औ ईश्वरवाचक पदमैं भागत्यागलक्षणाका असंभव होवैगा । औ परमार्थ तो यहहैः—पूर्व उक्त चारों पक्षनमैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद है । या वादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहींहै । किंतु ग्रीवास्थ मुखमैंही प्रतिबिंबत्वप्रतीति होवैहै । सो भ्रमरूपप्रतीति होवैहै । यातैं प्रतिबिंबत्वधर्म तो मिथ्याहै । औ स्वरूपसैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं । यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा ॥

उक्त चारि पक्षनमैं मुक्तजीवनका शुद्धब्रह्मसैं अभेद ॥ ७ ॥

उक्त चारूंपक्षनमैं जीव ईश्वर दोनूंकूं प्रतिबिंब मानैहैं। यातैं मुक्तजीवनका प्राप्य शुद्ध ब्रह्महै । ईश्वर नहीं । काहेतैं एक उपाधिका विनाश होवै तब तिस उपाधिके प्रतिबिंबका अपरप्रतिबिंबसैं अभेद होवै नहीं । किंतु अपनें बिंबसैं अभेद होवैहै । ईश्वरभी प्रतिबिंबहै । यातैं जीवरूप

प्रतिबिंबकी उपाधिका नाश हुयें प्रतिबिंबरूप ईश्वरसैं अभेद संभवै नहीं।
किंतु बिंबभूत शुद्धब्रह्मसैंही अभेद होवैहै ॥

उक्त चारि पक्षनमैं षट् अनादि पदार्थ कहिके त्रिविधचेतनका अंगीकार ॥ ८ ॥

इसरीतिसैं उक्तपक्षनमैं जीव ईश शुद्धब्रह्मभेदसैं त्रिविधचेतनका अंगीकारहै। इसीवास्तै वार्तिकमैं षट्पदार्थअनादि कहेहैं:—शुद्धचेतन १ ईश्वरचेतन २ जीवचेतन ३ अविद्या ४ अविद्याचेतनका परस्पर संबंध ५ औ इन पांचूका परस्पर भेद ६ ये षट्पदार्थ उत्पत्तिशून्य होनेतैं अनादिहैं। इनमैं चेतनके तीनिही भेद कहेहैं औ ॥

चित्रदीपमें विद्यारण्यस्वामीउक्तचेतनके चारि भेद ॥ ९ ॥

चित्रदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं चेतनके चारिभेद कहेहैं । तथापि जैसैं घटाकाश, महाकाश, जलाकाश, मेघाकाश भेदसैं आकाशके चारि भेदहैं । घटावच्छिन्न आकाशकूं घटाकाश कहेहैं । निरवच्छिन्न आकाशकूं महाकाश कहेहैं । घटजलमैं आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहेहैं । मेघमैं जलके सूक्ष्मकणहैं। तिनमैं आकाशके प्रतिबिंबकूं मेघाकाश कहेहैं। तैसैं चेतनभी कूटस्थ १ ब्रह्म २ जीव ३ ईश्वर ४ भेदसैं चारिप्रकारकाहै । स्थूलसूक्ष्म शरीरके अधिष्ठानचेतनकूं कूटस्थ कहेहैं। निरवच्छिन्नचेतनकूं ब्रह्म कहेहैं। शरीररूप घटमैं बुद्धिस्वरूप जलमैं जो चेतनका प्रतिबिंब ताकूं जीव कहेहैं। मायारूप अंधकारस्थ जो जलकणसमान बुद्धिवासना तिनमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहेहैं । सुषुप्तिअवस्थामैं जो बुद्धिकी सूक्ष्म अवस्था ताकूं वासना कहेहैं। केवल बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहैं तौ बुद्धिवासनाकूं अनंतता होनेतैं ईश्वरभी अनंत हुये चाहियें । यातैं बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहेहैं। इसरीतिसैं विज्ञानमयकोश जीवहै। जाग्रत्स्वप्न अवस्थामैं स्थूल अंतःकरणकूं विज्ञान कहेहैं। तामैं प्रतिबिंबकूं विज्ञानमय कहेहैं । "कर्त्ता, भोक्ता, स्थूल, दुर्बल, काण, बधिर मैंहूं" इसरीतिसैं विशेषविज्ञान-

वाला जीवहै । औ सुषुप्तिअवस्थामैं बुद्धिवासनासहित अज्ञानरूप आनंद-मयकोश ईश्वरहै । आनंदमयकोशकूं ईश्वरता मांडूक्यउपनिषत्मैं प्रसिद्धहै । इसरीतिसैं चेतनके चारि भेद चित्रदीपमैं कहेहैं ॥

बिंबप्रतिबिंबवादसैं आभासवादका भेद ॥ १० ॥

औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं प्रतिबिंब मिथ्याहै । पूर्वउक्त पक्षनमैं बिंबप्रतिबिंबका अभेद होनेतैं प्रतिबिंब सत्यहै एकही पदार्थमैं उपाधिके सन्निधानतैं बिंबत्व प्रतिबिंबत्व भ्रम होवैहै । औ बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंबहै । औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं दर्पणादिकनमैं बिंबके सन्नि-धानतैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवैहै । यातैं जीव ईश्व-रका स्वरूप मिथ्याहै ॥

आभासवादीकी रीतिसैं जीव ब्रह्मके अभेदके वाक्यनमैं बाधसामानाधिकरण्य ॥ ११ ॥

जीवका ब्रह्मसैं अभेदप्रतिपादक वाक्यनमैं बाधसमानाधिकरणहै । अभेदसमानाधिकरण नहींहै । जैसैं पुरुषमैं स्थाणुभ्रम होयके पुरुषका ज्ञान हुयें " यह स्थाणु पुरुषहै " इसरीतिसैं पुरुषतैं अथवा स्थाणुका अभेद कहैं तहां स्थाणुके अभाववाला पुरुषहै । अथवा स्थाणुका अभाव पुरुषहै । इसरीतिसैं बोध होवैहै । अधिकरणतैं अभाव पृथक्है । या मतमैं स्थाणुके अभाववाला पुरुषहै । ऐसा बोध होवैहै । कल्पितका अभाव अधिष्ठानरू-पहै । या मतमैं स्थाणुका अभाव पुरुषहै । ऐसा बोध होवैहै । इसरीतिसैं अयंशब्दका अर्थ " जीव ब्रह्महै " या वाक्यका जीवके अभाववाला ब्रह्महै, यह अर्थहै । अथवा जीवका अभाव ब्रह्महै, यह अर्थहै । अभावकूं बाध कहेहैं । उक्तरीतिसैं कल्पितपदार्थका सत्यअधिष्ठानसैं अभेद कहैं, तहां बाधसमानाधिकरणही विवक्षित होवैहै ॥

कूटस्थ औ ब्रह्मके अभेदस्थलमैं अभेद (मुख्य) समानाधिकरण ॥ १२ ॥

जहां कूटस्थका ब्रह्मसैं अभेद कहै, तहां अभेदसमानाधिकरणहै । जैसैं

जलाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं, तहां जलाकाशका महाकाशतैं बाधसमानाधिकरणहै औ घटाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं, तहां अभेदसमानाधिकरणहै। याहीकूं मुख्यसमानाधिकरण कहैहैं। इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं जीवका ब्रह्मसैं बाधसमानाधिकरणही लिखाहै॥

उक्त बाधसमानाधिकरणमैं विवरणकारके वचनतैं अविरोध॥ १३॥

औ विवरणग्रंथमैं "अहं ब्रह्मास्मि" या वाक्यमैं अहंशब्दके अर्थ जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण लिखाहै। औ बाधसमानाधिकरणका महावाक्यनमैं खंडन लिखाहै। ताका समाधान विद्यारण्यस्वामीनैं इसरीतिसैं लिखाहैः—बुद्धिस्थ चिदाभास औ कूटस्थका अन्योन्याध्यासहै। काहेतैं चिदाभासविशिष्टबुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थहै। अहंप्रतीतिका विषय चिदाभासविशिष्टबुद्धिहै, औ स्वयंप्रतीतिका विषय कूटस्थहै। "अहं स्वयं जानामि। त्वं स्वयं जानासि। स स्वयं जानाति" इसरीतिसैं सकलप्रतीतिमैं अनुगत स्वयंशब्दका अर्थहै। औ अहं त्वं आदिक शब्दनका अर्थ व्यभिचारीहै। स्वयंशब्दका अर्थ कूटस्थ सारै अनुगत होनेतैं अधिष्ठानहै। औ अहं त्वं आदिक शब्दनका अर्थ चिदाभासविशिष्टबुद्धिरूप जीव व्यभिचारी होनेतैं अध्यस्तहै। कूटस्थमैं जीवका स्वरूपाध्यासहै, औ जीवमैं कूटस्थका संबंधाध्यासहै। यातैं कूटस्थजीवका अन्योन्याध्यास होनेतैं परस्पर विवेक होवै नहीं यातैं ब्रह्मसैं कूटस्थके मुख्यसमानाधिकरणका जीवमैं व्यवहार करैहैं। औ जीवमैं कूटस्थ धर्मके आरोपविना मिथ्या जीवका सत्यब्रह्मसैं मुख्यसमानाधिकरण संभवै नहीं। यातैं स्वाश्रय अंतःकरणका अधिष्ठान जो कूटस्थ, ताके धर्मकी विवक्षासैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण कहाहै। इसरीतिसैं चित्रदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं विवरणकारके वचनतैं अविरोधका प्रकार लिखाहै॥

विवरणउक्त जीवका ब्रह्मसैं मुख्यसमानाधिकरण औ विद्यारण्यके वाक्यकी प्रौढिवादता ॥ १४ ॥

औ विवरणग्रंथकूं पूर्व उत्तर देखैं यह प्रकार संभवै नहीं । काहेतैं विवरणग्रंथमैं बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब मानाहैं । यातैं ताके मतमैं प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व तो मिथ्याहै, औ प्रतिबिंबरूप जीवका स्वरूप मिथ्या नहीं; किंतु ताका स्वरूप सत्यहै । यातैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण संभवैहै । औ विद्यारण्यस्वामीनैं जो विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय कहा सो प्रौढिवादसैं कहाहै । तथाहिः—प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानें जीवमैं कूटस्थत्वविवक्षातैं महावाक्यनमैं विवरणउक्त मुख्यसमानाधिकरण संभवैहै यातैं मुख्य समानाधिकरणकी अनुपपत्तिसैं प्रतिबिंबकूं सत्यत्व अंगीकरणीय नहीं इस प्रौढिवादसैं विद्यारण्यस्वामीनैं उक्त अभिप्राय विवरणका लिखाहै औ विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय हैनहीं । प्रौढि कहिये उत्कर्षसैं जो वाद कहिये कथन, ताकूं प्रौढिवाद कहैहैं । प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानिकै महावाक्यनमैं मुख्य समानाधिकरणभी प्रतिपादन करिसकैहै । इसरीतिसैं अपना उत्कर्ष बोधन कियाहै॥

विद्यारण्यउक्त चेतनके चारि भेदका अनुवाद ॥ १५ ॥

इसरीतिसैं अंतःकरणमैं आभास जीवहै सो विज्ञानमयकोशरूपहै । बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं आभास ईश्वर है सो आनंदमयकोशरूपहै । दोनूंका स्वरूप मिथ्याहै कूटस्थ औ जीवका अन्योन्याध्यासहै, औ ब्रह्मचेतन ईश्वरका अन्योन्याध्यासहै । यातैं जीवमैं कूटस्थधर्मनके आरोपतैं कहूं पारमार्थिक ब्रह्मता कहीहै । तैसैं ईश्वरमैं अध्यासिक ब्रह्मत्वकी विवक्षातैं कहूं वेदांतवेद्यत्वादिक धर्म कहैहैं । यातैं चेतनके चारि भेदहैं, यह प्रक्रिया चित्रदीपमैं कहीहै । परंतु ॥

विद्यारण्यस्वामीउक्तबुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकी ईश्वरताका खंडन ॥ १६ ॥

बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरता संभवै नहीं । तैसैं आनंदमयको-

शकूं ईश्वरताकथनभी संभवै नहीं । तथाहि:—बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै ताकूं यह पूछा चाहिये । ईश्वरभावकी उपाधि केवल अज्ञानहै अथवा वासनासहित अज्ञानहै अथवा केवल वासनाहै? जो प्रथम पक्ष कहै तौ बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरता-कथनसैं विरोध होवैगा । जो द्वितीय पक्ष कहै तौ केवल अज्ञानकूंही ईश्वरभावकी उपाधि मानना चाहिये । बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानकूं ईश्व-रकी उपाधि कहना निष्फलहै । जो विद्यारण्यस्वामीका भक्त इसरीतिसैं कहै, केवल अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि मानैं तौ ईश्वरमैं सर्वज्ञता सिद्ध होवै नहीं । यातैं सर्वज्ञताके लाभ अर्थ बुद्धिवासनाभी अज्ञानकी विशे-षण मानीहै । यह कथनभी असंगतहै । काहेतैं अज्ञानस्थ सत्वअंशकी सर्वगोचरवृत्तिसैंही सर्वज्ञताका लाभ होनेतैं बुद्धिवासनाकूं अज्ञानकी विशेषणता मानना निष्फलहै । औ अज्ञानस्थ सत्वअंशकी वृत्तिसैंही सर्वज्ञता संभवैहै, बुद्धिवासनातैं सर्वज्ञतासिद्ध होवै नहीं । काहेतैं एक एक बुद्धिवासनाकूं तो निखिलपदार्थगोचरता संभवै नहीं । सर्वज्ञतालाभके अर्थ सकलवासनाकूं अज्ञानविशेषणता माना चाहिये सो प्रलयकालविना एककालमैं सर्ववासनाका सद्भाव संभवै नहीं । यातैं सर्वज्ञताकी सिद्धि वास-नातैं होवै नहीं । इसरीतिसैं धीवासनासहित अज्ञान ईश्वरकी उपाधिहै, यह द्वितीयपक्षभी संभवै नहीं । जो केवल वासना ईश्वरकी उपाधिहै; यह तृतीयपक्ष कहै तथापि यह पूछ्या चाहियेः—एकएकवासनामैं प्रतिबिंब ईश्वरहै? अथवा सकलवासनामैं एक प्रतिबिंब ईश्वरहै । जो प्रथमपक्ष कहै तौ जीवजीवकी बुद्धिकी वासना अनंत होनेतैं तिनमैं प्रतिबिंब ईश्वरभी अनंत होवैंगे । और एकएकवासनाकूं अल्पगोचर होनेतैं तिनमैं प्रति-बिंबरूप अनंत ईश्वरभी अल्पज्ञही होवैंगे । सर्व वासनामैं एक प्रतिबिंब मानैं तौ सर्व वासना प्रलयविना युगपत् होवै नहीं । औ अनेक उपाधिमैं अनेकही प्रतिबिंब होवैहैं । यातैं सर्व वासनामैं एक प्रतिबिंब संभवै नहीं।

इसरीतिसैं केवल अज्ञानही ईश्वरकी उपाधिहै । विद्यारण्यस्वामीनैं चित्रदीपमैं वासनाका निष्फल अनुसरण कराहै । तैसैं ॥

विद्यारण्यस्वामीउक्तआनंदमयकोशकी ईश्वरताका खंडन ॥ १७ ॥

आनंदमयकोशकूं ईश्वरताकथनभी असंगतहै । काहेतैं, जाग्रत्स्वप्नमैं स्थूलावस्थाविशिष्ट प्रतिबिंबसहित अंतःकरणकूं विज्ञानमय कहैहै । विज्ञानमय जीवही सुषुप्तिकालमैं सूक्ष्मरूपतैं विलीन हुआ आनंदमय कहियेहै। तिसकूं ईश्वर मानैं तौ जाग्रत्स्वप्नमैं अंतःकरणकी विलीन अवस्थारूप आनंदमयके अभावतैं ईश्वरकाभी अभाव हुआ चाहिये । अनंत पुरुषनकी सुषुप्तिमैं अनंत ईश्वर हुये चाहिये । जीवके पंचकोष सकल ग्रंथकारोंनैं कहैहैं, औ पंचकोशविवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं आपभी जीवके पंचकोश कहेहैं । आनंदमयकूं ईश्वरता मानैं सकल वचन असंगत होवैंगे यातैं आनंदमयकूं ईश्वरता संभवै नहीं । औ ॥

मांडूक्यउपनिषत्उक्त आनंदमयकी सर्वज्ञता-आदिकका अभिप्राय ॥ १८ ॥

मांडूक्यउपनिषतमैं आनंदमयकूं सर्वज्ञता सर्वेश्वरता कहिहै, तासैंभी आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्धहोवै नहीं । काहेतैं मांडूक्यमैं यह अर्थहैः—विश्व तैजस प्राज्ञ भेदसैं जीवके तीनि स्वरूपहैं । विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृतभेदसैं ईश्वरकेभी तीनिभेदहैं। यद्यपि हिरण्यगर्भकूं जीवता सकल--उपनिषत्मैं प्रसिद्धहै हिरण्यगर्भरूपकी प्राप्तिकी हेतु उपासना उपनिषत्मैं प्रसिद्धहै । औ उपनिषद्उपासनाकर्त्ता जीवही कल्पांतरमैं हिरण्यगर्भ पदवीकूं प्राप्त होवैहै । तैसैं विराट्भावकी प्राप्तिकी उपासनातैं कल्पांतरमैं जीवकूंही विराट्रूपकी प्राप्ति होवैहै । औ हिरण्यगर्भके ऐश्वर्यतैं विराट्का ऐश्वर्य न्यूनहै औ ईश्वरका ऐश्वर्य सर्वसैं उत्कृष्टहै; तामैं अपकृष्ट ऐश्वर्य संभवै नहीं । तैसैं हिरण्यगर्भका पुत्र विराट् होवैहै, ताकूं क्षुधा पिपासाकी बाधा होवैहै, यह गाथा पुराणमैं प्रसिद्धहै यातैं हिरण्यगर्भ औ विराट्कूं ईश्वरताकथन संभवै नहीं । तथापि सत्यलोकवासी

सूक्ष्म समष्टिका अभिमानी सुखभोक्ता हिरण्यगर्भ तो जीवहै, औ स्थूल समष्टिका अभिमानी विराट् जीवहै औ सूक्ष्म प्रपंचका प्रेरक अंतर्यामीभी हिरण्यगर्भ शब्दका अर्थहै । तैसैं स्थूलप्रपंचका प्रेरक अंतर्यामी विराट्शब्दका अर्थहै । चेतनप्रतिबिंबगर्भ अज्ञानरूप अव्याकृतही सूक्ष्मसृष्टिकालमैं ताका प्रेरक होवै, तब हिरण्यगर्भसंज्ञक होवैहै । स्थूल सृष्टिकालमैं ताका प्रेरक होवै, तब विराट्संज्ञक होवैहै । इसरीतिसैं जीवमैं औ ईश्वरमैं हिरण्यगर्भशब्दकी औ विराट्शब्दकी प्रवृत्ति होवैहै परंतु सूक्ष्मस्थूलके अभिमानी जीवमैं तौ हिरण्यगर्भशब्द औ विराट्शब्दकी शक्तिवृत्तिहै औ द्विविध प्रपंचके प्रेरक ईश्वरमैं तिन शब्दनकी गौणीवृत्तिहै । जैसैं जीवरूप हिरण्यगर्भका औ विराट्का स्वीयतासंबंध सूक्ष्मस्थूलप्रपचसैंहै; तैसैं ईश्वरकाभी सूक्ष्मस्थूलप्रपंचसैं प्रेर्यतासंबंधहै; यातैं सूक्ष्मसृष्टिसंबंधित्वरूप हिरण्यगर्भवृत्ति गुणके योगतैं ईश्वरमैं हिरण्यगर्भशब्दकी गौणीवृत्तिहै । तैसैं स्थूलसृष्टिसंबंधित्वरूप विराट्वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमैं विराट्शब्दकी गौणीवृत्तिहै । इसरीतिसैं हिरण्यगर्भ विराट्शब्दके जीवईश्वर दोनूं अर्थहैं । जिस प्रसंगमैं जो अर्थ संभवै ताका ग्रहण करै। औ गुरुसंप्रदायविना वेदांतग्रंथकूं अवलोकन करैं तिनकूं पूर्वउक्त व्यवस्थाका ज्ञान होवै नहीं, यातैं हिरण्यगर्भ विराट्शब्दनतैं कहूं जीवका कहूं ईश्वरका संभव देखिके मोहकूं प्राप्त होवैहैं ॥ मांडूक्यउपनिषत्मैं त्रिविध जीवनकात्रिविध ईश्वरतैं अभेदचिंतन लिखाहै । जिस मंदबुद्धिपुरुषकूं महावाक्यविचारतैं तत्वसाक्षात्कार होवै नहीं ताकूं प्रणवचिंतन मांडूक्यमैं कहाहै । ताका प्रकार विचारसागरके पंचमतरंगमैं स्पष्टहै । तहां विश्वविराट्का औ तैजसहिरण्यगर्भका तथा प्राज्ञ ईश्वरका अभेदचिंतन लिखाहै । यातैं ईश्वरके धर्म सर्वज्ञतादिक प्राज्ञरूप आनंदमयमैं अभेदचिंतनके अर्थ कहेहैं औ आनंदमयकूं ईश्वरताविवक्षासैं नहीं कहे । जैसैं विश्वविराट्के अभेद चिंतनके अर्थ वैश्वानरके उनीस मुख कहेहैं, चतुर्दश त्रिपुटी औ पंचप्राण ये उनीस विश्वके भोग साधन होनेतैं विश्वक

मुखहैं। औ वैश्वानर ईश्वरहै; ताकूं भोग होवै नहीं; यातैं विश्वविराट्कै अभेद चिंतनके अर्थही विश्वके भोगसाधनपदार्थनकूं वैश्वानरकी भोगसाधनता कहीहै । विराट्कूं वैश्वानर कहेहैं । मांडूक्यवचनका अभेदचिंतनमैं तात्पर्यहै, वस्तुके स्वरूपके अनुसारही चिंतन होवैहै । यह नियम नहींहै । किंतु अन्यरूपतैं भी चिंतन होवैहै । यह अर्थभी विचारसागरमैं स्पष्टहै ॥ यातैं मांडूक्यवचनतैं आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं ॥

आनंदमयकी ईश्वरतामैं विद्यारण्यस्वामीके तात्पर्यका अभाव ॥ १९ ॥

औ विद्यारण्यस्वामीनैंभी ब्रह्मानंदनाम ग्रंथनमैं " जीवकी अवस्थाविशेष आनंदमयकोशहै " यह लिखाहै। तहां यह प्रसंगहै:—जाग्रत्स्वप्नमैं भोग देनेवाले कर्मसमुदायका नाश हुयें निद्रारूपतैं विलीन अंतःकरणका भोग देनेवाले कर्मके वशतैं घनीभाव होवैहै ताकूं विज्ञानमय कहैहैं । सोई विज्ञानमय सुषुप्तिमैं विलीन अवस्थावाला अंतःकरणरूप उपाधिके संबंधतैं आनंदमय कहियेहैं । इसरीतिसैं विज्ञानमयकी अवस्थाविशेषही आनंदमय कहाहै। यातैं विद्यारण्यस्वामीकूंभी आनंदमयकोशमैं जीवत्वही इष्टहै ॥ यद्यपि विलक्षण लेख देखिकै औ परंपरावचनमैं परंपरातैं यह कहैहैं । पांचविवेक औ पांचदीप तो विद्यारण्यकृतहैं, औ पांच आनंद भारतीतीर्थकृतहैं । तथापि एकही ग्रंथमैं पूर्व उत्तरका विरोध संभवै नहीं ॥ यातैं पंचदशीग्रंथमैं आनंदमयकूं ईश्वरता विवक्षित नहीं । औ चित्रदीपमैं तिसकूं ईश्वरता कहीहै, सो मांडूक्यवचनकी नांई चिंतनीय ईश्वराभेदमैं तात्पर्यसैं कहीहै; आनंदमयकूं ईश्वरतामैं विद्यारण्यस्वामीका तात्पर्य नहीं । इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं चेतनके चारिभेद चित्रदीपमैं कहैहैं ॥ तथापि ॥

चेतनके तीनिभेदका विद्यारण्यस्वामीसहित सर्वकूं स्वीकार ॥ २० ॥

दृग्दृश्यविवेकनामग्रंथमैं विद्यारण्यस्वामीनैं कूटस्थका जीवमैं अंत-

र्भाव लिखाहै। तथापि पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं जीव तीनिप्रकारकाहै। स्थूलसूक्ष्म देहद्वयअवच्छिन्न कूटस्थचेतन पारमार्थिक जीवहै, तिसका ब्रह्मसैं मुख्य अभेदहैं। मायासैं आवृत कूटस्थमैं कल्पित अंतःकरणमैं चिदाभासहै, सो देहद्वयमैं अभिमानकर्ता व्यावहारिक जीवहै। ब्रह्मज्ञानसैं पूर्व ताका बाध होवै नहीं, यातैं व्यावहारिकहै निद्रारूप मायासैं आवृतव्यावहारिक जीवरूपअधिष्ठानमैं कल्पित प्रातिभासिक जीवहै। स्वप्नअवस्थामैं प्रातिभासिक प्रपंचका अहंममाभिमानी प्रातिभासिक जीवहै। ब्रह्मज्ञानसैं विनाही जाग्रत्प्रपंचके बोधसैं प्रातिभासिक प्रपंचकी निवृत्तिकालमैं व्यावहारिक जीवकें बोधसैं प्रातिभासिक जीवकी निवृत्ति होवैहै। इसरीतिसैं कूटस्थका जीवमैं अंतर्भावहै। यातैं जीवईश्वर शुद्धचेतनभेदसैं त्रिविधचेतनहै। यही पक्ष सर्वकूं संमतहै। औ वार्तिकवचनके अनुकूलहै॥

जीवका मोक्षदशामैं उक्तपक्षनविषै शुद्धब्रह्मसैं औ विवरणपक्षविषै ईश्वरसैं अभेद ॥ २१ ॥

पूर्वउक्तसकलपक्षमैं जीवकी नांई ईश्वरभी प्रतिबिंबरूपहै, यातैं ईश्वरतैं मोक्षदशामैं जीवका अभेद इनके मतमैं होवै नहीं। काहेतैं उपाधिके अपसरणतैं एक प्रतिबिंबका अन्यप्रतिबिंबसैं अभेद अनुभवगोचर नहीं। किंतु बिंबसैंही अभेद होवैहै। तैसैं शुद्धचेतनसैंही प्रतिबिंबरूप जीवका मोक्षमैं अभेद होवैहै। औ विवरणकारके मतमैं बिंबचेतन ईश्वरहै। ताके मतमैं ईश्वरसैंही जीवका अभेद होवैहै॥

वेदांतके सिद्धांतमैं प्रक्रियाके भेद। विवरणकारके मतमैं अज्ञानविषै प्रतिबिंबजीव औ बिंबईश्वरका निरूपण ॥ २२ ॥

विवरणकारके मतमैं जीवईश्वरकी उपाधि एकही अज्ञानहै। अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीवहै। बिंब ईश्वरहै। जहां दर्पणमैं मुखका प्रतिबिंब प्रतीत

होवै तहां दर्पणमैं मुखकी छाया नहीं। औ दर्पणमैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति नहीं। तैसैं व्यावहारिक प्रतिबिंबकीभी उत्पत्ति नहीं। किंतु दर्पणगोचरचाक्षुषवृत्ति दर्पणसैं प्रतिहत होयके ग्रीवास्थमुखकूंही विषय करैहै। इसरीतिसैं ग्रीवास्थमुखमैंही बिंबप्रतिबिंबभाव प्रतीत होवैहै। सो ग्रीवास्थमुख सत्यहै। यातैं बिंबप्रतिबिंबका स्वरूपभी ग्रीवास्थमुखरूप होनेतैं सत्यहैं। परंतु ग्रीवास्थमुखमैं बिंबत्वप्रतिबिंबत्व धर्म मिथ्याहैं। अनिर्वचनीय मिथ्या बिंबत्वप्रतिबिंबत्वका अधिष्ठान मुखहै। इसरीतिसैं बिंबकी नांई प्रतिबिंबकाभी स्वरूप सत्य होनेतैं दर्पणस्थानी अज्ञानके सन्निधानसैं शुद्धचेतनमैं बिंबस्थानी ईश्वरकी नांई प्रतिबिंबस्थानी जीवकाभी स्वरूप सत्यहै। यातैं महावाक्यनमैं मुख्यसमानाधिकरण संभवैहै। परंतु बिंबत्वरूप ईश्वरत्व औ प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व दोनूं धर्म मिथ्याहैं, तिनका अधिष्ठान शुद्धचेतनहै। यद्यपि उक्तरीतिसैं जीव ईश्वरकी उपाधि एक अज्ञान हैं। यातैं दोनूंकूं अज्ञता वा सर्वज्ञता हुई चाहिये। तथापि दर्पणादिक उपाधिके लघुत्वपीतत्वादिक धर्मका आरोप प्रतिबिंबमैं होवैहै, बिंबमैं नहीं। यातैं आवरणस्वभाव अज्ञानकृत अल्पज्ञता जीवमैंहैं बिंबरूप ईश्वरमैं स्वरूपप्रकाशतैं सर्वज्ञत्वहै। यद्यपि बिंबप्रतिबिंबका उक्तरीतिसैं अभेदहै। यातैं बिंबप्रतिबिंबके धर्मनका भेदकथन संभवै नहीं। जो बिंबप्रतिबिंबका भेद होवै तौ उक्त व्यवस्था संभवै तथापि दर्पणस्थत्वरूप प्रतिबिंबत्वका ग्रीवास्थमुखमैं भ्रम होवैहै। भ्रमसिद्धप्रतिबिंबत्वकी अपेक्षासैं बिंबत्वव्यवहार होवैहै। यातैं एक मुखमैं बिंबत्व प्रतिबिंबत्व दोनूं आरोपितहैं। तैसैं एकही मुखमैं बिंबत्व प्रतिबिंबत्वरूपतैं धर्मीके भेदका भ्रम होवैहै। भ्रांतिसैं प्रतीत जो बिंबप्रतिबिंबका भेद तासैं उक्त व्यवस्था संभवैहै। इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीवहै। औ बिंबचेतन ईश्वरहै। अज्ञान अनिर्वचनीयहै। यातैं अज्ञानसद्भावकालमैंभी अज्ञानका परमार्थसैं अभाव होनेतैं बिंबप्रतिबिंबरूप चेतनही परमार्थसैं शुद्धचेतनहै। यातैं ईश्वरभावकी प्राप्तिभी शुद्धहीकी प्राप्तिहै॥ औ॥

अवच्छेदवादी करि आभासवादका खंडन औ स्वमतका निरूपण ॥ २३ ॥

कोई आचार्य यह कहैहैं:—अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीवहै, औ अंतःकरणसैं अनवच्छिन्नचेतन ईश्वरहै। नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं। यद्यपि कूप तडागादिक जलगत आकाशमैं नीलता विशालताके अभाव होतें "नीलं नभः। विशालं नभः" ऐसी प्रतीति होवैहै। यातैं विशालताविशिष्ट औ आरोपितनीलताविशिष्ट आकाशका प्रतिबिंब मान्या चाहिये। औ आकाशमैं रूप है नहीं। यातैं नीरूपका भी प्रतिबिंब संभवैहै; तथापि आकाशमैंभी भ्रांतिसिद्ध आरोपित नीलरूपहै। चेतनमैं आरोपितरूपकाभी अभाव होनेतैं ताका प्रतिबिंब संभवै नहीं। जा पदार्थमैं आरोपित वा अनारोपित रूप होवै, ताका प्रतिबिंब होवैहै, सर्वथा रूपरहितका प्रतिबिंब होवै नहीं। औ नीरूपउपाधिमैं तो सर्वथा प्रतिबिंब संभवै नहीं। काहेतैं, रूपवाले दर्पणादिकनमैंही प्रतिबिंब देखाहै। यातैं नीरूप अंतःकरणमैं वा नीरूप अविद्यामैं नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं। औ रूपरहित शब्दका नीरूप आकाशमैं जैसैं प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिंब कहैहैं। सोभी असंगतहै; काहेतैं उक्तरीतिसैं आकाश रूपरहित नहीं। औ आकाशमैं जो प्रतिध्वनि होवैहै, सो शब्दका प्रतिबिंब नहीं; काहेतैं जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिंब मानैं, तौ आकाशवृत्ति शब्दका अभाव होवैगा। भेरीदंडादिकनके संयोगतैं पार्थिवशब्द होवैहै। तिस पार्थिवशब्दतैं ताके सन्मुखदेशमैं पाषाणादि अवच्छिन्न आकाशमैं प्रतिध्वनिरूप शब्द होवैहै। तिसप्रतिध्वनिशब्दका पार्थिव शब्द निमित्तकारणहै। यातैं पार्थिवध्वानिकै समानही प्रतिध्वनि होवैहै। जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिंब मानै तौ, प्रतिबिंबकूं अनिर्वचनीय मानैहैं। औ विवरणकारके अनुसारी बिंबस्वरूपही प्रतिबिंबकूं मानैहैं, इन दोनूं मतमैं आकाशका गुण प्रतिध्वनि नहीं होवैगा॥ काहेतैं, व्यावहारिक आकाशका

गुण प्रातिभासिक संभवै नहीं यातैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबवादमैं प्रतिध्व-निकूं पार्थिवशब्दका प्रतिबिंब मानें आकाशका गुण कहना संभवै नहीं । औ बिंबप्रतिबिंबके अभेदवादमैं पार्थिवशब्दका प्रतिबिंबरूप प्रतिध्वनिका अपने बिंबसैं अभेद होनेतैं पृथिवीका गुण प्रतिध्वनि होवैगा; यातैं प्रतिध्व-निकूं शब्दका प्रतिबिंब मानें किसी प्रकारतैं आकाशका गुण प्रतिध्वनिहै, यह कथन संभवै नहीं । औ प्रतिध्वनिसैं भिन्न शब्द पृथिवी जल अग्नि वा-युकेहैं । आकाशमैं अन्यप्रकारका शब्द है नहीं । यातैं शब्दरहितही आ-काश होवैगा । औ शब्दरहित आकाशहै; यह मत अशास्त्रीयहै । भूत-विवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं यह कहाहैः—कटकटा शब्द पृथिवीकाहै, चुल-चुल शब्द जलकाहै, भुक्भुक् शब्द अग्निकाहै, सीसी शब्द वायुकाहै, प्रतिध्वनिरूपशब्द आकाशकाहै । तैसैं अन्यग्रंथकारोंनैंभी आकाशका गु-णही प्रतिध्वनि कहाहै; यातैं शब्दका प्रतिबिंब प्रतिध्वनि नहीं । किंतु आकाशका स्वतंत्र शब्द प्रतिध्वनिहै ।ताका उपादानकारण आकाशहै । औ भेरी आदिकनमैं जो पार्थिवध्वनि होवैहै, सो प्रतिध्वनिका निमित्त-कारणहै । यातैं रूपरहितका प्रतिबिंब संभवै नहीं । जो प्रतिबिंबवादी इस-रीतिसैं कहै कूपादिकनके आकाशमैं "विशालमाकाशम्" यह प्रतीति होवै-है । औ कूपदेशके आकाशमैं विशालता हैनहीं । यातैं बाह्यदेशस्थ रूप-रहित विशाल आकाशका कूपजलमैं प्रतिबिंब होनेंतैं रूपरहित चेतनका भी प्रतिबिंब संभवैहै; तथापि रूपवाले उपाधिमैंही प्रतिबिंब होवैहै । रूप-रहित उपाधिमैं प्रतिबिंब संभवै नहीं । आकाशके प्रतिबिंबका उपाधि कूपजलहै, तामैं रूपहै औ अविद्या अंतःकरणादिक रूपरहितहैं, तिनमैं चेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं । यातैं अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीवहै औ अंतःकरणसैं अनवच्छिन्नचेतन ईश्वरहै ॥ अथवा ॥

अवच्छेदवादका कथन ॥ २४ ॥

अविद्यावच्छिन्नचेतन जीवहै । औ मायावच्छिन्नचेतन ईश्वरहै ॥

अंतःकरणसैं अवच्छिन्नचेतन जीव औ अनवच्छिन्न-चेतन ईश्वरहै; इसपक्षका खंडन ॥ २५ ॥

अंतःकरण अवच्छिन्नकूं जीव मानैं औ अनवच्छिन्नकूं ईश्वर मानैं तौ ब्रह्मांडसैं बाह्यदेशस्थचेतनमैं ईश्वरता होवैगी। काहेतैं, ब्रह्मांडमैं अनंतजीवनके अनंत अंतःकरणव्याप्तहैं, यातैं अंतःकरणानवच्छिन्नचेतनका ब्रह्मांडके मध्यलाभ संभवै नहीं। जो ब्रह्मांडसैं बाह्यदेशमैंही ईश्वरका सद्भाव मानैं तौ अंतर्यामिप्रतिपादक वचनसैं विरोध होवैगा "यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमंतरो यमयति" इस वचनमैं विज्ञानपदबोध्य जीवदेशमैं ईश्वरका सद्भाव कहाहै। यातैं अंतःकरणसैं अनवच्छिन्न ईश्वर नहीं। किंतु मायावच्छिन्नचेतनही ईश्वरहै। औ अंतःकरणसैं अनवच्छिन्नकूं ईश्वरता मानें तो अंतःकरणसैं संबंधाभावही ईश्वरताकी उपाधि सिद्ध होवैहै। औ ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिक उपाधिकृतहैं। अभावरूप उपाधिसैं सर्वज्ञतादिक धर्मनकी सिद्धि होवै नहीं ॥ औ ॥

तृप्तिदीपमैं विद्यारण्यस्वामीउक्त अंतःकरणके सम्बन्ध औ ताके अभावके उपाधिपनैका अभिप्राय ॥ २६ ॥

विद्यारण्यस्वामीनैं तृप्तिदीपमैं यह कहाहैः—जैसैं अंतःकरणका संबंध उपाधिहै, तैसैं अंतःकरणके संबंधका अभावभी उपाधिहै। जैसैं लोहकी शृंखलासैं संचारका निरोध होवैहै, तैसैं सुवर्णकी शृंखलासैंभी संचारका निरोध होवैहै ॥ इसरीतिसैं अंतःकरणके संबंधरूपभाव उपाधिसैं जीवस्वरूपका बोध होवैहै औ उक्तसंबंधके अभावतैं परमात्मस्वरूपका बोध होवैहै। इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं अंतःकरणराहित्यभी उपाधि कहाहै। ताका यह अभिप्रायहैः—जैसैं अंतःकरणसंबंधसैं जीवस्वरूपका बोध होवैहै। तैसैं अंतःकरणराहित्यसैं ब्रह्मस्वरूपका बोध होनेतैं ब्रह्मके बोधका उपयोगी अंतःकरणराहित्यभी है। यातैं विद्यारण्यस्वामीके वचनतैंभी अभावरूप उपाधिसैं ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिकनकी सिद्धि प्रतीति होवैनहीं॥

अवच्छेदवादके भेदपूर्वक ताकी समाप्ति ॥ २७ ॥

यातैं मायावच्छिन्नचेतनही ईश्वरहै । ईश्वरका उपाधि माया सर्वदेशमैंहै, यातैं ईश्वरमैं अंतर्यामिताभी संभवैहै ॥ औ अंतःकरणअवच्छिन्नकूं जीव मानैं तौ कर्ता भोक्ता चेतनके प्रदेशभिन्न होवैंगे । यातैं कृतका नाश औ अकृतकी प्राप्ति होवैगी । यातैं अविद्यावच्छिन्न चेतनही जीवहै; अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीव नहीं । इसरीतिसैं कितने ग्रंथकार अवच्छेदवादकूंही मानैहैं । औ प्रतिबिंबके प्रतिपादक श्रुतिस्मृतिवचनोंका विरोधपरिहार तिनके ग्रंथनमैं स्पष्टहै ॥ औ ॥

सिद्धांतमुक्तावलिआदिक विषै उक्त एक जीव (दृष्टिसृष्टि) वादका निरूपण ॥ २८ ॥

सिद्धांतमुक्तावलीकारादिकनका यह मतहैः—

दोहा—ज्यूं अविकृतकौंतेय मैं, राधापुत्रप्रतीति ॥
चिदानंदघनब्रह्ममैं, जीवभाव तिहँरीति ॥ १ ॥

सदा असंग नित्यमुक्त चिदानंदब्रह्ममैं कल्पित अविद्यादिकनके संबंधसैं प्रतिबिंबितता तथा अवच्छिन्नता संभवै नहीं । जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं पूरित वंध्यासुतकुलालनैं शशशृंगके दंडसैं रचित घटके संबंधसैं आकाशमैं प्रतिबिंबितता वा अवच्छिन्नता होवै नहीं । किंतु आकाशके समानसत्तावाले जलपूरित घट तडागादिकनके संबंधसैंही आकाशमैं प्रतिबिंबितता औ अवच्छिन्नता होवैहै । अविद्या औ ताका कार्य ब्रह्मचेतनके समान सत्तावाले नहीं किंतु स्वतःसत्ताशून्यहैं औ ब्रह्मकी सत्तासैं सत्तावाले अविद्यादिक हैं । यातैं शशशृंगादिकनकी नांई अत्यंत अलीक अविद्यादिकनतैं चेतनका संबंधकथनही संभवै नहीं । तिनके संबंधसैं प्रतिबिंबितितादिक तो अत्यंत दूरहैं । यातैं सदा एकरस ब्रह्महै, ताकै विषै अवच्छिन्नता वा प्रतिबिंबितितारूप जीवता संभवै नहीं । किंतु कल्पित अज्ञानके कल्पितसंबंधसैं ब्रह्ममैं विनाहुए जीवत्व प्रतीत होवैहै । जैसैं अविकारी कुंतीपुत्रमैं राधापुत्रताकी प्रतीति भ्रमरूप हुईहै । तैसैं प्रतिबिं-

वादिक विकारविनाही ब्रह्ममैं जीवत्व भ्रम होवैहै। औ प्रतिबिंबरूप वा अवच्छेदरूप जीवभावकी प्राप्ति होवै नहीं। स्वअविद्यासैं जीवभावापन्न ब्रह्महीं प्रपंचका कल्पक होनेतैं सर्वज्ञत्वादिक धर्मसहित ईश्वरभी या पक्षमैं जीवकल्पितहै। जैसैं स्वप्नकल्पित राजाकी सेवातैं स्वप्नमैं फलकी प्राप्ति होवैहै, तैसैं स्वप्नकल्पित ईश्वरभजनतैं फलकी प्राप्तिभी संभवैहै। इसरीतिसैं अनादि अविद्याके बलतैं स्वकीय ब्रह्मभावके आवरणतैं जीवत्वभ्रम होवैहै। तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य साक्षात्कारतैं जीवत्वभ्रमकी निवृत्ति होवैहै, भ्रमकालमैंभी जीवत्व है नहीं। किंतु नित्यमुक्त चिदानंदस्वरूप ब्रह्महीहै। यह पक्षही भाष्यकार वार्तिककारनैं बृहदारण्यके व्याख्यानमैं कर्णके दृष्टांतसैं प्रतिपादन कियाहै। जैसैं कुंतीपुत्र कर्णकूं हीन जातिके संबंधसैं निकृष्टता भ्रम हुआहै औ अनेकविध तिरस्कारजन्य दुःखका अनुभव करता हुवा स्वतःसिद्ध कुंतीपुत्रता निमित्तक उत्कर्षसैं प्रच्युत हुआहै॥

कदाचित् एकांतमैं सूर्यभगवाननैं कहा "तूं राधापुत्र नहीं, किंतु मेरे संबंधसैं कुंतीउदरसैं उत्पन्न हुआहै" इसप्रकारके सूर्यवचनतैं अपनेमैं हीनजातिके भ्रमकूं त्यागिकै स्वतःसिद्ध कुंतीपुत्रता निमित्तिक उत्कर्षकूं जानता हुआ॥ तैसैं चिदानंदब्रह्मभी अनादि अविद्याके संबंधसैं जीवत्वभ्रमकूं प्राप्त हुवा स्वतःसिद्धब्रह्मभावका विस्मरण करिकै अनेकविध दुःखकूं अनुभव करैहै॥

कदाचित् अपने अज्ञानतैं कल्पितस्वप्न कल्पितआचार्यके तुल्य आचार्यद्वारा महावाक्य श्रवणतैं स्वगोचरविद्यासैं अविद्याकी निवृत्ति हुयां नित्यपरमानंदका स्वरूप चैतन्यसैं अनुभव करैहैं। इसरीतिसैं बृहदारण्यके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं औ वार्तिककारनैं लिखाहै। जैसैं जीवकी अविद्या कल्पित आचार्य वेदउपदेशके हेतुहैं। तैसैं ईश्वरभी स्वप्नकल्पित राजाकी नांई जीवकल्पितही भजनतैं फलका हेतुहै। यामतमैं एक जीववादहै। यातैं एक जीवकल्पित ईश्वरभी एकहीहैं। नाना ईश्वरकी आपत्ति नहीं।

शुक वामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक शास्त्रसैंभी स्वप्नकल्पित नानापुरुषनकी नांई जीवाभासही नानासिद्ध होवैहैं । नानाजीववादकी सिद्धि होवै नहीं । जैसैं स्वप्नमैं एक द्रष्टाकूं नानापुरुषप्रतीत होवैं तिनमैं कोई महावनमैं उत्पथगामी हुयें व्याघ्रादिजन्यदुःखकूं अनुभव करैहैं; कोई राजमार्गमैं आरूढ होयकै स्वनगरकूं प्राप्त होवैहैं । तहां वनमैं भ्रमण औ स्वनगरकी प्राप्ति स्वप्नद्रष्टाकूं नहीं; किंतु आभास पुरुषनकूं होवैहैं । तैसैं अविद्यासहित ब्रह्मरूपजीवकूं बंधमोक्षकी प्राप्ति नहीं । किंतु आभासरूप जीवनकूं बंधमोक्ष प्रतीत होवैहैं ॥

या पक्षमैं किसके ज्ञानतैं अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवैगा, यह प्रश्न करै तौ तेरै ज्ञानतैं होवैगा; यह उत्तरहैः—अथवा किसीके ज्ञानतैं मोक्ष होवै नहीं । यह उत्तरहै । काहेतैं या मतमैं बंधका अत्यंत असद्भाव आत्मामैंहै । नित्यमुक्त आत्माका मोक्ष होवैगा अथवा हुयाहै, यह कथन संभवै नहीं । इस अभिप्रायतैं मोक्षप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद कहैहैं । औ बंधहै; अद्यपर्यंतका कोई मुक्त हुवा नहीं, आगैं पुरुषार्थसैं मोक्ष होवैगा । इस अभिप्रायतैं वामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद नहीं कहा । काहेतैं जो बंध होतें वामदेवादिकनका मोक्ष नहीं हुआ तौ आगेभी मोक्षकी आशा निष्फलहै । या बुद्धिसैं श्रवणमैं प्रवृत्तिकाही अभाव होवैगा । यातैं आत्मामैं बंधका अत्यंत असद्भावहै नित्यमुक्त ब्रह्मरूप आत्माहै ताका मोक्ष संभवै नहीं; यह उत्तम भूमिकारूढ विद्वान्का निश्चयहै ॥

वेदांतसिद्धांतकी नाना प्रक्रियाका तात्पर्य । सकल अद्वैत ग्रंथका तात्पर्यका विषय ॥ २९ ॥

नित्यमुक्त आत्मस्वरूपके ज्ञानतैं दुःखपरिहार औ सुखकी प्राप्तिकै निमित्त अनेकविध कर्त्तव्यबुद्धिजन्य क्लेशकी निवृत्तिही वेदांतश्रवणका फलहै। आत्मस्वरूपमैं बंधका नाशरूप वा परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष वेदांतश्रवणका फल नहीं । वेदांतश्रवणतैं पूर्वभी आत्मामैं बंधक

लेश नहीं। तथापि अत्यंत असत्‌बंधकी प्रतीति होवैहै। यातैं भ्रमतैं ही वेदांतश्रवणमैं प्रवृत्ति होवैहै। जाकूं बंधभ्रमनहीं होवै, ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं॥ सकल अद्वैतशास्त्रका इस पक्षमैंही तात्पर्यहै॥

जीव ईश्वरविषै सर्वग्रंथकारनकी सम्मतिका एकत्र करण॥ ३०॥

इसरीतिसैं जीवईश्वरका स्वरूपनिरूपण ग्रंथकारोनैं बहुत विस्तारसैं लिखाहै। तहां जीवके स्वरूपमैं तौ एकत्व अनेकत्वका विवादहै। औ सर्वमतमैं ईश्वर एकहै। सर्वज्ञहै, नित्यमुक्तहै। ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार किसी अद्वैतवादके ग्रंथनमैं नहीं। जो ईश्वरमैं आवरण कहै, सो वेदांतसंप्रदायसैं बहिर्भूतहै। परंतु नानाअज्ञानवादमैं जीवाश्रित ब्रह्मविषयक अज्ञानहै, यह वाचस्पतिका मतहै। तहां जीवके अज्ञानतैं कल्पित ईश्वर औ प्रपंच नाना मानैहैं; तथापि जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वरभी सर्वज्ञही मानैहैं। ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार नहीं॥

विवरणकारकी रीतिसैं प्रतिबिंबके स्वरूपका निरूपण॥ ३१॥

जीव ईश्वरके स्वरूपनिरूपणमैं प्रसंगतैं प्रतिबिंबका स्वरूपनिरूपण करैहैंः—विवरणकारके मतमैं दर्पणादिक उपाधिसैं प्रतिहतनेत्रकी रश्मि ग्रीवास्थ मुखकूं विषय करैहैं। जहां द्रष्टासैं भिन्न पदार्थका भी दर्पणसैं अभिमुखतारूप संबंध होवै। तहां दर्पणसैं संबंधी होयकै प्रतिहत नेत्रका द्रष्टासैं भिन्नभी दर्पणाभिमुख पदार्थसैं संबंध होयकै स्वस्थानमैंही ताका साक्षात्कार होवैहै। जहां अनेक पदार्थ दर्पणके अभिमुख होवैं तहां प्रतिहत नेत्रसैं अनेक पदार्थनका साक्षात्कार होवैहै। दर्पणाभिमुख जो उद्भूत रूपवान् होवै तामैं प्रतिहतनेत्रजन्य साक्षात्कारकी योग्यताहै यातैं दर्पणाभिमुख पदार्थके सन्मुख नेत्रकी वृत्ति जावैहै। स्वगोलकमैंही नेत्रकी वृत्ति आवै, यह नियम नहीं। इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं ग्रीवास्थमुखकाही साक्षात्कार होवैहै। परंतु पूर्वाभिमुख ग्रीवास्थमुखमैं प्रत्यङ्मुखत्व दर्पणस्थत्व स्वभिन्नत्व भ्रम होवैहै। यातैं दर्पणमैं पूर्वाभिमुख प्रतिबिंबहै। औ मेरे मुखसैं भिन्नहै। ऐसा व्यवहार होवैहै॥

या पक्षमैं यह शंकाहैः—जो बिंबभूतमुखादिकनकाही प्रतिहतनेत्रसैं साक्षात्कार होवै तौ सूर्यके प्रकाशतैं नेत्रका प्रतिरोध होवैहै । यातैं जलसैं प्रतिहतनेत्रसैंभी सूर्यके साक्षात्कारके असंभवतैं जलदेशमैं सूर्यतैं भिन्नताके प्रतिबिंबकी उत्पत्ति मानी चाहिये । औ बिंबके साक्षात्कारके अर्थ उपाधिसैं संबंधी होयकै नेत्रकी रश्मिकी प्रतिहति मानै तौ जलके अंतर्गत सिकताका साक्षात्कार नहीं हुआ चाहिये । इन दोनूं शंकाके ये समाधानहैंः—केवल नेत्रका आकाशस्थ सूर्यके प्रकाशतैं अवरोध होवैहै । औ जलादिकउपाधिसैं प्रतिहतनेत्रका सूर्यप्रकाशतैं अवरोध होवै नहीं । तैसैं कोई नेत्र रश्मिजलमैं प्रविष्ट होयकै तिसके अंतर्गत सिकताकूं विषय करैहै; तिसी नेत्रकी अन्यरश्मिप्रतिहत होयकै बिंबकूं विषय करैहै । यह दृष्टके अनुसार कल्पनाहै; यातैं बिंबसैं भिन्न प्रतिबिंब नहीं । यहहि विवरणकारका मतहै । औ ॥

विद्यारण्यस्वामीके औ विवरणकारके मतकी विलक्षणता ॥ ३२ ॥

विद्यारण्यस्वामीआदिकोनैं पारमार्थिक, व्यावहारिक, प्रातिभासिक भेदसैं त्रिविध जीव कहाहै । व्यावहारिक अंतःकरणमैं प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक जीव कहैहैं । स्वप्नअवस्थाके प्रातिभासिक अंतःकरणमैं प्रतिबिंबकूं प्रातिभासिकजीव कहैहैं । विवरणकारकी रीतिसैं बिंबसैं पृथक् प्रतिबिंबके अभावतैं जीवके तीनिभेद संभवै नहीं । यातैं त्रिविधजीववादके अनुसारी बिंबप्रतिबिंबका भेद मानैहैं । तिनके मतमैं दर्पणादिक उपाधिमैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवैहै । प्रतिबिंबका अधिष्ठान दर्पणादिकहै औ बिंबका सन्निधान निमित्तकारणहै । यद्यपि निमित्तकारणके अभावतैं कार्यका अभाव होवै नहीं औ बिंबके अपसरणतैं प्रतिबिंबका अभाव होवैहै; तथापि निमित्तकारणके दो भेदहैं ॥ कोई तो कार्यतैं अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै । कोई कार्यकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै । घटादिकनके दंडकुलालादिक निमित्तकारणहैं । सो कार्यतैं पूर्वकालवृत्ति चाहिये । घटादिकनकी सत्ता हुआं तिनकी

अपेक्षा नहीं। तैसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं स्वविषय निमित्तकारणहै। तहां विषयकी सत्ता ज्ञानकालमैं अपेक्षितहै । विनाशाभिमुख घटसैं नेत्रका संयोग हुएभी घटका साक्षात्कार होवै नहीं । यातैं ज्ञानकालमैं वर्त्तमान घटादिकही अपने साक्षात्कारके निमित्तकारणहैं । औ दूरस्थनानापदार्थनमैं एकत्व भ्रम होवैहै, मंदांधकारस्थरज्जुमैं सर्पभ्रम होवैहै; यातैं एकत्वभ्रमका निमित्तकारण दूरस्थत्वदोषहै। रज्जुमैं सर्पभ्रमका निमित्तकारण मंदांधकार है। दूरस्थत्व औ मंदांधकारका अभाव हुआं एकत्वभ्रम औ सर्पभ्रमका अभाव होनेतैं कार्यकालमैं वर्त्तमान दूरस्थत्व औ मंदांधकार उक्त द्विविध अध्यासके निमित्तकारणहैं। तिसरीतिसैं बिंबका सन्निधानभी कार्यकालमैं वर्त्तमानही प्रतिबिंब अध्यासका हेतु होनेतैं बिंबके अपसरणतैं प्रतिबिंबका अभाव संभवैहै । यातैं सन्निहितबिंब तो प्रतिबिंबका निमित्तकारणहै। भ्रमका अधिष्ठानही उपादानकारण कहियेहैं यातैं प्रतिबिंबके उपादानकारण दर्पणादिकहैं । औ विवरणकारके मतमैं प्रतिबिंबका स्वरूप तो बिंबसैं भिन्न नहीं परंतु दर्पणस्थत्व विपरीतदेशाभिमुखत्व बिंबभिन्नत्व धर्मकी उत्पत्ति ग्रीवास्थमुखमैं होवैहै । सोभी तीनूं धर्म अनिर्वचनीयहैं। तिनका अधिष्ठानरूप उपादानकारण ग्रीवास्थमुखहै। सन्निहित दर्पणादिक निमित्तकारणहैं । इसरीतिसैं चेतनके प्रतिबिंबवादमैं दो मतहैं। विवरणकारके मतमैं प्रतिबिंबका बिंबसैं अभेद होनेतैं प्रतिबिंबका स्वरूप सत्यहै औ विद्यारण्यस्वामीआदिकनके मतमैं दर्पणादिकनमैं अनिर्वचनीय मुखाभासकी उत्पत्ति होवैहै। याकूंही आभासवाद कहैहैं। विवरणउक्त पक्षकूं प्रतिबिंबवाद कहैहैं । दोनूं पक्षनका परस्पर खंडन औ स्वपक्षका मंडन बृहत्ग्रंथनमैं स्पष्टहै, विस्तारभयतैं लिखा नहीं। औ॥

दोनूंके पक्षनकी उपादेयता॥ ३३॥

प्रतिबिंबवादमैं अथवा आभासवादमैं आग्रह नहीं, चेतनमैं संसारधर्मका संभव नहीं औ जीवईशका परस्पर भेद नहीं, इस अर्थके बोधकै अर्थ

अनेकरीति कहीहैं । जिस पक्षसैं असंग ब्रह्मात्मबोध होवै सोई पक्ष आदरणीयहै ॥

बिंबप्रतिबिंब अभेदपक्षकी रीतिकी अभेदके बोधनमैं सुगमता ॥ ३४ ॥

तथापि बिंबप्रतिबिंबके अभेदपक्षकी रीतिसैं असंगब्रह्मात्मबोध अनायासतैं होवैहै । काहेतैं दर्पणादिकनमैं मुखादिकनका लौकिक प्रतिबिंब होवैहै । तहांभी बिंबका स्वरूप तो सदा एकरसहै । उपाधिके सन्निधानतैं बिंबप्रतिबिंबका भेदभ्रम होवैहै । तैसैं ब्रह्मचेतन तो सदा एकरसहै । अज्ञानादिक उपाधिके संबंधतैं जीवभाव ईशभावकी प्रतीतिरूप भ्रम होवैहै । इसरीतिसैं असंगचेतनमैं जीवईशभेदका सर्वथा अभावहै । जीवत्व ईश्वरत्व धर्म तो परस्पर भिन्न कल्पितहैं औ परस्पर भिन्नधर्मी कल्पितभी नहीं । यातैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद अद्वैतमतकै अत्यंत अनुकूलहै । परंतु ॥

प्रतिबिंबविषै विचार । आभासवाद औ प्रतिबिंबवादसैं किंचिद्भेद ॥ ३५ ॥

आभासवादमैं जैसैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबहै, ताका अधिष्ठान दर्पणादिक उपाधिहैं । तैसैं विवरणउक्त प्रतिबिंबवादमैंभी दर्पणस्थत्व विपरीतदेशाभिमुखत्वादिक धर्म अनिर्वचनीयहैं । तिनका अधिष्ठान मुखादिक बिंबहै । यातैं दोनूं पक्षनमैं अनिर्वचनीयका परिणामी उपादान अज्ञान कहा चाहिये । औ ॥

प्रतिबिंबकी छायारूपताका निषेध ॥ ३६ ॥

कोई ग्रंथकार छायाकूं प्रतिबिंब मानैंहैं, सो संभवै नहीं । काहेतैं, शरीरवृक्षादिकनतैं जितनैं देशमैं आलोकका अवरोध होवै, उतनैं देशमैं आलोकविरोधी अंधकार उपजैहै, तिस अंधकारकूं छाया कहैहैं । अंधकारका नीलरूप होनेतैं छायाकाभी नियमतैं नीलरूप होवैहै । औ स्फटिक मौक्तिकका प्रतिबिंब श्वेत होवैहै। सुवर्णका प्रतिबिंब पीतरूपवाला होवैहै,

रक्तमाणिक्यके प्रतिबिंबमैं रक्तरूप होवैहै । प्रतिबिंबकूं छायारूप मानैं तौ सकलप्रतिबिंबनका नीलरूप चाहिये । यातैं छायारूप प्रतिबिंब नहीं॥

प्रतिबिंबकी बिंबसैं भिन्नव्यावहारिक द्रव्य-रूपताका निषेध ॥ ३७ ॥

और जो कोई इसरीतिसैं कहैः—यद्यपि अंधकारस्वरूप छायासैं प्रतिबिंबका भेदहै, तथापि मीमांसाके मतमैं जैसैं आलोकाभावकूं अंधकार नहीं मानैंहैं। किंतु आलोकविरोधी भावरूप अंधकारहै, तामैं क्रिया होनेतै औ नीलरूप होनेतैं अंधकार द्रव्यहै। क्रिया औ गुण द्रव्यमैंही होवैहैं ॥ जैसैं दशमद्रव्य अंधकारहै, तैसैं प्रतिबिंबभी पृथिवीजलादिकनतैं भिन्न द्रव्यहै । इसरीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वतंत्रद्रव्य मानैं ताकूं यह पूछा चाहियेः—सो प्रतिबिंब नित्यद्रव्यहै अथवा अनित्यद्रव्यहै? जो नित्यद्रव्य होवै तौ आकाशादिकनकी नांई उत्पत्तिनाशहीन होनेतैं प्रतिबिंबके उत्पत्ति नाश प्रतीत नहीं हुये चाहिये । यातैं प्रतिबिंबकूं अनित्यद्रव्य कहै तौ उपादानके देशमैं कार्यद्रव्य रहैहै, यातैं प्रतिबिंबके उपादानकारण दर्पणादिकही माननें होवैगें । औ दर्पणादिकनकूं प्रतिबिंबकी उपादानता संभवै नहीं । काहेतैं, दर्पणादिक उपादानमैं जो प्रतिबिंबरूप द्रव्यका सद्भाव मानैं ताकूं यह पूछा चाहियेः—प्रतिबिंबमैं जो रूप औ ह्रस्वदीर्घादिक परिणामस्वरूप गुण तथा बिंबसैं विपरीताभिमुखत्वादिक धर्म, औ हस्तपादादिक अवयव जो प्रतिबिंबमैं प्रतीत होवैहैं सो प्रतिबिंबमैं व्यावहारिकहैं, अथवा नहींहै, किंतु मिथ्या प्रतीत होवैहै। जो रूपपरिमाणादिकनका प्रतिबिंबमैं व्यावहारिक अभाव मानैं औ प्रतिबिंबके रूपादिकनकूं प्रातिभासिक मानै तौ व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिंबका अंगीकार निष्फलहै । औ प्रतिबिंबके रूपपरिमाणादिकनकूं व्यावहारिक मानैं तौ अल्पपरिमाणवाले दर्पणमैं महापरिमाणवाले अनेक प्रतिबिंबनकी उत्पत्ति संभवै नहीं । औ प्रतिबिंबमिथ्यात्वमैं तो शरीरके मध्य संकुचित देशमैं स्वप्नको मिथ्याहस्तीआदिकनकी उत्प-

त्ति होनेतैं उक्त दोषका संभव नहीं । तैसैं प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक द्रव्यकहैं तौ एकविधरूपवाले दर्पणमैं दर्पणके समानरूपवाले प्रतिबिंबकीही उत्पत्ति हुई चाहिये । औ अनेकविधरूपवाले अनेकप्रतिबिंबनकी एकदर्पणमैं उत्पत्ति होवैहै ।एकरूपवाले उपादानसैं अनेकविधरूपवाले अनेक उपादेयकी उत्पत्ति होवै नहीं । औ दर्पणके मध्य वा दर्पणके अतिसमीप अन्यपदार्थ कोई प्रतीत होवै नहीं; जासैं अनेकविधरूपवाले प्रतिबिंबनकी उत्पत्ति संभवै, यातैं व्यावहारिक द्रव्यरूप कहना प्रतिबिंबकूं संभवै नहीं । किंवा दर्पणके अतिसमीप और तो कोई प्रतिबिंबका उपादान दीखै नहीं, दर्पणही उपादान मानना होवैगा । सो संभवै नहीं । काहेतैं सघनअवयवसहित पूर्वकी नांई अविकारी प्रतीत होते दर्पणमैं निम्न उन्नत हनु-नासिकादिक अनेकविध अवयववाले द्रव्यांतरप्रतिबिंबकी उत्पत्ति कहना सर्वथा युक्तिहीनहैं, यातैं बिंबसैं पृथक् व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिंबहैं, यह पक्षभी छायावादकी नांई असंगतहै ॥

आभासवाद औ प्रतिबिंबवादकी युक्तिसहितता कहिके दोनूं पक्षनमैं अज्ञानका उपादानता ॥ ३८ ॥

इसरीतिसैं सन्निहित दर्पणादिकनतैं मुखादिकअधिष्ठानमैं प्रतिबिंबत्वादिक अनिर्वचनीय धर्म उपजैहै, अथवा सन्निहित मुखादिकनतैं दर्पणादिक अधिष्ठानमैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंब उपजैहै; यह दोही पक्ष युक्तिसहितहैं । यातैं अनिर्वचनीयधर्मका वा अनिर्वचनीयप्रतिबिंबका उपादानकारण अज्ञान कहा चाहिये ॥

मूलाज्ञानकूं वा तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंब वा ताके धर्मनकी उपादानताके असंभवकी शंका ॥ ३९ ॥

तहां जगत्‌का साधारण कारण मूलाज्ञानही प्रतिबिंबत्वादिकधर्मनका वा धर्मीका उपादानकारण कहैं तौ आकाशादिकनकी नांई मूलाज्ञानके कार्य होनेतैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्म वा धर्मी प्रतिबिंबभी सत्य हुये चाहिये । औ उक्तरीतिसैं अनिर्वचनीय मानेहैं, यातैं मूलाज्ञानकूं अनिर्वचनीयकी

उपादानता संभवै नहीं । तैसैं विवरणकारके मतमैं मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबत्वादिधर्मनका उपादान मानैं, औ विद्यारण्यस्वामीआदिकनके मतमैं दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबका उपादान मानैं तौ अवस्थाअज्ञानके कार्यकूं अनिर्वचनीयता होनेतैं सत्यताकी आपत्ति तौ यद्यपि नहींहै, तथापि अधिष्ठानज्ञानसैं अनिर्वचनीयकी निवृत्ति होवैहै, औ प्रतिबिंबाध्यासका अधिष्ठान उक्तरीतिसैं मुखावच्छिन्नचेतन वा दर्पणावच्छिन्नचेतनहैं, औ मुखका ज्ञान वा दर्पणका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञानहै; तिसतैं उत्तरकालमैंभी प्रतिबिंबकी प्रतीति सर्वके अनुभवसिद्ध है। यातैं मुखावच्छिन्न चेतन वा दर्पणावच्छिन्न चेतनका आवरक अवस्थाज्ञानभी प्रतिबिंबाध्यासका उपादान संभवै नहीं ॥

उक्तशंकाका कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं समाधान ॥ ४० ॥

या स्थानमैं कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं समाधान करैहैं:—यद्यपि शुक्तिरजतादिकअध्यासमैं अधिष्ठानके विशेषज्ञानतैं आवरणशक्ति औ विक्षेपशक्तिरूप अज्ञानके दोनूं अंशनकी निवृत्ति होवैहै । तथापि अनुभवके अनुसारतैं प्रतिबिंबाध्यासके अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानके आवरणशक्तिअंशकीही निवृत्ति होवैहै । यातैं अधिष्ठानज्ञानतैं आवरणशक्तिरूप अंशकी निवृत्ति हुयेंभी प्रतिबिंबादिक औ तिनका ज्ञानरूपविक्षेपका हेतु अज्ञानका अंश रहनेतैं अधिष्ठानज्ञानतैं उत्तरकालमैंभी प्रतिबिंबादिकप्रतीति होवैहै । यातैं उपाध्यवच्छिन्नचेतनस्थ तूलाज्ञानका कार्य प्रतिबिंबाध्यास है; यह पक्ष संभवैहै। औ ॥

उक्त शंकाका अन्यग्रंथकारोंकी रीतिसैं समा० ॥ ४१ ॥

अन्यग्रंथकारोंका यह मतहै:—दर्पणादिकनका उपादान मूलाज्ञानही प्रतिबिंबाध्यासका उपादानहै; यातैं दर्पणादिकनके ज्ञान हुयेंभी प्रतिबिंबकी प्रतीति होवैहै । ब्रह्मके ज्ञानतैं ब्रह्मचेतनके आवरक अज्ञानकी औ ताके कार्यकी निवृत्ति होवैहै । दर्पणादिकनके ज्ञानतैं दर्पणादिकअवच्छिन्न चेतनके आवरकअज्ञानकी निवृत्ति हुयेभी ब्रह्मस्वरूपआवरक

अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं । ब्रह्मात्मस्वरूपके आच्छादक अज्ञानकूं मूलाज्ञान कहेहैं । उपाधिअवच्छिन्न चेतनके आच्छादकअज्ञानकूं अवस्थाज्ञान कहेहैं । ताहीकूं तूलाज्ञान कहेहैं । मूलाज्ञानसैं तूलाज्ञानका भेदहैं वा अभेदहैं; यह विचार आगे लिखेगे ॥

मूलाज्ञान औ तूलाज्ञानके भेद विषै किंचित् विचार ॥ ४२ ॥

यद्यपि मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानें दर्पणादिकनकी नांई व्यावहारिकही प्रतिबिंबादिकभी हुये चाहिये । औ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनमैं तथा प्रतिबिंबमैं मिथ्यात्वबुद्धि होनेंतैं प्रातिभासिकहै । मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानतामैं प्रातिभासिकता संभवै नहीं, तथापि ब्रह्मज्ञानसैं निवर्तनीय अज्ञानका कार्य व्यावहारिकहैं, औ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही निवर्तनीय अज्ञानका कार्य प्रातिभासिकहै । इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहै तौ उक्त शंका होवैहै, औ अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य नहीं होवै, किंतु केवल अज्ञानजन्य होवै ताकूं व्यावहारिक कहेहैं । अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य होवै ताकूं प्रातिभासिक कहेहैं । इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहें उक्त शंका संभवै नहीं । काहेतैं दर्पणादिकउपाधिसैं मुखादिकनका संबंध हुये ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानका प्रतिबिंबत्वादिक धर्मरूप वा प्रतिबिंबादिक धर्मीरूप परिणाम होवैहै । औ दोनूं पक्षमैं अधिष्ठान ब्रह्मचेतनहै । औ ॥

आभासवाद औ प्रतिबिंबवादमैं धर्मी वा धर्मके अध्यासकी उत्पत्तिका उपादान, तूलाज्ञानकूं मानिकै अधिष्ठानका भेद ॥ ४३ ॥

पूर्व जो कहाहैः—विद्यारण्यस्वामीके मतमैं प्रतिबिंबकी उत्पत्ति मानें दर्पणादिकअवच्छिन्नचेतन अधिष्ठानहै, औ दर्पणादिकअवच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञान उपादानहै । तैसें विवरणकारके मतसैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनकीही उत्पत्ति मानैं बिंबावच्छिन्न चेतन अधिष्ठानहै । औ बिंबावच्छि-

न्नचेतनस्थ अज्ञान उपादानहै। इसरीतिसैं धर्माध्यासपक्ष औ धर्मी-अध्यासपक्षमैं अधिष्ठानका औं उपादानका भेदहैं। सो अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानिकै कहाहै ॥

दोनूं पक्षनमैं मूलाज्ञानकी उपादानता मानैं अधिष्ठानका भेद औ मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादानताकी योग्यता ॥ ४४ ॥

मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं दोनूं मतनमैं अधिष्ठानका भेद संभवै नहीं, औ मूलाज्ञानकूं ही उक्त अध्यासकी उपादानता मानी चाहिये। काहेतैं, अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ दर्पणादिकनके ज्ञानतैं वा मुखादिनके ज्ञानतैं अज्ञानकी आवरणशक्तिअंशकी निवृत्तिहुऐ विक्षेपशक्तिअंशकी स्थिति मानैं तौ ब्रह्मज्ञानसैं ब्रह्मस्वरूपका आवरक मूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा। तैसैं शक्त्यादिकनके ज्ञानसैं शक्त्यादिअवच्छिन्नचेतनका आवरक तूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा औ व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपका हेतु द्विविध अज्ञानांशके शेष रहनेतैं विदेहकैवल्यमैं भी व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपके सद्भावतैं सर्व संसारका अनुच्छेद होवैगा; यातैं आवरणहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष कहना संभवै नहीं ॥

तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानताके वादीका मत ॥४५॥

औ तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानतावादी ऐसैं कहैंः—आवरणहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष स्वाभाविक नहींहै, किंतु विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिका प्रतिबंधक होवै, तहां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष रहैहै। ब्रह्मज्ञानसैं आवरणहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुएभी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधक प्रारब्धकर्मरहै। उतनैं काल विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष रहैहै। प्रारब्धरूप प्रतिबंधके अभाव हुए विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी भी निवृत्ति होवैहै। परंतु इतना भेदहैः—आवरक-अज्ञानांशकी निवृत्ति तो महावाकयजन्य अंतःकरणकी प्रमारूप वृत्तिसैं

होवैहै। प्रारब्धबलसैं कितनैं वर्ष जीवै तबपर्यंत पूर्ववृत्ति तो रहै नहीं ।औ- विक्षेपनिवृत्तिके अर्थ मरणके अव्यवहित पूर्वकालमैं महावाक्य- विचारका विद्वान्कूं विधान नहीं । औ मरणमूर्च्छाकालमैं महावा- क्यविचारका संभवभी नहीं । यातैं विक्षेपशक्तिकै नाशका हेतु तत्वज्ञान- के संस्कारसहित चेतनहै। औ आवरणशक्तिकै नाशका हेतु तत्वज्ञानहै । जैसैं मूलाज्ञानकी विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधक प्रारब्धकर्महै । तैसैं प्रतिबिंबाध्यासमैं विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमैं मुखादिकाबिंबसैं दर्पणादिक- उपाधिका संबंधही प्रतिबंधकहै । ताके सद्भावमैं आवरणअंशकी निवृत्ति हुएभी प्रतिबिंबादिकविक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं । बिंबउपाधिका संबं- धरूप प्रतिबंधककी निवृत्ति हुए विक्षेपकी निवृत्ति होवैहै । शुक्तिरज- तादिकअध्यास होवै तहां आवरणके नाशतैं अनंतर विक्षेपकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधकके अभावतैं विक्षेप शेष रहै नहीं । इसरीतिसैं विक्षेपनिवृत्तिमैं प्रति- बंधकाभावसहित अधिष्ठानज्ञानकूं हेतुता होनेतैं औ मोक्षदशामैं प्रारब्ध- रूप प्रतिबंधकके अभावतैं संसारका उपलंभ संभवै नहीं । यातैं आवरण- शक्तिके नाशतैं उत्तरभी विक्षेपशक्तिका सद्भाव मानें उक्तदोषके अभावतैं अवस्थाज्ञानकूंभी प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना उचितहै ॥

उक्तमतके निषेधपूर्वक मूलाज्ञानकूंही प्रति- बिंबाध्यासकी उपादानता ॥ ४६ ॥

यह कथनभी अयुक्तहै । काहेतैं जहां देवदत्तके मुखका औ दर्पणा- दिकउपाधिका यज्ञदत्तकूं यथार्थ साक्षात्कार होवै, तिसतैं उत्तरकालमैं भी देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध हुआ यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखमैं प्रतिबिंब- त्वादिक धर्मनका अध्यास विवरणके मतमैं होवैहै, तैसैं विद्यारण्यस्वामीके मतमैं देवदत्तमुखमैं प्रतिबिंबका अध्यास दर्पणमैं होवैहै, सो नहीं हुआ चाहिये। काहेतैं उक्त अध्यासकी निवृत्तिमैं बिंब उपाधिका संबंधही प्रतिबंधकहै। औ मुख वा दर्पणरूप अधिष्ठानके ज्ञानकालमैं तिसप्रति- बंधकका अभाव होनेतैं प्रतिबंधकका अभावसहित अधिष्ठानज्ञान होवैहै ।

विवरणकारके मतमैं " देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वप्रत्यङ्मुखत्वादिकं नास्ति " ऐसा ज्ञान अध्यासका विरोधीहै । औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं " दर्पणे देवदत्तमुखं नास्ति " ऐसा ज्ञान उक्तअध्यासका विरोधीहै । काहेतैं, दोनूं मतनमैं क्रमतैं " देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वं दर्पणे देवदत्तमुखम् " इसरीतिसैं अध्यासके आकारका भेदहै। ताकी हेतु विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकीभी निवृत्ति हुईहै; यातैं उपादानके अभावतैं उक्तस्थलमैं यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखका प्रतिबिंबभ्रम नहीं हुआ चाहिये; औ ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ उक्त उदाहरणमैं देवदत्तके मुखका औ दर्पणका ज्ञान हुयेंभी ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं उपादानके सद्भावतैं उक्त अध्यास संभवैहै । यातैं मूलाज्ञानही प्रतिबिंबाध्यासका उपादानहै । यह पक्षही समीचीनहै ॥

मूलाज्ञानकी उपादानताके पक्षमैं शंका ॥ ४७ ॥

परंतु या पक्षमैं यह शंकाहैः—ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिंबभ्रमकी निवृत्ति नहींहुई चाहिये। काहेतैं, अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा भ्रमकी निवृत्ति होवैहै । औ प्रतिबिंबाध्यासका अधिष्ठान उक्तपक्षमैं ब्रह्मचेतनहै । दर्पणावच्छिन्नचेतन वा मुखावच्छिन्नचेतन अधिष्ठान नहीं । मुखदर्पणादिज्ञानतैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति मानैं तौ उपादानके नाशतैं मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थनकाभी अभाव हुआ चाहिये । यातैं मूलाज्ञानकूं उपादानता मानें मुखादिकनतैं बिंब उपाधिके वियोगकालमैं भी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ ४८ ॥

या शंकाका यह समाधानहैः—आवरणशक्ति औ विक्षेपशक्तिके भेदतैं दो अंशवाला अज्ञानहै। प्रतिबंधकरहित अधिष्ठानज्ञानतैं अशेष अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक होतें ब्रह्मरूप अधिष्ठान-

ज्ञान हुयेंभी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति होवै नहीं । औ घटादिक अनात्मपदार्थगोचर ज्ञान होवै तिनतैं अज्ञानकी निवृत्ति तो होवै नहीं, परंतु जितनैं काल घटादिकनका स्फुरण रहै उतनें काल अंधकारसैं आवृतगृहके एकदेशमैं प्रभाप्रकाशतैं अंधकारके संकोचकी नांई अज्ञानजन्य आवरणका संकोच होवैहै । तैसैं मुखदर्पणादिकनके साक्षात्कारतैं ब्रह्मके आच्छादक मूलाज्ञानकी निवृत्ति तो यद्यपि नहीं होवैहै, तथापि अज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यासरूप विक्षेपका मुखदर्पणादिज्ञानतैं उपादानमैं विलयरूप संकोच होवैहै । उपादानमैं विलयकूंही कार्यकी सूक्ष्म अवस्था कहैहैं । इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं अज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिंबाध्यासकी बाधरूप निवृत्तिका यद्यपि संभव नहींहै, तथापि मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं प्रतिबंधकका अभाव हुये कार्यका उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति होवैहै ॥

एकदेशीकी रीतिसैं बाधका लक्षण ॥ ४९ ॥

इसरीतिसैं संसारदशामैं प्रतिबिंबाध्यासका बाध होवै नहीं; यह कोई एकदेशी मानैहैं; या मतमैं अभावनिश्चयकूं बाध नहीं कहैहैं । काहेतैं "मुखे दर्पणस्थत्वं नास्ति, दर्पणे मुखं नास्ति" इसरीतिसैं विवरणकार विद्यारण्यस्वामीके मतभेदसैं उभयविध अध्यासका अभावनिश्चय सर्व अविद्वान्‌केभी अनुभवसिद्धहै । ताका संसारदशामैं अभाव कहना संभवै नहीं । यातैं ब्रह्मज्ञानविना प्रतिबिंबाध्यासका बाध नहीं मानैं ताके मतमैं केवल अधिष्ठानशेषकूं बाध कहैहैं । प्रतिबिंबाध्यासका अभावनिश्चय उक्तरीतिसैं हुएभी संसारदशामैं अज्ञानकी सत्ता होनेतैं केवल अधिष्ठान शेष नहींहै; किंतु अज्ञानविशिष्ट अधिष्ठानहै । इसरीतिसैं प्रतिबंधकरहित मुखदर्पणादिक साक्षात्कारतैं अधिष्ठानज्ञानविना बाधरूप अज्ञाननिवृत्तिका अभाव हुयेभी अपनें उपादानमैं विलयरूपकार्यका संकोच होवैहै । उपादानरूपसैं कार्यकी स्थितिकूंही सूक्ष्मावस्था कहैहैं । और ॥

बहुतग्रंथकारनकी रीतिसैं बाधका लक्षण औ ब्रह्मज्ञान-विना प्रतिबिंबाध्यासके बाधकी सिद्धि ॥ ९० ॥

बहुतग्रंथकारोंके मतमैं ब्रह्मज्ञानसैं विना मूलाज्ञानके नाशविनाभी मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यासका बाध होवैहै। यह तिनका अभिप्रायहैः—मिथ्यात्वनिश्चय वा अभावनिश्चय बाध कहियेहै, यह सर्वग्रंथनका निष्कर्ष है। बहुत स्थानमैं मिथ्यात्वनिश्चयभी अभावनिश्चय पदार्थका होवै, तहां अधिष्ठानमात्र शेष रहैहै; अज्ञान शेषरहै नहीं। इस अभिप्रायतैं किसी ग्रंथकारनैं अधिष्ठानमात्रका शेषही बाधका स्वरूप कहाहै। औ अधिष्ठानमात्रका शेष बाधका लक्षण नहीं। जो बाधका यही लक्षण होवै तौ स्फटिकमैं लौहित्यभ्रमादिक सोपाधिक अध्यास होवै, तहां अधिष्ठानज्ञानसैं उत्तरकालमैंभी जपाकुसुम औ स्फटिकका परस्पर संबंधरूप प्रतिबंधक होतें लौहित्यअध्यासकी निवृत्ति नहीं होवैहै। तैसैं विद्वान्कूं प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक होतें शरीरादिकनकी निवृत्ति नहीं होवैहै। यातैं अज्ञानकार्यविशिष्ट अधिष्ठान दोनूं स्थानमैं होनेतैं केवल अधिष्ठानशेषके अभावतैं बाधव्यवहार नहीं हुआ चाहिये। औ श्वेतस्फटिकके साक्षात्कारतैं लौहित्यअध्यासका बाध होवैहै। ब्रह्मसाक्षात्कारतैं जीवन्मुक्त विद्वान्कूं संसारका बाध होवैहै। इसरीतिसैं विक्षेपसहित अधिष्ठानमैं बाधव्यवहार सकलग्रंथकारोंनैं लिखाहै। तहां अध्यस्तपदार्थमैं मिथ्यात्वनिश्चय वा ताका अभावनिश्चयही बाधका स्वरूप संभवैहै। औ प्रतिबंधकरहित मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं मुखमैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका तथा दर्पणमैं प्रतिबिंबादिक धर्मीका मिथ्यात्वनिश्चय होवैहै; तैसैं अभावनिश्चय होवैहै; यातैं ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिंबाध्यासका बाध होवै नहीं, यह कथन अयुक्तहै ॥

मुखदर्पणादिअधिष्ठानके ज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्तिकी हेतुता ॥ ९१ ॥

जैसैं अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी बाधरूप निवृत्ति होवै, तैसैं मुखदर्प-

णादिकनके अपरोक्षज्ञानतैंभी प्रतिबंधकरहितकालमैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति अनुभवसिद्धहै, यातैं प्रतिबंधकाभावसहित मुखदर्पणादिज्ञानभी अधिष्ठानज्ञानकी नांई अध्यासनिवृत्तिका हेतुहै, इसरीतिसैं मानना योग्यहै। औ मुखदर्पणादिज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासनिवृत्तिकी कारणता संभवैभीहै। काहेतैं समानविषयकज्ञानतैं अज्ञानका विरोधहै । भिन्नविषयक ज्ञान अज्ञानका विरोध नहीं । यातैं मुखदर्पणादिकज्ञानका मुखदर्पणादिकअवच्छिन्नचेतनस्थ अवस्थाज्ञानसैंही विरोधहै। ब्रह्माच्छादकमूलाज्ञानसैं ब्रह्मज्ञानविना अन्यज्ञानका विरोध नहीं । यातैं ब्रह्मज्ञानविरोधी मूलाज्ञानसैं दर्पणादिकज्ञानके विरोधाभावतैं प्रतिबिंबाध्यासके उपादानमूलाज्ञानकी निवृत्ति तो यद्यपि नहीं होवैहै, तथापि अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाभी विरोधीज्ञानसैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति अनुभवसिद्धहै ॥

मुखदर्पणादिकके ज्ञानकूं मूलाज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिंबाध्यासकी नाशकता ॥ ८२ ॥

जहां रज्जुके अज्ञानतैं सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै, तहां दंडज्ञानतैं सर्पके उपादान अवस्थाज्ञानकी निवृत्ति तो होवै नहीं; काहेतैं अधिष्ठानके तत्वज्ञानतैंही अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। यातैं रज्जुज्ञानविना रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं। औ दंडभ्रमसैंही रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै तो उपादानके अभावतैं दंडअध्यासका स्वरूपही सिद्ध नहीं होवैगा । यातैं दंडज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविना जैसैं सर्पाध्यासकी निवृत्ति होवैहै, तैसैं "मुखे प्रतिबिंबत्वं नास्ति, दर्पणे मुखं नास्ति" इसप्रकारसैं मुखदर्पणका ज्ञान प्रतिबिंबाध्यासका विरोधी होनेतैं तासैंभी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवैहै। औ प्रतिबिंबाध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी उक्तज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं। जो उक्तज्ञानसैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति कहैं, तौ मूलाज्ञानके कार्य मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थभी नष्ट हुयें चाहिये । यातैं मुखदर्पणादिकज्ञानकूं विरोधिविषयक होनेतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी प्रतिबिंबाध्या-

सकी नाशकताहै । भाव अभावका परस्पर विरोध होवैहै । यातैं तिनके ज्ञानभी परस्पर विरोधी होवैहैं । जहां स्थाणुमैं स्थाणुत्वज्ञानतैं उत्तर पुरुषत्वभ्रम होवै, तहां "स्थाणुत्वं नास्ति" ऐसैं विरोधी भ्रमज्ञानतैं पूर्वप्रमाज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । घटवाले भूतलमैं घटाभावके भ्रमज्ञानतैं उत्तर घटसैं इंद्रियके संयोगहुए "घटवद्भूतलम्" ऐसे विरोधी प्रमाज्ञानतैं पूर्वभ्रमज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । जहां रज्जुमैं सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै, तहां दंडभ्रमतैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति होवैहै । इसरीतिसैं कहूं भ्रमज्ञानतैं प्रमाज्ञानकी निवृत्ति, कहूं प्रमाज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति, कहूं भ्रमज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । जहां भ्रमतैं प्रमाकी निवृत्ति औ भ्रमतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै, तहां भ्रमका उपादान अज्ञानके सद्भावमैंही पूर्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । जहां प्रमाज्ञानतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै, तहां अधिष्ठानका यथार्थज्ञान प्रमा होनेतैं अज्ञानसहित भ्रमकी निवृत्ति होवैहै। या प्रकारतैं अधिष्ठानज्ञानविना मूलाज्ञानकी निवृत्तिविनाभी मुखदर्पणादिज्ञानतैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति संभवैहै ॥

विरोधीज्ञानतैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, यह नियमहै। औ अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैंही पूर्वभ्रमकी निवृत्ति होवै, यह नियम नहीं। परंतु अधिष्ठानके यथार्थज्ञानविना अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं । यातैं अज्ञानकी निवृत्ति केवल अधिष्ठानकी विशेषप्रमातैं होवैहै, यह नियमहै । विवरणकारके मतमैं "मुखे प्रतिबिंबत्वं दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वम्" ऐसा अध्यास होवैहै । ताका विरोधी "मुखे प्रतिबिंबत्वादिकं नास्ति" ऐसा ज्ञानहै । औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं "दर्पणे मुखम्" ऐसा अध्यास होवैहै ॥ "दर्पणे मुखं नास्ति" ऐसा ज्ञान ताका विरोधीहै । नैयायिकमतमैंभी भावअभावका परस्पर विरोध मानिकै तिनके ज्ञानोंकाभी विषयविरोधसैं विरोध मानाहै । या प्रकारतैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानें बिंब उपाधिका सन्निधानरूप प्रतिबंधकरहितकालमैं मुखदर्पणादिकज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी उक्त अध्यासकी निवृत्ति संभवैहै । परंतु ॥

उक्तपक्षमैं पद्मपादाचार्यकृत पंचपादिकाकी रीतिसैं तूलाज्ञानकूं अध्यासकी हेतुताके वादीकी शंका ॥ ९३ ॥

या पक्षमैं यह शंकाहैः—शारीरकभाष्यकी टीका पंचपादिका नाम पद्मपादाचार्यनैं किईहै । ताकूं भाष्यकारके वचनतैं सर्वज्ञता हुईहै । तिस सर्वज्ञवचन पंचपादिकामैं यह लिखाहैः—जहां सर्परजतादिकभ्रम होवै तहां रज्जुशुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतादिकनके उपादान अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । औ अज्ञानकी निवृत्तिसैं सर्परजतादिकअध्यासकी निवृत्ति होवैहै । रज्जुशुक्तिआदिकनके ज्ञानकूं सर्परजतादिकनकी निवृत्तिमैं साक्षात्कारण मानैं तौ उपादानके नाशतैं भावकार्यका नाश होवैहै; या नियमकी हानि होवैगी । औ अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानका नाश होवैहै । अज्ञाननाशतैं अध्यासका नाश होवैहै । इसरीतिसैं मानैं उक्तनियमका व्यभिचार होवै नहीं । यद्यपि अंधकारकी नांई अज्ञानभी भावरूपहै; तथापि अज्ञान अनादि होनेतैं कार्य नहीं । यातैं अज्ञानकी निवृत्ति तो अधिष्ठानज्ञानतैंभी संभवैहै । परंतु भावकार्यसर्पादिकअध्यासकी निवृत्ति उपादानके नाशविना होवै नहीं । घटध्वंसकी निवृत्तिभी वेदांतमतमैं होवैहै । औ अभावपदार्थका उपादानकारण होवै नहीं । यातैं उपादानके नाशविनाभी घटध्वंसरूप कार्यका नाश होवैहै । परंतु घटध्वंस भाव नहीं । यातैं उपादाननाशकूं भावकार्यके नाशमैं नियत हेतुताके संरक्षणकूं पंचपादिकामैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी हेतुता कहीहै । अज्ञाननिवृत्तिकूं त्यागिकै अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी साक्षात् हेतुताका निषेध कराहै । औ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं उक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाही प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति माननी होवैहै । यातैं पंचपादिकावचनतैं विरोध होवैगा । अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ विरोध नहीं । काहेतैं, अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता कहै ताके मतमैं विवरणकारकी रीतिसैं मुखावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकूं धर्माध्यासकी उपादानता सिद्ध होवैहै । विद्यारण्यस्वामीकी

रीतिसैं दर्पणावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकूं धर्मीअध्यासकी हेतुता सिद्ध होवैहै। औ प्रतिबंधकरहितकालमैं मुखज्ञानतैं वा दर्पणज्ञानतैं तिन अज्ञानोंकी क्रमतैं निवृत्ति होवैहै। अज्ञाननिवृत्तिद्वारा प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवैहै। यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना पंचपादिकावचनके अनुकूलहै। औ मूलाज्ञानकूं उक्तअध्यासकी उपादानता कहना पंचपादिकावचनसैं विरुद्धहै। इसरीतिसैं उक्त अध्यासकी हेतुता अवस्थाज्ञानकूं मानैं ताका यह पूर्वपक्षहै॥ परंतु॥

उक्तशंकाकी अयुक्तता॥ ९४॥

अवस्थाज्ञानकूं हेतुता मानेंभी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं। तथाहि, जहां दर्पणसंबंधरहित देवदत्तमुखका वा देवदत्तमुखवियुक्त दर्पणका यज्ञदत्तकूं साक्षात्कार होवै, औ उत्तरक्षणमैं देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध होवैहै। तहांभी प्रतिबिंबाध्यास होवैहै। मूलाज्ञानकूं उपादानता मानें तो मुखदर्पणादिसाक्षात्कारसैं ताकी निवृत्ति होवै नहीं। औ मुखज्ञानतैं मुखावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी तैसैं दर्पणज्ञानतैं दर्पणावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति अवश्य होवैहै। औ मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं उत्तरकालमैंभी मुखदर्पणसन्निधानमैं प्रतिबिंबाध्यास होवैहै। यातैं मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं अवस्थाअज्ञानके आवरणशक्तिविशिष्ट अंशका नाश हुयेभी विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका नाश नहीं होनेंतैं विशेषरूपतैं ज्ञानअधिष्ठानमैंभी अध्यास संभवैहै। तहां दर्पणमुखका परस्पर वियोग हुये प्रतिबंधकाभावसहित अधिष्ठानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति कहना अवस्थाज्ञानवादीकूंभी संभवै नहीं; किंतु ज्ञानतैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति कहनाही संभवैहै, काहेतैं रज्जुज्ञानतैं शुक्तिके अज्ञानका नाश नहीं होवैहै, यातैं ज्ञानतैं अज्ञानमात्रका नाश नहीं होवैहै। किंतु समानविषयक अज्ञानका ज्ञानतैं नाश होवैहै। ज्ञानतैं जाका प्रकाश होवै सो ज्ञानका विषय कहिये। अज्ञानसैं आवृत होवै सो अज्ञानका विषय कहियेहै। यज्ञदत्तकूं अध्यासतैं पूर्वकालमैं हुआ जो

मुखदर्पणका साक्षात्कार तासैं आवरणका नाश होनेंतैं अज्ञानकृत आवरणरूप ज्ञानकी विषयताका मुखदर्पणमैं अभावहै । यातैं ज्ञान अज्ञानके विरोधका संपादक समानविषयत्वके भंगतैं उक्तस्थलमैं अज्ञाननिवृत्तिविना अध्यासमात्रकी निवृत्ति अवस्थाज्ञानवादीकूंभी माननी होवैहै । इसरीतिसैं अवस्थाऽज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानेंभी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं ॥

तूलाज्ञानकूं उक्तअध्यासकी हेतुता मानैं पंचपादिकाके वचनसैं विरोध औ मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं अविरोध ॥ ८९ ॥

औ सूक्ष्मविचार करे तौ अवस्थाऽज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानेंही पंचपादिकावचनसैं विरोधहै; मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं विरोध नहीं । तथाहि,ज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । औ अज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिसैं अज्ञानकार्यकी निवृत्ति होवैहै । इसरीतिसैं पंचपादिकावचनहै । ताका यह अभिप्राय नहीं, तौ भावकार्यके नाशमैं उपादानका नाश नियतहेतु होनेंतैं ज्ञानतैं अध्यासनिवृत्ति संभवै नहीं । काहेतैं उपादानके नाशविना भावकार्यका नाश होवै नहीं । तौ भावकार्यके नाशमैं उपादानके नाश नियत हेतु होवै औ भावकार्य द्व्यणुकहै, ताके उपादान परमाणुहैं । तिनकूं नित्यता होनेंतैं नाश संभवै नहीं । यातैं परमाणुसंयोगके नाशतैं द्व्यणुकका नाश होवैहै । तहां भावकार्यके नाशमैं उपादाननाशकी हेतुताका व्यभिचारहै । यातैं भावकार्यके नाशमैं उपादाननाशकी हेतुता नियमके संरक्षणअभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहींहै । औ केवल आग्रहतैं पंचपादिकावचनका उक्तनियमसंरक्षणमैं अभिप्राय कहै, तौ दंडभ्रमसैं सर्पाध्यासकी निवृत्ति नहीं होवैगी । औ नैयायिकमतमैंभी द्व्यणुकभिन्नद्रव्यके नाशमैं उपादानके नाशकूं हेतुता मानीहै । सकल भावकार्यके नाशमैं उपादाननाशकूं हेतुता कहैं तौ परमाणु औ मन नित्यहैं । तिनके नाशके असंभवतैं तिनकी क्रियाका नाश नहीं होवैगा । तैसैं नित्यआत्माके ज्ञानादिगुणका औ नित्यआकाशके शब्दादिगुणका नाश नहीं होवैगा । यातैं भावकार्यके नाशमैं

उपादानका नाश नियतहेतुहै। यह कथन असंगतहै। परंतु किसीस्थानमैं आश्रयका नाश हुये कार्यकी स्थिति होवै नहीं। तहां उपादानका नाशभी कार्यनाशका हेतुहै। तथापि कार्यनाशमैं उपादानका नाश नियत हेतु नहीं। उपादानके सद्भावमैं अन्यकारणतैंभी कार्यका नाश होवैहै। इसरीतिसैं उक्तनियमसंरक्षणमैं अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहींहै। किंतु अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिमैं कारणता नहींहै। अधिष्ठानज्ञान तो अज्ञाननिवृत्तिका कारणहै, औ अज्ञाननिवृत्ति अध्यासनिवृत्तिका कारणहै। जैसें कुलालका जनक घटमैं अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं। तैसें अध्यासनिवृत्तिमैं अधिष्ठानका ज्ञान अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं। इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां ज्ञानसैं अज्ञानमात्रकी निवृत्ति होवैहै। अध्यासकी निवृत्ति उपादान अज्ञानके नाशतैं होवैहै। यह पंचपादिकावचनका अभिप्रायहै। औ सर्वत्र अध्यासकी निवृत्तिमैं अज्ञाननिवृत्तिकूं हेतुताहै; इस अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति होवै तौ दंडभ्रमसैं अज्ञाननिवृत्तिके अभावतैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये। यातैं अधिष्ठानके यथार्थज्ञानसैं अध्यासनिवृत्ति होवैहै। तहां अज्ञानकी निवृत्तिही अध्यासनिवृत्तिका हेतुहै; यह नियम पंचपादिकाग्रंथमैं विवक्षितहै। औ अवस्थाऽज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी हेतुता मानैं ताके मतमैं मुखदर्पणादिकज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञानहै। तासैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति मानना पंचपादिकानुसारहै। औ यज्ञदत्तकूं पूर्वज्ञानसैं आवरणनाशस्थलमैं देवदत्तमुखका उपाधिसन्निधान हुए प्रतिबिंबाध्यास होयहै, उपाधिवियोगकालमैं अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासनिवृत्ति होवै, तहां अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं। किंतु अधिष्ठानज्ञानतैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति होवैहै। यातैं पंचपादिकासैं विरुद्धहै। औ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादिकज्ञानतैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै, तहां मुखदर्पणादिकनकूं या पक्षमैं अधि-

ष्ठानताके अभावतैं अधिष्ठानज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति नहींहै; किंतु विरोधीविषयके ज्ञानकूं विरोधी होनेतैं मुखदर्पणादिकनके ज्ञानकूं अध्यास-निवर्त्तकताहै । औ पंचपादिकामैं अधिष्ठानज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्तिही अज्ञाननिवृत्तिद्वारा विवक्षितहै । औ अधिष्ठानज्ञानविना प्रकारांतरसैं अध्यासकी निवृत्तिमैं अज्ञाननिवृत्तिकूं द्वारता विवक्षित नहींहै । इसरीतिसैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानें मुखदर्पणादिज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्य नहीं । औ अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादान मानें, मुखदर्पणादिज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्यहै । औ अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै सो अज्ञान-निवृत्तिद्वाराही पंचपादिकामैं विवक्षितहै । औ पूर्वज्ञात अधिष्ठानमैं अध्यास होयकै निवृत्ति होवै, तहां उक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं । यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानेंही पंचपादिकावचनसैं विरोधहै । मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानें विरोध नहीं ॥

प्रतिबिंबाध्यासकी व्यावहारिकता औ प्रातिभासिकताके विचार-पूर्वक स्वप्नाध्यासके उपादानके विचारकी प्रतिज्ञा ॥ ९६ ॥

इसरीतिसैं आकाशादिप्रपंचकी नांई मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यासहै । परंतु एकदेशीकी रीतिसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी बाधरूप निवृत्ति नहीं होनेतैं प्रतिबिंबाध्यासमैं व्यावहारिकत्वशंका होवैहै; तथापि बिंब उपाधिका संबंधरूप आगंतुकदोषजन्यहै । यातैं प्रातिभासिकहै । आकाशादिकप्रपंचका अध्यासहै सो अविद्यामात्रजन्यहै; यातैं व्यावहारिकहै । औ अनंतर उक्तरीतिसैं तो अधिष्ठानज्ञानविनाभी विरोधीज्ञानसैं बाधरूपनिवृत्तिका संभव होनेतैं संसारदशामें बाध्यत्वरूप प्रातिभासिकत्वभी संभवैहै । जैसैं प्रतिबिंबाध्यासमैं मतभेदसैं अवस्थाऽज्ञान औ मूलाज्ञान उपादान कहा तैसैं स्वप्नाध्यासभी किसीके मतमैं अवस्थाज्ञानजन्यहै, औ मतांतरमैं मूलाज्ञानजन्यहै ॥

स्वप्नविषै विचार, तूलाज्ञानकूं स्वप्नकी उपादानताकी रीति ॥ ८७ ॥

अवस्थाअज्ञानकूं स्वप्नकी उपादानता इसरीतिसैं कहैहैं:—अज्ञानकी अवस्थाविशेष निद्राहै । काहेतैं आवरणविक्षेपशक्तियुक्तता अज्ञानका लक्षणहै । औ स्वप्नकालमैं जाग्रत्‌द्रष्टादृश्यका आवरण अनुभवसिद्धहै । देवदत्त नाम ब्राह्मण जाति जाग्रत्कालमैं पितापितामहादिकनके मरणतैं उत्तर दाहश्राद्धादि करिकै धनपुत्रादिसंपदासहित सोवतहुआ आत्माकूं यज्ञदत्त नाम क्षत्रिय जाति बाल्यअवस्थाविशिष्ट अन्नवस्त्रके अलाभतैं क्षुधाशीतसैं पीडित हुवा स्वपितापितामहके अंकमैं रोदनकर्ता अनुभव करैहै । तहां जाग्रत्‌कालके व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका मूलाज्ञानसैं आवरण कहै । तौ जाग्रत्‌कालमैंभी तिनका आवरण हुयां चाहिये । अन्य कोई आवरणकर्ता प्रतीत होवै नहीं । यातैं स्वप्नकालमैं निद्राही आवरण करैहै । औ स्वप्नके पदार्थाकारपरिणामभी निद्राकाही होवैहै । इसरीतिसैं आवरणविक्षेपशक्तिविशिष्ट निद्राहै । यातैं अज्ञानलक्षण निद्रामैं होनेतैं अज्ञानकी अवस्थाविशेष निद्राहै । परंतु अवस्थाज्ञान सादिहै; काहेतैं मूलाज्ञानही आगंतुकआकारविशिष्ट हुवा किंचित् उपाधिअवच्छिन्न चेतनका आवरण करै ताकूं अवस्थाऽज्ञान औ तूलाऽज्ञान कहैहै । इसरीतिसैं आगंतुकआकारविशिष्ट होनेतैं अवस्थाज्ञान सादिहै । ताकी उत्पत्तिमैं निमित्तकारण जाग्रद्भोग हेतु कर्मनका उपरामहै । औ मूलाज्ञानकाही आकारविशेष होनेतैं मूलाज्ञान उपादानकारणहै । निद्रारूप अवस्थाज्ञानसैं आवृत व्यावहारिक द्रष्टामैं प्रातिभासिक द्रष्टा अध्यस्तहै । तिस निद्रासैं आवृत व्यावहारिक दृश्यमैं प्रातिभासिक दृश्य अध्यस्तहै । यातैं प्रातिभासिकद्रष्टाका अधिष्ठान व्यावहारिकद्रष्टाहै । औ प्रातिभासिकदृश्यका अधिष्ठान व्यावहारिकदृश्यहै । भोगके अभिमुख कर्म होवै तब जाग्रत् होवैहै । तिसकालमैं ब्रह्मज्ञानरहित पुरुषनकूं भी व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञानहै । तासैं अवस्थाज्ञानरूप उपा-

दानकी निवृत्तिद्वारा प्रातिभासिक द्रष्टादृश्यकी निवृत्ति होवैहै । व्यावहारिक द्रष्टाके ज्ञानतैं प्रातिभासिक द्रष्टाकी औ व्यावहारिक दृश्यके ज्ञानतैं प्रातिभासिक दृश्यकी निवृत्ति होवैहै ॥

उक्तपक्षमैं शंका ॥ ५८ ॥

या पक्षमैं यह शंकाहैः–उक्तरीतिसैं जाग्रत्‌द्रष्टाका औ स्वप्नद्रष्टाका भेदहै । औ अन्यद्रष्टाके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै, तौ देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृति हुई चाहिये । यातैं स्वप्नके अनुभूतकी जाग्रत्‌कालमैं स्मृति होवैहै, द्रष्टाका भेद मानैं स्मृतिका असंभव होवैगा ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ ५९ ॥

ताका यह समाधानहैः–यद्यपि अन्यके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै नहीं । तथापि स्वानुभूतकी स्वकूं स्मृति होवैहै । तैसैं स्वतादात्म्यवालेके अनुभूतकीभी स्वकूं स्मृति होवैहै । यातैं देवदत्त यज्ञदत्तका परस्पर तादात्म्य नहींहै । औ जाग्रत्‌के द्रष्टामैं स्वप्नद्रष्टाकूं अध्यस्तता होनेतैं तामैं ताका तादात्म्यहै । अध्यस्तपदार्थका अधिष्ठानमैं तादात्म्य होवैहै । इसरीतिसैं जाग्रत्‌द्रष्टाके तादात्म्यवाला स्वप्नद्रष्टाहै । ताके अनुभूतकी जाग्रत्‌द्रष्टाकूं स्मृति होवैहै । यज्ञदत्तमैं देवदत्तके तादात्म्यके अभावतैं देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृत्तिकी आपत्ति नहीं । इसरीतिसैं स्वप्नाध्यासका उपादान निद्रारूप अवस्थाज्ञानहै ॥

व्यावहारिक जीव औ जगत्‌कूं स्वप्नके प्रातिभासिक जीव औ जगत्‌का अधिष्ठान ॥ ६० ॥

स्वप्नकालमैं दृश्यमात्रकी अज्ञानसैं उत्पत्ति मानैं औ व्यावहारिक जाग्रत्‌कालके जीवकूं द्रष्टा मानैं तौ संभवै नहीं । काहेतैं व्यावहारिकजीवका स्वरूप निद्रारूपअज्ञानसैं आवृतहै । औ अनावृतजीवके संबंधसैं विषयका अपरोक्ष होवैहै । यातैं स्वप्नप्रपंचके अपरोक्षज्ञानका असंभव होवैगा । यातैं दृश्यकी नांई द्रष्टाभी व्यावहारिकजीवमैं अध्यस्तहै, सो अनावृतहै । ताके संबंधसैं प्रातिभासिक दृश्यका अपरोक्षज्ञान संभवैहै ।

इसरीतिसैं पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं जीव त्रिविध-वादी ग्रंथकारोंनैं स्वप्नका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव जगत् कहाहै, परंतु॥

उक्तपक्षकी अयुक्ततापूर्वक चेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठानपना ॥ ६१ ॥

यह मत अयुक्तहै । काहेतैं व्यावहारिक द्रष्टाभी दृश्यकी नांई अनात्मा होनेतैं जडहै । यातैं सत्तास्फूर्तिप्रदानरूप अधिष्ठानता व्यावहारिकद्रष्टा-दृश्यमैं संभवै नहीं । किंतु चेतनकूं स्वप्नप्रपंचकी अधिष्ठानता कहना उचि-तहै । इसीवास्तै रज्जुशुक्तिकूं सर्परूप्यकी अधिष्ठानतावचनका रज्जु-अवच्छिन्नचेतन शुक्तिअवच्छिन्नचेतन अधिष्ठानमैं तात्पर्य कहाहै । बहुत ग्रंथनमैं भी चेतनही स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान कहाहै । यातैं अहं-कारावच्छिन्नचेतन वा अहंकारानवच्छिन्नचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है । यह दो मत सामीचीनहै ॥

अहंकारावच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिके तूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता औ जाग्रत्के बोधसैं ताकी निवृत्ति ॥ ६२ ॥

तिनमैं अहंकारावच्छिन्नचेतनकूं अधिष्ठानता मानै तो, मूलाज्ञानसैं ताका आवरण संभवै नहीं । यातैं अहंकारावच्छिन्नका आच्छादक अ-वस्थाऽज्ञानही स्वप्नका उपादान संभवैहै । जाग्रत्के बोधसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी निवृत्तिभी संभवैहै । औ ॥

अहंकाराऽनवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिकै मूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता औ उपादानमैं विलयरूपताकी निवृत्ति ॥ ६३ ॥

अविद्यामैं प्रतिबिंब चेतन वा बिंबरूप ईश्वरचेतन अहंकारानवच्छिन्न-चेतनहै । ताकूं अधिष्ठानतामैं तौ ताका आच्छादकमूलाज्ञानही स्वप्नका उपादान मानना होवैहै । जाग्रत्बोधसैं ताकी बाधरूपनिवृत्ति होवै नहीं । किंतु उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति स्वप्नकी जाग्रत्मैं होवैहै ॥

अहंकारानवच्छिन्नचेतनकूं ही अधिष्ठान मानिकै विरोधीज्ञानतैं अज्ञानकी एक विक्षेपहेतुशक्तिके नाशका अंगीकार ॥ ६४ ॥

अथवा प्रतिबिंबाध्यासनिरूपणमैं उक्तरीतिसैं जाग्रत्बोधविरोधीज्ञान होनेतैं स्वप्नाध्यासकी निवृत्ति कहैं, परंतु विरोधीज्ञानतैं आवरणहेतु अज्ञानअंशकी निवृत्ति होवै नहीं। किंतु विक्षेपहेतुअंशकी निवृत्ति होवैहै । विरोधीज्ञानसैं अशेषअज्ञानकी निवृत्ति कहैं तौ दंडभ्रमसैं सर्पभ्रमकी निवृत्तिस्थलमैं उपादानहेतुके अभावतैं दंडभ्रमकाही असंभव होवैगा। विक्षेपअंशभी अशेष निवृत्त होवै तौ दंडभी विक्षेपरूपहै ताका उपलंभ नहीं हुआ चाहिये । यातैं इसरीतिसैं मानना उचितहैः—एकअज्ञानमैं अनंतविक्षेपकी हेतु अनंतशक्तिहै ॥ विरोधीज्ञानतैं एकविक्षेपकी हेतुशक्तिका नाश होवैहै, अपरविक्षेपहेतुशक्ति रहैहैं । यातैं कालांतरमैं तिसी अधिष्ठानमैं फेरि अध्यास होवैहै । इसीवास्तै अतीतस्वप्नका जाग्रत्बोधसैं बाध हुयेंभी आगामी स्वप्नरूपविक्षेपकी हेतुशक्तिका अवशेष होनेतैं दिनांतरमैं स्वप्नाध्यास होवैहै । यातैं अहंकारानवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताभी संभवैहै। परंतु ॥

उक्तचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानवादमैंभी शरीरके अंतर्देशस्थचेतनकूंही अधिष्ठानताका सम्भव ॥ ६५ ॥

उक्तचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानतावादमैं भी शरीरके अंतर्देशस्थचेतनही अधिष्ठान संभवैहै । बाह्यदेशस्थकूं अधिष्ठान मानैं तौ घटादिकनकी नांई एक एक स्वप्नकी प्रतीति सर्वकूं हुई चाहिये । औ घटादिकनकी अपरोक्षतामैं सर्परजतादिकनकी अपरोक्षतामैं जैसैं इंद्रियव्यापारकी अपेक्षाहै; तैसैं स्वप्नकी अपरोक्षतामैं भी इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा चाहियें । औ शरीरके अंतर्देशस्थचेतनमैं स्वप्नका अध्यास मानैं तौ प्रमातासैं संबंधी होनेतैं सुखादिकनकी नांई इंद्रियव्यापारसैं विनाही अपरोक्षता सं-

भवैहै । इसरीतिसैं अहंकारावच्छिन्न वा अहंकारानवच्छिन्नचेतनही स्वप्नका अधिष्ठानहै । ये दोनूं मत प्रामाणिकहैं ॥

शरीरके अंतर्देशस्थअहंकारानवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताकी योग्यता ॥ ६६ ॥

अहंकारानवच्छिन्नकूं कहैं, तामैंभी दो भेदहैं । अविद्यामैं प्रतिबिंबजीवचेतन वा अविद्यामैं बिंबईश्वरचेतन दोनूं अहंकारानवच्छिन्नहैं औ दोनूं व्यापक होनेतैं शरीरके अंतरहैं । काहेतैं, चेतनमैं बिंबप्रतिबिंबभेद स्वाभाविक होवै, तौ विरुद्धधर्माश्रयता अंतरदेशस्थ एकचेतनमैं संभवै नहीं । सो बिंबप्रतिबिंबतारूप ईश्वरजीवता उपाधिकृतहै । एकही चेतनमैं अज्ञानसंबंधसैं बिंबता प्रतिबिंबता कल्पितहै; यातैं शरीरस्थ एकचेतनमैंही उभयविध व्यवहार होवैहै; तैसैं अंतरदेशस्थमैं ही स्वप्नाध्यासकी अधिष्ठानताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक मानैं तौ अहंकारावच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवैहै । तिसी चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक नहीं मानैं तौ अहंकारानवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवैहै । एकही देवदत्तमैं पुत्रदृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पिता कहैहै; देवदत्तके जनककी दृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पुत्र कहैहैं । विवक्षाभेदसैं एक देवदत्तमैं पितृतापुत्रतारूप विरुद्धधर्मके व्यवहारकी नांई शरीरके अंतरदेशस्थ एकचेतनमैं अवच्छिन्नत्व अनवच्छिन्नत्व बिंबत्व प्रतिबिंबत्वरूप विरुद्धधर्मके व्यवहारका असंभव नहीं । इसरीतिसैं अविद्याप्रतिबिंबरूप जीवचेतनमैं वा बिंबरूप ईश्वरचेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानता मानिकै अहंकारानवच्छिन्नमैं स्वप्नाध्यास मानेंभी शरीरदेशस्थ अंतरचेतनप्रदेशमैंही स्वप्नकी अधिष्ठानता उचितहै ॥

बाह्यअंतरसाधारणदेशस्थचेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताके कथनमैं गौड़पाद औ भाष्यकारआदिकनके वचनसे विरोध ॥ ६७ ॥

बाह्यअंतरसाधारणदेशस्थमैं स्वप्नकी अधिष्ठानता कहै तौ गौडपादाचार्यके वचनतैं औ भाष्यकारादिकनके वचनसैं विरोध होवैगा । का-

हेतैं, मांडूक्यकारिकाके वैतथ्यप्रकरणमैं गौडपादाचार्यनैं यह कहाहैः— स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकालका अभाव होनैतैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्याहैं । इस प्रकारसैं गौडपादाचार्यकी उक्तिके व्याख्यानमैं भाष्यकारादिकोंनैं यह कहाहै। क्षणघटिकादिकालमैं औ सूक्ष्मनाडीदेशमैं व्यावहारिक हस्तीआदिकनकी उत्पत्ति संभवै नहीं । यातैं स्वप्नके पदार्थ वितथहैं । इसरीतिसैं शरीरके अंतरदेशमैं स्वप्नकी उत्पत्ति कहीहै । साधारणचेतनमैं अधिष्ठानता मानैं सूक्ष्मदेशमैं उत्पत्तिकथन असंगत होवैगा । यातैं शरीरके अंतरदेशस्थ अहंकारानवच्छिन्नचेतनमैं स्वप्नाध्यासहै ॥

अहंकारानवच्छिन्नचेतनभी अविद्यामैं प्रतिबिंब औ बिंब दोनूंहैं तिनमैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानताका सम्भव ॥ ६८ ॥

अहंकारानवच्छिन्नचेतनभी अविद्याप्रतिबिंब औ बिंब दोनूंहैं । औ मतभेदसैं दोनूंकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताहै । तथापि अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानता कहनाही समीचीनहै । काहेतैं, अपरोक्षअधिष्ठानमैं अपरोक्षअध्यास होवैहै। औ शुद्धब्रह्मकी नांई ईश्वरचेतनका ज्ञान केवल शास्त्रसैं होवैहै। स्वप्नाध्यासका ईश्वरचेतनकूं अधिष्ठान मानैं तौ शास्त्ररूपप्रमाणके अभावतैं अधिष्ठानकी अपरोक्षताविना अध्यासकी अपरोक्षताका असंभव होवैगा । औ अविद्यामैं प्रतिबिंबजीवचेतन अहंकारावच्छिन्न तौ अहमाकारवृत्तिका गोचर होवैहै। औ अहंकारानवच्छिन्नअविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनभी अहमाकारवृत्तिका गोचर तौ नहीं है। परंतु जीवचेतन आवृत नहीं। यातैं स्वतः अपरोक्षतामैं अपरोक्ष अध्यास संभवैहै ॥

उक्तपक्षविषै संक्षेपशारीरकमैं उक्तअध्यासकी अपरोक्षतावास्तै अधिष्ठानकी त्रिविध अपरोक्षता ॥ ६९ ॥

संक्षेपशारीरकमैं अध्यासकी अपरोक्षतावास्तै अधिष्ठानकी अपरोक्षता तीनि प्रकारसैं कहीहै। सर्परजतादिकनकी अपरोक्षताका उपयो-

गी रज्जुशुक्तिआदिकनकी अपरोक्षता इंद्रियसैं होवैहै। गगनमैं नीलतादिक अध्यासकी अपरोक्षताका उपयोगी गगनकी अपरोक्षता मनसैं होवैहै। स्वप्नकी अपरोक्षताकी उपयोगी अधिष्ठानकी अपरोक्षता स्वभावसिद्धहै। इसरीतिसैं संक्षेपशारीरकमैं सर्वज्ञात्ममुनिनै स्वतः अपरोक्षमैं स्वप्नाध्यास कहाहै। यातैं जीवचेतनही स्वप्नका अधिष्ठानहै ॥

उक्तपक्षमैं शंकासमाधानपूर्वक जीवचेतनरूप अधिष्ठानके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश ॥ ७० ॥

यद्यपि जीवचेतनकूं अनावृत होनेंतैं स्वतः प्रकाशस्वभाव मानै, तौ अविद्याकूं व्यापकता होनेंतैं तिसमैं प्रतिबिंबरूपजीवचेतनभी व्यापकहै, ताका घटादिकनसैं सदा संबंधहै। यातैं नेत्रादिजन्यवृत्तिकी अपेक्षाविनाही घटादिकनकी अपरोक्षता हुई चाहिये। औ जीवचेतनसैं संबंधीकी अपरोक्षतामैंभी वृत्तिकी अपेक्षा मानैं तौ स्वतः अपरोक्षजीवचेतनसैं स्वप्नाध्यासकी अपरोक्षता कही असंगत होवैगी। तथापि स्वप्नाध्यासका जीवचेतन अधिष्ठानहै। औ घटादिकनका अधिष्ठान जीवचेतन नहीं किंतु ब्रह्मचेतनहै। यातैं स्वप्नके पदार्थनका तो अपने अधिष्ठानजीवचेननमैं तादात्म्यसंबंधहै। औ घटादिकनका अधिष्ठान ब्रह्मचेतन होनेंतैं तिनका तादात्म्यसंबंध ब्रह्मचेतनसैंहै, जीवचेतनसैं नहीं। नेत्रादिजन्यवृत्तिद्वारा जीवचेतनका घटादिकनसैं संबंध होवैहै। वृत्तिसैं पूर्वकालमैं जो घटादिकनका संबंध, सो अपरोक्षताका संपादक नहीं। यातैं घटादिकनसैं जीवचेतनके विलक्षण संबंधकी हेतुवृत्तिकी अपेक्षातैं अपरोक्षता होवैहै। औ स्वप्नाध्यासमैं अधिष्ठानतारूप संबंधसैं जीवचेतनके सदासंबंधी पदार्थनका वृत्तिविनाही प्रकाश होवैहै। इसरीतिसैं प्रकाशात्मश्रीचरणनाम आचार्यनैं कहाहै। औ मतभेदसैं वृत्तिका प्रयोजन आगैं कहैंगे। या प्रकारतैं अविद्यामैं प्रतिबिंबजीवचेतन स्वप्नका अधिष्ठानहै। औ ताके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश होवैहै। परंतु ॥

अद्वैतदीपिकामैं नृसिंहाश्रमआचार्यउक्त आकाशगोचर-चाक्षुषवृत्तिके निरूपणपूर्वक संक्षेपशारीरकउक्त आकाशगोचर मानसवृत्तिका अभिप्राय ॥ ७१ ॥

या प्रसंगमैं आकाशगोचर मानसवृत्ति कही। तहां नृसिंहाश्रमआचार्यनैं अद्वैतदीपिकामैं यह कहाहै:—यद्यपि नीरूपआकाशगोचर चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं। तथापि आकाशमैं प्रसृत आलोकरूपवाला होनेतैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्ति होवैहै। औ आलोकावच्छिन्नचेतनका जैसैं वृत्तिद्वारा प्रमातासैं अभेद होवै, तैसैं आलोकदेशवृत्ति आकाशावच्छिन्नचेतनकाभी अभेद होवैहै। इसरीतिसैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिका विषय होनेतैं आकाशकी अपरोक्षताभी नेत्रइंद्रियजन्यही कहीहै। औ संक्षेपशारीरकमैं मानसअपरोक्षता कही ताका यह अभिप्रायहै:—आकाश तो नीरूपहै, यातैं आकाशाकार तो वृत्ति संभवै नहीं। अन्याकारवृत्तिसैं समानदेशस्थ अन्यका प्रत्यक्ष मानैं तौ घटके रूपाकारवृत्तिसैं घटके ऱ्हस्वदीर्घपरिमाणका प्रत्यक्ष हुआ चाहिये। औ आलोकाकारवृत्तिसैं आलोकदेशस्थवायुकाभी चाक्षुषप्रत्यक्ष हुआ चाहिये। यातैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिसैं आकाशकी अपरोक्षताके असंभवतैं मानसअपरोक्षताही संभवैहै। औ ॥

उभयमतके अंगीकारपूर्वक अद्वैतदीपिका-उक्तरीतिकी समीचीनता ॥ ७२ ॥

सूक्ष्मविचारकरैं तौ अद्वैतदीपिकाकी रीतिसैं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता अप्रसिद्धहै, ताका अंगीकार दोषहै। तथापि फलबलतैं कहूं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता मानैं उक्त दोषका उद्धार होवैहै। औ संक्षेपशारीरकरीतिसैं बाह्यपदार्थमैं अंतःकरणगोचरता अप्रसिद्धहै। ताका अंगीकार दोषहै। औ फलबलतैं अन्याकार नेत्रकी वृत्तिसहकृत अंतःकरणकी वृत्तिकी गोचरता बाह्यपदार्थमैं मानैं केवल अंतःकरणकूं बाह्यपदार्थगोचरता नहीं; या नियमका भंगरूप दोष नहीं। इसप्रकारसैं उभयथालेख संभवैहै। तथापि अद्वैतदीपिकारीतिही समीची-

नहै। काहेतैं आलोकाकारवृत्तिकूं सहकारितारूप कारणता मानिकै अंतः-करणमैं बाह्यपदार्थगोचर साक्षात्कारकी करणता अधिक माननी होवैहै। अद्वैतदीपिकारीतिसैं अंतःकरणकूं बाह्यसाक्षात्कारकी करणता नहीं माननी होवैहै, यातैं लाघवहै। औ नेत्रकूं सहकारिता नहीं मानिकै केवल अंतःकरणकूं आकाशप्रत्यक्षका हेतु मानैं तौ निमीलितनेत्रकूंभी आका-शका मानस प्रत्यक्ष हुआ चाहिये, औ अंतःकरणकूं ज्ञानकी उपादानता होनेतैं करणताकथन सर्वथा अयुक्तहै। यातैं संक्षेपशारीरकमैं आकाशके प्रत्यक्षकूं मानसताकथन प्रौढिवादहै। इसरीतिसैं अध्यासकी अपरोक्षताका हेतु अधिष्ठानकी अपरोक्षता इंद्रियसैं अथवा स्वरूपप्रकाशतैं होवैहै, इत-नाही कहना उचित है। इसरीतिसैं मतभेदसैं स्वप्नका उपादान अवस्थाऽ-ज्ञानहै, अथवा मूलाज्ञानहै। औ ॥

रज्जुसर्पादिकनकी सर्वमतमैं तूलाज्ञानकूंही उपादानता ॥ ७३॥

रज्जुसर्पादिकनका तो सर्वमतमैं अवस्थाज्ञानही उपादानकारणहै। औ रज्जुआदिकनके ज्ञानतैं तिनकी निवृत्ति होवैहै। रज्जुके ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा सर्पकी निवृत्ति होवैहै, यातैं एकवार ज्ञातरज्जुमैं कालां-तरमैं उपादानके अभावतैं सर्पभ्रम नहीं हुआ चाहिये। या शंकाका समा-धान वृत्तिके प्रयोजननिरूपणमैं कहैंगे।

स्वप्नके अधिष्ठानआत्माकी स्वयंप्रकाशतामैं प्रमाण-भूत बृहदारण्यककी श्रुतिका अभिप्राय ॥ ७४ ॥

स्वप्नके अधिष्ठानकूं स्वतः अपरोक्षतासैं स्वप्नकी अपरोक्षता पूर्व कही है। औ स्वयंज्योतिर्ब्राह्मणवाक्यमैंभी "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति" इसरीतिसैं स्वप्नके प्रसंगमैं कहाहै। ताका यह अभिप्रायहैः— यद्यपि तीनूं अवस्थामैं आत्मा स्वयंप्रकाशहै तथापि अपनै प्रकाशमैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित जो सकलका प्रकाशक ताकूं स्वयंप्रकाश कहैहैं। जाग्रत्-अवस्थामैं सूर्यादिक औ नेत्रादिक प्रकाशक होतैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षा-

रहित ता आत्मामैं निर्द्धारित होवै नहीं । औ स्थूलदर्शीकूं सुषुप्तिमैं कोई ज्ञान प्रतीत होवै नहीं, इसीवास्तै सुषुप्तिमैं ज्ञानसामान्यका अभाव नैयायिक मानैंहैं । यातैं आत्मप्रकाशका सुषुप्तिमैंभी निर्द्धार होवै नहीं । इस अभिप्रायतैं श्रुतिनैं स्वप्नअवस्थामैं आत्माकूं स्वयंप्रकाशता कहीहै ॥

स्वप्नमैं इंद्रिय औ अंतःकरणकूं ज्ञानकी असाधनता कहिके स्वतः अपरोक्षआत्मासैं स्वप्नकी अपरोक्षता ॥ ७९ ॥

स्वप्नअवस्थामैंभी नेत्रादिकइंद्रियका संचार होवै, तौ स्वप्नमैंभी आत्माकूं प्रकाशांतरनिरपेक्षताके अभावतैं स्वयंप्रकाशताका निर्द्धार अशक्य होवैगा। इसरीतिसैं इंद्रियव्यापारतैं विना स्वप्नमैं आत्मप्रकाशहै । स्वप्नमैं हस्तमैं दंडकूं लेके उष्ट्रमहिषादिकनकूं ताडन करता नेत्रसैं आम्रादिकनकूं देखता भ्रमण करैहै; औ हस्त नेत्र पादके गोलक निश्चल प्रतीत होवैहै, यातैं स्वप्नमैं व्यावहारिक इंद्रियका व्यापार नहीं, औ प्रातिभासिकइंद्रियका अंगीकार नहीं । जो स्वप्नमैं प्रातिभासिक इंद्रिय होवै, तौ स्वप्नमैं प्रकाशांतरके अभावतैं स्वयंप्रकाशता श्रुतिमैं कहीहै ताका बाध होवैगा; औ विचारसागरमैं स्वप्नमैं इंद्रिय प्रातिभासिक कहेहैं,सो प्रौढिवादहै।स्वप्नमैं प्रातिभासिक इंद्रिय मानिकैभी ज्ञानके समानकालमैं तिनकी उत्पत्ति होनेतैं ज्ञानकी साधनता तिनकूं संभवै नहीं । इसरीतिसैं अपना उत्कर्षबोधन करणैंकूं पूर्ववादीकी उक्ति मानिकै समाधानहै।यातैं स्वप्नमैं ज्ञानके साधन इंद्रिय नहीं।औ इंद्रियव्यापारविना केवल अंतःकरणकूं ज्ञानसाधनताके अभावतैं औ तत्वदीपिकाके मतसैं अंतःकरणका स्वप्नमैं गजादिरूप परिणाम होनेतैं ज्ञानकर्मकूं ज्ञानसाधनताके असंभवतैं अंतःकरणव्यापारविना आत्मप्रकाशहै । यातैं स्वतः अपरोक्षआत्मासैं स्वप्नकी अपरोक्षता होवैहै, औ स्वप्नअवस्थामैं गजादिकनमैं चाक्षुषता प्रतीत होवैहै, सोभी गजादिकनकी नांई अध्यस्तहै। जाग्रत्‌मैं घटादिकनकी चाक्षुषता व्यावहारिकहै । औ रज्जुसर्पादिकनकी चाक्षुषता अध्यस्त होनेतैं प्रातिभासिकहै । औ ॥

दृष्टिसृष्टि औ सृष्टिदृष्टिवादका भेद ।

दृष्टिसृष्टिवादमैं सकलअनात्माकी ज्ञातसत्ता (साक्षिभास्यता) कहिके दृष्टिसृष्टिपदके दो अर्थ ॥ ७६ ॥

दृष्टिसृष्टिवादमैं तो किसी अनात्मपदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं; किंतु ज्ञातसत्ताहै । यातैं रज्जुसर्पकी नांई सकलअनात्मवस्तु साक्षिभास्यहैं । तिनमैं इंद्रियजन्यज्ञानकी विषयता प्रतीत होवैहै, सो अध्यस्त है। दृष्टिसृष्टिवादमैं दोभेद हैंः—सिद्धांतमुक्तावलीआदि ग्रंथनमैं तो यह कहाहैः—दृष्टि कहिये ज्ञानस्वरूपही सृष्टिहै । ज्ञानतैं पृथक् सृष्टि नहीं । औ आकरग्रंथनमैं यह कहाहैः—दृष्टिज्ञानसमैं अनात्मपदार्थकी सृष्टिहै,ज्ञानतैं पूर्व अनात्मपदार्थ होवै नहीं यातैं सकल दृश्यकी ज्ञातसत्ताहै । अज्ञातसत्ता नहीं । इसरीतिसैं द्विविध दृष्टिसृष्टिवादहै । सकल अद्वैतशास्त्रकूं यही अभिमतहै । औ ॥

दृष्टिसृष्टिवाद (व्यावहारिक पक्ष) का कथन ॥ ७७ ॥

कितनें ग्रंथकारोंनैं स्थूलदर्शी पुरुषनके अनुसारतैं सृष्टिदृष्टिवाद माना है । प्रथम सृष्टि होवैहै। उत्तरकालमैं प्रमाणके संबंधतैं दृष्टि होवैहै । सृष्टिसैं उत्तरदृष्टि होवै यह सृष्टिदृष्टिपदका अर्थहै । या पक्षमैं अनात्मपदार्थकीभी अज्ञातसत्ताहै । औ अनात्मघटादिकनकी रज्जुसर्पादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिक सत्ताहै । ओ दृष्टिसृष्टिवादमैं कोई अनात्मवस्तु प्रमाणका विषय नहीं । किंतु ब्रह्मही वेदांतरूप शब्दप्रमाणका विषयहै । अचेतनपदार्थ सारे साक्षिभास्यहैं । तिनमैं चाक्षुषतादिकप्रतीति भ्रमरूपहै । प्रमाणप्रमेयविभागभी स्वप्नकी नांई अध्यस्तहै । औ सृष्टिदृष्टिवादमैं अनात्मपदार्थघटादिक प्रमाणके विषयहैं । तैसैं गुरुशास्त्रादिकभी व्यावहारिकहैं, शुक्तिरजतादिकनतैं विलक्षणहैं । व्यावहारिक रजतादिक पदार्थनसैं कटुकादिरूप प्रयोजनसिद्धि होवैहै, प्रातिभासिकसैं प्रयोजन सिद्धि होवै नहीं तथापि अधिष्ठानज्ञानसैं निवृत्ति दोनूंकी समान होवैहै । औ सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्वभी दोनूंमैं समानहै । तैसैं स्वाधिकरणमैं त्रैकालिक अभावभी दोनूंका समानहै । यातैं प्रातिभासिककी

नांई व्यावहारिक पदार्थभी मिथ्याहैं । यातैं सृष्टिदृष्टिवादमैंभी अद्वैतकी हानि नहीं ॥

मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्वमैं शंकासमाधान । उक्तदोनूंपक्षविषै मिथ्यापदार्थनके मिथ्यात्वधर्ममैं द्वैतवादिनका आक्षेप ॥ ७८ ॥

या प्रसंगमैं यह शंकाहैः– दृष्टिसृष्टिवादमैं तथा सृष्टिदृष्टिवादमैं सकलअनात्म मिथ्याहै, यामैं विवाद नहीं । परंतु मिथ्यापदार्थनमैं मिथ्यात्व धर्महै । तामैं द्वैतवादी यह आक्षेप करैहैंः–प्रपंचमैं मिथ्यात्वधर्म सत्यहै, अथवा मिथ्याहै ? सत्य कहैं तौ चेतनभिन्नअनात्मधर्मकूं सत्यता होनेतैं अद्वैतकी हानि होवैगी । औ मिथ्याकूं मिथ्या कहै तौभी अद्वैतकी हानि होवैगी । तथाहि मिथ्यापदार्थकूं स्वविरोधिपदार्थकी प्रतिक्षेपकता नहीं होनेतैं प्रपंचके मिथ्याभूतमिथ्यात्वतैं ताकी सत्यताका प्रतिक्षेप नहीं होवैगा। जैसैं एकही ब्रह्ममैं सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्वधर्महै । मिथ्याभूतसप्रपंचत्वधर्मतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं । किंतु सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनूं धर्मवाला ब्रह्महै । कल्पित सप्रपंचत्वहै, औ पारमार्थिक निष्प्रपंचत्वहै । तैसैं प्रपंचमैं कल्पितमिथ्यात्वहै औ पारमार्थिकसत्यत्वहै । इसरीतिसैं प्रपंचके पारमार्थिकसत्यत्वधर्मके सद्भावतैं अद्वैतकी हानि होवैगी ॥

उक्त आक्षेपका अद्वैतदीपिकाउक्तसमाधान ॥ ७९ ॥

इस आक्षेपका अद्वैतदीपिकामैं यह समाधान लिखाहैः–"सन् घटः" इसरीतिसैं घटादिकनमैं सत्यता प्रतीत होवैहै, सो अधिष्ठानगत सत्यताका घटादिकनमैं भान होवैहै । अथवा अधिष्ठानगत सत्यताका घटादिकनमैं अनिर्वचनीयसंबंध उपजैहै । घटादिकनमैं सदसद्विलक्षणतारूप मिथ्यात्वधर्म श्रुतिसिद्धहै । सद्विलक्षणमैं मिथ्यात्व होनेतैं मिथ्यात्वका-सत्यत्वसैं विरोधहै। यातैं घटादिकनमैं अपनी सत्यता नहीं। ताका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै । औ जो द्वैतवादी कहैहै । मिथ्यात्वधर्मकूं सत्यता मानें विना मिथ्याभूतमिथ्यात्वसैं प्रपंचकी सत्यताका प्रतिक्षेप संभवै

नहीं। जो मिथ्याभूत धर्मसैंभी स्वविरोधिधर्मका प्रतिक्षेपकहै। तौ मिथ्याभूत सप्रपंचत्वतैं ब्रह्मकी निष्प्रपंचताकाभी प्रतिक्षेप हुआ चाहिये। यह कथन अयुक्तहै। काहेतैं यह नियमहैः—प्रमाणसिद्ध एकधर्मतैं स्वसमानसत्तावाले धर्मीके स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै। जहां धर्मीकी विषम सत्ता होवै ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं। ब्रह्मका सप्रपंचत्व व्यावहारिकहै। औ ब्रह्म पारमार्थिकहै। यातैं सप्रपंचत्वके समानसत्तावाला धर्मी ब्रह्म नहीं। ताके निष्प्रपंचत्वका सप्रपंचत्वसैं प्रतिक्षेप होवै नहीं। औ व्यावहारिक प्रपंचमैं मिथ्यात्वभी व्यावहारिकहै। काहेतैं, आगंतुकदोषरहित केवल अविद्याजन्यप्रपंच औ मिथ्यात्वहै। यातैं दोनूं व्यावहारिक होनेतैं मिथ्यात्वके समानसत्तावाला प्रपंचहै। ताके सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै। औ सत्यधर्मतैंही विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप मानै तौ "रजतं सत्" इसरीतिसैं शुक्तिरजतमैं सत्यत्व प्रतीत हुयेका रजतके मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप नहीं हुआ चाहिये। काहेतैं कल्पितरजतमैं मिथ्यात्वधर्मभी कल्पितहै, सत्य नहीं। यातैं विरोधी धर्मके प्रतिक्षेपमैं प्रतिक्षेपकधर्मकी सत्यता अपेक्षित नहीं। किंतु जा धर्मीके धर्म विरोधी होवै सो धर्मी प्रतिक्षेपकधर्मके समानसत्तावाला चाहिये। यातैं ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वके प्रतिक्षेपकी आपत्ति नहीं। औ प्रपंचके व्यावहारिकमिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवैहै॥

मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्वधर्ममैं प्रकारांतरसैं द्वैतवादिनका आक्षेप॥ ८०॥

औ प्रकारांतरसैं द्वैतवादी आक्षेप करैहैः—तथाहि प्रपंचमैं मिथ्यात्वधर्मकूं मिथ्या मानैं तौभी प्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं। काहेतैं समानसत्तावाले धर्मनका विरोध होवैहै। विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै नहीं। जो विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै, तौ शुक्तिमैं प्रातिभासिकरजततादात्म्यतैं व्यावहारिक रजतभेदका प्रतिक्षेप हुआ चाहिये। इसप्रकारतैं प्रपंचके व्यावहारिकमिथ्यात्वतैं पारमार्थिक

सत्यत्वके प्रतिक्षेपका असंभव होनेतैं प्रपंच सत्यहै; यातैं अद्वैतका असंभवहै ॥

उक्तआक्षेपके उक्तही समाधानकी घटता ॥ ८१ ॥

या शंकाकाभी उक्तही समाधानहै । काहेतैं पूर्वउक्तरीतिसैं सर्परजतादिकनके मिथ्यात्वतैं तिनके सत्यत्वका प्रतिक्षेप नहीं हुआ चाहिये । यातैं प्रमाणनिर्णीतधर्मतैं विरोधीधर्मकी प्रतिक्षेपकतामैं प्रमाणनिर्णीतत्व प्रयोजकहै । रजतका मिथ्यात्व प्रमाणनिर्णीतहै ताके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेप कहै तैसैं प्रपंचका मिथ्यात्वभी श्रुत्यादिप्रमाणोंतैं निर्णीतहै, तासैं प्रपंचसत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै । शुक्तिमैं रजतका तादात्म्यभ्रम सिद्धहै, प्रमाणनिर्णीत नहीं । तासैं रजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं । उलटा शुक्तिमैं रजतभेदही प्रमाणनिर्णीतहै । तासैं रजततादात्म्यका प्रतिक्षेप होवैहै। औ प्रपंचके मिथ्यात्वकूं व्यावहारिक मानिकै ताके धर्मीप्रपंचकूं सत्य कहना सर्वथा विरुद्धहै । काहेतैं व्यावहारिकधर्मका आश्रय व्यावहारिकही संभवैहै । यातैं द्वैतवादीका द्वितीय आक्षेपभी असंगतहै ॥

अद्वैतदीपिकाउक्त समाधानका सत्ताके भेद मानैं संभव औ एक सत्ता मानैं असंभव॥ ८२ ॥

इसरीतिसैं अद्वैतदीपिकाग्रंथकी रीतिसैं प्रतिक्षेपकधर्मके समानसत्तावाला धर्मी होवै, ताके विरोधीधर्मका प्रतिक्षेप होवैहै । ऐसा नियम मानैं प्रपंचके मिथ्याभूतमिथ्यात्वतैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवैहै । औ ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; परंतु सत्ताभेद मानैं अद्वैतदीपिकाउक्त समाधान संभवैहै । औ ब्रह्मरूपसत्ताकाही घटादिकनमैं भान होवैहै, व्यावहारिक प्रातिभासिक पदार्थनमैं भिन्न सत्ता नहीं । या पक्षमैं एक सत्ता मानैं उक्तसमाधान संभवै नहीं ॥

उक्त आक्षेपका निश्चलदासउक्त समाधान ॥ ८३ ॥

किंतु अस्मत्भावनासैं यह समाधानहै:—प्रमाणनिर्णीतधर्मसैं स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै । औ दोनूं धर्म प्रमाणनिर्णीत होवै, तहां अपरधर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं । प्रपंचका मिथ्यात्व श्रुत्यादिप्रमाणसैं निर्णीतहै ।

औ प्रपंचके सत्यत्वमैं कोई श्रुतिवचन प्रमाण नहीं । उलटा श्रुतिवाक्यनतैं सत्यत्वका अभाव प्रतीत होवैहै। यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका बाध होवैहै "घटः सन्" इसरीतिसैं प्रत्यक्षप्रमाणतैं यद्यपि प्रपंचमैं सत्यत्व प्रतीत होवैहै । तथापि अपौरुषेयश्रुतिवचनतैं पुरुषप्रत्यक्ष दुर्बलहै । यातैं प्रपंचका सत्यत्व प्रमाणासिद्ध नहीं । औ ब्रह्मका सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनूं प्रमाणसिद्धहैं । यातैं एकधर्मसैं अपरका बाध होवै नहीं । परंतु निष्प्रपंचत्वज्ञानसैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवैहै । यातैं निष्प्रपंचत्वप्रतिपादनमैं श्रुतिका तात्पर्यहै । औ अद्वैत निष्प्रपंच ब्रह्मके बोधका उपयोगी सप्रपंचका निरूपणहै । यातैं सप्रपंचत्वनिरूपणमैं श्रुतितात्पर्यके अभावतैं सप्रपंचत्व पारमार्थिक नहीं । किंतु कल्पितहै । परंतु दोषादिकरहित केवल अविद्याजन्य होनेतैं प्रातिभासिक नहीं व्यावहारिकहै । इसरीतिसैं निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाधही सिद्ध होवैहै । काहेतैं सप्रपंचत्वप्रतिपादक वचनका व्यावहारिक सप्रपंचत्वमैं तात्पर्य कहनेतैं सप्रपंचत्वका संकोच होवैहै । ब्रह्मका सप्रपंचत्व सदा नहीं, किंतु विद्यासैं पूर्व अविद्याकालमैं है । यातैं निष्प्रपंचत्वधर्मसैं बाध्य सप्रपंचत्वहै । तासैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप संभवै नहीं । यातैं द्वैतवादीका आक्षेप असंगतहै ॥

उक्तआक्षेपका अन्यग्रंथकारउक्त समाधान ॥ ८४ ॥

औ नृसिंहाश्रमाचार्यसैं अन्यग्रंथकारोनैं उक्त आक्षेपका यह समाधान कहाहैः—स्वाश्रयगोचर तत्वसाक्षात्कारतैं जिसधर्मका बाध नहीं होवै, तिस धर्मतैं विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै । औ स्वाश्रयगोचर तत्वसाक्षात्कारतैं जिस धर्मका बाध होवै तिसतैं स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं । मिथ्यात्वका आश्रय जो प्रपंच ताके अधिष्ठान ब्रह्मगोचरतत्वसात्क्षात्कारतैं प्रपंचके मिथ्यात्वका बाध होवै नहीं । उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारतैं प्रपंचमैं दृढतर मिथ्यात्वबुद्धि होवैहै । यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वसैं तिसके विरोधि सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै। औ सप्रपंचत्वका आश्रय ब्रह्महै; ताके साक्षात्कारतैं सप्रपंचत्वका बाध होवैहै । यातैं ब्रह्मके निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका

बाध होवैहै । जैसैं शुक्तिमैं स्वतादात्म्यहै औ कल्पितकाभी स्वअधिष्ठानमैं तादात्म्य होनेतैं रजततादात्म्यहै; तहां शुक्तिसाक्षात्कारतैं शुक्तितादात्म्यका बाध होवै नहीं । यातैं शुक्तितादात्म्यसैं स्वविरोधी शुक्तिभेदका प्रतिक्षेप होवैहै । शुक्तिसाक्षात्कारतैं रजततादात्म्यका बाध होवैहै । यातैं रजततादात्म्यसैं स्वविरोधिरजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं । तैसैं प्रपंचके मिथ्याभूतमिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै । औ ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं । इसरीतिसैं द्वैतवादीके आक्षेपके अनेक समाधानहैं । तिनके वचनोंसैं जिज्ञासूकूं विमुखता करनी योग्यहै ॥

मतभेदसैं पांचप्रकारका प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप (तिरस्कार)

तत्वशुद्धिकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८५ ॥

प्रपंचके मिथ्यात्वतैं ताके सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै । यह कहा:—तहां सत्यत्वका प्रतिक्षेप मतभेदसैं पांच प्रकारकाहै । तत्वशुद्धिकारके मतमैं "घटः सन्" इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञानका विषय घटादिकनका अधिष्ठान सत्‌रूप चेतनहै । औ सत्‌रूपचेतनमैं अध्यस्त घटादिक अपने अधिष्ठानसैं अभिन्न होयकै भ्रमवृत्तिके विषय होवैहैं । जैसैं शुक्तिरज्जुआदिकनकूं विषय करनेवाली इदमाकार चाक्षुषवृत्ति होवैहै, औ रजतसर्पादिक चाक्षुषवृत्तिके विषय नहीं; किंतु भ्रमवृत्तिके विषयहैं । तैसैं नेत्रादिप्रमाणजन्य सकलज्ञानोंका विषय अधिष्ठानसत्ताहै । घटादिगोचर प्रमाणजन्यवृत्ति होवै नहीं, काहेतैं अज्ञातगोचरप्रमाण होवैहै । औ जडपदार्थकूं अज्ञानकृत आवरणके असंभवतैं अज्ञातत्वके अभावतैं प्रमाणगोचरता संभवै नहीं । यातैं रजतसर्पादिकनकी नांई भ्रमके विषय घटादिकहैं । तिनका अधिष्ठान सत्‌रूपहै । सोई नेत्रादिप्रमाणजन्यवृत्तिका विषयहै । इसरीतिसैं सकलप्रमाणका विषय सत्‌रूपचेतनहै । सत्‌रूपचेतनमैं तादात्म्यसैं अनेकभेदविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति भ्रमरूपहै । यातैं घटादि-

कनमैं सत्ता किसी प्रमाणका विषय नहीं। इसीवास्तै घटादिकनके मिथ्यात्वकूं अनेक श्रुतिस्मृति अनुवाद करैहै। तत्वशुद्धिकारनैं इसरीतिसैं नेत्रादिप्रमाणका गोचर अधिष्ठानसत्ता कहीहै। घटादिकनकी सत्ता नेत्रादिप्रमाणका गोचर नहीं। यातैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप कहाहै ॥ औ ॥

अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८६ ॥

कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:— " घटोऽस्ति " इत्यादिकप्रतीतिका गोचर घटादिकनका सत्त्वहै। औ श्रुति, युक्ति ज्ञानीके अनुभवतैं घटादिकनमैं मिथ्यात्वहै। तहां अबाधितत्वरूप सत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं घटादिकनमैं जातिरूप सत्त्वहै। जैसैं सकल घटनमैं अनुगत धर्म घटत्वहैं। तैसैं " सन् घटः, सन् पटः" इस एकाकारप्रतीतिका गोचर सकलपदार्थनमैं अनुगतधर्म जातिरूप सत्त्वहै। अथवा देशकालके संबंधविना तो घटादिकनकी प्रतीति होवै नहीं। देशकालके संबंधविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति होवैहै। " इह घटोऽस्ति। इदानीं घटोऽस्ति " इसरीतिसैं देशसंबंधकूं औ कालसंबंधकूं घटादिगोचर प्रतीतिविषय करैहै। सो देशसंबंधरूप वा कालसंबंधरूपही घटादिकनमैं सत्त्वहै, अथवा घटादिकनका स्वरूपही " घटोऽस्ति " या प्रतीतिका विषयहै। घटादिकनसैं पृथक् सत्त्वकूं उक्तप्रतीति विषय करै नहीं। काहेतैं, नशब्दरहित वाक्यसैं जाकी प्रतीति होवै, नशब्दसहित वाक्यसैं ताका निषेध होवैहै; औ " घटो नास्ति " या वाक्यतैं घटके स्वरूपका निषेध होवैहै; यह सर्वकूं संमतहै। यातैं " घटोऽस्ति " या नशब्दरहित वाक्यतैं घटके स्वरूपमात्रका बोधही मानना उचित है। इसरीतिसैं " घटोऽस्ति " इस प्रतीतिका गोचर घटका स्वरूपहै, यातैं स्वरूपसैं अतिरिक्त घटादिकनमैं सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहैहै ॥

न्यायसुधाकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८७ ॥

औ न्यायसुधाकारके मतमैं अधिष्ठानगत सत्ताका संबंध घटादिकनमैं उक्तप्रतीतिका गोचरहै। तत्वशुद्धिकारके मतमैं तो घटादिकअनात्मगोचरप्रतीति प्रमाणजन्य नहीं। केवल अधिष्ठानसत्तागोचर प्रमाणहैं।

औ या मतमैं अधिष्ठानसत्ताका संबंधविशिष्टघटादिकप्रमाणके विषयहैं। इतना भेदहै। इसरीतिसैं घटादिकनमैं अधिष्ठानसत्ताका संबंध होनेतैं घटादिकमैं सत्त्व प्रतीत होवैहै। औ घटादिकमैं सत्त्वके अभावतैं ताका प्रातिक्षेप कहियेहै। औ अधिष्ठानसत्ताकी प्रतीति घटादिकनमैं मानै तौ अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैहै। यातैं अधिष्ठानसत्ताका अनिर्वचनीय संबंध घटादिकतैं उपजैहै, यह कहनाहीं उचितहै॥

अन्यआचार्यकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप॥ ८८॥

औ कोई आचार्य इसरीतिसैं सत्त्वका प्रतिक्षेप कहैहैं:—श्रुतिमैं यह कहाहै:—"प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्" प्राणशब्दका अर्थ हिरण्यगर्भहै। प्राण कहिये हिरण्यगर्भ सत्यहै। ताकी अपेक्षातैं परमात्मा उत्कृष्ट सत्यहै। यह श्रुतिका अर्थहै। "सत्यस्य सत्यम्" इसरीतिसैं अन्यश्रुतिहै। अनात्मसत्यतासैं आत्मसत्यता उत्कृष्टहै। यह श्रुतिका अर्थहै। जैसैं अन्यराजाकी अपेक्षातैं उत्कृष्टराजाकूं राजराज कहैहैं, तैसैं उत्कृष्टसत्यकूं "सत्यका सत्य" कहाहै। इसरीतिसैं श्रुतिवाक्यनमैं सत्यके उत्कर्ष अपकर्ष कहेहैं। तहां अन्यविध उत्कर्ष अपकर्ष तो संभवै नहीं। सर्वदा अबाध्यत्व औ किंचित्काल अबाध्यत्वरूपही सत्यत्वमैं उत्कर्ष अपकर्षहैं। अनात्मपदार्थनमैं ज्ञानतैं पूर्वकालमैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्वहै। औ परमात्म वस्तुमैं सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्वहै। यातैं हिरण्यगर्भ तौ अपकृष्ट सत्य हैं। औ परमात्मा उत्कृष्ट सत्यहै। इसरीतिसैं द्विविध सत्यत्व श्रुतिसंमत है। तिनमैं किंचित्काल अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध नहीं। किंतु सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनैतैं ताका प्रपंचके मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै॥

संक्षेपशारीरककी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप॥ ८९॥

औ संक्षेपशारीरकमैं यह कह्याहै:—यद्यपि प्रत्यक्षादिप्रमाणसैं घटादिकनमैं सत्यत्व प्रतीत होवैहै। तथापि ब्रह्मबोधक वाक्यनमैंही प्रमाणताहै अनात्मग्राहक प्रत्यक्षादिक प्रमाणाभासहैं, प्रमाण नहीं। काहेतैं

अज्ञातअर्थके बोधका जनक प्रमाण होवैहै । अज्ञानकृत आवरणका जडपदार्थमैं असंभव होनेंतैं चेतनभिन्नमैं अज्ञातत्वके अभावतैं तिनके बोधक प्रत्यक्षादिकनकूं प्रमाणता संभवै नहीं । इसरीतिसैं प्रमाणाभासतैं घटादिकनमैं सत्यत्वकी सिद्धि होवैहै । औ श्रुतिरूप प्रमाणतैं घटादिकनमैं मिथ्यात्वकी सिद्धि होवैहै । मुख्यप्रमाणतैं प्रमाणाभासके बोधद्वारा सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै। इसरीतिसैं प्रपंचमैं अत्यंत अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका पंचप्रकारसैं प्रतिक्षेप कहाहै । यातैं प्रपंच मिथ्याहै ॥

कर्मकूं ज्ञानकी साधनताविषै विचार ॥

मिथ्याप्रपंचकी निवृत्तिमैं कर्मके अनुपयोगके अनुवादपूर्वक सिद्धांतकी द्विविध समुच्चयका निर्द्धार ॥ ९० ॥

मिथ्याकी निवृत्तिमैं कर्मका उपयोग नहीं । यातैं केवल कर्मतैं या कर्मसमुच्चितज्ञानतैं अनर्थनिवृत्ति संभवै नहीं । केवल ज्ञानतैं अनर्थनिवृत्ति होवैहै । यह अर्थ अद्वैतवादके ग्रंथनमैं अतिप्रसिद्धहै । औ भाषामैंभी विचारसागरके षष्ठतरंगमैं स्पष्टहै। यातैं लिखा नहीं। या स्थानमैं यह सिद्धांतहैः—अनेक श्रुतिस्मृतिमैं कर्मसमुच्चित ज्ञानसैं मोक्षप्राप्ति कहीहै । औ भाष्यकारनैं बहुत स्थानमैं समुच्चयवादका निषेधप्रतिपादन कहाहै । तहां यह निर्धारहैः— समसमुच्चय औ क्रमसमुच्चयभेदसैं समुच्चय दो प्रकारका होवैहै । ज्ञान औ कर्म दोनूं परस्पर मिलिकै मोक्षके साधन जानिकै एक कालमैं दोनूंका अनुष्ठान **समसमुच्चय** कहियेहै । औ एकही अधिकारीकूं पूर्वकर्मानुष्ठान औ उत्तरकालमैं सकलकर्म त्यागिकै ज्ञानहेतुश्रवणादिकनका अनुष्ठान **क्रमसमुच्चय** कहियेहै । तिनमैं समसमुच्चयका तो निषेधहै। औ श्रुतिस्मृतिमैं ज्ञानकर्मका जहां समुच्चय लिखाहै, ताका पूर्वउक्त क्रमसमुच्चयमैं तात्पर्यहै ॥

भाष्यकारउक्तनकी साधनता ॥ ९१ ॥

भाष्यकारका यह सिद्धांतहैः—मोक्षका साक्षात्साधन कर्म नहीं । किंतु मोक्षका साक्षात्साधन ज्ञानहै । औ ज्ञानका साधन कर्महै परंतु ॥

वाचस्पतिउक्त जिज्ञासाकी साधनता ॥ ९२ ॥

भामतीनिबंधमैं वाचस्पतिनैं तौ यह कहाहैः—ज्ञानके साक्षात्साधन कर्म नहीं । किंतु जिज्ञासाके साधन कर्महैं । काहेतैं कैवल्यशाखामैं सकलआश्रमकर्म विविदिषाके साधन स्पष्ट कहेहैं । वेदनकी इच्छाकूं विविदिषा कहैहै । औ तृतीयाध्यायमैं सर्वकर्मनकी अपेक्षा ज्ञानमैं सूत्रकारनैं कहीहै । तहां सूत्रके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं यह कहाहैः—शमदमादिक साधन तो ज्ञानके साधनहै, यातैं ज्ञानके समीपहै । औ जिज्ञासाके साधन कर्महैं, यातैं शमदमादिकनकी अपेक्षातैं ज्ञानके दूरहैं । इसरीतिसैं श्रुतिवचनतैं औ भाष्यवचनतैं जिज्ञासाके साक्षात्साधन कर्महै, औ जिज्ञासाद्वारा ज्ञानके साधनहै । जो ज्ञानके साक्षात्साधनही कर्म कहैं, तौ ज्ञानके उदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी प्राप्ति होनेतैं साधनसहित कर्मत्यागरूप संन्यासका लोप होवैगा ।यातैं जिज्ञासाके साधन कर्महै । यह वाचस्पतिका मतहै । औ ॥

विवरणकारउक्त कर्मकूं ज्ञानकी साधनता ॥ ९३ ॥

विवरणकारका यह मतहैः—यद्यपि "वेदानुवचनेन विविदिषंति" इसरीतिसैं श्रुतिमैं कहाहै । तहां अक्षरमर्यादासैं वेदाध्ययनादिकधर्मनकूं विविदिषाकी साधनता प्रतीत होवैहैं; तथापि इच्छाके विषयज्ञानकी साधनतामैंही श्रुतिका तात्पर्यहै । कर्मनकूं इच्छाकी साधनतामैं श्रुतिका तात्पर्य नहीं । जैसैं "अश्वेन जिगमिषति" इसवाक्यतैं अक्षरमर्यादासैं गमनगोचर इच्छाकी साधनता अश्वकूं प्रतीत होवैहै । औ "शस्त्रेण जिघांसति" इसवाक्यतैं हननगोचर इच्छाकी साधनता शस्त्रकूं प्रतीत होवैहै । तहां इच्छाका गोचर जो गमन ताकी साधनता अश्वमैं अभिप्रेतहै; औ इच्छाका विषय हननकी साधनता शस्त्रमैं अभिप्रेतहै; तैसैं इच्छाके विषयज्ञानकी साधनता कर्मनकूं अभिप्रेतहै । और या पक्षमैं दोष कहाहैः—कर्मनकूं ज्ञानकी साधनता मानैं ज्ञानउदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी आपत्ति होनेतैं संन्यासका लोप होवैगा । ताका यह समाधानहैः—जैसैं बीजप्रक्षेपतैं पूर्व तो भूमिका कर्षण होवैहै ।औ बीजप्रक्षेपतैं उत्तरकालमैं भूमिका आकर्षण होयके व्री-

हिआदिकनकी सिद्धि कर्षणआकर्षणतैं होवैहै । तैसैं कर्म औ कर्मसंन्यासतैं ज्ञानकी सिद्धि होवैहै । अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा प्रत्यक्तत्वकी तीव्र जिज्ञासा वैराग्यसहित होवै तबपर्यंत कर्म कर्तव्यहै । औ वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासाके उत्तरकालमैं साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्यहै। इसरीतिसैं ज्ञानके साधन कर्महै । तथापि तीव्र जिज्ञासातैं उत्तरकालमैं संन्यासके अंग शमादिकही कर्तव्यहै । कर्म नहीं । यातैं कर्मकी अपेक्षातैं शमादिकनकूं अंतरंगताप्रतिपादक तृतीयाध्यायस्थ भाष्यवचनसैं विरोध नहीं । इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं ज्ञानके साधन कर्महै । औ वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाके साधनहै । औ दोनूं मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैं कर्मका अनुष्ठान औ उत्तरकालमैं शमादिसहित संन्यासपूर्वक श्रवणादिकनका अनुष्ठानहै । विविदिषातैं उत्तर कालमैं किसीके मतमैं कर्म कर्त्तव्य नहीं ॥

वाचस्पति औ विवरणकारके मतकी विलक्षणतामैं शंका ॥ ९४ ॥

या स्थानमैं यह शंका होवैहै, दोनूं मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैंही कर्म कर्त्तव्य होवै, तौ मतभेदनिरूपण निष्फल होवैगा । काहेतैं वाचस्पतिके मतमैं कर्मका फल विविदिषाहै । औ विवरणकारके मतमैं कर्मका फल ज्ञानहै । फलकी सिद्धि हुये साधनका त्याग होवैहै । यातैं वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं औ विवरणकारके मतमैं विविदिषातैं उत्तरकालमैंभी ज्ञानकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं तौ दोनूं मतनमैं विलक्षणता संभवै । वाचस्पतिके मतानुसारी जिज्ञासू कर्मका त्याग करै औ विवरणकारके मतानुसारी ज्ञानसैं पूर्व जिज्ञासू कर्मका अनुष्ठान करै, तौ मतभेदनिरूपण सफल होवै। औ पूर्वउक्तरीतिसैं दोनूं मतमैं विविदिषाकी सिद्धिसैं कर्मका त्याग मानैं परस्पर विलक्षणता प्रतीत होवै नहीं । यातैं मतभेदनिरूपण निष्फलहै ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ ९५ ॥

ताका यह समाधानहैः—यद्यपि दोनूं मतमैं विविदिषापर्यंतही कर्मका

अनुष्ठानहै, तथापि मतभेदसैं कर्मके फलमैं विलक्षणताहै । तथाहि । वाचस्पतिके मतमैं कर्मका फल विविदिषाहै । विविदिषाकी उत्पत्ति हुये कर्मजन्यअपूर्वका नाश होवैहै ॥ विविदिषा हुयेभी उत्तमगुरुलाभादिक सामग्री होवै तौ ज्ञान होवै, किसी साधनकी विकलता हुये ज्ञान होवै नहीं । कर्मका व्यापार विविदिषाकी उत्पत्तिमैंहै । औ तत्वज्ञान कर्मका फल नहीं । यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिमैं कर्मका व्यापार नहीं । इसरीतिसैं वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाहेतु कर्मका अनुष्ठान करैभी ज्ञानकी सिद्धि नियमतैं होवै नहीं; किंतु उत्तमभाग्यतैं सकलसामग्रीकी सिद्धि होवै तौ ज्ञान होवैहै । यातैं ज्ञानकी प्राप्ति अनियतहै । औ विवरणकारके मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैं अनुष्ठितकर्मकाभी ज्ञान फलहै । यातैं फलकी उत्पत्तिविना कर्मजन्य अपूर्वका नाश नहीं होनेतैं ज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत कर्मजन्य अपूर्व रहैहै । जितनी सामग्रीविना कर्मका फल ज्ञान होवै नहीं । उतनी सामग्रीकूं कर्म संपादन करैहै । इसरीतिसैं या पक्षमैं ज्ञानहेतु कर्मका अनुष्ठान करैं । वर्त्तमान शरीरमैं वा भाविशरीरमैं अवश्यज्ञान होवैहै । यातैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियतहै । या प्रकारतैं वाचस्पतिके मतमैं शुभकर्मतैं विविदिषा नियमतैं होवैहै, औ ज्ञानकी सिद्धि अनियतहै । विवरणकारके मतमैं तिसी कर्मसैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियमतैं होवैहै । यातैं दोनूं मतका परस्पर भेदहै, संकर नहीं । विविदिषाके हेतु कर्म होवैं अथवा ज्ञानके हेतु होवैं, दोनूं रीतिसैं वेदाध्ययनयज्ञदानकृच्छ्रचांद्रायणादिक आश्रमकर्मनकाही विद्यामैं उपयोगहै ॥

कोई आचार्यकी रीतिसैं वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामैं अनुपयोग ९६॥

वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामैं उपयोग नहीं । इसरीतिसैं कोई आचार्य कहैहैं । औ ॥

कल्पतरुकारकी रीतिसैं सकल नित्यकर्मनका विद्यामैं उपयोग ॥ ९७ ॥

कल्पतरुकारका यह मतहैः—सकल नित्यकर्मनका विद्यामैं उपयोगहै।

काहेतैं सूत्रकारनैं औ भाष्यकारनैं आश्रमरहित पुरुषनकाभी विद्याहेतु कर्ममैं तथा श्रवणादिकनमैं अधिकार कहाहै। तैसैं रैक्कवाचक्नवी आदिक आश्रमरहितनमैंभी ब्रह्मविद्या श्रुतिमैं कहीहै। वाचक्नवीपुत्री गार्गीकूं वाचक्नवी कहैहैं। जो आश्रमधर्मनकाही विद्यामैं उपयोग होवै तौ आश्रमरहित पुरुषनमैं ज्ञानसंपादककर्मके अभावतैं ज्ञान नहीं चाहिये। यातैं जपगंगास्नानदेवताध्यानादिसहित सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोगहै। यह कल्पतरुकारका मतहै। परंतु कल्पतरूकारके मतमैंभी काम्यकर्मका विद्यामैं उपयोग नहीं। किंतु नित्यकर्मकाही विद्यामैं उपयोगहै। काहेतैं, अन्यप्रकारसैं तौ विद्यामैं कर्मका उपयोग संभवै नहीं। विद्याके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वाराही विद्यामैं कर्मका उपयोग होवैहै। औ काम्यकर्मतैं स्वर्गपुत्रादिकनकी प्राप्तिरूप फल होवैहै। तिनतैं पापकी निवृत्ति होवै नहीं। नित्यकर्मतैंही पापकी निवृत्ति होवैहै। यातैं सकलनित्यकर्मका विद्यामैं उपयोगहै॥

संक्षेपशारीरककर्त्ताकी रीतिसैं काम्य औ नित्यसकलशुभकर्मका विद्यामैं उपयोग॥ ९८॥

औ संक्षेपशारीरककर्तानै यह कहाहैः—काम्य औ नित्य सकलशुभकर्मका विद्यामैं उपयोगहै। काहेतैं "यज्ञेन विविदिषंति" इसरीतिसैं कैवल्यशाखामैं कहाहै। तहां नित्यकाम्यसाधारण यज्ञशब्दहै "धर्मेण पापमपनुदति" इत्यादि वाक्यनतैं सकलशुभकर्मकूं पापकी नाशकता प्रतीत होवैहै। यातैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मकी नांई काम्यकर्मकाभी विद्यामैं उपयोगहै। यह संक्षेपशारीरककर्ता सर्वज्ञात्ममुनिका मतहै॥

संन्यासकी ज्ञानसाधनताविषै विचार। पापनिवृत्तिद्वारा ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रमकारि कर्म औ संन्यास दोनूंकी कर्त्तव्यता॥ ९९॥

यातैं तीव्रजिज्ञासापर्यंत सकलशुभकर्म कर्तव्यहै। दृढतर वैराग्यसहित

तीव्र जिज्ञासा हुये साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्त्तव्यहै । जैसैं शुभकर्मतैं पापकी निवृत्ति होवै, तैसैं संन्यासतैंभी ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति होवैहै । ज्ञानके प्रतिबंधक पाप अनेकविध होवैहैं । तिनमैं किसी पापकी निवृत्ति कर्मतैं औ किसीकी निवृत्ति संन्यासतैं होवैहै । यातैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा कर्म औ संन्यास दोनूं ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रमतैं कर्तव्य है । औ ॥

किसी आचार्यके मतमैं संन्यासकूं प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति औ पुण्यकी उत्पात्ति-द्वारा श्रवणकी साधनता ॥ १०० ॥

किसी आचार्यका यह मतहै:—केवल पापनिवृत्तिद्वाराही संन्यासकूं ज्ञानकी साधनता नहींहै; किंतु संन्यासजन्य अपूर्वसहित पुरुषकूंही श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवैहै । यातैं श्रवणका अंग संन्यास होनेतैं सर्वथा निष्पापकूंभी संन्यास कर्त्तव्यहै ॥

विवरणकारके मतमैं संन्यासकूं ज्ञानप्रतिबंधक-विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलकी हेतुता ॥ १०१ ॥

औ विवरणकारका यह मतहै:—संन्यासविना विक्षेपका अभाव होवै नहीं, यातैं ज्ञानप्रतिबंधकविक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलही संन्यासकाहै । यातैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्ति वा ज्ञानहेतुधर्मकी उत्पत्तिरूप अदृष्टफलका हेतु संन्यासहै । यह कथन अयोग्यहै । जहां दृष्टफल नहीं संभवै, तहां अदृष्टफलकी कल्पना होवैहै । औ विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफल संन्यासका संभवैहै । ताका अदृष्टफलकथन संभवै नहीं । औ किसी प्रधानपुरुषकूं आश्रमांतरमैंभी कामक्रोधादिरूप विक्षेपका अभाव होवै तौ कर्मछिद्रनमैं वेदांतका विचारसंभवतैं तौ यद्यपि उक्तरीतिसैं संन्यास व्यर्थ होवैहै । तथापि "आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया" इस गौडपादीयवचनतैं "तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्" इस भगवद्वचनतैं

" ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " इस श्रुतिवचनतैं निरंतर क्रियमाण ब्रह्म श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवैहै। जिसकी ब्रह्मविषै संस्था कहिये अनन्य-व्यापारतासैं स्थिति होवै सो पुरुष ज्ञानद्वारा अमृतभावकूं प्राप्त होवैहै। यह श्रुतिका अर्थहै। कर्मच्छिद्रकालमैं कदाचित् क्रियमाण श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै नहीं, औ निरंतर श्रवणादिकनके अभ्यासका हेतु संन्यासहै। यातैं अदृष्टविनाही दृष्टफलका हेतु संन्यासहै, तौभी व्यर्थ नहीं ॥

क्षत्रिय औ वैश्यके संन्यास औ श्रवणमैं अधिकारका विचार। क्षत्रिय औ वैश्यके संन्यास औ श्रवणमैं अधिकारके विचारकी प्रतिज्ञा ॥ १०२ ॥

या प्रसंगमैं क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं औ श्रवणमैं अधिकारहै; अथवा नहीं। यह विचार मतभेदसैं लिखेहैं:—

कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं संन्यासमैं तथा ब्रह्मश्रवणमैं ब्राह्मणकाही अधिकार, क्षत्रिय औ वैश्यका अनधिकार ॥ १०३ ॥

कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:—संन्यासविधायक बहुवाक्यनमैं ब्राह्मणपद होनेतैं ब्राह्मणमात्रका संन्यासमैं अधिकारहै। औ संन्यासविना गृहस्थादिकनकूं ब्रह्मविचारका अवकाश नहीं; यातैं संन्यासमैं तथा ब्रह्मश्रवणमैं क्षत्रिय वैश्यका अधिकार नहीं ॥

अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं संन्यासमैं केवल ब्राह्मणका अधिकार, क्षत्रिय औ वैश्यकूं संन्यासकूं छोडिकै केवल ब्रह्मश्रवणमैं अधिकार ॥ १०४ ॥

अन्यग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:—यद्यपि संन्यासमैं केवल ब्राह्मणका अधिकारहै; तथापि ब्रह्मश्रवणमैं क्षत्रियवैश्यकाभी अधिकारहै; परंतु जन्मांतरसंस्कारतैं जिस उत्तम पुरुषकूं विषयनमैं दीनतादिक दोष नहीं होवै, ऐसैं शुद्धबुद्धिवालेकूं संन्यासविना ज्ञान होवैहै। इसीवास्तै गृहस्थाश्रममैंही अनेक राजर्षि ब्रह्मवित् कहैहैं ॥

तिनसैं अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं क्षत्रियवैश्यका ब्रह्मश्रवणादिककी न्यांई विद्वत्संन्यासमैंभी अधिकार ॥ १०५ ॥

तिनसैं अन्यग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:—जैसैं ब्रह्मश्रवणादिकनमैं क्षत्रियवैश्यका अधिकारहै; तैसैं संन्यासमैंभी क्षत्रियवैश्यकूं निषेध नहीं। औ ज्ञानके उदयसैं कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धिका तथा जाति आश्रम अभिमानका अभाव होवैहै। कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धिविना औ जातिआश्रमके अभिमानविना कर्माधिकारके असंभवतैं सर्वकर्मपरित्यागपूर्वक अक्रिय असंग आत्मरूपसैं स्थितिरूप विद्वत्संन्यासमैंभी क्षत्रियवैश्यका अधिकारहै; केवल विविदिषासंन्यासमैं तिनका अधिकार नहीं। औ ॥

वार्तिककारके मतमैं विविदिषासंन्यासमैंभी क्षत्रियवैश्यका अधिकार ॥ १०६ ॥

वार्तिककारका यह मतहै:—विविदिषासंन्यासमैंभी क्षत्रियवैश्यका अधिकारहै। औ बहुत श्रुतिवाक्यनमैं यद्यपि ब्राह्मणकूं संन्यास कहाहै, तथापि संन्यासविधायक जाबालश्रुतिमैं ब्राह्मणपद नहींहै; केवल वैराग्य, संपत्तिसैं संन्यास कहाहै। यातैं अनेकश्रुतिवाक्यनमैं द्विजका उपलक्षण ब्राह्मणपदहै। औ स्मृतिमैं यह कहाहै:—"ब्राह्मणः क्षत्रियोऽवापि वैश्यो वा प्रव्रजेद्गृहात्। त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः" इसप्रकारके स्मृतिवचनतैंभी क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं अधिकारहै। यह वार्तिककार सुरेश्वराचार्यका मतहै ॥

और कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं ब्राह्मणके ज्ञानमैं संन्यासकी अपेक्षा औ क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासमैं अनधिकार औ विद्याके उपयोगी कर्ममैं अरु वेदांतश्रवणमैं अधिकार ॥ १०७ ॥

और कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:—संन्यासविधायक श्रुतिवाक्यनमैं ब्राह्मणपदहै, ताकूं द्विजमात्रका उपलक्षण कहनेमैं प्रमाण नहीं। जाबालश्रुतिमैं यद्यपि ब्राह्मणपद नहींहै; तथापि बहुत श्रुतिके अनुसारतैं तहांभी ब्राह्मणकर्ताका अध्याहारहै। यातैं क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं अधिकार

नहीं । परंतु अनेक स्थानमैं "गृहस्थराज्ञा ज्ञानवान्" कहेहैं । यातैं यह मानना चाहियेः—ब्राह्मणकूं ब्रह्मविचारका अंग संन्यासहै, संन्यासविना गृहस्थादिकआश्रमस्थ ब्राह्मणका ब्रह्मविचारमैं अधिकार नहीं । संन्यासी ब्राह्मणकाही ब्रह्मविचारमैं अधिकारहै । औ क्षत्रिय वैश्यका संन्यासविनाही ब्रह्मविचारमैं अधिकारहै । काहेतैं संन्यासविधायकवचनमैं ब्राह्मणपद होनेतैं, क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासकी विधि नहीं । औ आत्मकामकूं आत्मश्रवणका अभाव कहना संभवै नहीं । यातैं क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञानका उपयोगी अदृष्ट केवल कर्मतैंही होवैहै; संन्यासजन्य अदृष्टकी क्षत्रियवैश्यके ज्ञानमैं अपेक्षा नहीं । इसीवास्ते गीतामैं " कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः " इसरीतिसैं परमेश्वरनैं कहाहै । या वाक्यमैं अंतःकरणकी शुद्धि अथवा ज्ञानसंसिद्धिशब्दका अर्थहै, यह भाष्यकारनैं लिखाहै । संन्यासरहित केवल कर्मतैं अंतःकरणकी शुद्धिकूं जनकादिक प्राप्त हुयें अथवा संन्यासरहित केवल कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधकनिवृत्तिद्वारा श्रवणतैं ज्ञानकूं प्राप्त हुयें; यह गीतावाक्यका अर्थहै । दोनूं रीतिसैं क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासनिरपेक्ष केवल कर्मही ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्तिका हेतुहै । औ ब्राह्मणकूं संन्याससहित कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्ति होवैहै ।औ श्रवणका अंग संन्यासहै या पक्षमैंभी ब्राह्मणके श्रवणका अंग संन्यासहै । क्षत्रियवैश्यके श्रवणका अंग नहीं । किंतु फलाभिलाषारहित क्रोधादिदोषरहित ईश्वरार्पणबुद्धिसैं स्ववर्णाश्रमधर्मके अनुष्ठानसहित कर्मके अवकाशकालमैं श्रवणतैंही क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञान होवैहै । सर्वथा विद्याके उपयोगिकर्ममैं औ श्रवणमैं क्षत्रियवैश्यकाभी अधिकारहै । काहेतैं ब्राह्मणकी नांई ज्ञानार्थित्व क्षत्रियवैश्यकूंभी समहै । औ फलार्थिका साधनमैं अधिकार होवैहै । यातैं आत्मकाम क्षत्रियवैश्यका वेदांतश्रवणमैं अधिकारहै ॥

किसी ग्रंथकारके मतमैं शूद्रकूं श्रवणमैं अधिकार ॥१०८॥

यद्यपि मनुष्यमात्रकूं आत्मकामनाका संभव होनेतैं क्षत्रियवैश्यकी नांई

ज्ञानार्थित्वके सद्भावतैं शूद्रकूंभी उक्तरीतिसैं वेदांतश्रवणका अधिकार हुआ चाहियेः—तथापि "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इत्यादिक वचनतैं शूद्रकूं उपदेशका निषेधहै। औ सर्वथा उपदेशरहितपुरुषकूं विवेकादिकनका असंभव होनेतैं ज्ञानार्थित्व संभवै नहीं तैसैं। शूद्रकूं यज्ञादिकर्मकाभी निषेध होनेतैं, विद्योपयोगिकर्मके अभावतैं ताका ज्ञानहेतुश्रवणमैं अधिकार नहीं। यह किसी ग्रंथकारका मतहै॥

अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं शूद्रकाभी वेदभिन्न पुराण इतिहासादिरूप अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकमैं अधिकार॥१०९॥

अन्यग्रंथकारोंका यह मतहैः—उपनयनपूर्वक वेदका अध्ययन कहाहै। औ शूद्रका उपनयन कहा नहीं। यातैं वेदश्रवणमैं तो शूद्रका अधिकार नहींहै। तथापि " श्रावयेच्चतुरो वर्णान् " इत्यादिक वचनतैं इतिहासपुराणादिकनके श्रवणमैं शूद्रकाभी अधिकारहै। औ पूर्वउक्तवचनमैं शूद्रकूं उपदेशका निषेध कहाहै । ताका यह अभिप्रायहैः—वैदिक मंत्रसहित यज्ञादिककर्मउपदेश शूद्रकूं नहीं करै, तैसैं वेदोक्त प्राणादिक सगुणउपासनाका शूद्रकूं उपदेश नहीं करै, उपदेशमात्रका निषेध नहीं। जो उपदेशमात्रका निषेध होवै तौ धर्मशास्त्रमैं शूद्रजातिके धर्मका निरूपण निष्फल होवैगा। औ विद्योपयोगिकर्मके अभावतैं जो विद्यामैं अनधिकार कहैहैं। ताका यह समाधानहैंः—साधारण असाधारण सकल शुभ कर्मनका विद्यामैं उपयोगहै। औ सत्य, अस्तेय, क्षमा, शौच, दान, विषयतैं विमुखता, भगवन्नामोच्चारण, तीर्थस्नान, पंचाक्षरमंत्रराजादिकनका जप, इत्यादिक सकलवर्णके साधारण धर्मनमैं तथा शूद्रकमलाकरोक्त चतुर्थवर्णके असाधारण धर्मनमैं शूद्रका अधिकारहै, तिन कर्मनके अनुष्ठानतैं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा विद्याकी प्राप्ति संभवैहै। यातैं इतिहासपुराणादिकनके श्रवणतैं विवेकादिकनके संभवतै शूद्रकूंभी ज्ञानार्थित्व होनेतैं वेदभिन्न अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकनमैं शूद्रकाभी अधिकारहै । औ भाष्यकारनैंभी प्रथमाध्यायके तृतीयपादमैं यह कहाहैः—उपनयनपूर्वक

वेदका अध्ययन कहाहै । औ शूद्रकूं उपनयनके अभावतैं यद्यपि वेदमैं अधिकार नहींहै, तथापि पुराणादिकश्रवणतैं शूद्रकूंभी ज्ञान होयजावै, तौ ज्ञानसमकालही शूद्रकाभी प्रतिबंधरहित मोक्ष होवैहै । इसरीतिसैं भाष्यकारके वचनतैंभी वेदभिन्नज्ञानहेतु अध्यात्मग्रंथनके श्रवणमैं शूद्रका अधिकारहै । औ ॥

मनुष्यमात्रकूं भक्ति औ ज्ञानका अधिकार । अंत्यजादि मनुष्यनकूं तत्त्वज्ञानका अधिकार ॥ ११० ॥

जन्मांतरसंस्कारतैं अंत्यजातिकनकूंभी जिज्ञासा होयजावै, तौ पौरुषेयवचनतैं तिनकाभी ज्ञान होयकै कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवैहै । यातैं देवअसुरनकी नांई सकल मनुष्यनकूं तत्वज्ञानका अधिकारहै । आत्मस्वरूपके यथार्थज्ञानकूं तत्वज्ञान कहैहैं । आत्महीन कोई शरीर होवै तौ ज्ञानका अनधिकार होवै यातैं आत्मज्ञानकी सामर्थ्य मनुष्यमात्रमैंहै; परंतु ॥

तत्वज्ञानमैं दैवीसंपदाकूं अपेक्षापूर्वक मनुष्यमात्रकूं भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानके अधिकारका निर्द्धार ॥ १११ ॥

जा शरीरमैं दैवीसंपदा होवै, ताकूं तत्वज्ञान होवैहै । आसुरी संपदामैं तत्वज्ञान होवै नहीं । औ सर्वभूतनमैं दया, क्षमा, सत्य आर्जव संतोषादिक दैवीसंपदाका संभव ब्राह्मणमैं है, औ क्षत्रियका प्रजापालनार्थ प्रवृत्तिधर्म होनेतैं ब्राह्मणसैं किंचित् न्यून दैवीसंपदा संभवैहै । धर्मबुद्धिसैं प्रजासंरक्षणके अर्थ दुष्टप्राणीकी हिंसाभी अहिंसाहै । यातैं दैवीसंपदाका असंभव नहीं । तथा वैश्यकाभी कृषिवाणिज्यादिक शारीरव्यापार क्षत्रियसै अधिक होनेतैं, आत्मविचारमैं अवकाशका असंभवहोनैतैं, ताकूं सामर्थ्यका असंभवहै । तथापि कितनें भाग्यशाली वैश्यनकूं शारीरव्यापारविनाही सकलव्यवहारका निर्वाह होवैहै । तिनकूं दैवीसंपदाका लाभरूपसामर्थ्य संभवैहैं । औ जिन आचार्योंके मतमैं क्षत्रिय वैश्यकूं संन्यासका अधिकारहै; तिनके मतमैं तौ अनायासतैंही दैवीसंपदा संभवैहै । औ

चतुर्थवर्णमैं तथा अंत्यजादिकनमैं यद्यपि दैवीसंपदा दुर्लभहै, तथापि कर्मका फल अनंतविधहै । किसीकूं जन्मांतरके कर्ममैं दैवीसंपदाका लाभ होयजावै, तौ पुराणादिकनके विचारतैं चतुर्थवर्णकूं औ भाषाप्रबंधादिकनके श्रवणतैं अंत्यजादिकनकूंभी भगवद्भक्ति औ तत्वज्ञानके लाभद्वारा मोक्षका लाभ निर्विघ्न होवैहै । इसरीतिसैं भगवद्भक्ति औ तत्वज्ञानका अधिकार सकलमनुष्यनकूंहै । यह शास्त्रका निर्धारहै ॥

तत्त्वज्ञानतैं स्वहेतु अज्ञानकी निवृत्तिविषै शंका समाधान ॥

अज्ञानके कार्य्य अंतःकरणकी वृत्तिरूपतत्वज्ञानतैं ताके कारण अज्ञानकी निवृत्तिमैं शंका ॥ ११२ ॥

तत्वज्ञानतैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । यह अद्वैत ग्रंथनका सिद्धांतहै । औ जीवब्रह्मके अभेदगोचर अंतःकरणकी वृत्तिकूं तत्वज्ञान कहैहैं । अंतःकरणकूं अज्ञानकार्यता होनेतैं वृतिरूप तत्वज्ञानभी अज्ञानका कार्यहै औ कार्य कारणका परस्पर अविरोधही लोकमैं प्रसिद्धहै । यातैं तत्वज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति कहना संभवै नहीं ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ ११३ ॥

या शंकाका यह समाधानहैः— कार्यकारणका परस्पर अविरोधहै । यह नियम सामान्य है । औ समानविषयक ज्ञानाऽज्ञानका परस्पर विरोध है । यह विशेष नियमहैं । यातैं विशेष नियमतैं सामान्य नियमका बाध होवैहै । औ पटअग्निसंयोगतैं पटका नाश होवैहै । तहां संयोगका उपादानकारण दो होवैहै । यातैं पटभी उपादान कारणहै । तथापि अग्निसंयोगका औ पटका परस्पर नाश्यनाशकभावरूप विरोधहै, अविरोध नहीं । यातैं कार्यकारणका परस्पर अविरोधहै । यह नियम संभवै नहीं । यद्यपि वैशेषिकशास्त्रकी रीतिसैं अग्निसंयोगतैं पटका नाश होवै नहीं । काहेतैं अग्निसंयोगतैं पटारंभकतंतुवोंमैं क्रिया होवैहै । क्रियातैं तंतुविभाग होवैहै । विभागतैं पटके असमवायिकारण तंतुसंयोगका नाश होवैहै । तंतुसंयोगके नाशतैं पटका नाश होवैहै । इसरीतिसैं वैशेषिकमतमैं असमवायिकारणके

नाशतैं द्रव्यका नाश होवैहै। यातैं पटके नाशमैं तंतुसंयोगके नाशकूं हेतुता है। पटअग्निके संयोगकूं पटनाशमैं हेतुता नहीं। तथापि पूर्वउक्तक्रमतैं पटका नाश होवै, तौ अग्निसंयोगतैं पंचमक्षणमैं पटका नाश संभवै है।औ अग्निसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरकालमैं पटका नाश प्रतीत होवैहै।यातैं वैशेषिकमत असंगतहै। औ अग्निसंयोगतैं भस्मीभूत पटके अवयव संश्लिष्टही प्रतीत होवैहै। तैसैं मुद्गरसैं चूर्णीभूत घटका कपालविभागजन्य संयोगनाशविनाही नाश होवैहै। यातैं अवयवसंयोगके नाशकूं अवयवीके नाशमैं कारणताका असंभव होनेतैं तंतुसंयोगके नाशकूं पटनाशमैं कारणता नहीं। किंतु पटअग्निका संयोगही पटके नाशमैं कारणहै। औ पटअग्निके संयोगका अग्निसहित पट उपादानकारणहै। यातैं कार्यकारणका भी नाश्यनाशकभावविरोध प्रसिद्ध होनेतैं तिनका परस्पर अविरोधहै; यह नियम संभवै नहीं। इसरीतिसैं अविद्याजन्यवृत्तिज्ञानतैं कार्यसहित अविद्याका नाश होवैहै। परंतु॥

अविद्यालेशसंबंधी विचार॥

तत्वज्ञानसैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुये जीवन्मुक्ति विद्वान्‌के स्थितिकी शंका॥ ११४॥

सकल अविद्याका तत्वज्ञानसे नाश होवै तौ जीवन्मुक्त विद्वानके देहका तत्वज्ञानकालमैं अभाव हुआ चाहिये। काहेतैं उपादानकारण अविद्याका नाश हुयें कार्यकी स्थिति संभवै नहीं॥

उक्त शंकाका कोईक आचार्यकी रीतिसे समाधान॥ ११५॥

और कोई यह समाधान कहैहैं:—जैसैं धनुषका नाश हुयेंभी प्रक्षिप्त बाणकै वेगकी स्थिति रहैहै, तैसैं विद्वान्‌के शरीरकी स्थिति कारणका नाश हुयेंभी संभवैहै॥

उक्तसमाधानका असंभव॥ ११६॥

यह समाधानभी संभवै नहीं; काहेतैं, निमित्तकारणका नाश हुयें कार्यकी स्थिति रहैहै। उपादानका नाश हुयें कार्यकी स्थिति संभवै नहीं।

बाणके वेगका उपादानकारण बाणहै औ ताका निमित्तकारण धनुषहै; ताके नाशतैं बाणके वेगकी स्थिति संभवैहै। यातैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुयें विद्वान्‌के शरीरकी स्थितिका असंभव होनेतैं तत्वज्ञान हुयेंभी अविद्याका लेश रहै, यह ग्रंथकारोंनै लिखाहै॥

अविद्यालेशके तीन प्रकार॥ ११७॥

तहां मतभेदसैं अविद्याके लेशका स्वरूप तीनिप्रकारकाहै। जैसैं प्रक्षालित लशुनभांडमैं गंध रहैहै तैसै अविद्याकी संस्कारकूं अविद्यालेश कहैहैं। अथवा अग्निदग्धपटकी नांई स्वकार्यमैं असमर्थज्ञानबाधित अविद्याकूं अविद्यालेश कहैहैं। यद्वा आवरणशक्तिविक्षेपशक्तिरूप अंशद्वयवती अविद्याहै।तत्वज्ञानसैं आवरणशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवैहै औ प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंध होतें विक्षेपशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवै नहीं।तत्वज्ञानतैं उत्तरकालभी देहादिक विक्षेपका उपादान अविद्याअंशका शेष रहैहै। तासैं स्वरूपका आवरण होवै नहीं; ताहीकूं अविद्यालेश कहैहै। औ॥

प्रकृतअर्थमैं सर्वज्ञात्ममुनिका मत॥ ११८॥

सर्वज्ञात्ममुनिका तो यह मतहै:—तत्वज्ञानसैं उत्तरकालमैं शरीरादि प्रतिभास होवै नहीं। जीवन्मुक्तिप्रतिपादक श्रुतिवचनका स्वार्थमैं तात्पर्य नहीं। काहेतैं श्रवणविधिका अर्थवादरूप जीवन्मुक्तिप्रतिपादक वचनहैं। जिस श्रवणके प्रतापतैं जीवते पुरुषकी मुक्ति होवैहै। ऐसा उत्तम आत्मश्रवणहै। इसरीतिसैं आत्मश्रवणकी स्तुतिमैं तात्पर्य होनेतैं जीवन्मुक्तिप्रतिपादक वचनोंतैं ज्ञानीकूं देहादिकनका प्रतिभास कहना संभवै नहीं। इसरीतिसैं तत्वज्ञानसैं अव्यवहित उत्तरकालमैंही विदेहमोक्ष होवैहै। या मतमैं ज्ञानसैं उत्तर अविद्याका लेश रहै नहीं। परंतु॥

उक्तमतका ज्ञानीके अनुभवमैं विरोध॥ ११९॥

यह मत ज्ञानीके अनुभवसैं विरुद्धहै। जिस तत्वज्ञानसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, तिस तत्वज्ञानकी निवृत्तिका प्रकार कहैहैं:—

तत्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति हुये तत्वज्ञानकी निवृत्ति उत्तरकालमैं होवैहै । या क्रमतैं तत्वज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; काहेतैं, तत्वज्ञानसैं इतर अनात्मवस्तुका तो शेष रहै नहीं । केवल चेतनकूं असंगता होनेतैं नाशकता संभवै नहीं । तत्वज्ञानकूं स्वनाशकताभी संभवै नहीं यातैं तत्वज्ञानका नाश नहीं होवैगा ॥

अविद्याकी निवृत्तिकालमैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिकी रीति ॥१२०॥

इसरीतिसैं अविद्यानिवृत्तिसैं उत्तरकालमैं तत्वज्ञानकी निवृत्तिके असंभवतैं अविद्याकी निवृत्तिकालमैंही तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति या रीतिसैं होवैहै:- जैसैं जलमैं प्रक्षिप्त कतकरजतैं जलगत पंकका विश्लेष होवै, ताके साथिही कतकरजकाभी विश्लेष होवैहै । कतकरजके विश्लेषमैं साधनांतरकी अपेक्षा नहीं । औ तृणकूटमैं अंगारके प्रक्षेपतैं तृणकूटका भस्म होवै, ताके साथिही अंगारकाभी भस्म होवैहै । तैसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवै, ताके साथिही तत्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । यातैं तत्वज्ञानकी निवृत्तिमैं साधनांतरकी अपेक्षा नहींहै । औ ॥

प्रकृत अर्थमैं पंचपादिकाकारका मत ॥ १२१ ॥

पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्यका यह मतहै:—ज्ञानका अज्ञानमात्रसैं विरोधहै । अज्ञानके कार्यसैं ज्ञानका विरोध नहीं होनेतैं तत्वज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, अज्ञानका निवृत्तिसैं उत्तरकालमैं उपादानके अभावतैं कार्यकी निवृत्ति होवैहै परंतु देहादिककार्यकी निवृत्तिमैं प्रारब्धकर्म प्रतिबंधकहै । यातैं उक्तरीतिसैं अविद्यालेश रहै । जितनें जीवन्मुक्तकूं देहादिकनकी प्रतीतिभी संभवैहै । प्रारब्धरूप प्रतिबंधका अभाव हुयां देहादिक औ तत्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । या मतमैं प्रारब्धके अभावसहित अविद्याकी निवृत्तिही तत्वज्ञानकी निवृत्तिका हेतुहै ॥

तत्वज्ञानके कारण औ सहकारी साधनाविषै विचार । उत्तम औ मध्यम अधिकारीके भेदतैं तत्वज्ञानके दो साधनोंका कथन ॥ १२२ ॥

जा तत्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, उस तत्वज्ञानके दो साध-

नहीं। उत्तम अधिकारीकूं तो श्रवणादिक साधनहैं, औ मध्यम अधिकारी-कूं निर्गुणब्रह्मका अहंग्रहउपासनही तत्वज्ञानका साधनहै। यह सकल-अद्वैतशास्त्रका सिद्धांतहै। परंतु॥

उक्त दोनूं पक्षमैं प्रसंख्यानकूं तत्वज्ञानकी कारणतारूप प्रमाणता॥ १२३॥

दोनूं पक्षमैं तत्वज्ञानका करणरूप प्रमाण प्रसंख्यानहैः—यह कितने ग्रंथ-कारोंका मतहै। वृत्तिके प्रवाहकूं प्रसंख्यान कहैहै। जैसैं मध्यम अधि-कारीकूं निर्गुणब्रह्माकार निरंतरवृत्तिरूप उपासन कर्त्तव्यहै, सोई प्रसंख्या-नहै। तैसैं उत्तम अधिकारीकूंभी मननसैं उत्तर निदिध्यासनरूप प्रसंख्या-नहीं ब्रह्मसाक्षात्कारका कारणहैं। यद्यपि षड्विध प्रमाणमैं प्रसंख्यानके अभावतैं ताकूं प्रमाकी करणता संभवै नहीं। तथापि सगुणब्रह्मके ध्यान-कूं सगुणब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता औ निर्गुणब्रह्मके ध्यानकूं निर्गुण-ब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता सकल श्रुतिस्मृतिमैं प्रसिद्धहै॥ तैसैं व्यव-हितकामिनीके प्रसंख्यानकूं कामिनीके साक्षात्कारकी करणता लोकमैं प्रसिद्धहै। यातैं निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानभी ब्रह्मसाक्षात्कारका करण सं-भवैहै। यद्यपि प्रसंख्यानजन्य ब्रह्मज्ञानकूं प्रमाणजन्यताके अभावतैं प्रमा-त्वका असंभवहै, तथापि संवादिभ्रमकी नांई विषयके अबाधतैं प्रमात्व संभवैहै। औ निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानका मूल शब्दप्रमाणहै। यातैं-भी ब्रह्मज्ञानकूं प्रमात्व संभवैहै। औ॥

भामतीकार वाचस्पतिके मतमैं प्रसंख्यानकूं मनकी सह-कारिता औ मनकूं ब्रह्मज्ञानकी कारणता॥ १२४॥

भामतीकार वाचस्पतिका यह मतहैः—मनका सहकारी प्रसंख्यानहै। ब्रह्मज्ञानका करण मनहै। प्रसंख्यानकूं ज्ञानकी करणता अप्रसिद्धहै। सगुण निर्गुण ब्रह्मका ध्यानभी मनका सहकारीहै। तिनके साक्षात्कार-का करण ध्यान नहीं। किंतु मनही करणहै। तैसैं व्यवहितकामि-नीका ध्यानभी कामिनीसाक्षात्कारका करण नहीं। किंतु कामिनी-

चिंतनसहित मनही ताके साक्षात्कारका करणहै। या प्रकारतैं मनही ब्रह्मज्ञानका करणहै ॥

अद्वैतग्रंथनका मुख्यमत (एकाग्रतासहित मनकूं सहकारिता औ वेदांतवाक्यरूप शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता) ॥ १२८ ॥

औ अद्वैतग्रंथनका मुख्यमत यहहैः—वाक्यजन्यज्ञानतैं अनंतर प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहीं। किंतु महावाक्यतैंही अद्वैतब्रह्मका साक्षात्कार औ सकलज्ञानमैं सहकारि मनहै। यातैं निदिध्यासनजन्य एकाग्रतासहित मन सहकारिहैं। औ वेदांतवाक्यरूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करणहै; मन नहीं। काहेतैं वृत्तिरूप ज्ञानका उपादान होनेतैं आश्रय अंतःकरणहै। यातैं ज्ञानका कर्ता मनहै। ताकूं ज्ञानकी करणता संभवै नहीं। औ ज्ञानांतरमैं मनकूं करणता मानेंभी ब्रह्मज्ञानकी करणता सर्वथा विरुद्धहै। काहेतैं "यन्मनसा न मनुते" इत्यादिक श्रुतिमैं ब्रह्मकूं मानसज्ञानकी विषयताका निषेध कराहै। औ ब्रह्मकूं औपनिषदत्व कहाहै। यातैं उपनिषत्‌रूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करणहै। यत् कहिये जिस ब्रह्मकूं मन करिकै लोक नहीं जाणेहै यह श्रुतिका अर्थहै। यद्यपि कैवल्यशाखामैं जहां मनकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कराहै। तिसी स्थानमैं वाक्कूंभी ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कर्याहै। यातैं शब्दकूंभी ब्रह्मज्ञानकी करणता श्रुतिविरुद्धहै। तथापि शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहीं। इस अर्थमैं श्रुतिका तात्पर्य होवै तौ ब्रह्मकूं उपनिषत्‌वेद्यत्वरूप औपनिषदत्वकथन असंगत होवैगा। यातैं शब्दकी लक्षणावृत्तिसैं ब्रह्मगोचर ज्ञान होवैहै, शक्तिवृत्तिसैं ब्रह्मका ज्ञान शब्दसैं होवै नहीं। इसरीतिसैं श्रुतिका तात्पर्यहै। यातैं शक्तिवृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेधहै। औ लक्षणावृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता होनेंतैं ब्रह्मकूं औपनिषदत्व संभवैहै। ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मानस मानैहैं, तिनके मतमैंभी ब्रह्मका परोक्षज्ञान शब्दसैंही मानाहै। यातैं ब्रह्मज्ञानमैं शब्दकूं क-

रणता दोनूंमतमैं आवश्यक होनेंतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकरण शब्दहै; मन नहीं । इसरीतिसैं ब्रह्मसाक्षात्कारका करण शब्दहै ॥

शब्दसैं अपरोक्षज्ञानका उत्पत्तिमैं शंका समाधान ॥ १२६ ॥

यद्यपि शब्दमैं परोक्षज्ञानकी उत्पादनका सामर्थ्यहै, शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं । तथापि शास्त्रोक्त श्रवणपूर्वक सो ब्रह्मगोचरपरोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवैहै । जैसैं प्रतिबिंब औ बिंबके अभेदवादमैं जलपात्र औ दर्पणादिकसहकृत नेत्रसैं सूर्यादिकनका साक्षात्कार होवैहै । तहां केवल नेत्रका सूर्यादिकनके साक्षात्कारमैं सामर्थ्य नहींहै । औ चंचल वा मलिन उपाधिके सन्निधानसैंभी सामर्थ्य नहीं है । औ निश्चल निर्मल उपाधिसहकृत नेत्रमैं सूर्यादिकनके साक्षात्कारका सामर्थ्यहै, तैसैं संस्कारविशिष्ट निर्मल निश्चल चित्तरूपी दर्पणके सहकारतैं शब्दसैंभी ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान संभवैहै । अन्यदृष्टांतः—जैसैं लौकिक अग्निमैं होमतैं स्वर्गहेतु अपूर्वकी उत्पत्ति नहीं होवैहै । औ वैदिक संस्कारसहित अग्निमैं होमतैं स्वर्गजनक अपूर्वकी उत्पत्ति होवैहै । होमकूं स्वर्गसाधनता श्रुतिमैं कहीहै । द्वितीयक्षणमैं विनाशी होमकूं कालांतरभावि स्वर्गकी साधनता संभवै नहीं । यातैं स्वर्गसाधनताकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं जैसैं अपूर्वकी सिद्धि होवैहै, तैसैं ब्रह्मज्ञानतैं अध्यासरूप सकल दुःखकी निवृत्ति श्रुतिमैं कहीहै । औ कर्तृत्वादिक अध्यास अपरोक्षहै । तिस अपरोक्षअध्यासकी निवृत्ति परोक्षज्ञानतैं संभवै नहीं । अपरोक्षज्ञानतैंही अपरोक्षअध्यासकी निवृत्ति होवैहै । यातैं ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षअध्यासकी निवृत्तिकी अनुपपत्तिसैं प्रमाणांतरके अगोचर ब्रह्मका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान सिद्ध होवैहै । जैसैं श्रुतार्थापत्तिसैं अपूर्वकी सिद्धि होवैहै । तैसैं शब्दजन्य ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानकी सिद्धिभी श्रुतार्थापत्तिसैं होवैहै ॥

अन्यग्रंथकी रीतिसैं शब्दकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता ॥ १२७ ॥

अन्यग्रंथमैं शब्दकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता या दृष्टांतसैं कहीहैः—

जैसैं बाह्यपदार्थके साक्षात्कारमैं असमर्थ मनहै; तथापि भावनासहित मनसैं नष्टवनिताका साक्षात्कार होवैहै । तैसैं केवल शब्द तो अपरोक्षज्ञानमैं असमर्थहै, परंतु पूर्वउक्त मनसहित शब्दसैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवैहै ॥

विषय औ ज्ञानकी अपरोक्षताविषै विचार । अन्य-ग्रंथकारकी रीतिसैं ज्ञान औ विषय दोनूंमैं अपरोक्षत्व व्यवहारका कथन ॥ १२८ ॥

अन्यग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:—ज्ञान औ विषय दोनूंमैं अपरोक्षत्व व्यवहार होवैहै । काहेतैं नेत्रादिक इंद्रियतैं ज्ञात घट होवै, तहां घटका प्रत्यक्ष ज्ञानहै, औ घट प्रत्यक्षहै । इसरीतिसैं उभयविध व्यवहार अनुभव-सिद्धहै । तहां ज्ञानमैं अपरोक्षता करणके अधीन नहींहै । काहेतैं इंद्रिय-जन्य ज्ञान अपरोक्ष होवै औ अनुमानादिजन्य ज्ञान परोक्ष होवै, तौ ज्ञानमैं परोक्षता औ अपरोक्षता करणके अधीन होवै; सो इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षता ग्रंथकारोंनैं खंडन करीहै । यातैं अपरोक्षअर्थगोचर ज्ञान अपरोक्ष कहियेहै । इसरीतिसैं ज्ञानमैं अपरोक्षता विषयके अधीनहै । यातैं अपरोक्षविषयका ज्ञान अपरोक्षही होवैहै । इंद्रियजन्य होवै, अथवा प्रमाणांतरजन्य होवै यामैं अभिनिवेश नहीं । इसीवास्तै सुखादिज्ञान, ईश्वरज्ञान, स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य नहींहै । तथापि प्रत्यक्षहै । यातैं ज्ञानमैं इंद्रियजन्यत्वरूप अपरोक्षत्व नहींहै । किंतु अपरोक्षअर्थगोचर ज्ञान होवै सो अपरोक्षज्ञान कहियेहै ॥

उक्तअर्थमैं शंका समाधान ॥ १२९ ॥

यद्यपि अपरोक्षज्ञानके विषयकूं अपरोक्ष कहैहैं, यातैं अपरोक्षअर्थ-गोचर ज्ञानकूं अपरोक्षता कहनैंमैं अन्योन्याश्रय दोष होवैहै । काहेतैं ज्ञा-नगत अपरोक्षत्वनिरूपणमैं विषयगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतुहै । औ वि-षयगत अपरोक्षत्वनिरूपणमैं ज्ञानगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतुहै । तथापि विषयमैं अपरोक्षता अपरोक्षज्ञानकी विषयतारूप मानैं तौ अन्योन्याश्रय

दोष होवै । यातैं विषयकी अपरोक्षता उक्तस्वरूप नहीं । किंतु प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयकी अपरोक्षताहै । यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वनिरूपणमैं विषयके अपरोक्षत्वज्ञानकी अपेक्षा हुयेभी विषयके अपरोक्षत्वनिरूपणमैं ज्ञानगत अपरोक्षत्वके ज्ञानका अनुपयोग होनेतैं अन्योन्याश्रय दोष नहीं ॥

विषयमैं परोक्षत्व अपरोक्षत्वके संपादक प्रमातृचेतन भेद औ अभेदसहित विषयगत परोक्षत्वके अधीनही ज्ञानके परोक्षत्वका निरूपण ॥ १३० ॥

सुखादिक अंतःकरणके धर्मसाक्षिचेतनमैं अध्यस्तहैं । औ अधिष्ठानसैं पृथक् सत्ता अध्यस्तकी होवै नहीं । यातैं सुखादिकनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं तिनमैं सदा अपरोक्षत्वहै । औ अपरोक्षसुखादिगोचरज्ञानभी अपरोक्षही होवैहै । औ बाह्य घटादिक यद्यपि बाह्यचेतनमैं अध्यस्त होनेतैं प्रमातृचेतनसैं तिनका सर्वदा अभेद नहींहै; तथापि वृत्तिद्वारा बाह्यचेतनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै, तिसकालमैं प्रमातृचेतनही घटादिकनका अधिष्ठान होवैहै । यातैं इंद्रियजन्य घटादिगोचर वृत्ति होवै, तिसकालमैंही घटादिकनमैं अपरोक्षत्व धर्म होवैहै । अपरोक्षत्वविशिष्ट घटादिकनका ज्ञानभी अपरोक्ष कहियेहै । औ घटादिगोचर अनुमित्यादिक वृत्ति होवै तिसकालमैं प्रमातृचेतनसैं घटादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमैं अपरोक्षत्व धर्म होवै नहीं । यातैं घटादिकनके अनुमित्यादिक ज्ञानकूं अपरोक्ष नहीं कहैहैं । किंतु परोक्ष कहैहैं । औ ब्रह्मचेतनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं ब्रह्मचेतन सदा अपरोक्षहै । यातैं महावाक्यरूप शब्दप्रमाणजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्षही कहियेहै । इसप्रकारसैं ज्ञानके परोक्षत्व औ अपरोक्षत्व प्रमाणाधीन नहीं । किंतु विषयगत परोक्षत्व अपरोक्षत्वके अधीनही ज्ञानके परोक्षत्व अपरोक्षत्वहैं । औ विषयमैं परोक्षत्व अपरोक्षत्वका संपादक प्रमातृचेतनका भेद औ अभेदहै । यातैं शब्दजन्यब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्षहै; यह कथन संभवैहै ॥

उक्तमतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानके अपरोक्षताकी प्राप्तिरूप दोष ॥ १३१ ॥

परंतु या मतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुआ चाहिये। काहेतैं उक्तरीतिसैं प्रमातृचेतनस्वरूप होनेतैं ब्रह्म सदा अपरोक्षहै। औ अपरोक्षवस्तुगोचर ज्ञान अपरोक्षही होवैहै। यातैं नित्य अपरोक्षस्वभाव ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै नहीं। औ अवांतरवाक्यसैं सकलग्रंथकारोंनैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान मानाहै। तैसैं " दशमोऽस्ति " या वाक्यतैं दशमका परोक्षज्ञानही होवैहै। औ पंचदशीआदिक ग्रंथनमैंभी उक्त वाक्यसैं दशमका परोक्षज्ञानही कहाहै। औ प्रमातृचेतनसैं अभिन्न दशमहै। यातैं दशमविषयकूं अपरोक्षता होनेतैं ताका ज्ञानभी अपरोक्षही हुआ चाहिये॥

उक्तदोषसैं अपरोक्षताका अन्यलक्षण ॥ १३२ ॥

यातैं इसरीतिसैं मान्यां चाहियेः—जैसैं सुखादिक प्रमातृचेतनमैं अध्यस्तहैं; तैसैं धर्मअधर्मभी प्रमातृचेतनमैं अध्यस्तहैं। यातैं सुखादिकनकी नांई धर्मादिकभी प्रमातृचेतनसैं अभिन्न होनेतैं अपरोक्ष हुये चाहियें। तथापि योग्यविषयका प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयगतअपरोक्षताका संपादकहै। धर्मादिक योग्य नहीं। यातैं तिनका प्रमातृ चेतनसैं अभेद होतैंभी तिनमैं अपरोक्षता नहीं। जिस विषयगत योग्यता विषयगतअपरोक्षतामैं अपेक्षितहै। तैसैं प्रमाणगतयोग्यता ज्ञानकी अपरोक्षतामैं अपेक्षितहै। अवांतरवाक्यमैं औ "दशमोऽस्ति"या वाक्यमैं अपरोक्षज्ञानजननकी योग्यता नहीं। किंतु महावाक्यमैं औ "त्वं दशमः" या वाक्यमैं अपरोक्षज्ञानके जननकी योग्यताहै। जैसैं विषयकी योग्यतादिक प्रत्यक्षादि व्यवहारसैं जानियेहैं। जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होतें प्रत्यक्षव्यवहार होवै सो विषययोग्य कहियेहै। औ जिस विषयका प्रमातासै अभेद होतैंभी प्रत्यक्ष व्यवहार होवै नहीं। सो विषय अयोग्य कहियेहै। जैसैं धर्मअधर्मसंस्कार अयोग्यहै। विषयकी नांई प्रमाणमैंभी योग्यतादिक अनुभवके अनुसार

जाननी । बाह्य इंद्रियनमैं प्रत्यक्षज्ञानजननकी योग्यताहै । औ अनुमानादिकनमैं परोक्षज्ञानजननकी योग्यताहै; अनुपलब्धिमैं औ शब्दमैं उभयविधज्ञानजननकी योग्यताहै । परंतु ॥

अपरोक्षज्ञानमैं सर्वज्ञात्ममुनिके मतका अनुवाद ॥ १३३ ॥

इतना विशेषहै । प्रमातासैं असंबंधीपदार्थका शब्दसैं केवल परोक्षज्ञान होवैहै, औ जिसपदार्थका प्रमातासैं तादात्म्यसंबंध होवै तिसमैं योग्यता हुयांभी प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द नहीं होवै तो शब्दसैं परोक्षज्ञानही होवैहै। अपरोक्षज्ञान होवै नहीं । जैसैं "दशमोऽस्ति" "ब्रह्मास्ति" इत्यादिक वाक्यनमैं प्रमातासैं अभेदबोधकशब्दके अभावतैं उक्तवाक्यनके श्रोताकूं स्वाभिन्न दशमब्रह्मकाभी परोक्षज्ञानही होवैहै। अपरोक्षज्ञान होवै नहीं। औ जिसवाक्यमैं प्रमातासैं अभिन्नयोग्यविषयका प्रमातासैं अभेदबोधक होवै, तिसवाक्यसैं परोक्षज्ञान होवै नहीं । किंतु अपरोक्षज्ञानही होवैहै । यह मत सर्वज्ञात्ममुनिकाहै । या मतमैं केवल शब्दही अपरोक्षज्ञानका हेतु है; औ परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवैहै । यह मत प्रथम कहाहै । औ ॥

विषयगत अपरोक्षताके अधीन ज्ञानगत अपरोक्षताहै या मतका अनुवाद ॥ १३४ ॥

अपरोक्षअर्थगोचरज्ञानकूं अपरोक्षत्व मानिकै ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षता संभवैहै; यह मध्यमैं तृतीय मत कहा । या मतमैं नित्याऽपरोक्षगोचर अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुआ चाहिये । यह दूषण कहा ॥

अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं विषयगत औ ज्ञानगत अपरोक्षत्वका प्रकारांतरसैं कथन औ दूषित उक्तमतसैं दूषणांतरका कथन ॥ १३५ ॥

अद्वैतविद्याचार्यनैं अर्थगतअपरोक्षत्व औ ज्ञानगतअपरोक्षत्व प्रकारांतरसैं कहाहै । औ दूषित उक्तमतसैं दूषणांतर कहाहै । तथाहि, प्रमातासैं अभिन्न अर्थकूं अपरोक्षस्वरूप मानिकै अपरोक्षअर्थगोचरज्ञानकूं अपरो-

क्षत्व कहैं तौ स्वप्रकाश आत्मसुखरूपज्ञानमैं अपरोक्षज्ञानके लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी। काहेतैं, अपरोक्ष अर्थ है गोचर कहिये विषय जिसका तिसज्ञानकूं अपरोक्ष कहै तौ ज्ञानका औ विषयका परस्पर भेदसापेक्ष विषयविषयिभाव संबंधहै। तिसी स्थानमैं ज्ञानगत अपरोक्षलक्षण होवैगा, औ स्वप्रकाश सुखका ज्ञानसैं अभेद होनेतैं विषयविषयिभावके असंभवतैं तामैं उक्तलक्षण संभवै नहीं। यद्यपि प्रभाकरमतमैं ज्ञानकूं स्वप्रकाश कहैहैं। औ अपनैं स्वरूपकूं तथा ज्ञाताकूं तैसैं ज्ञेयघटादिकनकूं ज्ञान-विषय करैहै। यातैं सकलज्ञान त्रिपुटीगोचर होवैहैं। यह प्रभाकरका मतहैं। ताके मतमैं अभेद हुयांभी विषयविषयिभावका अंगीकारहै। यातैं स्वप्रकाशज्ञानरूप सुखमैं विषयविषयिभाव असंगत नहीं। स्वकहिये अपना स्वरूपहै, प्रकाश कहिये विषयि जिसका सो स्वप्रकाश कहि-येहै। इसरीतिसैं स्वप्रकाशपदके अर्थसैंभी अभेदमैं विषयविषयिभाव संभवैहै। तथापि प्रकाश्यप्रकाशकका भेद अनुभवसिद्ध होनेतैं भेदविना प्रभाकरका विषयविषयिभावकथन असंगतहै। यातैं स्वप्रकाशपदका उक्त अर्थ नहीं। किंतु स्व कहिये अपनी सत्तासैं, प्रकाश कहिये संशया-दिराहित्यही स्वप्रकाशपदका अर्थ अद्वैतग्रंथनमैं कहाहै॥

अपरोक्ष उक्त लक्षणके असम्भवका अनुवाद ॥१३६॥

इसरीतिसैं स्वप्रकाशज्ञानतैं अभिन्नस्वरूप सुखमैं विषयविषयिभावके असंभवतैं अपरोक्षका उक्तलक्षणतामैं संभवै नहीं। यातैं॥

उक्तदोषसैं रहित अपरोक्षका लक्षण॥ १३७॥

अपरोक्षका यह लक्षणहैः—स्वव्यवहारके अनुकूल चैतन्यसैं अभेद अपरोक्षविषयका लक्षणहै। अंतःकरण औ सुखादिक साक्षिचेतनमैं अध्यस्त होनेतैं धर्मसहित अंतःकरणका साक्षिचेतनसैं अभेदहै। औ साक्षिचेतनसैं तिनका प्रकाश होनेतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षि-चेतनहै। यातैं स्वकहिये अंतःकरण औ सुखादिकनके व्यवहारके अनुकूल जो साक्षिचेतनतासैं अभेदरूप अपरोक्षका लक्षण सुखादि-

सहित अंतःकरणमैं संभवैहै । औ धर्मादिकनका साक्षिचेतनसैं अभेद तो है । परंतु तिनमैं योग्यताके अभावतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन नहीं यातैं स्वव्यवहारानुकूल चैतन्यसैं धर्मादिकनका अभेद नहीं होनेंतैं तिनमैं अपरोक्षत्व नहीं। तैसैं घटादिगोचर वृत्तिकालमैं घटादिकनके अधिष्ठान चेतनका वृत्तिउपहितचेतनसैं अभेद होवैहै; यातैं घटादिगोचरवृत्तिकालमैं घटादिचेतन घटादिव्यवहारकै अनुकूलहै । तासैं अभिन्न घटादिक अपरोक्ष कहियेहै । घटादिगोचरवृत्तिके अभावकालमैंभी अपनें अधिष्ठानचेतनसैं घटादिक अभिन्नहैं । परंतु तिसकालमैं तिनके व्यवहारके अनुकूल अधिष्ठानचेतन नहीं । काहेतैं वृत्तिउपहितसैं अभिन्न होयके व्यवहारके अनुकूल होवैहै । यातैं घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमैं घटादिक अपरोक्ष नहीं । तैसैं ब्रह्मगोचरवृत्तिउपहित साक्षिचेतनही ब्रह्मके व्यवहारके अनुकूलहै, तासैं अभिन्नब्रह्मकूं अपरोक्षता संभवैहै । जैसैं स्वव्यवहारानुकूल चैतन्यसैं विषयका अभेद विषयगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है । तैसैं घटादिक विषयतैं घटादिक व्यवहारानुकूलचैतन्यका अभेदज्ञानगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजकहै ॥

वृत्तिरूप प्रत्यक्षज्ञानमैं उक्त अपरोक्षके लक्षणकी अव्याप्ति॥१३८॥

यद्यपि चेतनमैं घटादिक अध्यस्तहैं । औ विषयाकारवृत्तिकालमैं वृत्तिचेतनसैं विषयचेतनकी एकता होनेंतैं स्वाधिष्ठानविषयचेतनसैं अभिन्न घटादिकनका वृत्तिचेतनसैं अभेद हुयेभी वृत्तिसैं अभेद घटादिकनका संभवै नहीं । जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्प दंड मालाका रज्जुसैं अभेद हुयेंभी सर्पदंडमालाका परस्पर भेदही होवैहै । अभेद होवै नहीं । औ ब्रह्ममैं कल्पित सकलद्वैतका ब्रह्मसैं अभेद हुयेंभी परस्पर अभेद होवै नहीं । तैसैं वृत्तिचेतनसैं तो वृत्तिका औ घटादिकनका अभेद संभवैहै । वृत्तिका औ घटादिक विषयका परस्पर अभेद संभवै नहीं । यातैं वृत्तिरूपप्रत्यक्षज्ञानमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्तिहै ॥

उक्तअव्याप्तिका अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं उद्धार ॥ १३९ ॥

तथापि अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनकाहै, वृत्तिका नहीं। जैसै अनुमितित्व इच्छात्व आदिक अंतःकरणवृत्तिके धर्महैं। तैसैं अपरोक्षत्वधर्म वृत्तिमैं नहींहै । किंतु विषयाकारवृत्तिउपहित चेतनका अपरोक्षत्वधर्म होनेंतैं चेतनके अपरोक्षत्वका उपाधिवृत्तिहै । यातैं वृत्तिमैं अपरोक्षत्वका आरोप करिकै वृत्तिज्ञान अपरोक्षहै । यह व्यवहार करैहै । इसरीतिसैं वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं । यातैं अव्याप्ति नहीं । जो वृत्तिज्ञानमैं अपरोक्षत्वधर्म इष्ट होवैहै । औ अपरोक्षका लक्षण नहीं जावै तौ अव्याप्ति होवै वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं। किंतु वृत्तिउपहित चेतनही लक्ष्यहै, यातैं अव्याप्तिशंका नहीं । चेतनका धर्म अपरोक्षत्व माननेंसैंही सुखादिक ज्ञानमैं अपरोक्षत्व संभवैहै । वृत्तिका धर्म अपरोक्षत्व मानैं तौ सुखादिगोचरवृत्तिके अनंगीकारपक्षमैं साक्षिरूप सुखादिज्ञानमैं अपरोक्षत्वव्यवहार नहीं हुया चाहिये । यातैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनकाहै । वृत्तिका नहीं ॥

उक्तपक्षमैं शंका ॥

या पक्षमैं यह शंकाहैः—संसारदशामैंभी जीवका ब्रह्मसैं अभेद होनेंतैं सर्व पुरुषनकूं ब्रह्म अपरोक्षहै। ऐसा व्यवहार हुआ चाहिये । औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष हुआ चाहिये । काहेतैं अवांतरवाक्यजन्यवृत्तिउपहित साक्षिचेतनका ब्रह्मरूप विषयतैं अभेदहै । तथापि ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ १४० ॥

यह समाधानहैः—स्वव्यवहारानुकूलचेतनसैं अनावृतविषयका अभेद तो अपरोक्ष विषयका लक्षणहै ॥ औ अनावृतविषयसैं स्वव्यवहारानुकूलचेतनका अभेद अपरोक्षज्ञानका लक्षणहै । संसारदशामैं आवृतब्रह्मका स्वव्यवहारानुकूलचेतनसैं अभेद हुयेभी अनावृतविषयका अभेद नहीं होनेंतैं ब्रह्ममैं अपरोक्षत्व नहीं । तैसैं अवांतरवाक्यजन्य ज्ञानकाभी आवृतविषयतैं अभेद होनेतैं तिस ज्ञानकूं अपरोक्षत्व नहीं । यातैं उक्तशंका संभवै नहीं ॥

उक्तपक्षमैं अन्यशंका ॥

अन्यशंका उक्तरीतिसैं अनावृतविषयकै अभेदसैं अपरोक्षत्वमानें अन्योन्याश्रयदोष होवैगा। काहेतें समानगोचरज्ञानमात्रकूं आवरणनिवर्त्तकता मानें तौ परोक्षज्ञानसैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये । औ सिद्धांतमैं असत्त्वापादक अज्ञानशक्तिका तिरोधान वा नाश तो परोक्षज्ञानसैं होवैहै । अभानापादकशक्तिविशिष्ट अज्ञानका परोक्षज्ञानसैं नाश होवै नहीं । अपरोक्षज्ञानसैंही अज्ञानका नाश होवैहै । इसरीतिसैं ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धिके अधीन अज्ञानकी निवृत्तिहै औ अनावृतविषयतैं स्वव्यवहारानुकूलचेतनका अभेद हुआ ज्ञानका अपरोक्षत्वलक्षण कहनेतैं अज्ञाननिवृत्तिके अधीन ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धि कही यातैं अन्योन्याश्रय दोषहै ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ १४१ ॥

ताका यह समाधानहैः—यद्यपि पूर्वउक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिकी ज्ञानके अपरोक्षत्वमैं अपेक्षाहै । तथापि अज्ञानकी निवृत्तिमैं अपरोक्षत्वकी अपेक्षा नहीं । काहेतैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति मानैं तौ परोक्षज्ञानसैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये; इसदोषके परिहारके अर्थ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्ति कहीहै । तामैं अन्योन्याश्रयदोष होवैहै । यातैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति औ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति नहीं कहैहैं । किंतु प्रमाणकी महिमातैं जहां विषयतैं ज्ञानका तादात्म्यसंबंध होवै, तिस ज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । प्रमाणमहिमातैं बाह्यइंद्रियजन्य घटादिकनका ज्ञान विषयतैं तादात्म्यसंबंधवाला होवैहै । औ शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानभी महावाक्यरूप प्रमाणकी महिमातैं विषयसैं तादात्म्यसंबंधवाला होवैहै । यातैं उक्तउभयज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । यद्यपि सर्वका उपादान ब्रह्म होनेतैं ब्रह्मगोचर सकलज्ञानोंका तादात्म्यसंबंधहै । यातैं अनुमितिरूप ब्रह्मज्ञानतैं औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये। तथापि उक्तज्ञानका विषयतैं तादात्म्यसंबंधहै । सो विषयकी महिमातैंहै,

प्रमाणकी महिमातैं नहीं । काहेतैं महावाक्यतैं जीवब्रह्मके अभेदगोचर ज्ञान होवै, ताका विषयसैं तादात्म्यसंबंध तो प्रमाणकी महिमातैं कहैहै। अन्यज्ञानका ब्रह्मसैं तादात्म्यसंबंधहै सो ब्रह्मकूं व्यापकता होनेतैं औ सकलकी उपादानता होनेतैं विषयकी महिमातैं कहैहै । इसरीतिसैं विलक्षणप्रमाणजन्यविषयसंबंधी ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै। या कहनेमैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञाननिवृत्तिकी आपत्ति नहीं । औ ज्ञानके अपरोक्षत्वकी अज्ञाननिवृत्तिमैं अपेक्षाके अभावतैं अन्योन्याश्रयदोषभी नहीं । इसरीतिसैं स्वव्यवहारानुकूल अनावृतचैतन्यसैं विषयका अभेद अपरोक्षविषयका लक्षणहै । उक्तचैतन्यका विषयतैं अभेद अपरोक्षज्ञानका लक्षणहै यातैं शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानविषैभी अपरोक्षता संभवैहै या प्रकारतैं ॥

शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं कथन किये तीन मतविषै प्रथममतकी समीचीनता ॥ १४२ ॥

शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं तीनि मत कहे, तिनमैं आद्यमतही समीचीनहै। काहेतैं ज्ञानगत परोक्षत्व अपरोक्षत्व प्रमाधीनहै। औ सहकारिसाधनविशिष्ट शब्दमैंभी अपरोक्षज्ञानके जननकी योग्यताहै । यह प्रथम मतहै । औ विषयके अधीनही ज्ञानके अपरोक्षत्वादिक धर्महैं । प्रमाणके अधीन नहीं । इस अभिप्रायतैं द्वितीयमत औ अद्वैतविद्याचार्यका तृतीयमतहै । तिन दोनूं मतनमैं भी केवल विषयके अधीनही अपरोक्षत्वादिकनकूं मानैं तौ, अवांतरवाक्यसैंभी ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान हुया चाहिये; यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वमैं प्रमाणके अधीनता अवश्य कही चाहिये । यातैं प्रथममतही समीचीनहै ॥

वृत्तिके प्रयोजनका कथन । ग्रंथके प्रारम्भमैं उक्ततीनप्रश्नोंका औ तिनमैं कथन किये दोनूंके उत्तरका अनुवाद ॥१४३॥

ग्रंथके आरंभमैं वृत्तिका स्वरूप, कारण, फल इन तीनिका प्रश्नहै; तिनमैं अंतःकरण औ अविद्याका प्रकाशरूप परिणामवृत्ति कहियेहै । या कहनेतैं वृत्तिका सामान्यरूप कहा तिसतैं अनंतर यथार्थत्व अयथा-

र्थत्वादिक भेदकथनतैं वृत्तिका विशेष रूप कहा; प्रमाणनिरूपणतैं वृत्तिके कारणका स्वरूप कहा ॥

वृत्तिके प्रयोजनसंबंधि तृतीयप्रश्नके उत्तरका आरम्भ ॥ १४४ ॥

वृत्तिके प्रयोजनका प्रश्न कराथा, सो वृत्तिका प्रयोजन यहहैः—जीवकूंही अवस्थात्रयका संबंध वृत्तिसैं होवैहै । औ पुरुषार्थप्राप्तिभी वृत्तिसैं होवैहै । यातैं संसारप्राप्तिकी हेतु वृत्तिहै । औ मोक्षप्राप्तिका हेतु वृत्तिहै । काहेतैं अवस्थात्रयके संबंधसैं जीवकूं संसारहै ॥

वृत्तिप्रयोजनके कथनअवसरमैं जाग्रत्का लक्षण ॥ १४५ ॥

तहां इंद्रियजन्यज्ञानकी अवस्थाकूं जाग्रत्अवस्था कहैहैं । अवस्था-शब्द कालका वाचकहै । यद्यपि सुखादिकनका ज्ञानकाल औ उदासीन कालभी जाग्रत् अवस्था कहियेहै । औ सुखादिकनका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं । तैसैं सुखादिज्ञानकालमैं अन्यविषयका ज्ञानभी इंद्रियजन्य होवै नहीं । तैसैं उदासीनकालमैं इंद्रियजन्यज्ञान है नहीं । तथापि वक्ष्यमाण स्वप्नावस्था औ सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्न जो इंद्रियजन्यज्ञानका आधारकाल औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कारका आधारकाल सो जाग्रत् अवस्था कहिये है । सुखादिज्ञानकालमैं औ उदासीन कालमैं यद्यपि इंद्रियजन्य-ज्ञान नहींहै । तथापि ताके संस्कारहै । औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कार स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थामैंभी हैं । यातैं स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्नकाल कहा । इसरीतिसैं जाग्रत्अवस्था यह व्यवहार इंद्रियजन्यज्ञानके अधीनहै । सो इंद्रियजन्यज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूपहै । अंतःकरणकी वृत्तिके मतभेदसैं ये प्रयोजनहै ॥

कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन ॥ १४६ ॥

कोई तो आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन कहैहैं ॥ यद्यपि आवरणाभिभवमैंभी नानामतहैं । जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके

एकदेशका नाश होवैहै । तैसैं अज्ञानके एकदेशका नाश आवरणाभिभव-शब्दका अर्थहै । यह सांप्रदायिक मतहै ॥

समष्टिअज्ञानकूं जीवकी उपाधिताके पक्षमैं ब्रह्म वा ईश्वर वा जीवचेतनके संबंधसैं आवरणके अभिभवका असंभव ॥ १४७ ॥

समष्टिअज्ञान जीवकी उपाधिहै। या पक्षमैं घटादिक विषयतैं चेतनका सदा संबंधहै । यातैं चेतनसंबंधसैं तौ आवरणका अभिभव संभवै नहीं । काहेतैं ब्रह्मचेतन तौ आवरणका साधकहै । विरोधी नहीं । औ ईश्वर-चेतनसैं आवरणका अभिभव होवै तौ " इदं मयावगतम् " ऐसा व्यवहार जीवकूं नहीं हुआ चाहिये । किंतु " ईश्वरेणावगतम् " ऐसा व्यवहार हुआ चाहिये । काहेतैं ईश्वर जीवका व्यावहारिक भेदहै । यातैं ईश्वरा-वगत वस्तु जीवका अवगत होवै नहीं । यातैं जीवचेतनके संबंधसैं आव-रणका अभिभव कहैं तौ या पक्षमैं जीवचेतनका घटादिकनसैं सदा संबं-धहै । काहेतैं जीवचेतनकी उपाधि मूलाज्ञानहै । तामैं आरोपितप्रतिबिंब-त्वविशिष्टचेतनकूं जीव कहैहैं । मूलाज्ञानका घटादिकनसैं सदा संबंध होनेतैं जीवचेतनका सदा संबंधहै ॥ यातैं घटादिकनके आवरणका सदा अभिभव चाहिये । यातैं वृत्तिसैं आवरणका अभिभव कहैं तौ परोक्ष-वृत्तिसैंभी आवरणका अभिभव हुआ चाहिये । यातैं ॥

या पक्षमैं अपरोक्षवृत्तिसैं वा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट-चेतनसैं आवरणके अभिभवका संभव ॥ १४८ ॥

अपरोक्षवृत्तिसैं आवरणका अभिभव होवैहै।अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणका अभिभव होवैहै । जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधका-रके एकदेशका नाश होवैहै । खद्योतके अभावकालमैं महांधकारका फेरि विस्तार होवैहै। तैसैं अपरोक्षवृत्तिसंबंधसैं अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्टचे-तनके संबंधसैं मूलाज्ञानके अंशका नाश होवैहै ।वृत्तिके अभावदशामैं अ-ज्ञानका प्रसरण होवैहै । यह संप्रदायके अनुसारी मतहै ॥

उक्तपक्षकी रीतिसैं आवरणनाशरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १४९ ॥

तिसतैं अज्ञानके अंशका नाश अपरोक्षवृत्तिका प्रयोजनहै। औ असत्वापादक अज्ञानांशका नाश परोक्षवृत्तिका प्रयोजनहै। इसरीतिसैं आवरणनाश वृत्तिका प्रयोजनहै यह पक्ष कहा। औ ॥

द्वितीयपक्षकी रीतिसैं जीवचेतनसैं विषयके संबंधरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १५० ॥

जीवचेतनसैं विषयका संबंध वृत्तिका प्रयोजनहै। यह दूसरा पक्षहै। याकूं कहैहैं:—समष्टिअज्ञानमैं प्रतिबिंब जीवहै। या पक्षमैं जीवचेतनका घटादिकनसैं सर्वदा संबंधहै। परंतु जीवके सामान्यसंबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं। यातैं विषयके प्रकाशका हेतु जीवसैं विजातीयसंबंध वृत्तिका प्रयोजनहै। जीवचेतनका विषयतैं संबंध सर्वदाहै। परंतु वह संबंध विषयप्रकाशहेतु नहीं। वृत्तिविशिष्टजीवका विषयतैं संबंध होवै तौ विषयका प्रकाश होवैहै। यातैं प्रकाशहेतु संबंध वृत्तिके अधीनहै। सो प्रकाशहेतु जीवका विषयतैं संबंध अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभावहै। विषयमैं अभिव्यंजकताहै। जीवचेतनमैं अभिव्यंग्यताहै। जामैं प्रतिबिंब होवै ताकूं अभिव्यंजक कहैहैं। जाका प्रतिबिंब होवै सो अभिव्यंग्य कहियेहै। जैसैं दर्पणमैं मुखका प्रतिबिंब होवै, तहां दर्पण अभिव्यंजकहै। मुख अभिव्यंग्यहै। तैसैं घटादिकविषयनमैं चेतनका प्रतिबिंब होवैहै। यातैं घटादिक अभिव्यंजकहैं। चेतन अभिव्यंग्यहै। इसरीतिसैं प्रतिबिंबग्रहणरूप व्यंजकता घटादिक विषयमैंहै। प्रतिबिंबसमर्पणरूपव्यंग्यता चेतनमैंहै घटादिकनमैं स्वभावसैं प्रतिबिंबग्रहणकी सामर्थ्य नहीं। किंतु स्वाकारवृत्तिसंबंधसैं चेतनप्रतिबिंबके ग्रहणयोग्य होवैहै। जैसैं दर्पणसंबंधविना कुड्यमैं सूर्यका प्रतिबिंब होवै नहीं। औ दर्पणसंबंधसैं होवैहै। यातैं सूर्यप्रतिबिंबग्रहणकी योग्यता कुड्यमैं दर्पणसंबंधसैं होवैहै। जैसैं दृष्टांतमैं सूर्यप्रभाका कुड्यसैं सर्वदा सामान्य-

संबंधहै, औ अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभावसंबंध दर्पणाधीनहै । तैसैं जीवचेतनका विषयतैं सर्वदा संबंधहै ; परंतु वृत्तिसंबंधसैं घटादिकनमैं जीवचेतनके प्रतिबिंबकी ग्रहणयोग्यता होवैहै । यातैं जीवचेतनका घटादिकनसैं अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभाव संबंध वृत्तिके अधीनहै । इसरीतिसैं जीवचेतनसैं घटादिकनके विलक्षणसंबंधकी हेतु वृत्तिहै । यातैं विषयसंबंधार्थवृत्तिहैं । तासंबंधसैं विषयका प्रकाश होवैहै । जीवचेतन विभुहै; या पक्षमैं विलक्षणसंबंधकी जनक वृत्तिहै । औ ॥

अंतःकरणविशिष्टचेतन जीवहै या पक्षमैं विषयसंबंधार्थवृत्तिकी अपेक्षा ॥ १९१ ॥

अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीवहै; या पक्षमैं तौ वृत्तिविना जीवचेतनतैं घटादिकनका सर्वथा संबंध नहीं । इंद्रियविषयके संबंधसैं अंतःकरणकी वृत्ति घटादिदेशमैं जावै, तब जीवचेतनका घटादिकनतैं संबंध होवैहै । वृत्तिके बाह्यगमनविना अंतरजीवका बाह्य घटादिकनतैं संबंध होवै नहीं । इसरीतिसैं अंतःकरणावच्छिन्न परिच्छिन्न जीवहै । या पक्षतैं विषयसंबंधार्थवृत्तिहै । यह अर्थ स्पष्टहीहै ॥

उक्त दोनूं पक्षनकी विलक्षणता ॥ १९२ ॥

इसरीतिसैं अज्ञानोपाधिक जीवहै, या पक्षमैं जीवचेतनका विषयतैं संबंध तौ सदाहै । अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभाव संबंध सदा नहींहै । तिसके अर्थ वृत्तिहै । औ अंतःकरणावच्छिन्न जीवहै । या पक्षमैं जीवका विषयतैं सर्वथा संबंध नहीं है । ताके अर्थ वृत्तिहै । इसरीतिसैं वृत्तिके फलसंबंधमैं विलक्षणता ग्रंथकारोंनैं कहीहै । परंतु ॥

मतभेदसैं संबंधमैं विलक्षणताके कथनकी असंगतता ॥ १९३ ॥

मतभेदसैं संबंधमैं विलक्षणताका कथन असंगतहै । काहेतैं अंतःकरण जीवकी उपाधिहैं । या पक्षमैंभी अज्ञान तो जीवभावकी उपाधि अवश्य इष्ट है । अन्यथा प्राज्ञरूप जीवका अभाव होवैहै । यातैं जीवभावकी उपाधि

सर्वके मतमैं अज्ञानहै।कर्तृत्वादिक अभिमान अंतःकरणविशिष्टमैं होवैहै।यातैं अंतःकरणावच्छिन्नकूं जीव कहैहै । औ अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीवहै । या पक्षमैंभी अज्ञानविशिष्ट प्रमाता नहींहै । किंतु अंतःकरणविशिष्टही प्रमाताहै । औ जीवचेतनका तो विषयतैं संबंध सर्वदाहै । परंतु प्रमातृचेतनका विषयतैं संबंध नहीं । औ प्रमातृचेतनके संबंधसैंही विषयका प्रकाश होवैहै। जीवचेतनके संबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं । जैसैं ब्रह्मचेतन ईश्वरचेतन अज्ञानके साधकहैं । तैसैं अविद्योपाधिक जीवचेतनहै ताके संबंधसैं विषयमैं ज्ञाततादिक व्यवहार होवै नहीं । औ जीवचेतनकूं ज्ञाततादिकनका अभिमानभी होवै नहीं । प्रमाताके संबंधसैंही विषयमैं ज्ञाततादिक व्यवहार होवैहै औ व्यवहारका अभिमानभी प्रमाताकूं होवैहै । सो प्रमाता विषयतैं भिन्नदेशमैंहै । यातैं प्रमाताका विषयतैं सदा संबंध नहीं । प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिके अधीनहै । इसरीतिसैं जीवकी उपाधिकूं व्यापक मानैं अथवा परिच्छिन्न मानैं दोनूं पक्षमैं प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिके अधीन समानहै । तामैं विलक्षणताकथन केवल बुद्धिप्रवीणताख्यापनके अर्थहै । औ अप्रवीणताका साधकहै । प्रमाताका विषयतैं संबंध नहीं । इसीवास्तै ॥

चारी चेतनके कथनपूर्वक उक्त अर्थकी सिद्धि ॥ १६४ ॥

प्रमातृचेतन, प्रमाणचेतन, विषयचेतन, फलचेतनभेदसैं चारिप्रकारका चेतन कहाहै । जो प्रमाताका विषयतैं संबंध होवै तौ प्रमातृचेतनसैं विषयचेतनका विभागकथन असंगत होवैगा । अंतःकरणविशिष्ट चेतन प्रमातृचेतनहै । वृत्तिअवच्छिन्नचेतन प्रमाणचेतनहै । घटादिअवच्छिन्नचेतन विषयचेतनहै । औ वृत्तिसंबंधसैं घटादिकनमैं चेतनका प्रतिबिंब होवै, ताकूं फलचेतन कहैहैं । औ कोई ऐसैं कहैहैं । घटावच्छिन्नचेतनही अज्ञात होवै, तब विषयचेतन कहियेहैं । औ ज्ञात

होवै तब घटावच्छिन्नचेतनकूंही फलचेतन कहैहैं । ताहीकूं प्रमेयचेतन कहैहैं । परंतु विद्यारण्यस्वामीनैं औ वार्तिककारनैं प्रमाणवृत्तिसैं उत्तरकालमैं जो घटादिकनमैं चेतनका आभास होवै सोई फलचेतन कहाहै । इसरीतिसैं प्रमातृचेतन परिच्छिन्नहै । औ ताके संबंधसैंही विषयका प्रकाश होवैहै । जीवचेतनकूं विभु मानैं तौभी प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिकृतहै । यातैं दोनूं मतमैं विषमसंबंधमैं विलक्षणता नहीं ॥

जाग्रतमैं होनेवाली वृत्तिकै अनुवादपूर्वक स्वप्नावस्थाका लक्षण ॥ १६५ ॥

उक्त प्रयोजनवाली इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति जाग्रत्अवस्थामैं होवैहै । इंद्रियसैं अजन्य जो विषयगोचर अंतःकरणकी अपरोक्षवृत्ति, ताकी अवस्थाकूं स्वप्नावस्था कहैहैं । स्वप्नमैं ज्ञेय औ ज्ञान अंतःकरणकी परिणामहै; औ ॥

सुषुप्तिअवस्थाका लक्षण ॥ १६६ ॥

सुखगोचर अविद्यागोचर अज्ञानका साक्षात्परिणामरूप वृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्ति अवस्था कहैहैं । सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्ति सुखगोचर औ अज्ञानगोचर होवैहै । यद्यपि अविद्यागोचरवृत्ति जाग्रत्मैंभी "अहं न जानामि" इसरीतिसैं होवैहै । तथापि वह वृत्ति अंतःकरणकी है। अविद्याकी नहीं । यातैं सुषुप्तिलक्षणकी जाग्रत्मैं अतिव्याप्ति नहीं । तैसैं प्रातिभासिक रजताकारवृत्ति जाग्रत्मैं अविद्याका परिणामहै। सो अविद्यागोचर नहीं। तैसैं सुखाकारवृत्ति जाग्रत्मैंहै । सो अविद्याका परिणाम नहीं है । इसरीतिसैं सुखगोचर औ अविद्यागोचर अविद्यावृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्तिअवस्था कहैहैं ॥

सुषुप्तिसंबंधी अर्थका कथन ॥ १६७ ॥

सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्तिमैं आरूढसाक्षी अविद्याकूं प्रकाशैहै औ स्वरूपसुखकूं प्रकाशैहै । सुषुप्तिअवस्थामैं सुखाकार अविद्याका परिणाम

जिस अज्ञानांशका हुआहै । तिस अज्ञानांशमैं तिस पुरुषका अंतःकरण लीनहै । जाग्रत्कालसैं तिस अज्ञानांशका परिणाम अंतःकरण होवैहै । यातैं अज्ञानकी वृत्तिसैं अनुभूतसुखकी जाग्रत्मैं स्मृति होवैहै । उपादानका औ कार्यका भेद नहीं होनेतैं अनुभवस्मरणकूं व्यधिकरणता नहीं । इसरीतिसैं तीनि अवस्थाहैं । मरणका औ मूर्च्छाकाभी कोई सुषुप्तिमैं अंतरभाव कहैहै । कोई पृथक् कहैहैं ॥

उक्तअवस्थाभेदकूं वृत्तिकी आधीनता ॥ १५८ ॥

वह अवस्थाभेद वृत्तिके अधीनहै । जाग्रत्स्वप्नमैं तो अंतःकरणकी वृत्ति है जाग्रत्मैं इंद्रियजन्यहै। स्वप्नमैं इंद्रियअजन्यहै। सुषुप्तिमैं अज्ञानकी वृत्तिहै ॥

वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १५९ ॥

अवस्थाका अभिमानही बंधहै । अभिमानभी भ्रमज्ञानकूं कहैहै । सोभी वृत्तिविशेषहै ॥ यातैं वृत्तिकृतबंधही संसारहै औ वेदांतवाक्यसैं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवै तासैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै । सोई मोक्षहै । यातैं वृत्तिका संसारदशामैं तो व्यवहारसिद्धि प्रयोजनहै । औ परमप्रयोजन मोक्षहै ॥

कल्पितकी निवृत्तिविषै विचार ।

कल्पितकी निवृत्तिकूं अधिष्ठानरूपतापूर्वक मोक्षमैं द्वैतापत्तिदोषके कथनकी अयुक्तता ॥ १६० ॥

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवैहै । यातैं संसारनिवृत्ति मोक्षहै । या कहनेतैं ब्रह्मरूप मोक्षहै । यह सिद्ध होवैहै ॥ यातैं कल्पितकी निवृत्तिकूं कल्पितका ध्वंस मानिकै मोक्षमैं द्वैतापत्तिदोषका कथन अज्ञानप्रयुक्तहै । औ ॥

न्यायमकरंदकारउक्त अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिपक्षमैं दूषण ॥ १६१ ॥

न्यायमकरंदकारनैं कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानी, औ द्वैतापत्तिकाभी समाधान कहाहै । परंतु तिनका लेख अनुभवके अनुसार नहीं ।

काहेतैं यह तिनका लेखहैः—कल्पित निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्नहै; जो अधिष्ठानरूप कहै तो अधिष्ठान औ कल्पितनिवृत्ति एकही पदार्थहै दोपदार्थ नहीं, यह सिद्ध होवैहै। तहां यह पूछैंहैः—अधिष्ठानमैं अंतरभाव मानिके कल्पितनिवृत्तिका लोप इष्टहै। अथवा कल्पितनिवृत्तिमैं अंतर्भावमानिके पृथक् अधिष्ठानका लोप इष्टहै। अन्यप्रकार संभवै नहीं। एकमैं अपरका अंतर्भावही कहना होवैगा। जो प्रथमपक्ष कहै तौ संभवै नहीं। काहेतैं संसारका अधिष्ठान ब्रह्महै। औ संसारकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं होवै, तो संसारनिवृत्तिके साधनमैं प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये। काहेतैं संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न तौ है नहीं, औ ब्रह्म सिद्धहै। व्यापारसाध्यके अर्थ प्रवृत्ति होवैहै। स्वभावसिद्ध ब्रह्मके अर्थ ज्ञानसाधन श्रवणादिकनमैं प्रवृत्ति संभवै नहीं। यातैं संसारनिवृत्तिका नित्यसिद्ध ब्रह्ममैं अंतर्भाव संभवै नहीं। औ, जो निवृत्तिमैं ब्रह्मका अंतर्भाव कहै तौभी संसारभ्रमका असंभव होनेंतैं ताकी निवृत्तिजनक ज्ञानके साधन श्रवणादिकंनमैं प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये। काहेतैं संसारकी निवृत्तिं तो ज्ञानसैं उत्तरकालमैं होवैहै। ज्ञानसैं प्रथम कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं। यह अनुभवसिद्धहै। औ संसारनिवृत्तिसैं पृथक् ब्रह्म हैनहीं। यातैं ज्ञानतैं पूर्व ब्रह्मरूप अधिष्ठानके अभावतैं संसारभ्रम संभवै नहीं यातैं अनुभवसिद्ध संसारका अभाव तो कहा जावै नहीं। सत्य कहना होवैगा ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं। यातैं संसारनिवृत्तिमैं ब्रह्मका अंतर्भाव संभवै नहीं। औ संसारनिवृत्ति ज्ञानसैं पूर्वकालमैं है नहीं। ज्ञानसैं उत्तरकालमैं होनेतैं सादिहै; औ ब्रह्म अनादिहै। सादिपदार्थमैं अनादिपदार्थका अंतर्भावकथन अयुक्तहै। इसरीतिसैं दोनूंका परस्पर अंतर्भाव संभवै नहीं। यातैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूपहै। यह पक्ष संभवैं नहीं। औ जो ऐसैं कहै परस्पर अंतर्भाव किसीका नहीं कहैहै; तथापि कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं पृथक् नहीं। अधिष्ठानकी अवस्थाविशेष कल्पितनिवृत्तिहै। अज्ञात औ ज्ञात दो अवस्था अधिष्ठानकी होवैहैं।

ज्ञानसैं पूर्व अज्ञातअवस्थाहै। औ ज्ञानसैं उत्तरकालमैं ज्ञात अवस्थाहोवैहै। ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिहै, ज्ञातअधिष्ठान सादिहै; यातैं ज्ञानसाधन श्रवणादिक निष्फल नहीं। औ संसारानिवृत्ति ब्रह्मसैं पृथक् नहीं। इसरीतिसैं ज्ञातअधिष्ठानरूपही कल्पित निवृत्तिकूं मानैं सोभी संभवै नहीं। काहेतैं ज्ञानके विषयकूं ज्ञात कहैहैं। अज्ञानके विषयकूं अज्ञात कहैहैं। अज्ञानकृत आवरणही अज्ञानकी विषयता कहियेहै। जब ज्ञानसैं अज्ञानका अभाव होवै, तब अज्ञात व्यवहार होवै नहीं। तैसैं विदेहदशामैं देहादिकनके अभावतैं ज्ञानका अभाव होनेतैं ज्ञातताका अभाव होवैहै। यातैं विदेहदशामैं अज्ञातअवस्थाकी नांई ज्ञातअवस्थाकाभी अभाव होनेतैं ज्ञातअधिष्ठानरूप कल्पितनिवृत्तिका मोक्षमैं अभाव हुआ चाहिये। जो मोक्षमैं अभाव मानैं तौ कल्पितनिवृत्तिकूं अनंतताके अभावतैं औषधजन्य रोगनिवृत्तिकी नांई परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा। यातैं॥

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका निरूपण ॥ १६२ ॥

कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं। तासैं भिन्नहै। औ अधिष्ठानभिन्नभी कल्पितकी निवृत्ति द्वैतकी संपादक नहीं। काहेतैं अधिष्ठानसैं भिन्न सत्य होवै तौ द्वैत होवै सत्यसैं विलक्षण पदार्थ द्वैतका हेतु होवै तौ, सिद्धांतमैं सदा अद्वैतहै। या अर्थका बाध होवैगा यातैं सत्यपदार्थका भेदही द्वैतका साधकहै। कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्नहै, औ सत्य नहीं यातैं द्वैतसिद्धि होवै नहीं॥

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं कल्पितनिवृत्तिके स्वरूपनिर्णयवास्तै अनेकविकल्पनका लेख॥ १६३॥

कल्पितनिवृत्तिके स्वरूपनिर्णयवास्तै इसरीतिसैं विकल्प लिखैहैं:—अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्ति सत्‌रूपहै वा असत्‌रूपहै वा सदसत्‌रूपहै वा सदसत्‌विलक्षणहै? जो सत्‌रूप कहै तौ व्यावहारिक सत्‌है, अ-

थवा पारमार्थिक सत्‌है जो व्यावहारिक सत्‌कहै तौब्रह्मज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक सत्‌का संभव नहीं होनेतैं ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर संसारनिवृत्तिका अभाव चाहिये। काहेतैं ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम जाका बाध होवै नहीं, औ ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर जाकी सत्ता स्फूर्ति होवै नहीं सो व्यावहारिक सत् कहियेहै। यातैं कल्पितनिवृत्तिकूं व्यावहारिक सत् मानें ज्ञानसैं उत्तर ताका संभव होवै नहीं। यातैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्तिकूं पारमार्थिक सत्‌रूप कहै तौ द्वैत होवैगा।इसरीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति सत्‌रूप नहीं। जो अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्तिकूं असत् कहै तौ असत्‌शब्दका अर्थ अनिर्वचनीयहै। अथवा तुच्छहै। जो अनिर्वचनीय कहै तौ दोष आगे चतुर्थ विकल्पके खंडनमैं कहैंगे। तुच्छ कहै तौ संसारनिवृत्तिकूं पुरुषार्थता नहीं होवैगी। यातैं द्वितीय विकल्प संभवै नहीं। औ अधिष्ठानसैं भिन्नकूं सदसत्‌रूप कहै तौ एक पदार्थकूं सत्‌स्वरूपता औ असत्‌स्वरूपता विरोधी होनेतैं संभवै नहीं। औ सदसत्‌रूप मानें पूर्वउक्तसत्‌पक्षका दोष होवैगा औ असत्पक्षका दोष होवैगा। काहेतैं कल्पितनिवृत्तिमैं सत् अंशहै। यातैं द्वैत होवैगा। औ असत्‌अंशतैं अपुरुषार्थता होवैगी। औ सदसत्‌शब्दका ऐसा अर्थ करे सत् कहिये व्यावहारिकसत्ताका आश्रयहै, औ असत् कहिये पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्नहै। यातैं सत् असत्‌का विरोध नहीं। काहेतैं घटादिकव्यावहारिक सत्ताके आश्रय औ पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न प्रसिद्धहैं। यातैं उक्तविरोध नहीं। औ पारमार्थिक सत्ताका निषेध करनेतैं द्वैत नहीं। व्यावहारिक सत्ताहै, तुच्छ नहीं। यातैं अपुरुषार्थभी नहीं। इसरीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति पारमार्थिक सत्ताशून्य व्यावहारिकसत्तावालीहै। इस अभिप्रायतैं सदसत् रूप कहै, तौ प्रथम विकल्पमैं व्यावहारिक सत् मानें जो दोष कहा "ज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक पदार्थका असंभव होवैहै"। तिस दोषतैं यह अर्थभी संभवै नहीं। यातैं तृतीय विकल्पभी संभवै नहीं। औ अधिष्ठानसैं भिन्न

कल्पितनिवृत्ति सदसत्‌विलक्षणहै । यह चतुर्थपक्ष कहैं तौ सद्विलक्षण कहनेंसैं द्वैत नहीं । औ असद्विलक्षण कहनेंसैं अपुरुषार्थताभी नहीं । तथापि संभवै नहीं । काहेतैं सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय होवैहै । यातैं कल्पितकी निवृत्ति अनिर्वचनीयहै । यह सिद्ध होवैगा । औ माया अथवा ताका कार्य अनिर्वचनीय होवैहै । यातैं अज्ञानसहित संसारकी निवृत्तिभी अनिर्वचनीय होवै तौ मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति माननी होवैगी । मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप उक्तनिवृत्तिकूं कहैं तौ घटरूप घटकी निवृत्तिहै । इस कथनकी नांई उक्त कथन हास्यका आस्पदहै । औ ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति होवै तिसतैं अनंतर पुरुषार्थसाधनसामग्री कोई रहै नहीं । यह सिद्धांत है । ब्रह्मज्ञानका फल कल्पितकी निवृत्ति मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप होवै; ताका निवर्त्तक कोई रहा नहीं; यातैं मोक्षदशामैंभी माया वा ताके कार्यका नित्यसंबंध रहनैंतैं निर्विशेषब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षका अभाव होवैगा; यातैं चतुर्थपक्षभी संभवै नहीं । इसरीतिसैं अज्ञानतत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्नहै, सत्‌रूप नहीं; यातैं द्वैत नहीं । असत्‌ नहीं; यातैं अपुरुषार्थता नहीं । सदसत्‌रूप नहीं; यातैं उभयपक्षउक्त दोष नहीं । अनिर्वचनीय नहीं; यातैं मोक्षदशामैं अज्ञान तत्कार्यका शेष नहीं।यातैं उक्तचतुर्विध प्रकारसैं विलक्षण अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्नहै ॥ औ ॥

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं उक्तचारीप्रकारसैं विलक्षण औ ब्रह्मसैं भिन्न पंचमप्रकाररूप कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप ॥ १६४ ॥

पंचमप्रकारताकूं कहैहै । जैसैं सदसत्‌सैं विलक्षणपदार्थकी अद्वैतमतमैं अनिर्वचनीय परिभाषाहै । तैसैं सत्‌रूप १ असत्‌रूप २ सदसत्‌रूप ३ सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय४इन चारिप्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्तिहै । चतुर्विधप्रकारसैं विलक्षणप्रकारका नाम पंचमप्र-

कारहै। यातैं अज्ञानतत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्नहै। ता निवृत्तिमैं पंचमप्रकारहै। यह न्यायमकरंदमैं लिखाहै॥

न्यायमकरंदकारके मतकी असमीचीनता॥ १६५॥

सो समीचीन नहीं। काहेतैं व्यावहारिक सत्पदार्थ तो लोकमैं प्रसिद्धहै। औ अनिर्वचनीय पदार्थभी इंद्रजालकृत लोकमैं प्रसिद्धहैं; तैसैं पारमार्थिक सत्पदार्थ शास्त्रमैं ब्रह्म प्रसिद्धहै। औ विद्वानोंके अनुभवसिद्ध ब्रह्मात्माहै। इन सर्वसैं विलक्षण कोई वस्तु लोकशास्त्रमैं प्रसिद्ध नहीं। अत्यंत अप्रसिद्धिरूप अज्ञानसहित संसारकी निवृत्ति मानैं तो पुरुषार्थताका अभाव होवैगा। काहेतैं पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहियेहैं। अत्यंत अप्रसिद्धमैं पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं। किंतु प्रसिद्धमैं अभिलाषा होवैहै। यातैं प्रसिद्धपदार्थनसैं विलक्षण कल्पितनिवृत्ति नहीं। यद्यपि कल्पितनिवृत्तिकूं अधिष्ठानरूप मानैं तौभी संसारका अधिष्ठान ब्रह्मप्रसिद्ध नहीं। तथापि पूर्वअनुभूतमैं अभिलाषा होवैहै। यह नियम नहींहै। किंतु अनुभूतके सजातीयमैं अभिलाष होवैहै। जैसैं भयरूप अनर्थहेतु सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूपहै; तैसैं जन्ममरणादिरूप अनर्थहेतु संसारकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूपहै। इसरीतिसैं अधिष्ठानत्वधर्मसैं ब्रह्मरूप संसारकी निवृत्ति अनुभूतके सजातीय होनेतैं पुरुषकी अभिलाषा संभवैहै। औ पंचमप्रकारवादीके मतमैं अनुभूत सजातीय नहीं होनेतैं प्रवृत्ति संभवै नहीं। औ अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं भाष्यकारके वचनसैं विरोध होवैगा। भाष्यकारनैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूपही कहीहै। औ॥

न्यायमकरंदकारउक्त ज्ञातअधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिपक्षमैं दोषका उद्धार औ प्रसंगमैं विशेषण उपाधि अरु उपलक्षणका लक्षण॥ १६६॥

ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति माननैमैं जो दोष कहाहै:—मोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं कल्पितनिवृत्तिका अभाव होनेतैं कल्पितका

उज्जीवन होवैगा ताका यह समाधानहैः—ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित ब्रह्म तो मोक्षकालमैं नहींहै। काहेतैं ज्ञातत्वविशेषणवालेकूं ज्ञातत्वविशिष्ट कहेहैं। औ ज्ञातत्वउपाधिवालेकूं ज्ञातत्वउपहित कहेहैं। कार्यमैं संबंधी जो वर्त्तमानव्यावर्तक, सो विशेषण कहियेहै। जैसैं नीलरूपवाला घट उपजैहै। या स्थानमैं नीलरूप विशेषणहै। काहेतैं उत्पत्तिरूप कार्यसैं संबंधीहै। औ घटमैं वर्तमान हुवा पीत घटसैं व्यावर्तकहै। औ कार्यमैं असंबंधी वर्तमानव्यावर्तक उपाधि कहियेहै। जैसैं भेरीउपहित आकाशमैं शब्दहै। इस स्थानमैं भेरी उपाधिहै। काहेतैं शब्दकी अधिकरणतामैं भेरीका संबंध नहीं। औ वर्त्तमान भेरी बाह्याकाशतैं व्यावर्त्तकहै। औ कार्यमैं असंबंधी व्यावर्त्तक होवै सो उपलक्षण कहियेहै। उपलक्षणमैं वर्तमानताकी अपेक्षा नहीं, अतीतभी उपलक्षण होवैहै। औ उपाधि तो विशेष्यके सर्वदेशमैं होवैहै। उपलक्षण एकदेशमैं होवैहै; जैसैं "काकवत् गृहं गच्छ" ऐसा कहैं, जिस गृहमें काकसंयोगदेखाहै। तिस गृहसैं काक चलाजावै तौभी गमन करैहै। इहां गृहका काक उपलक्षणहै। काहेतैं गमनरूपकार्यमैं असंबंधीहै। औ गृहके आदेशमैंहै। तैसैं वर्तमान औ अतीत काक अन्यगृहतैं व्यावर्तकहैं। इसरीतिसैं विशेषण औ उपाधि तौ वर्तमान होवैहै। यातैं विशेष्यके सर्वदेशमैं औ सर्व कालमैं होवैहै। विशेष्यके जा देशमैं जा कालमैं नहीं होवै, ता देशमैं ता कालमैं विशिष्ट व्यवहार नहीं होवैहै। औ उपहित व्यवहारभी नहीं होवैहै॥

किंतु जितनें कालमैं जितनें देशमैं व्यावर्तक होवै। उतने देशमैं औ कालमैं विशिष्ट व्यवहार औ उपहित व्यवहार होवैहै। सो मोक्षदशामैं ज्ञातत्वका संबंध नहीं। किंतु पूर्वज्ञातत्व हुआहै, यातैं ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित तो अधिष्ठान नहींहै। औ व्यावर्तकमात्रकूं उपलक्षण कहैहैं; वर्तमानमैं आग्रह नहीं। यातैं विशेष्यके एकदेशमैं संबंध हुयें औ एककालमें संबंध हुयेंभी व्यावर्तककूं उपलक्षण कहेहै। इतरपदार्थसे

भेदज्ञानकूं व्यावृत्ति कहैहैं। विशेषण, उपाधि, उपलक्षण ये तीनूं इतरसैं व्यावृत्ति करैहैं। तिनमैं विशेषण तौ यावत् देशकालमैं आप होवै, तिस देशकालस्थ स्वविशिष्ट विशेष्यकी व्यावृत्ति करैहैं। जाकी व्यावृत्ति विशेषणसैं होवै सो विशिष्ट कहियेहै, औ जिस देशकालमैं व्यावर्त्तक होवै तिस देशकालमैं व्यार्तनीयकी व्यावृत्ति करै। आप बहिर्भूत रहै, सो उपाधि कहियेहै। जाकी व्यावृत्ति उपाधिसैं होवै; सो उपहित कहियेहै। औ व्यावर्त्तनीयके एकदेशमैं कदाचित् होयकै व्यावृत्ति करै उपाधिकी नांई आप बहिर्भूत रहै। सो उपलक्षण कहियेहै। जाकी व्यावृत्ति उपलक्षणसैं होवै, सो उपलक्षित कहियेहै। यातैं यह निष्कर्ष हुया:—व्यावर्त्तक व्यावर्त्तनीय इन दोनूंमैं विशिष्ट व्यवहार होवैहै। जितनें देशमैं व्यावर्त्तक होवै उतनें देशमैं स्थित व्यावर्त्तनीयमात्रमैं उपहित व्यवहार होवैहै; परंतु व्यावर्तक सद्भावकालमैं व्यावर्त्तककूं त्यागिकै उपहित व्यवहार होवैहै। औ व्यावर्त्तनीयके एकदेशमैं कदाचित् व्यावर्त्तक होवै, तहां व्यावर्त्तनीयमात्रमैं उपलक्षित व्यवहार होवैहै। इहां व्यावर्त्तक सद्भावकी अपेक्षा नहीं। इसरीतिसैं विशेषणादिकनके भेदतैं अंतःकरणविशिष्ट प्रमाताहैं, अंतःकरणउपहित जीव साक्षीहैं। औ अंतःकरणउपलक्षित ईश्वरसाक्षीहैं। इहां प्रसंग यहहै:—मोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित तो अधिष्ठान संभवै नहीं। तथापि ज्ञातत्वउपलक्षित अधिष्ठान मोक्षदशामैंभी है। औ ॥

अधिष्ठानरूप निवृत्तिके पक्षमैं पंचमप्रकारवादीकी शंका ॥ १६७ ॥

जो पंचमप्रकारवादी यह शंका करै:—जामैं कदाचित् ज्ञातत्व होवै, तामैं ज्ञातत्वके अभावकालमैंभी ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ ज्ञातत्वसैं पूर्वकालमैंभी भावी ज्ञातत्वकूं मानिकै ज्ञातत्वोपलक्षित कहा चाहिये। जो पूर्वकालमैं ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ संसारकालमैं भी ज्ञातत्वोपलक्षित अ-

धिष्ठानरूप संसारनिवृत्तिके होनेतैं अनायासतैं पुरुषार्थप्राप्ति होवैगी । यातैं ज्ञातत्वके अभावकालमैं ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप कल्पितनिवृत्ति कहना योग्य नहीं ॥

उक्तशंकाका समाधान ॥ १६८ ॥

ताका यह समाधानहैः–व्यावर्तकसंबंधसैं उत्तरकालमैं उपलक्षित व्यवहार होवैहै, पूर्वकालमैं नहीं होवैहै । जैसैं काकसंबंधसैं उत्तरकालमैं काकोपलक्षित व्यवहार होवैहै । तैसैं ज्ञातत्वकी उत्पत्तिसैं पूर्व संसारदशामैं ज्ञातत्वोपलक्षितअधिष्ठान नहीं । किंतु उत्तरकालमैं ज्ञातत्वके असद्भावकालमैं भी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानहै । ताका स्वरूपही संसारनिवृत्तिहै । औ ॥

न्यायमकरंदतैं अन्यरीतिसैं अधिष्ठानतैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप ॥ १६९ ॥

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्नहै । या पक्षमैं आग्रह होवै तौभी न्यायमकरंदग्रंथमैं उक्तरीतिसैं अत्यंत अप्रसिद्ध पंचमप्रकार मानना निष्फलहै । काहेतैं अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीयहै । निवृत्ति नाम ध्वंसकाहै । तिस ध्वंसकूं अनंत अभावरूप मानैं औ अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं तौं मोक्षदशामें द्वैत होवै । सो ध्वंस अनंत अभावरूप नहीं । किंतु क्षणिकभावविकारहै । यास्कनाम मुनिने वेदका अंग निरुक्त कराहै । तामैं जन्म, सत्ता, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश ये षड्भाव विकार कहेहैं । भाव कहिये अनिर्वचनीय वस्तु ताके विकारहैं, अवस्था विशेषहैं अनिर्वचनीयकी अवस्थाविशेष होनेतैं जन्मादिक नाशपर्यंत अनिर्वचनीयहैं । जैसैं जन्म क्षणिकहै, काहेतैं आद्यक्षणसंबंधकूं जन्म कहेहै । प्रथमक्षणमैं "जायते" ऐसा व्यवहार होवैहै । द्वितीयादि क्षणमैं "जातः" ऐसा व्यवहार होवैहै । "जायते" ऐसा व्यवहार होवै नहीं । तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका चूर्णादिभाव होवै तब एक क्षणमैं "घटो नश्यति" ऐसा व्यवहार होवैहै । द्वितीयादि

क्षणमैं " नष्टो घटः " ऐसा व्यवहार होवैहै " नश्यति " यह व्यवहार होवै नहीं। यातैं जन्मनाश क्षणिकहैं। वर्त्तमान जन्म घटकाहै। यह " जायते घटः " या वाक्यसैं प्रतीत होवैहै। अतीत जन्म घटकाहै। यह " जातो घटः " या वाक्यसैं प्रतीत होवैहै। जैसैं घटका वर्तमान नाशहै, यह " नश्यति घटः " या वाक्यसैं प्रतीत होवैहै। औ " नष्टो घटः " या वाक्यसैं घटका अतीत नाश प्रतीत होवैहै। जो ध्वंसरूप नाश अनंत होवै तौ नाशमैं अतीतत्व व्यवहार नहीं हुआ चाहिये। यातैं नाश अनन्त नहीं। किंतु क्षणिकहै। औ भावविकारहै। यातैं अभावरूप नहीं। औ अनुपलब्धिनिरूपणमैं अनंत अभाव ध्वंस कहा, सो न्यायकी रीतिसैं कहाहै। वेदांतमतमैं एक अत्यंताभावही अभाव पदार्थ है। इसरीतिसैं कल्पितकी निवृत्ति क्षणिकहै। अनिर्वचनीयहै। जैसैं विद्वान्‌के अनिर्वचनीय शरीरादिकज्ञानसैं उत्तरभी प्रारब्धबलतैं किंचित्काल रहैहैं। द्वैतके साधक नहीं। तैसैं ज्ञानसैं उत्तरकाल कल्पितकी निवृत्ति एक क्षण रहैहै। यातैं द्वैतकी साधक नहीं। एक क्षणतैं उत्तर कल्पितनिवृत्तिका अत्यंताभावहै, सो ब्रह्मरूपहै॥

उक्तमतमैं पुरुषार्थका स्वरूप। (दुःखाभाव वा केवल सुख)॥१७०॥

या मतमैं दुःखनिवृत्ति क्षणिकभाव होनेतैं पुरुषार्थ नहीं। किंतु दुःखाभाव पुरुषार्थहै। अथवा दुःखाभावभी पुरुषार्थ नहीं। किंतु केवल सुखही पुरुषार्थहै। काहेतैं अनंतदुःखसहित ग्राम्यधर्मादिकनका सुखहै; तामैं स्वभावसैं सकलजीवनकी प्रवृत्ति होवैहै। जो दुःखाभावभी पुरुषकी अभिलाषाका विषय होवै तौ सर्वथा दुःखग्रसित सुखमैं पुरुषकी अभिलाषा नहीं हुयी चाहिये। औ जहां दुःखाभावमैं अभिलाषा होवैहै। तहांभी स्वरूपसुखानुभवका प्रतिबंधक दुःखहै। ताके अभावकालमैं स्वरूपसुखका प्रादुर्भाव होवैहै। यातैं दुःखाभावमैं पुरुषकी अभिलाषास्वरूपसुखके निमित्तहै। इसरीतिसैं मुख्य पुरुषार्थ सुखहै। दुःखाभाव नहीं।

यातैं दुःखात्यंताभावकूं भी ब्रह्मरूप नहीं मानैं औ अनिर्वचनीय मानैं तौ ताकाभी बाध संभवैहै । परंतु अनिर्वचनीयका बाधरूप अभाव तौ अधिष्ठानरूप अनुभवसिद्धहै। यातैं अज्ञानसहित भावाभावरूप प्रपंच औ ताकी निवृत्ति सकल अनिर्वचनीयहै । तिन सर्वका अधिष्ठानरूप बाध होयकै निर्द्वैतस्वरूप परमानंदरूप परमपुरुषार्थ मोक्षहै ॥ ॥ इतिश्रीमन्निश्चलदाससंज्ञकसाधुविरचितेवृत्तिप्रभाकरेजीवेश्वरस्वरूपनिरूपणपूर्वकवृत्तिप्रयोजननिरूपणसहितकल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणंनामअष्टमःप्रकाशः ॥ ८ ॥

इति वृत्तिप्रभाकरः समाप्तः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेंकटेश्वर " छापाखाना-बम्बई.

जाहिरात ।

वैदिकग्रंथाः ।

नाम.	की.रु.आ.
ऋग्वेदसंहिता	४–०
यजुर्वेदसंहिता (वाजिसनेयी) सर्वानुक्रमणिका याज्ञवल्क्यशिक्षा व स्वरसहित मोटे टैपमें शुद्धतापूर्वक उत्तम छपीहै.	३–०
द्वादशउपनिषद् मूल स्थूलाक्षर शांतिसहित	३–०
मंत्रसंहिता शुक्लयजुर्वेदी	०–६
रुद्री शुक्लयजुर्वेदी	०–४
दंडक शुक्लयजुर्वेदी	०–४
पितृसंहिता	०–१॥
पारस्कराचार्यकृत गृह्यसूत्र हरिहरभाष्यसहित ...	१–८
पुरुषसूक्त श्रीसूक्त	०–१
मंत्रार्थदीपिका सटीक	१–८

वेदांतग्रंथाः ।

शारीरक (शांकरभाष्य) रत्नप्रभाटीका व्यासाधिकरणमाला और भक्तिसूत्र सभाष्य अक्षर बड़ा	१०–०
ब्रह्मसूत्र (शारीरक) भाषाटीका	१–८
वेदांतसार संस्कृतमूल और संस्कृतटीका तथा भाषाटीकासहित	०–१२
गीता चिद्घनानंदस्वामिकृत गूढार्थदीपिका मूल अन्वय पदच्छेदके सहित भाषाटीका ...	८–०
गीता आनंदगिरिकृतभाषाटीका	३–०
श्रीमद्भगवद्गीता सान्वयब्रजभाषा दोहासहित ...	१–४